2768 2769



वृत्तिप्रभाकर

श्रीमान्निश्चलदाससंज्ञकसाधु
विरचितं

अथ श्रीवृत्तिप्रभाकरस्यानुक्रमणिका.

उपमानप्रमाणनिरूपणं नाम चतुर्थः प्रकाशः ४ ।

अर्थापत्तिप्रमाणनिरूपणं नाम पंचमः प्रकाशः ५ ।

अनुपलब्धिप्रमाणनिरूपणं नाम षष्ठः प्रकाशः ६ ।

वृत्तिभेद अनिर्वचनीयख्याति मंडनान्यख्यातिखंडन और स्वतः प्रमात्वनिरूपणं नाम सप्तमः प्रकाशः ७

११२-१३६ सिद्धांतसंमत अनिर्वचनीय ख्यातिकी रीति.

२३८–२४७ स्वप्नविषे विचार.

२५७-२५९ दृष्टिसृष्टि और सृष्टिदृष्टि वादका भेद.

२५९-२६६ मिथ्याप्रपंचके मिथ्यात्वमें शंकासमाधान.

२६६-२७१ मतभेदसैं पांचप्रकारका प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप (तिरस्कार)

३४३–३५२ कल्पितकी निवृत्तिविषे विचार.

इत्यनुक्रमणिका समाप्ता ।

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

अथ श्रीवृत्तिप्रभाकरप्रारंभः ॥

दोहा ।

अस्ति भाति प्रिय सिंधुमैं, नाम रूप जंजाल ।
लषि तिहिं आत्मस्वरूप निज, ह्वै तत्काल निहाल ॥ १ ॥

१ वृत्तिका सामान्यलक्षण और भेद.

"अहं ब्रह्मास्मि" या वृत्तिसैं कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्ति होवै है. यह वेदांतका सिद्धांत है; तहां यह जिज्ञासा होवै है कि—वृत्ति किसको कहै हैं? और वृत्तिका कारण कौन हैं? और वृत्तिका प्रयोजन क्या है ? यातैं "वृत्तिप्रभाकर" नाम ग्रंथ लिखै हैं. अंतःकरणका और ज्ञानका जो परिणाम सो वृत्ति कहिये है. यद्यपि क्रोध सुखादिक भी अंतःकरणके परिणाम हैं और आकाशादिक अज्ञानके परिणाम हैं तिनको वृत्ति नहीं कहै हैं, तथापि विषयका प्रकाशक जो अंतःकरणका और ज्ञानका परिणाम सो वृत्ति कहिये है. क्रोध सुखादिरूप जो अंतःकरणके परिणाम तिनतैं किसी पदार्थका प्रकाश होवै नहीं, तैसे आकाशादिकनतैं भी प्रकाश होवै नहीं; यातैं वृत्ति नहीं, किंतु ज्ञानरूप परिणामतैं प्रकाश होवै है ताहीको वृत्ति कहै हैं. यद्यपि सुख, दुःख, काम, तृप्ति, क्रोध, क्षमा, धृति, अधृति, लज्जा, भयादिक जितने अंतःकरणके परिणाम हैं तिन सबोंका अनेक स्थानोंमें वृत्तिशब्दसे व्यवहार लिखा है; तथापि तत्त्वानुसंधान अद्वैतकौस्तुभादिक ग्रंथनमें प्रकाशक परिणामही वृत्ति कही है यातैं माया और अंतःकरणका ज्ञानरूप परिणामही वृत्तिशब्दका अद्वैतमतमें पारिभाषिक अर्थ है.

सो वृत्तिज्ञान दो प्रकारका है:—एक प्रमारूप है; और दूसरा अप्रमारूप है. प्रमाणजन्यज्ञानको प्रमा कहै हैं: तासैं भिन्नको अप्रमा कहै हैं. प्रमाज्ञान यथा-

थैंही होवै है और अप्रमा ज्ञान दो प्रकारका हैः—एक यथार्थ है और दूसरा भ्रम है. दोषजन्यको भ्रम कहै हैं और दोषजन्य न होवै किंतु इंद्रिय अनुमानादि प्रमाणतैं अथवा और किसी कारणतैं होवै सो यथार्थ कहिये है. जैसे शुक्तिमें रजतका ज्ञान सादृश्यदोषजन्य है यातैं भ्रम है. मिश्रीमें कटुताका ज्ञान पित्तदोषजन्य है, चंद्रमें लघुताका ज्ञान और अनेक वृक्षोंमें एकताका ज्ञान दूरतारूप दोषजन्य है यातैं भ्रम है. और विचारसागरमें दोषको अध्यासकी हेतुता खंडन करी है; ताका यह अभिप्राय है—प्रमाता प्रमाण प्रमेयके तीन दोष अध्यासके हेतु नहीं; कोई दोष होवै तो अध्यास होवै है और सर्व दोषके अभावतैं जो अध्यास कहा है सो प्रौढिवादसैं कहा है. जहां और कोई दोष न होवै तो अविद्याही दोष है, यातैं दोषजन्यको भ्रम कहै हैं.

और स्मृतिज्ञान सुखदुःखका प्रत्यक्ष ज्ञान, ईश्वरवृत्तिज्ञान दोषजन्य नहीं यातैं भ्रम नहीं और प्रमाणजन्य नहीं यातैं प्रमा नहीं, किंतु भ्रमप्रमासैं विलक्षण है, परंतु यथार्थ है; काहेतैं? जा ज्ञानके विषयका संसारदशामें बाध न होवै सो यथार्थ कहिये है.

स्मृतिज्ञानका हेतु संस्कारद्वारा पूर्वअनुभव है. जहां यथार्थ अनुभवसैं स्मृति होवै तहां स्मृति यथार्थ, और भ्रमरूप अनुभवके संस्कारतैं स्मृति होवै सो अयथार्थ है.

धर्मादिक निमित्तसैं अनुकूल प्रतिकूल पदार्थका संबंध होनेसे अंतःकरणके सत्वगुणका और रजोगुणका परिणामरूप सुख दुःख होवे हैं. जो सुखदुःखका निमित्त है ताही निमित्तसैं सुखदुःखको विषय करनेवाली अंतःकरणकी वृत्ति होवै है, ता वृत्तिमैं आरूढ साक्षी सुखदुःखको प्रकाशै है. सुखाकार दुःखाकार अतंःकरणकी वृत्ति प्रमाणजन्य नहीं यातैं प्रमा नहीं.

और ईश्वरका ज्ञान इच्छा प्रयत्न न्यायमतमैं तो नित्य है परंतु श्रुतिमें ईश्वरके ज्ञानादिकनकी उत्पत्ति कही है; यातैं नित्य नहीं किंतु प्राणियोंके कर्मनके अनुसार सृष्टिके आदिकालमें सर्व पदार्थनको विषय करनेवाला ईश्व-

रका ज्ञान उपजै हैं. सो ज्ञान भूत, भविष्यत्, वर्तमान सकल पदार्थनके सामान्यविशेषभावको विषय करै है और प्रलयपर्यंत स्थायी है; यातैं एक और नित्य कहै हैं. तैसे इच्छा और प्रयत्नभी उत्पत्तिवाले हैं और स्थायी हैं यातैं प्रलयपर्यंत एक एक व्यक्ति हैं. याके विषै ऐसी शंका करै हैं कि-ईश्वरकी इच्छा प्रलयपर्यंत स्थायी होवै तो वर्षा, आतप, शीत, ईश्वरकी इच्छातैं होवै हैं; यातैं प्रलयपर्यंत वर्षा तथा आतप वा शीत हुआ चाहिये ? सो शंका बनै नहीं:-काहेतैं ? ईश्वरकी इच्छा व्यक्ति नाना होवैं और नित्य होवैं तब यह दोष होवै, सो ईश्वरकी प्रलयपर्यंत स्थायी इच्छा व्यक्ति नाना नहीं, किंतु एक है; तो एक इच्छाने सारे पदार्थ जिसरीतिसे विषय करे हैं उस रीतिसे होवै हैं। इतने काल वर्षा होवै, इतने काल शीत होवै, इतने काल आतप होवै इस रीतिसैं ईश्वरकी इच्छा पदार्थनको विषय करै है; यातैं सारे पदार्थ किसी कालमें होवै हैं. प्रलयपर्यंत स्थायी इच्छा एक है यापक्षमें दोष नहीं: श्रुतिमें ज्ञान इच्छा कृतिकी उत्पत्ति कही है यातैं ज्ञानादिक उत्पत्तिवाले हैं और आकाशकी नाई महाप्रलयपर्यंत स्थायी हैं; और ईश्वरके ज्ञानके प्रपंच-स्थितिकालमें अनंतवार उत्पत्ति नाश मानै ताको यह पूछै हैं:-ईश्वरमें कोई एक ज्ञानव्यक्ति प्रपंचकी स्थितिकालमें सदा बनी रहै है ? अथवा प्रपंच होनेतैं किसी कालमें ज्ञानहीन ईश्वर रहै है ? जो ऐसे कहै ज्ञानहीन ईश्वर किसी कालमें रहै है तो उस कालमें ईश्वर अज्ञ होवैगा, और जो ऐसे कहै कोई ज्ञानव्यक्ति ईश्वरमें सदा रहै है तो अनंतज्ञानकी अनंत उत्पत्ति अनंत नाश मानने निष्फल हैं. एकही ज्ञान सृष्टिके आदिकालमें उत्पन्न हुआ महाप्रलयपर्यंत स्थायी है. सो ईश्वरके ज्ञान, इच्छा, कृति विसंवादी नहीं किंतु संवादी हैं. निष्फलप्रवृत्तिके जनक ज्ञानादिक विसंवादी कहिये हैं. तासैं भिन्न संवादी कहिये हैं. जीवके ज्ञान, इच्छा, कृति, संवादी और विसंवादी भेदसे दो प्रकारके हैं. ईश्वरके ज्ञान, इच्छा, कृति, निष्फल प्रवृत्तिके जनक नहीं; यातैं विसंवादी नहीं किंतु संवादी हैं. विसंवादी ज्ञानको भ्रम कहै हैं. संवादीकूं यथार्थ कहै हैं. प्रमाणजन्य यथार्थज्ञानको प्रमा कहै हैं. जैसे जीवका ज्ञान अंतःकरणकी

वृत्तिरूप है तैसे ईश्वरका ज्ञान मायाकी वृत्तिरूप है, जीवनके अदृष्टजन्य है, प्रमाणजन्य नहीं यातैं प्रमा नहीं. दोषजन्य नहीं और निष्फल प्रवृत्तिका जनक नहीं यातैं भ्रमभी नहीं किंतु यथार्थ है. प्रमाणजन्यज्ञानको प्रमा कहै हैं.

२ प्रमाणके भेदका कथन.

प्रमाणके षट् भेद हैं:—प्रत्यक्ष १, अनुमान, २, शब्द ३, उपमान ४, अर्थापत्ति ५, अनुपलब्धि ६. प्रत्यक्षप्रमाका जो करण सो प्रत्यक्षप्रमाण कहिये है, अनुमितिप्रमाके करणकूं अनुमान प्रमाण कहै हैं, शाब्दी प्रमाके करणकूं शब्दप्रमाण कहै हैं, उपमितिप्रमाके करणकूं उपमान-प्रमाण कहै हैं, अर्थापत्ति प्रमाके करणकूं अर्थापत्तिप्रमाण कहै हैं, अभावप्रमाके करणकूं अनुपलब्धिप्रमाण कहै हैं. प्रत्यक्ष और अर्थाप-त्तिप्रमाणके और प्रमाके एकही नाम हैं, भट्टके मतमें षट् प्रमाण माने हैं और वेन्दातग्रंथनमें भी षट् प्रमाणही लिखे हैं. यद्यपि सूत्रकार भाष्यकारने प्रमाणसंख्या लिखी नहीं, तथापि सिद्धांतका अविरोधी जो भट्टका मत है, ताकूं अद्वैतवादमें मानै हैं; यातैं वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमें षट् प्रमाणही लिखे हैं.

३ करणका लक्षण.

और न्यायशास्त्रमें चार प्रमाण माने हैं. अर्थापत्ति और अनुपलब्धिकूं नहीं माने हैं. तहां यह न्यायशास्त्रका मत है. जो प्रमाका कारण होवे सो प्रमाण कहिये है. प्रत्यक्षप्रमाके करण नेत्रादिक इंद्रिय हैं यातैं नेत्रा-दिक इंद्रियनकूं प्रत्यक्षप्रमाण कहैं है. व्यापारवाला जो असाधारण कारण होवै सो करण कहिये है. ईश्वर और ताके ज्ञान इच्छा कृति दिशा काल अदृष्ट प्रागभाव प्रतिबंधकाभाव ये नव साधारणकारण हैं. इनसे भिन्न जो कारण सो असाधारणकारण कहिये है. असाधारणकारणभी दो प्रकारका होवै है; एक तो व्यापारवाला होवै है और एक व्यापाररहित होवै हैं. कारणतैं उपजीवके कार्यको उपजावै सो व्यापार कहिये है. जैसे कपाल घटका कारण है और दो कपालोंका संयोगभी घटका कारण है; तहां कपालकी

कारणतामें संयोग व्यापार है. काहेतैं? कपालसंयोग कपालतैं उपजै है, और कपालके कार्य घटकूं उपजावै है; यातैं संयोगरूपव्यापारवाला कारण कपाल है. और जो कार्यकूं किसीद्वारा उपजावै नहीं, किंतु आपही उपजावै सो व्यापारहीन कारण कहिये है. ईश्वर आदि जो नव साधारणकारण तिनसैं भिन्न व्यापारवाला कारण करण कहिये है. ऐसा कपाल है; यातैं घटका कपाल करण कहिये है और कपालका संयोग असाधारण तो है व्यापारवाला नहीं; यातैं करण नहीं कहिये है, केवल घटका कारणही कहिये है.

४ प्रत्यक्षप्रमाके भेदका कथन.

तैसें प्रत्यक्षप्रमाके नेत्रादिकइंद्रिय करण हैं; काहेतैं? नेत्रादिक इंद्रियनका अपने अपने विषयतैं सबंध नहीं होवे तो प्रत्यक्षप्रमा होवै नहीं, इंद्रियविषयका संबंध होवै तब होवै है; यातैं इंद्रियविषयका संबंध इंद्रियतैं उपजिकै प्रत्यक्षप्रमाकूं उपजावै है. सो व्यापार है. संबंधरूप व्यापारवाले प्रत्यक्षप्रमाके असाधारणकारण इंद्रिय हैं यातैं इंद्रियनकूं प्रत्यक्षप्रमाण कहै हैं. इंद्रियजन्य यथार्थज्ञानकूं न्यायमतमें प्रत्यक्षप्रमा कहै हैं. प्रत्यक्षप्रमाके करण इंद्रियषट् हैं; यातैं प्रत्यक्षप्रमाके षट् भेद हैं. श्रोत्र १ त्वक् २ नेत्र ३ रसन ४ घ्राण ५ मन ६ ये षट् इंद्रिय हैं. श्रोत्रजन्य यथार्थज्ञान श्रोत्रजप्रमा कहिये है १, त्वक्इंद्रियजन्य यथार्थज्ञान त्वाचप्रमा कहिये है २, नेत्रइंद्रियजन्य यथार्थज्ञान चाक्षुषप्रमा कहिये है ३, रसनइंद्रियजन्य यथार्थज्ञान रासनप्रमा कहिये है ४, घ्राणइंद्रियजन्य यथार्थ ज्ञान घ्राणजप्रमा कहिये है ५, मनइंद्रियजन्य यथार्थज्ञान मानसप्रमा कहिये है ६ न्यायमतमैं शुक्तिरजतादिक भ्रमभी इंद्रियजन्य है, परंतु केवलइंद्रियजन्य नहीं, किंतु दोषसहित इंद्रियजन्य है. विसंवादी हैं यथार्थ नहीं यातैं शुक्तिमें रजतका ज्ञान चाक्षुष ज्ञान तो है, चाक्षुष प्रमा नहीं. ऐसेही अन्यइंद्रियतैंभी जो भ्रम होवै सो प्रमा नहीं.

५ प्रत्यक्षप्रमाके भेद श्रोत्रजप्रमाका निरूपण.

श्रोत्रइंद्रियतैं शब्दका ज्ञान होवे है, और शब्दमें जो शब्दत्व जाति ताकाभी ज्ञान होवे है. तैसे शब्दत्वके व्याप्य कत्वादिकनका और तारत्वादिक-

नका ज्ञान होवै है: तैसे शब्दाभाव और शब्दमें तारत्वादिकनके अभावका ज्ञान होवै है.जाका श्रोत्रइंद्रियसैं ज्ञान होवै ता विषयसैं श्रोत्रइंद्रियका संबंध कह्या चाहिये, यातैं संबन्ध कहिये है. न्यायमतमें चार इंद्रिय तो वायु अग्नि जल पृथिवीतैं क्रमसै उपजै हैं, और श्रोत्र मन नित्य हैं. कर्णगोलकमें स्थित आकाशकूं श्रोत्र कहै हैं. जैसे वायुआदिकनतैं त्वक् आदिक इंद्रिय उपजै हैं तैसे आकाशतैं श्रोत्र उपजै हैं. यह नैयायिक नहीं मानै हैं, किंतु कर्णमें जो आकाश ताहीकूं श्रोत्र कहै हैं, और गुणका गुणीसे समवायसंबंध कहै हैं. शब्द आकाशका गुण है, यातैं आकाशरूप श्रोत्रसें शब्दका समवायसंबंध है. यद्यपि भेरी आदिकदेशमें जो आकाश तामें शब्द उपजै है; और कर्णउपहित आकाशकूं श्रोत्र कहै हैं, यातें भेरी आदिक उपहित आकाशमें शब्दका संबंध है; कर्णउपहित आकाशमें नहीं; तथापि भेरीदंडके संयोगतैं भेरीउपहित आकाशमें शब्द उपजै है ताका कर्णउपहित आकाशतैं संबंध नहीं यातैं प्रत्यक्ष होवै नहीं,परंतु ता शब्दसें और शब्द दशदिशा उपहित आकाशमें उपजै हैं तिनतैं और उपजै है कर्णउपहितआकाशमें जो शब्द उपजै है, ताका प्रत्यक्षज्ञान होवे है औरका नहीं. शब्दकी प्रत्यक्षप्रमा फल है,श्रोत्रइंद्रिय करण है और त्वाच आदिक प्रत्यक्षज्ञानमें तो सारे विषयनका इंद्रियनसैं संबंधही व्यापार है: और श्रोत्रप्रमामें विषयसैं इंद्रियका संबंध व्यापार बनै नहीं; काहेतैं? और स्थानोंमें विषयनका इंद्रियनतैं संयोग संबन्ध है; और शब्दका श्रोत्रसैं समवायसंबंध है. न्यायमतमें संयोग जन्य है, समवाय नित्य है. त्वक् आदिक इंद्रियनका घटादिकनतैं संयोगसंबंध त्वक् आदिक इंद्रियनतैं उपजै हैं और प्रमाकूं उपजावै है; यातैं व्यापार है. तैसे शब्दका श्रोत्रसैं समवायसंबन्ध श्रोत्रजन्य नहीं; यातैं व्यापार बनैं नहीं, किंतु श्रोत्रमनका संयोग व्यापार है. संयोग दोनोंका आश्रित होवै है. जिनका आश्रित संयोग होवै सो दोनों संयोगके उपादान कारण होवै हैं. श्रोत्रमनके संयोगके उपादान कारण श्रोत्र मन दोनो हैं; यातैं श्रोत्रमनका संयोग श्रोत्रजन्य है और श्रोत्रजन्य ज्ञानका जनक है यातैं व्यापार है.

याके विषे ऐसी शंका होवै है:—श्रोत्रमनका संयोग श्रोत्रजन्य तो है, परंतु श्रोत्रजन्यप्रमाका जनक किसरीतिसे हैं ?

ताका यह समाधान है:—आत्ममनका संयोग तो सर्वज्ञानका साधारण कारण है; यातैं ज्ञानकी सामान्यसामग्री आत्ममनका संयोग है और प्रत्यक्षआदिक ज्ञानकी विशेषसामग्री इंद्रियादिक हैं; यातैं श्रोत्रजन्य प्रत्यक्ष ज्ञानके पूर्वभी आत्ममनका संयोग होवै है. तैसैं मनका और श्रोत्रका संयोग होवै है. मनका और श्रोत्रका संयोग हुए विना श्रोत्रजन्य ज्ञान होवै नहीं. काहेतैं ? अनेक इंद्रियनका अपने अपने विषयनतैं एककालमें संबन्ध हुएभी एककालमें तिन सर्व विषयनके इंद्रियनतैं ज्ञान होता नहीं. ताके विषे यह हेतु है, मनके संयोगवाले इंद्रियका विषयतैं संबंध होवै तब ज्ञान होवै है. मनसैं असंयुक्त इंद्रियका अपने विषयके साथ संबंध हुएभी ज्ञान होवै नहीं. न्यायमतमें परम अणु मन है; यातैं एक कालमें अनेक इंद्रियनतैं मनका संयोग संभवै नहीं. इस हेतुतैं अनेकविषयनका अनेक इंद्रियनतैं एककालमें ज्ञान होवै नहीं.जो ज्ञानका हेतु इंद्रियमनका संयोग नहीं होवे तो एककालमें अनेक इंद्रियनका विषयनतैं संबंध हुए एककालमें अनेक ज्ञान हुए चाहिये. इसरीतिसें चक्षुरादि इंद्रियनका मनसें संयोग चाक्षुषादिज्ञानका असाधारणकारण है त्वाचज्ञानमें त्वक्मनका संयोग कारण है और रासनज्ञानमें रसनामनका संयोग कारण है. तैसे चाक्षुषज्ञानमें नेत्रमनका संयोग कारण है और घ्राणजज्ञानविषे घ्राणमनका संयोग कारण है. श्रोत्रजज्ञानमें श्रोत्रमनका संयोग कारण है. इस रीतिसैं श्रोत्रमनका संयोग श्रोत्रसैं उपजके श्रोत्रजज्ञानका जनक है;यातैं व्यापार है. आत्ममनका संयोग सर्वज्ञानमें हेतु है यातैं पहले आत्ममनका संयोग होवै तिसतैं अनंतर जा इंद्रियजन्य ज्ञान उपजेगा ताइंद्रियसे आत्मसंयुक्त मनका संयोग होवे है; फेर मनसंयुक्त इंद्रियका विषयतैं संबंध होवे तब बाह्यप्रत्यक्षज्ञान होवे है. इंद्रियविषयके संबंध विना बाह्यप्रत्यक्ष ज्ञान होवे नहीं.

विषयका इंद्रियसैं संबंध अनेक प्रकारका है. जहां शब्दका श्रोत्रसे प्रत्यक्षज्ञान होवे तहां केवल शब्दही श्रोत्रजन्यज्ञानका विषय नहीं है, किंतु

शब्दके धर्म शब्दत्वादिकभी ताज्ञानके विषय हैं. शब्दका तो श्रोत्रसे समवायसंबंध है और शब्दके धर्म जो शब्दत्वादिक तिनसे श्रोत्रका समवेतसंमवायसंबंध है. काहेतैं? गुण गुणीकी नांई जातिका अपने आश्रयमें समवायसंबंध होवे है; यातैं शब्दत्वजातिका शब्दमें समवायसंबंध है. समवाय संबंधसें जो रहे ताकूं समवेत कहे हैं. श्रोत्रमें समवायसंबंधसैं रहा जो शब्द सो श्रोत्रसमवेत है. ता श्रोत्रसमवेत शब्दमें शब्दत्वका समवाय होनेतैं श्रोत्रका शब्दत्वसैं समवेतसमवायसंबंध है. तैसे श्रोत्रमें शब्दकी प्रतीति नहीं होवे तब शब्दाभावका प्रत्यक्ष होवे है. तहां शब्दाभावका श्रोत्रसैं विशेषणतासंबंध है. जिस अधिकरणमें पदार्थका अभाव होवे तिस अधिकरणमें पदार्थके अभावका विशेषणता संबंध कहिये है. जेसैं वायुमें रूप नहीं है यातैं वायुमें रूपाभावका विशेषणतासंबंध है. जहां पृथिवीमें घट नहीं है तहां पृथिवीमें घटाभावका विशेषणतासंबंध है. इसरीतिसे शब्दशून्य श्रोत्रमें शब्दाभावका विशेषणतासंबंध है; यातैं श्रोत्रसैं शब्दाभावका विशेषणतासंबंध शब्दाभावके प्रत्यक्षज्ञानका हेतु है. जेसे श्रोत्रसे ककारादिक शब्दका प्रत्यक्ष होवे है, तहां समवायसंबंध है, तैसे ककरादिकनमें कत्वादिक जो जाति तिनका समवेतसमवायसंबंधसे प्रत्यक्ष होवे है. और श्रोत्रमें शब्दाभावका विशेषणतासंबंधसे प्रत्यक्ष होवे है, तैसे श्रोत्रसमवेत ककारमें खत्वाभावका प्रत्यक्ष होवे है. तहां श्रोत्रका खत्वाभावसे समवेतविशेषणतासंबंध है. काहेतैं? श्रोत्रमें समवेत कहिये समवायसंबंधसे रहा जो ककार तामें खत्वाभावका विशेषणतासंबंध है. इसतैं आदिलेके अभावके प्रत्यक्षमें श्रोत्रसे अनेकसंबंध हैं, परंतु विशेषणतापना सर्व अभावनके संबंधनमें है; यातैं अभावके प्रत्यक्षमें श्रोत्रका एकही विशेषणतासंबंध है. इस रीतिसे श्रोत्रजन्यप्रमाके हेतु तीन संबंध हैं: शब्दके ज्ञानका हेतु समवायसंबंध है; और शब्दके धर्म शब्दत्वकत्वादिकनके ज्ञानका हेतु समवेतसमवायसंबंध है, और अभावके श्रोत्रजन्यज्ञानविषे विशेषणतासंबंध है. सो विशेषणता नानाप्रकारकी है. शब्दाभावके प्रत्यक्षमें शुद्धविशेषणतासंबंध है, ककारविषे खत्वाभावके प्रत्यक्षमें समवेतविशेष-

णता है, विशेषणतासंबंधके अनंतभेद हैं तोभी विशेषणतापना सारे है; यातैं विशेषणता एकही कहिये है. शब्दके दो भेद हैं. एक तो भेरी आदिकदेशमें ध्वनिरूप शब्द होवै है और दूसरा कंठादिकदेशमें वायुके संयोगतैं वर्णरूप शब्द होवे है. श्रोत्रइंद्रियतैं दोनों प्रकारके शब्दका प्रत्यक्ष होवै है, और वर्णरूप शब्दमें जो कत्वादिक जाति हैं तिन्हका जैसें समवेतसमवायसंबंधसैं प्रत्यक्ष होवै है, तैसैं ध्वनिरूप शब्दमें जो तारत्वमंदत्वादिक धर्म हैं तिनकाभी श्रोत्रसे प्रत्यक्ष होवे है. परंतु कत्वादिक तो वर्णनके धर्म जातिरूप हैं, यातैं कत्वादिकनका ककारादिरूप शब्दसैं समवाय संबंध है; और ध्वनिशब्दके तारत्वादिक धर्म जातिरूप नहीं, न्यायमतमें उपाधिरूप हैं; यातैं तारत्वादिकनका ध्वनिरूप शब्दमें समवाय संबंध नहीं, स्वरूपसंबंध है. काहेतैं ? न्यायमतमें जातिरूप धर्मका गुणका क्रियाका अपने आश्रयमें समवायसंबंध कहे हैं, जातिगुणक्रियासें भिन्न धर्मको उपाधि कहै हैं. उपाधिका और अभावका जो आश्रयतैं संबंध ताकूं स्वरूपसंबंध कहै हैं. स्वरूपकूंही विशेषणता कहै हैं. यातैं जातिसैं भिन्न जो तारत्वादिक धर्म तिनका ध्वनिरूप शब्दसें स्वरूपसंबंध हैं; ताहीको विशेषणता कहै हैं, यातैं श्रोत्रमें समवेत जो ध्वनि तामें तारत्वमंदत्वका विशेषणता संबंध होनेतैं श्रोत्रका और तारत्वमंदत्वका श्रोत्रसमवेतविशेषणतासंबंध है; इसरीतिसें श्रोत्रइंद्रिय श्रोत्रप्रत्यक्षप्रमाका करण है, श्रोत्रमनका संयोग व्यापार है, शब्दादिकनका प्रत्यक्षप्रमारूप ज्ञान फल है.

६ प्रत्यक्षप्रमाके भेद त्वाचप्रमाका निरूपण.

त्वकूइंद्रियतैं स्पर्शका ज्ञान होवै है, तथा स्पर्शके आश्रयका ज्ञान होवै है और स्पर्शके आश्रित जो स्पर्शत्वजाति ताका और स्पर्शाभावकाभी त्वक् इंद्रियतैं प्रत्यक्ष होवै है. काहेतैं ? जा इंद्रियतैं जिसपदार्थका ज्ञान होवै है तापदार्थके अभावका और तापदार्थकी जातिका तिस इंद्रियतैं ज्ञान होवै है. पृथिवी, जल, तेज, इन तीन द्रव्यनका त्वकूइंद्रियतैं प्रत्यक्ष ज्ञान होवै है. वायुका प्रत्यक्ष ज्ञान होवै नहीं, काहेतैं ? प्रत्यक्षयोग्य रूप और प्रत्यक्ष-

योग्य स्पर्श जाद्रव्यमें दोनों होवै ताद्रव्यका त्वाच प्रत्यक्ष होवै है. वायुमें स्पर्श तो है, रूप नहीं; यातैं वायुका त्वाचप्रत्यक्ष होवै नहीं. वायुके स्पर्शका त्वकूइंद्रियतैं प्रत्यक्ष होवै है, स्पर्शके प्रत्यक्षतैं वायुका अनुमितिज्ञान होवै है.

मीमांसाके मतमें वायुका प्रत्यक्ष होवै है. ताका यह अभिप्राय है-प्रत्यक्षयोग्य स्पर्श जा द्रव्यमें होवै ता द्रव्यका त्वाचप्रत्यक्ष होवै है. त्वक् इंद्रियजन्य द्रव्यके प्रत्यक्षमें रूपकी अपेक्षा नहीं, केवल स्पर्शकी अपेक्षा है; जैसे द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षमें उद्भूतरूपकी अपेक्षा है, स्पर्शकी नहीं. काहेतैं? जो द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षमें उद्भूत स्पर्शकी अपेक्षा होवै तो दीपकी तथा चंद्रकी प्रभामें उद्भूत स्पर्श है नहीं; ताका चाक्षुषप्रत्यक्ष नहीं होवैगा और होवै है. और अणुकमें स्पर्श तो है उद्भूतस्पर्श नहीं है, यातैं त्वाचप्रत्यक्ष होवै नहीं केवल चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है. यातैं केवल उद्भूतरूपवाले द्रव्यका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है; तैसे केवल उद्भूतस्पर्शवाले द्रव्यका त्वाचप्रत्यक्ष होवे है. वायुमें रूप तो नहीं है उद्भूतस्पर्श है; यातैं चाक्षुषप्रत्यक्ष तो वायुका नहीं होवै है, त्वाचप्रत्यक्ष होवै है; और सर्व लोकनकूं ऐसा अनुभव होवै है, वायुका मेरेकूं त्वचासैं प्रत्यक्ष होवै है; यातैं वायुकाभी त्वकूइंद्रियतैं प्रत्यक्ष होवै है; यह मीमांसाका मत है. परंतु—

न्यायसिद्धांतमें वायु प्रत्यक्ष नहीं; पृथिवी, जल, तेजमेंभी जहां उद्भूतरूप और उद्भूतस्पर्श है ताका त्वाचप्रत्यक्ष होवै है, औरका नहीं. प्रत्यक्षयोग्य जो रूप और स्पर्श सो उद्भूत कहिये है. जैसे घ्राण रसन नेत्रमें रूप और स्पर्श दोनों हैं, परंतु उद्भूत नहीं, यातैं पृथिवी जल तेजरूपभी तिन इंद्रियनका त्वाचप्रत्यक्ष और चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं. और झरोखेमें जो परमसूक्ष्म रजप्रतीति होवै है सो अणुकरूप पृथिवी है, तामें उद्भूतरूप है; यातैं अणुकका चाक्षुषप्रत्यक्ष तो होवै है, उद्भूतस्पर्शके अभावतैं त्वाचप्रत्यक्ष होवै नहीं. अणुकमें स्पर्शभी है परंतु सो स्पर्श उद्भूत नहीं, वायुमें उद्भूतस्पर्श तो है रूप नहीं, यातैं वायुका त्वाचप्रत्यक्ष तथा चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं; यातैं यह सिद्ध हुआः-द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षमें उद्भूतरूप हेतु है, और द्रव्यके त्वाच

प्रत्यक्षमें उद्भूतरूप और उद्भूतस्पर्श दोनों हेतु हैं. जा द्रव्यमें उद्भूतरूप और उद्भूतस्पर्श होवै ताकाही त्वाचप्रत्यक्ष होवै है, जा द्रव्यका त्वाचप्रत्यक्ष होवै है ता द्रव्यकी प्रत्यक्ष योग्य जातिका भी त्वाचप्रत्यक्ष होवै है; जैसे घटका त्वाचप्रत्यक्ष होवै है तहां घटमें प्रत्यक्षयोग्य जाति घटत्व है; ताकाभी त्वाचप्रत्यक्ष होवै है, तैसे द्रव्यमें जो स्पर्श, संख्या, परिमाण, संयोग, विभागादिक योग्य गुण तिन्हका और स्पर्शादिकनमें स्पर्शत्वादिक जाति तिन्हकाभी त्वाचप्रत्यक्ष होवे है; और कोमलद्रव्यमें कठिनस्पर्शका अभाव है, शीतल जलमें उष्णस्पर्शका अभाव है, ताकाभी त्वाचप्रत्यक्ष होवै है; तहां घटआदिक द्रव्यतैं इंद्रियका संयोगसंबंध है, क्रियाजन्य संयोग होवै है, और द्रव्यका संयोग होवै है. त्वक्इंद्रिय वायुके परमाणुजन्य है; यातैं वायुरूप द्रव्य है. घटभी पृथिवीरूप द्रव्य है. कहूं तो त्वक् इंद्रियका गोलक जो शरीर ताकी क्रियातैं त्वक् घटका संयोग होवै है. और कहूं घटकी क्रियातैं त्वक् घटका संयोग होवै है. कहूं दोनोंमें क्रियातैं संयोग होवै है. नेत्रमें तो गोलकने छोड़िके केवल इंद्रियमें क्रिया होवे है; और त्वक् इंद्रियमें गोलकने छोड़िके स्वतंत्रमें क्रिया कभीभी होवै नहीं. यातैं त्वक्इंद्रियका गोलक जो शरीर ताकी क्रियातैं वा दोनोंकी क्रियातैं त्वक्का घटादिक द्रव्यतैं संयोग होवै तब त्वाचज्ञान होवै है; तहां त्वाचप्रत्यक्षप्रमा फल है, त्वक्इंद्रिय करण है, त्वक् इंद्रियका घटसैं संयोग व्यापार है; काहेतैं ? त्वक् और घटके संयोगके उपादानकारण घट त्वक् दोनों हैं; यातैं त्वक् इंद्रियजन्य वह संयोग है, और त्वक्इंद्रियकार्य जो त्वाचप्रमा ताका जनक है; इसकारणतैं त्वक्का घटतैं संयोग व्यापार है. जहां त्वक्सैं घटकी घटत्वजातिका और स्पर्शादिकगुणनका त्वाच प्रत्यक्ष होवै तहां त्वक्इंद्रिय करण हैं, और प्रत्यक्ष प्रमा फल है, और संयुक्तसमवायसंबंध व्यापार है; काहेतैं त्वक्इंद्रियतैं संयुक्त कहिये संयोगवाला जो घट तामें घटत्वजातिका और स्पर्शादिकगुणनका समवाय है. तैसैं घटादिकनके स्पर्शादिकगुणनमें जो स्पर्शत्वादिक जाति तिनकी त्वाचप्रत्यक्ष प्रमा होवे है. तहां त्वक् इंद्रिय करण है, स्पर्शत्वादिकनकी प्रत्यक्षप्रमा फल है, संयु-

क्तसमवेतसमवाय संबंध है सो व्यापार है; काहेतैं ? त्वक्‌इंद्रियतैं संयुक्त जो घट तामें समवेत कहिये समवायसंबंधतैं रहनेवाले स्पर्शादिक तिनमें स्पर्शत्वादिकजातिका समवाय है. संयुक्तसमवाय और संयुक्तसमवेतसमवाय इन दोनों संबंधोंमें समवाय भाग तो यद्यपि नित्य है इंद्रियजन्य नहीं, तथापि संयोगवालेको संयुक्त कहै हैं, सो संयोग जन्य है, यातैं त्वक् इंद्रियका संयोगत्वक्‌जन्य होनेतैं त्वक्‌संयुक्तसमवाय और त्वक्‌संयुक्तसमवेतसमवाय त्वक् इंद्रियजन्य हैं, और त्वक्‌इंद्रियजन्य जो त्वाचप्रमा ताके जनक हैं; यातैं व्यापार हैं. जहां पुष्पादिक कोमलद्रव्यमें कठिन स्पर्शके अभावका और शीतल जलमें उष्णस्पर्शके अभावका त्वाचप्रत्यक्ष होवै तहां त्वक् इंद्रिय करण है. अभावकी त्वाच प्रमा फल है. और इंद्रियसैं अभावका त्वक्‌संयुक्तविशेषणता संबंध है सो व्यापार है. काहेतैं ? त्वक् इंद्रियका घटादिक द्रव्यतैं संयोग है, यातैं त्वक्‌संयुक्त कोमलद्रव्यमें कठिनस्पर्शाभावका विशेषणता संबंध है; तैसैं त्वक्‌संयुक्त शीतल जलमें उष्णस्पर्शाभावका विशेषणता संबंध है. जहा घटस्पर्शमें रूपत्वके अभावका त्वाच प्रत्यक्ष होवै, तहां त्वक्‌संयुक्त घटमें समवेत जो स्पर्श ताके विषे रूपत्वाभावका विशेषणतासंबंध होनेतैं त्वक्‌संयुक्त समवेत विशेषणता संबंध है. इसरीतिसैं त्वाचप्रत्यक्षमें चार संबंध हेतु हैं. त्वक्‌संयोग १ त्वक्‌संयुक्तसमवाय २ त्वक्‌संयुक्तसमवेतसमवाय ३ त्वक्‌संबद्धविशेषणता ४ त्वक्‌सैं संबंधवालेकों त्वक्‌संबद्ध कहैहैं. जहां कोमलद्रव्यमें कठिनस्पर्शाभाव है तहां त्वक्‌के संयोग संबंधवाला कोमलद्रव्य है ता त्वक्‌संबद्ध कोमलद्रव्यमें कठिनस्पर्शाभावका विशेषणतासंबंध स्पष्टही है. जहां स्पर्शमें रूपत्वाभावका प्रत्यक्ष होवै तहां त्वक्‌का स्पर्शतैं संयुक्तसमवाय संबंध है; त्वक्‌से संयुक्त समवाय संबंधवाला होनेतैं त्वक्‌संबद्ध स्पर्श है; तामें रूपत्वाभावका विशेषणता संबंध है. इसरीतिसैं त्वाचप्रमाके हेतु संयोगादिक चार संबंध हैं.

तैसैं चाक्षुषप्रमाके हेतु भी नेत्रसंयोग १ नेत्रसंयुक्तसमवाय २ नेत्रसंयुक्तसमवेतसमवाय ३ नेत्रसंबद्धविशेषणता ४ ये चार संबंध हैं. सोई व्यापार

है. जहा नेत्रसैं घटादिक द्रव्यका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै, तहां नेत्रकी क्रियासैं द्रव्यके साथ संयोग सम्बन्ध है. सो संयोग नेत्रजन्य है, और नेत्रजन्य जो चक्षुषप्रमा ताका जनक है, यातैं व्यापार है. जहां नेत्रसैं द्रव्यकी घटत्वादिक जातिका और रूप संख्यादिक गुणनका प्रत्यक्ष होवै, तहां नेत्रसंयुक्त द्रव्यमें घटत्वादिक जातिका और रूपादिक गुणनका समवाय संबंध है; यातैं द्रव्यकी जाति और गुणनके चाक्षुषप्रत्यक्षमें नेत्रसंयुक्त समवायसंबंध है. जहां गुणमें रहनेवाली जातिका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै, तहां रूपत्वादिक जातिसैं नेत्रका संयुक्तसमवेतसमवायसंबंध है. काहेतैं ? नेत्रसैं संयुक्त घटादिकनमें समवेत जो रूपादिक तिनमें रूपत्वादिकनका समवाय है. यद्यपि नेत्रसैं संयोग सकलद्रव्यनका संभवे है, तथापि उद्भूतरूपवाले द्रव्यतैं नेत्रका संयोग चाक्षुषप्रत्यक्षका हेतु है, और द्रव्यसैं नेत्रका संयोग चाक्षुषप्रत्यक्षका हेतु नहीं. पृथिवी, जल, तेज, ये तीन द्रव्य रूपवाले हैं और नहीं; यातैं पृथिवी जल तेजकाही चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है. इनमें जहां उद्भूतरूप होवै ताका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है, जामें अनुद्भूतरूप होवै ताका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं. जैसैं घ्राण, रसन, नेत्र ये तीनों इंद्रिय क्रमतैं पृथिवी जल तेज रूप हैं, और तीनोमें रूप है, परंतु इनका रूप अनुद्भूत है उद्भूत नहीं; यातैं इनका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं. यातैं यह सिद्ध हुआः—उद्भूतरूपवाले पृथिवी जल तेजही चाक्षुषप्रत्यक्षके विषय हैं. तिनमें कोई गुण चाक्षुषप्रत्यक्षयोग्य है, कोई चाक्षुषप्रत्यक्षयोग्य नहीं. जैसैं पृथिवीमें रूप १ रस २ गंध ३ स्पर्श ४ संख्या ५ परिमाण ६ पृथक्त्व ७ संयोग ८ विभाग ९ परत्व १० अपरत्व ११ गुरुत्व १२ द्रवत्व १३ संस्कार १४ ये चतुर्दश गुण हैं. इनमें गंधकों छोड़िके स्नेहकों मिलावै तो चतुर्दश जलके हैं. इनमें रस, गंध, गुरुत्व, स्नेहकूं छोडिके एकादश तेजके हैं. इनमें रूप, परिमाण, पृथक्त्व, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व इतने गुण चाक्षुषप्रत्यक्षयोग्य हैं; और नहीं. यातैं नेत्रसंयुक्तसमवायरूप संबंध तो सर्व गुणोतैं हैं. नेत्रके योग्य सारे नहीं. जितने नेत्रके योग्य हैं उतने गुणनकाही नेत्रसंयुक्तसमवायसंबंधसैं प्रत्यक्ष होवै है. स्पर्शमें त्वक्इंद्रियकी योग्यता है. नेत्रकी नहीं;

रूपमें नेत्रकी योग्यता है, त्वक्की योग्यता नहीं. संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्वमें त्वक् और नेत्र दोनोंकी योग्यता है, यातें त्वक्संयुक्तसमवाय और नेत्रसंयुक्तसमवाय दोनों संबंध संख्यादिकनके त्वाचप्रत्यक्ष और चाक्षुषप्रत्यक्षके हेतु हैं. रसमें केवल रसनकी योग्यता है, अन्य इंद्रियकी नहीं. गंधमें घ्राणकी योग्यता है, अन्यकी नहीं. जिस इंद्रियकी योग्यता जिस गुणमें है तिस इंद्रियतैं ता गुणका प्रत्यक्ष होवै है. अन्यके साथ इंद्रियके संबंध हुए भी प्रत्यक्ष होवै नहीं. तैसैं घटादिकनमें जो रूपादिक चाक्षुषज्ञानके विषय हैं तिनकी रूपत्वादिक जातिका नेत्रसंयुक्त समवेतसमवायतैं चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है, और जो रसादिक चाक्षुष ज्ञानके विषय नहीं तिनमें रसत्वादिक जातिसैं नेत्रका संयुक्तसमवेतसमवायसंबंध है तोभी चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं. यातैं यह सिद्ध हुआ उद्भूतरूपवाले द्रव्यका नेत्रके संयोगतैं चाक्षुषज्ञान होवै है. उद्भूतरूपवाले द्रव्यकी नेत्रयोग्य जातिका और नेत्रयोग्य गुणका संयुक्तसयवायसंबंधतैं चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है, तैसैं नेत्रयोग्य गुणकी रूपत्वादिक जातिका नेत्रसंयुक्त समवेतसमवायसंबधतैं चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है, तैसैं अभावका नेत्रसंबंधसैं चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है. जहां भूतलमें घटाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है तहां भूतलमें नेत्रका संयोगसंबंध है. यातैं नेत्रसंबद्ध भूतलमें घटाभावका विशेषणतासंबंध है, तैसैं नील घटमें पीतरूपके अभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै, तहां नेत्रसैं संयोग होनेतैं नेत्रसंबद्ध नीलघटमें पीतरूपाभावका विशेषणता संबंध है, तैसें घटके नीलरूपमें पीतत्वजातिके अभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवे है. तहां नेत्रसे संयुक्त समवायसंबंधवाला नील रूप है; यातैं नेत्रसंबद्ध जो नीलरूप तामें पीतत्वाभावका विशेषणतासंबंध होनेतैं नेत्रसंबद्धविशेषणतासंबंध है. इस रीतिसैं नेत्रसंयोग १ और नेत्रसंयुक्तसमवाय २ तथा नेत्रसंयुक्तसमवेतसमवाय ३ तैसे नेत्रसंबद्धविशेषणता ४ ये चार संबंध चाक्षुषप्रमाके हेतु हैं. सो तो व्यापार हैं और नेत्र करण है, चाक्षुषप्रमा फल है. जैसैं त्वक् और नेत्रसैं द्रव्यका प्रत्यक्ष होवे है.

८ प्रत्यक्षप्रमाके भेद रासनप्रमाका निरूपण.

तैसैं रसनइंद्रियसैं द्रव्यका तो प्रत्यक्ष होवै नहीं, किंतु रसका और रसत्व मधुरत्वादिक रसकी जातिका तथा रसाभावका और मधुरादिक रसमें अम्लत्वादिक जातिके अभावका रासनप्रत्यक्ष होवे है. यातैं रासन प्रत्यक्षके हेतु रसन इंद्रियतैं विषयनके तीनि संबंध हैं. रसनसंयुक्तसमवाय १ रसनसंयुक्तसमवेतसमवाय २ रसनसंबद्धविशेषणता ३ जहां फलके मधुररसका रसनइंद्रियतैं रासनप्रत्यक्ष होवै तहां फल और रसनका संयोगसंबंध है. यातैं रसनसंयुक्त फल है; तामें रसगुणका समवाय होनेतैं रसके रासनप्रत्यक्षमें संयुक्तसमवायसंबंध है सो व्यापार है. काहेतैं? संयुक्तसमवायसंबंधमें जो समवाय अंश है सो तो नित्य है रसनजन्य नहीं, परंतु संयोग अंश रसनजन्य है. और रसनइंद्रियजन्य जो रसका रासन साक्षात्कार ताका जनक है; यातैं व्यापार है. तिस व्यापारवाला रासनप्रत्यक्षका असाधारणकारण रसनइंद्रिय है. यातैं करण होनेतैं प्रमाण है; और रासन प्रमा फल है,तैसैं रसमें रसत्वजातिका और मधुरत्व अम्लत्व लवणत्व कटुत्व कषायत्व तिक्तत्वरूप षट्धर्मनका रसन इंद्रियतैं रासनसाक्षात्कार होवै है. तहां रसनसैं फलादिक द्रव्यका संयोग है. ता द्रव्यमें रस समवेत होवै है; यातैं रसनसंयुक्त जो द्रव्य तामें समवेत कहिये समवायसंबंधसैं रहनेवाला रस हैं. तामें रसत्वका और रसत्वके व्याप्य जो मधुरत्वादिक तिनका समवाय होनेतैं रसनसंयुक्तसमवेतसमवायसंबंध है. तैसैं फलके मधुररसमें अम्लत्वाभावका रासन प्रत्यक्ष होवै है. तहां रसनइंद्रियका अम्लत्वाभावसैं स्वसंबद्धविशेषणतासंबंध है. काहेतैं ? संयुक्तसमवायसंबंधसैं रासनसंबद्ध मधुर रस है, तामें अम्लत्वाभावका विशेषणतासंबंध है; यातैं रसन इंद्रियका अम्लत्वाभावसैं संयुक्तसमवेतविशेषणता संबंध है; रसना इंद्रियजन्य रासनप्रत्यक्षके हेतु तीनि संबंध हैं.

९ प्रत्यक्षप्रमाके भेद घ्राणजप्रमाका निरूपण.

तैसैं घ्राणज प्रत्यक्ष प्रमा होवै है. तहांभी घ्राणके विषयनतैं तीनि संबंध हेतु हैं. घ्राणसंयुक्तसमवाय १ घ्राणसंयुक्तसमवेतसमवाय २ घ्राणसंबद्धविशेषणता ३

घ्राणइंद्रियतैं द्रव्यका तो प्रत्यक्ष होवै नहीं, किंतु गंधगुणका प्रत्यक्ष होवे है: जो द्रव्यका प्रत्यक्ष होता तो घ्राणका संयोगसंबंध प्रत्यक्षमें कारण होता. द्रव्यका प्रत्यक्ष घ्राणसैं होवै नहीं, यातैं घ्राणसंयोग प्रत्यक्षका हेतु नहीं और गंधका घ्राणसैं साक्षात्संबंध है नहीं, किंतु पुष्पादिकनमें गंधका समवायसंबंध है और घ्राणके साथ पुष्पादिकनका संयोगसंबंध है यातें घ्राणसंयुक्तसमवायसंबंधतैं गंधका घ्राणज प्रत्यक्ष होवै है, अन्यगुणका घ्राणतैं प्रत्यक्ष होवै नहीं. परंतु गंधमें जो गंधत्व जाति ताका और गंधत्वके व्याप्य जो सुगंधत्व दुर्गन्धत्व तिनकाभी घ्राणजप्रत्यक्ष होवै है. तैसैं गंधाभावकाभी घ्राणजप्रत्यक्ष होवै है. काहेतैं ? जा इंद्रियतैं जिस पदार्थका ज्ञान होवै ताकी जातिका और ताके अभावकाभी तिस इंद्रियतैं ज्ञान होवै है. जहां गन्धत्वका और सुगंधत्व दुर्गंधत्वका प्रत्यक्ष होवै, तहां घ्राणसंयुक्तसमवेत समवायसंबंध घ्राणज प्रत्यक्षका हेतु है. काहेतैं ? घ्राणसंयुक्त जो पुष्पादिक तिनमें समवेत गंध है, तामें समवाय गन्धत्वादिकनका है. तैसैं पुष्पके सुगंधमें दुर्गंधत्वके अभावका घ्राणज प्रत्यक्ष होवै है, तहां घ्राणका दुर्गंधत्वाभावसैं स्वसंबद्ध-विशेषणता संबंध है, काहेतैं ? संयुक्तसमवायसंबंधसैं घ्राणसंबद्ध जो सुगंध तामें दुर्गंधत्वाभावका विशेषणतासंबंध है. जहां पुष्पादिक दूर होवे और गंधका प्रत्यक्ष होवै, तहां यद्यपि पुष्पमें क्रिया दीखै नहीं; यातैं पुष्पादिक-नका घ्राणतैं संयोगके अभावतैं घ्राणसंयुक्तसमवायसंबंध संभवै नहीं; तथापि गंध तो गुण है, यातैं केवल गंधमें क्रिया होवै नहीं, किंतु गंधके आश्रय जो पुष्पादिकनके सूक्ष्म अवयव तिनमें क्रिया होयकै घ्राणतैं संयोग होवै है; यातैं घ्राणसंयुक्त जो पुष्पादिकनके अवयव तिनमें गंधका समवाय होनेतैं घ्राणसंयुक्तसमवायसंबन्धही गंधके घ्राणजप्रत्यक्षका हेतु है. इस रीतिसैं घ्राणजप्रत्यक्षके हेतु तीनि संबंध हैं, सो व्यापार हैं, घ्राणइंद्रिय करण है, घ्राणजप्रत्यक्षप्रमा फल है, इसरीतिसैं श्रोत्रादिक पंच इंद्रियनतैं बाह्य पदार्थ-नका ज्ञान होवै है.

१० मानस प्रत्यक्षप्रमाका निरूपण.

आत्मा और आत्माके सुखादिक धर्म और आत्मत्व जाति तथा सुखत्वादिक जाति इनका प्रत्यक्ष श्रोत्रादिकनतैं होवै नहीं; किंतु आत्मादिक जो आंतरपदार्थ तिनके प्रत्यक्षका हेतु मन इंद्रिय है. आत्मा और ताके सुखादिक धर्मनतैं भिन्नकूं बाह्य कहैहैं. आत्मा और ताके धर्मनकूं आंतर कहैहैं. जैसैं बाह्य प्रत्यक्ष प्रमाके करण श्रोत्रादिक इंद्रिय हैं तैसैं आंतर जो आत्मादिक तिनकी प्रत्यक्षप्रमाका करण मन है. यातैं मनभी प्रत्यक्ष प्रमाण है और इंद्रिय है. मनमें क्रिया होयके आत्मासैं संयोग होवै तब आत्माका मानसप्रत्यक्ष होवै है. तहां आत्माका मानसप्रत्यक्षरूप फल तो प्रमा है, और आत्ममनका संयोग व्यापार है, काहेतैं ? आत्ममनका संयोग मनोजन्य है, और मनोजन्य जो आत्माकी प्रत्यक्षप्रमा ताका जनक है, यातैं व्यापार है. तिस संयोगरूप व्यापारवाला आत्माकी प्रत्यक्षप्रमाका असाधारणकारण मन है सो प्रमाण है. ज्ञान इच्छा प्रयत्न सुख दुःख द्वेष ये आत्माके गुण हैं; तिनके साक्षात्कारका हेतुभी मन प्रमाण है. तहां मनके साथ ज्ञानादिकनका साक्षात्संबंध तो है नहीं किंतु परंपरासंबंध है. अपने संबंधीका संबंध परंपरासंबंध कहिये है. ज्ञानादिकनका आत्मामें समवाय संबंध है, यातैं ज्ञानादिकनका संबंधी आत्मा है, तासैं मनका संयोग होनेतैं परंपरासंबंध मनसैं ज्ञानादिकनका है. सो ज्ञानादिकनका मनतैं स्वसमवायी संयोगसंबंध है. स्व कहिये ज्ञानादिक तिनका समवायी कहिये समवायवाला जो आत्मा ताका मनसैं संयोग है, तैसैं मनका ज्ञानादिकनतैं भी परंपरासंबंध है; सो मनःसंयुक्तसमवाय है. मनसैं संयुक्त कहिये संयोगवाला जो आत्मा तामें ज्ञानादिकनका समवायसंबंध हैं. तैसैं ज्ञानत्व इच्छात्व प्रयत्नत्व सुखत्व दुःखत्व द्वेषत्वका मनसैं प्रत्यक्ष होवै हैं. तहां मनसैं ज्ञानत्वादिकनका स्वाश्रयसमवायीसंयोगसंबंध है. स्व कहिये ज्ञानत्वादिक तिनके आश्रय जो ज्ञानादिक तिनका समवायी आत्मा ताका मनसैं संयोग है. तैसे मनका ज्ञानत्वादिकनतैं मनःसंयुक्तसमवेतसमवायसंबंध है. काहेतैं ? मनःसंयुक्त आत्मामें

समवेत जो ज्ञानादिक तिनमें ज्ञानत्वादिकनका समवायसंबंध है. तैसैं आत्मामें सुखाभाव और दुःखाभावका प्रत्यक्ष होवै; तहां मनःसंबद्धविशेषणतासंबंध है. काहेतैं ? मनसैं संबद्ध कहिये संयोग संबंधवाला जो आत्मा तामें सुखभाव और दुःखाभावका विशेषणतासंबंध है. और सुखमैं दुःखत्वाभावका प्रत्यक्ष होवैं है; तहां मनःसंयुक्त समवायसंबंधसैं मनःसंयोगसंबद्ध कहिये संबंधवाला जो सुख तामें दुःखत्वाभावका विशेषणतासंबंध है; काहेतैं ? मनसैं संयुक्त कहिये संयोगवाला जो आत्मा तामें सुखादिक गुणनका समवायसंबंध है, और अभावका विशेषणतासंबंधही होवै है. इसरीतिसैं अभावसैं मानसप्रत्यक्षका हेतु मनःसंबद्धविशेषणतासंबंध एकही है. जहां आत्मामें सुखाभावादिकनका प्रत्यक्ष होवै, तहां संयोगसंबंधसैं मनःसंबद्ध जो आत्मा तामें सुखाभावादिकनका विशेषणता संबंध है. और सुखाभावादिकनमें दुःखत्वाभावादिकनका प्रत्यक्ष होवै; तहां संयुक्तसमवायसंबंधसैं मनःसंबद्ध कहिये मनके संबंधवाले सुखादिक हैं. कहूं साक्षात्संबंधसैं मनःसंबद्धमें, कहूं परंपरासंबंधसैं मनःसंबद्धमें अभावका विशेषणतासंबंध है. इसरीतिसैं मानसप्रत्यक्षके हेतु चारि संबंध हैं. मनःसंयोग १ मनःसंयुक्तसमवाय २ मनःसंयुक्तसमवेतसमवाय ३ मनःसंबद्धविशेषणता ४ मानसप्रत्यक्षके हेतु चारि संबंधव्यापार हैं. संबंधरूपव्यापारवाला असाधारणकारण मन करण है, यातैं प्रमाण है, आत्मसुखादिकनका मानससाक्षात्काररूप प्रमा फल है: जैसें आत्मगुण सुखादिकनके प्रत्यक्षका हेतु संयुक्तसमवायसंबंध है, तैसैं धर्म अधर्मसंस्कारादिकभी आत्माके गुण हैं; यातैं तिन्हतैं मनका संयुक्तसमवायसंबंध तो है; परंतु धर्मादिक गुण प्रत्यक्ष योग्य नहीं; यातैं धर्मादिकनका मानसप्रत्यक्ष होवै नहीं. प्रत्यक्षयोग्यता जामैं नहीं ताका प्रत्यक्ष होवै नहीं, और जहां आश्रयका प्रत्यक्ष होवै तहां संयोगका प्रत्यक्ष होवै है. जैसैं दो अंगुली संयोगके आश्रय हैं, अंगुलीदोका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै तब संयोगका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है और अंगुलिका त्वाचप्रत्यक्ष होवै, तब अंगुलीके संयोगका त्वाचप्रत्यक्ष होवै है. तैसैं आत्ममनके संयोगतैं आत्माका मानस

प्रत्यक्ष होवै है. तहां संयोगका आश्रय आत्मा है; यातैं संयोगकाभी मानसप्रत्यक्ष हुआ चाहिये, तथापि संयोगके आश्रय दो होवै हैं. जहां दोनोंका प्रत्यक्ष होवै तहां संयोगका प्रत्यक्ष होवै है. जहां एकका प्रत्यक्ष होवै एकका नहीं होवै तहां संयोगका प्रत्यक्ष होवै नहीं. जैसे दोघटका प्रत्यक्ष होवै है, यातैं तिनके संयोगकाभी प्रत्यक्ष होवै है, और घटकी क्रियातैं घट आकाशका संयोग होवै हैं, तहां संयोगके आश्रय घट और आकाश हैं तिनमैं घट तो प्रत्यक्ष है और आकाश प्रत्यक्ष नहीं, यातैं तिनका संयोग प्रत्यक्ष नहीं. इसरीतिसैं आत्ममनके संयोगके आश्रय आत्मा और मन हैं; तिनमें आत्माका तो मानसप्रत्यक्ष होवै है मनका नहीं होवै है, यातैं आत्ममनके संयोगका मानसप्रत्यक्ष होवै नहीं. आत्माका और ज्ञानसुखादिकनका मानस प्रत्यक्ष होवै है. तहां ज्ञानसुखादिकनकों छोड़के केवल आत्माका प्रत्यक्ष होवै नहीं, और आत्माकूं छोडके केवल ज्ञानसुखादिकनका प्रत्यक्ष होवै नहीं; किंतु ज्ञान इच्छा कृति सुख दुःख द्वेष इन गुणोंमें किसी एक गुणका और आत्माका मानसप्रत्यक्ष होवै है. मैं जानूं हूं, इच्छावाला हूं, प्रयत्नवाला हूं, सुखी हूं, दुःखी हूं, द्वेषवाला हूं, इसरीतिसैं किसी गुणकूं विषय करता हुआ आत्माका मानसप्रत्यक्ष होवै है. इसरीतिसैं इंद्रियजन्य प्रत्यक्षप्रमाके हेतु इंद्रियके संबंध हैं, सो व्यापार हैं, इंद्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण है, इंद्रियजन्य साक्षात्कार प्रत्यक्षप्रमा फल है, यह न्यायशास्त्रका सिद्धांत है.

११ प्रत्यक्षप्रमाके करणका विचार.

गौरीकांत भट्टाचार्यने यह लिखा है:—प्रत्यक्ष प्रमाका इंद्रिय करण नहीं किंतु जो इंद्रियके संबंध व्यापार कहे हैं, सो करण है और इंद्रिय कारण है करण नहीं; ताका यह अभिप्राय है:—व्यापारवाला कारण करण नहीं कहिये हैं, किंतु जाके हुएतैं कार्यमें विलंब न होवै, किन्तु अव्यवहित उत्तरक्षणमें कार्य होवै, ऐसा कारण करण कहिये हैं. इंद्रियका संबंध हुयेतैं प्रत्यक्षप्रमारूप कार्यमें विलंब नहीं होवै है, किंतु इंद्रियसंबंधतैं अव्यवहित उत्तर

क्षणमें प्रत्यक्षप्रमारूप कार्य अवश्य होवैहै, यातैं इंद्रियका संबंधही करण होनेतैं प्रत्यक्ष प्रमाण है; इंद्रिय नहीं; इस मतमें घटका करण कपाल नहीं, किंतु कपालका संयोग करण है; और कपाल कारण तो घटका है करण नहीं; तैसैं पटके करण तंतु नहीं, किंतु तंतुसंयोग है. पटके कारण तो तंतु हैं करण नहीं. इसरीतिसे प्रथमपक्षमें जो व्यापाररूप कारण माने हैं सो इसपक्षमें करण है; और जो करण मानै हैं सो केवल कारण हैं.

१२ ज्ञानके आश्रयका कथन.

प्रत्यक्ष ज्ञानका आश्रय आत्मा है सो कर्ता है. ताहीकूं **प्रमाता** और **ज्ञाता** कहैहैं. प्रमाज्ञानका कर्ता **प्रमाता** कहे हैं, ज्ञानका कर्त्ता **ज्ञाता** कहिये हैं. सो ज्ञान भ्रम होवै अथवा प्रमा होवै. न्यायसिद्धांतमें जैसैं प्रमाज्ञान इंद्रियजन्य है, तैसैं भ्रम ज्ञानभी इंद्रियजन्य है; परंतु भ्रमज्ञानका कारण जो इंद्रिय सो भ्रमज्ञानका करण तो कहिये हैं प्रमाण नहीं कहिये हैं. काहेतैं ? प्रमाका असाधारणकारण **प्रमाण** कहिये हैं.

भ्रमज्ञानका विचार १३--१७.

१३ न्यायमतके अनुसार भ्रमकी रीति.

जहां भ्रम होवै तहां न्यायमतमें यह रीति है:—दोषसहित नेत्रका संयोग रज्जुसैं जब होवै तब रज्जुत्व धर्मसैं नेत्रका संयुक्तसमवायसंबंध तो है; परंतु दोषके बलतैं रज्जुत्व भासै नहीं, किंतु रज्जुमें सर्पत्व भासै है; यद्यपि सर्पत्वसैं नेत्रका संयुक्तसमवायसंबंध नहीं है, तथापि इंद्रियके संबंधविनाही दोषबलतैं सर्पत्वका संबंध रज्जुमें नेत्रसैं प्रतीत होवैहै; परंतु जाकूं दंडत्वकी स्मृति पूर्व होवै ताकूं रज्जुमें दंडत्व भासै है. जाकूं सर्पत्वकी पूर्व स्मृति होवै ताकूं रज्जुमें सर्पत्व भासैहै.

१४ वस्तुके ज्ञानमें विशेषणके ज्ञानकूं हेतुता.

जहां दोषरहित इंद्रियतैं यथार्थज्ञान होवै, तहांभी विशेषणका ज्ञान हेतु है, यातैं रज्जुज्ञानतैं पूर्व रज्जुत्वका ज्ञान होवैहै; काहेतैं ? श्वेत उष्णीष श्वेत

कंचुकवान् यष्टिधिर ब्राह्मणसैं नेत्रका संयोग होवै, तहां कदाचित् मनुष्य है ऐसा ज्ञान होवैहै, कदाचित् ब्राह्मण है ऐसा ज्ञान होवै है, कदाचित् यष्टिधर-ब्राह्मण है, ऐसा ज्ञान होवै है, कदाचित् कंचुकवाला ब्राह्मण है ऐसा ज्ञान होवै है, कदाचित् श्वेतकंचुकवाला ब्राह्मण है ऐसा ज्ञान होवै है, कदाचित् उष्णीषवाला ब्राह्मण है ऐसा ज्ञान होवै है, कदाचित् श्वेत उष्णीषवाला ब्राह्मण है ऐसा ज्ञान होवै है, कदाचित् उष्णीषवाला कंचुकवाला यष्टिधर ब्राह्मण है ऐसा ज्ञान होवै है. कदाचित् श्वेतउष्णीषवाला श्वेत कंचुकवाला यष्टिधर ब्राह्मण है ऐसा ज्ञान होवै है. तहां ? नेत्रसंयोग तो सारे ज्ञानोंका साधारण कारण है. ज्ञानोंकी विलक्षणतामें यह हेतु है, जहां मनुष्यत्वरूप विशेषणका ज्ञान और नेत्रका संयोग होवै तहां मनुष्य है ऐसा चाक्षुषज्ञान होवै है,जहां ब्राह्मणत्वका ज्ञान और नेत्रसंयोग होवै तहां ब्राह्मण है ऐसा चाक्षुषज्ञान होवै है. जहां यष्टि और ब्राह्मणत्वका ज्ञान और नेत्रसंयोग होवै तहां यष्टिधर ब्राह्मण है ऐसा चाक्षुषज्ञान होवै है, जहां कंचुक और ब्राह्मणत्वरूप दो विशेषणका ज्ञान और नेत्रका संयोग होवै तहां कंचुकवाला ब्राह्मण है ऐसा चाक्षुषज्ञान होवै है, जहां श्वेतताविशिष्टकंचुक रूप और ब्राह्मणत्वरूप विशेषणका ज्ञान और नेत्रका संयोग होवै तहां श्वेतकंचुकवाला ब्राह्मण है ऐसा चाक्षुषज्ञान होवै है, जहां उष्णीष और ब्राह्मणत्वरूप दो विशेषणका ज्ञान होवै तहां उष्णीषवाला ब्राह्मण है ऐसा चाक्षुषज्ञान होवै है, जहां श्वेतताविशिष्ट उष्णीषरूप विशेषणका और ब्राह्मणत्वरूप विशेषणका ज्ञान और नेत्र-संयोग होवै है तहां श्वेत उष्णीषवाला ब्राह्मण है ऐसा चाक्षुषज्ञान होवै है, जहां उष्णीष कंचुक यष्टि ब्राह्मणत्व इन चार विशेषणोंका ज्ञान और नेत्रका संयोग होवै तहां उष्णीषवाला कंचुकवाला यष्टिधर ब्राह्मण है ऐसा चाक्षुषज्ञान होवै है, जहां श्वेतताविशिष्ट उष्णीषवाला और श्वेतताविशिष्ट कंचुक विशेषणका तैसैं यष्टि और ब्राह्मणत्वरूपविशेषणका ज्ञान और नेत्रका संयोग होवै तहां श्वेतउष्णीष श्वेतकंचुक यष्टिधर ब्राह्मण है ऐसा चाक्षुषज्ञान होवै है. इसरीतिसैं जिसविशेषणका पूर्व ज्ञान होवै तिसविशेषणविशिष्टका इंद्रियतैं ज्ञान होवै

है; तहां इंद्रियका संबंध तो सारे तुल्य है विशिष्टप्रत्यक्षकी विलक्षणताका हेतु विलक्षण विशेषणज्ञान है. जो विलक्षणविशेषणज्ञानकूं कारण नहीं मानो तौ नेत्र-संयोगतैं ब्राह्मणके सारे ज्ञानतुल्य हुए चाहिये. जहां घटसैं नेत्रका तथा त्वक्का संयोग होवै तहां कदाचित् घट है ऐसा प्रत्यक्ष होवै है, कदाचित् पृथिवी है ऐसा ज्ञान होवै है, कदाचित् घट पृथिवी है ऐसा ज्ञान होवै है, जहां घट-स्वरूप विशेषणका ज्ञान और इंद्रियका संयोग होवै तहां घट है ऐसा प्रत्यक्ष होवै है. जहां पृथिवीत्वरूपविशेषणका ज्ञान और इंद्रियका घटसैं संयोग होवै तहां पृथिवी है ऐसा प्रत्यक्ष होवै है. जहां घटत्व पृथिवीत्व इन दोनों विशेषणोंका ज्ञान और इंद्रियका संयोग होवै तहां घट पृथिवी है ऐसा प्रत्यक्ष होवै है. इस रीतिसैं घटसैं इंद्रियका संयोगरूप कारण एक है. और विषय घटभी एक है. और घटत्व पृथिवीत्व जाति घटमें सदा रहै है तोभी कदाचित् घटत्व-सहित घटमात्रको ज्ञान विषय करे हैं, द्रव्यत्वपृथिवीत्वादिक जाति और रूपादिक गुणकूं घट है यह ज्ञान विषय करै नहीं; कदाचित् पृथिवी है ऐसा घटका ज्ञान घटमें घटत्वकोभी विषय करै नहीं; किंतु पृथिवीत्व और घट तथा पृथिवीत्वके संबंधको विषय करै है. कदाचित् पृथिवीत्व घटत्व जाति और तिनका घटमें संबंध तथा घट इनको विषय करै है; इस रीतिसैं ज्ञानका भेद सामग्रीभेदविना संभवै नहीं; तहां विशेषण—ज्ञानरूप सामग्रीका भेदही ज्ञानकी विलक्षणताका हेतु है; जहां घट है ऐसा ज्ञान होवै तहां घट और घटत्व और घटमें घटत्वका समवायसंबंध भासे है, जहां पृथिवी है ऐसा घटका ज्ञान होवै तहां घट और पृथिवीत्व और घटमें पृथिवीत्वका समवाय संबंध भासै है.

१५ विशेषण और विशेष्यका स्वरूप.

तहां घटत्व पृथिवीत्व विशेषण है और घट विशेष्य है. काहेतैं ? संबंध-का प्रतियोगी विशेषण कहिये है, संबंधका अनुयोगी विशेष्य कहिये है. जाका संबंध होवै सो संबंधका **प्रतियोगी**, और जामें संबंध होवै सो **अनुयोगी** कहिये है. घटत्वका पृथिवीत्वका समवाय संबंध घटमें भासै है,

यातैं घटत्व पृथिवीत्व समवायसंबंधके प्रतियोगी होनेतैं विशेषण हैं. संबंधका अनुयोगी घट है, यातैं विशेष्य है. जहां दंडी पुरुष है ऐसा ज्ञान होवै, तहां दंडत्वविशिष्ट दंडसंयोग संबंधतैं पुरुषत्वविशिष्ट पुरुषमें भासैहै; ताकाही काष्ठवाला मनुष्य है ऐसा ज्ञान होवै; तहां काष्ठत्वविशिष्ट दंड मनुष्यत्वविशिष्ट पुरुषमें संयोग संबंधतैं भासै है. प्रथमज्ञानमें दंडत्वविशिष्ट दंडसंयोगका प्रतियोगी होनेतैं विशेषण है, पुरुषत्वविशिष्ट पुरुषसंयोगका अनुयोगी होनेतैं विशेष्य है. द्वितीयज्ञानमें काष्ठत्वविशिष्ट दंड प्रतियोगी है, मनुष्यत्वविशिष्टपुरुष अनुयोगी है, दोनों ज्ञानोंमें यद्यपि दंड विशेषण है, पुरुष विशेष्य है, तथापि प्रथमज्ञानमें तौ दंडविषै दंडत्व भासैहै, काष्ठत्व भासै नहीं. पुरुषमें पुरुषत्व भासै है, मनुष्यत्व भासै नहीं. तैसैं द्वितीयज्ञानमें दंडविषै काष्ठत्व भासै है दंडत्वभासै नहीं; और पुरुषमें मनुष्यत्व भासैहै पुरुषत्व भासै नहीं. दंडत्व और काष्ठत्व दंडके विशेषण हैं. काहेतैं ? दंडत्वादिकनका दंडमें जो संबंध ताके प्रतियोगी दंडत्वादिक है, और दंडत्वादिकनका दंडमें संबंध है; यातैं संबंधका अनुयोगी होनेतैं दंड विशेष्य है; इसरीतिसैं दंडत्वका दंड विशेष्य है और पुरुषका दंड विशेषण है. काहैतैं ? दंडका पुरुषमें जो संयोगसंबंध ताका प्रतियोगी दंड है, यातैं पुरुषका विशेषण है. ता संयोगका पुरुष अनुयोगी है, यातैं विशेष्य है. जैसैं पुरुषका दंड विशेषण है, तैसैं पुरुषत्व मनुष्यत्वभी पुरुषके विशेषण हैं. काहैतैं ? जैसैं दंडका पुरुषसैं संयोगसंबंध भासैहै, तैसैं पुरुषत्वादिक जातिका समवाय संबंध भासैहै; ता संबंधके पुरुषत्वादिक प्रतियोगी होनेतैं विशेषण हैं और अनुयोगी होनेतैं पुरुष विशेष्य है, परंतु इतना भेद है:—पुरुषके धर्म जो पुरुषत्व मनुष्यत्वादिक वे तो केवल पुरुष व्यक्तिके विशेषण हैं और पुरुषत्वादिक धर्मविशिष्ट पुरुषव्यक्तिमें दंडादिक विशेषण हैं. दंडादिकभी दंडत्वादिक धर्मनके विशेष्य हैं, और पुरुषत्वादिकनके विशेषण हैं; परंतु दंडत्वादिक विशेषणके संबंधकूं धारिकै पुरुषादिक विशेष्यके संबंधि उत्तरकालमें दंडादिक होवै हैं, इसरीतिसैं केवल व्यक्तिमें पुरुषत्व मनुष्यत्व विशेषण है और पुरुषत्व वा मनुष्यत्व विशिष्टपुरुषव्यक्तिमें

दंडत्व वा काष्ठत्व विशिष्ट दंड विशेषण है; और केवल दंडव्यक्तिमें दंडत्व वा काष्ठत्व विशेषण है.

इसरीतिसैं ज्ञानके विषयताका विचार करै तो बहुत सूक्ष्म है. चक्रवर्तिगदाधर भट्टाचार्यने संगतिग्रंथमें लिखा है, और जयरामपंचानन भट्टाचार्यने तथा रघुनाथ भट्टाचार्यने विषयता विचार ग्रंथ किये हैं तिन्हमें लिखा है सूक्ष्मपदार्थ संस्कृतवाणी विना लिखे जावै नहीं, और दुर्बोध है, यातैं अति स्थूल रीतिमात्र जनाई है.

१६ विशेषण और विशेष्यके ज्ञानके भेदपूर्वक न्यायमतके भ्रमज्ञानकी समाप्ति.

इस रीतिसैं विशिष्टज्ञानका हेतु विशेषण ज्ञान है; सो विशेषणका ज्ञान कहूं स्मृतिरूप है, कहूं निर्विकल्प है, कहूं विशिष्टज्ञान ही विशेषण विशेष्यसैं पहले विशेषणमात्रसैं इंद्रियका संबंध होवै; तहां विशेषणमात्रसैं इंद्रियसंबंधजन्य है; सोभी विशिष्टप्रत्यक्षही है. जहां पुरुषतैं विना केवल दंडसैं इंद्रियसंबंध होवै, उत्तर क्षणमें पुरुषतैं संबंध होवै तहां दंडरूपविशेषणका ज्ञान विशेषणमात्रके संबंधसैं उपजै है. तासैं उत्तरक्षणमें " दंडी पुरुष है " यह विशिष्टका ज्ञान उपजै है. घट है यह प्रथम जो विशिष्टज्ञान तासैं पूर्व घटत्वरूपविशेषणका इंद्रियसंबंधतैं निर्विकल्पज्ञान होवै है, उत्तरक्षणमें "घट है" यह घटत्वविशिष्ट घटज्ञान होवै है. जा इंद्रियसंबंधतैं घटत्वका निर्विकल्पक ज्ञान होवै ताइंद्रियसंबंधतैं हीं घटत्वविशिष्टघटका सविकल्पकज्ञान होवै है. घटत्वके निर्विकल्पक ज्ञानमें इंद्रिय करण है, इंद्रियका संयुक्तसमवायसंबंध व्यापार है. और घटत्वविशिष्ट घटके सविकल्पक ज्ञानमें इंद्रियका संयुक्तसमवायसंबंध करण है; निर्विकल्पक ज्ञान व्यापर है. इसरीतिसैं किसी आधुनिक नैयायिकने निर्विकल्पक ज्ञान और सविकल्पक ज्ञानमें करणका भेद कह्या है.

सो संप्रदायसैं विरुद्ध है:—काहेतैं ? व्यापारवाला असाधारण कारण करण कहिये है. यामतमें प्रत्यक्षज्ञानका करण होनेतैं इंद्रियकूंही प्रत्यक्षप्रमाण कहिये है. और आधुनिक रीतिसैं सविकल्पक ज्ञानका करण होनेतैं इंद्रियके संबं-

धकूंभी प्रमाण कह्या चाहिये और संप्रदायवाले संबंधकूं प्रमाण कहैं नहीं. यातैं दोनों प्रत्यक्ष ज्ञाननके इंद्रियही करण हैं; यातैं प्रत्यक्षप्रमाण हैं, परंतु निर्विकल्पक ज्ञानमें इंद्रियका संबंधमात्र व्यापार है, और सविकल्पक ज्ञानमें इंद्रियका संबंध और निर्विकल्पक ज्ञान दो व्यापार हैं और दोनों प्रकारके प्रत्यक्षज्ञानके करण होनेतैं इंद्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण है. धर्म धर्मीके संबंधकूं विषय करनेवाला ज्ञान **सविकल्पक ज्ञान** कहिये है. " घट है " याज्ञानतैं घटमें घटत्वका समवाय भासै है; यातैं सविकल्पक ज्ञानके धर्म धर्मी समवाय तीनों विषय हैं; यातैं " घट है " यह विशिष्ट ज्ञान संबंधकूं विषय करनेतें सविकल्पक कहिये है; तासैं भिन्न ज्ञानकूं **निर्विकल्पक** ज्ञान कहै हैं. सविकल्पक निर्विकल्पक ज्ञानके लक्षण विस्तारसैं **शितिकंठीमें** लिखे हैं. अर्थ सूक्ष्म है, यातैं विस्तार लिखा नहीं. इसरीतिसें प्रथम विशिष्टज्ञानका जनक विशेषणज्ञान निर्विकल्पक ज्ञान है और एकवेरी " घट है " ऐसा विशिष्टज्ञान होयके फेरि घटका विशिष्टज्ञान होवै तहां घटसैं इंद्रियका संबंध है तैंही पूर्व अनुभव करे घटत्वकी स्मृति होवै है; तिसतैं उत्तरक्षणमें "घट है" यह विशिष्ट ज्ञान होवै है; इसरीतिसैं द्वितीयादिक विशिष्टज्ञानका हेतु विशेषणज्ञान स्मृतिरूप है. जहां दोषसहित नेत्रका रज्जुसैं अथवा शुक्तिसैं संबंध होवै, तहां दोषके बलतैं सर्पत्वकी और रजतत्वकी स्मृति होवै है, रज्जुत्व और शुक्तित्वकी नहीं. विशिष्टज्ञानका हेतु विशेषणज्ञान जा धर्मकूं विषय करै सोई धर्म विशिष्ट ज्ञानसैं विषयमें भासै है. सर्पत्व और रजतत्वका स्मृतिज्ञान रज्जुत्व और शुक्तित्वकूं विषय करै नहीं; किंतु सर्पत्व और रजतत्वकूं विषय करै है. यातैं " सर्प है " या रज्जुके विशिष्ट ज्ञानसैं रज्जुमें सर्पत्व भासै है. और "रजत है" या शुक्तिके विशिष्ट ज्ञानसैं शुक्तिमें रजतत्व भासै है, "सर्प है "या विशिष्ट भ्रममें विशेष्य रज्जु है सर्पत्व विशेषण है. काहेतैं? सर्पत्वका समवाय संबंध रज्जुमें भासै है, ता समवायका सर्पत्व प्रतियोगी है और रज्जु अनुयोगी है; तैसैं "रूपा है" या भ्रमसे शुक्तिमें रजतत्वका समवाय भासै है. तासमवायका प्रतियोगी रजतत्व है, यातैं विशेषण है और शुक्ति अनुयोगी है, यातैं विशेष्य है. इसरीतिसैं

सारे भ्रम ज्ञानोंसैं विशेषणके अभाववालेमें विशेषण भासै है. यातैं न्यायमतमें विशेषणके अभाववालेमें विशेषण प्रतीति भ्रम कहिये है. ताहीकूं अयथार्थज्ञान कहै हैं, अन्यथाख्याति कहै हैं. भ्रमज्ञानमें सूक्ष्मविचार अन्यथाख्यातिवाद नाम ग्रंथमें चक्रवर्ति गदाधरभट्टाचार्यने लिखा है सो दुर्बोध है, यातैं लिखा नहीं. इस रीतिसैं न्यायमतमें सर्पादिभ्रमके विषय रज्जु आदिक हैं सर्पादिक नहीं, और प्रत्यक्षरूप भ्रमज्ञानभी इंद्रियजन्य है.

१७ वेदांतसिद्धांतके अनुसार इंद्रियअजन्य भ्रमज्ञानकी रीति.

वेदांतसिद्धांतमें—सर्पभ्रमका विषय रज्जु नहीं; किन्तु अनिर्वचनीय सर्प है; और भ्रमज्ञान इंद्रियजन्य नहीं; और न्यायमतमें सारे ज्ञानोंका आश्रय आत्मा है. वेदांतमतमें ज्ञानका उपादान कारण अंतःकरण है, यातैं अंतःकरण आश्रय है: जो न्यायमतमें सुखादिक आत्माके गुण कहै हैं सो सारे अंतः-करणके परिणाम हैं, यातैं अंतःकरणके धर्म हैं, आत्माके नहीं; परंतु भ्रमज्ञान अंतःकरणका परिणाम नहीं किन्तु अविद्याका परिणाम है यह विचारसागरमें लिखा है; यातैं इहां लिखनेका उपयोग नहीं.

भ्रमज्ञानका संक्षेपतैं यह प्रकार है.—सर्पसंस्कारसहित पुरुषके दोषसहित नेत्रका रज्जुसैं संबंध होवै तब रज्जुका विशेष धर्म रज्जुत्व भासै नहीं और रज्जुमें जो मुंजरूप अवयव है सो भासै नहीं; किन्तु रज्जुमें सामान्य धर्म इदंता भासै है; तैसैं शुक्तिमें शुक्तित्व और नीलपृष्ठता त्रिकोणता नहीं किंतु सामान्य धर्म इदंता भासै है. यातैं नेत्रद्वारा अंतःकरण रज्जुकूं प्राप्त होयके इदमाकार परिणामकूं प्राप्त होवै है. ता इदमाकारवृत्ति उपहित चेतननिष्ठ अविद्याके सर्पाकार और ज्ञानाकार दो परिणाम होवै हैं. तैसैं दंडसंस्कारसहित पुरुषके दोषसहित नेत्रका रज्जुके संबंधसैं जहां वृत्ति होवै तहां दंड और ताका ज्ञान अविद्याके परिणाम होवै हैं. मालासंस्कारसहित पुरुषके सदोष नेत्रका रज्जुसैं संबंध होयके जाके इदमाकारवृत्ति होवै ताकी वृत्ति-उपहित चेतनमें स्थित अविद्याका माला और ताका ज्ञान परिणाम होवै है. जहां एक रज्जुसैं तीनि पुरुषके सदोष नेत्रका संबंध होयके सर्प दंड माला

एक एकका तिनकूं भ्रम होवै, तहां जाकी वृत्ति उपहितमें जो विषय उपज्या है सो ताहीकूं प्रतीत होवै है, अन्यकूं नहीं. इस रीतिसैं भ्रमज्ञान इंद्रियजन्य नहीं, किंतु अविद्याकी वृत्तिरूप है; परंतु जा वृत्तिउपहितचैतनमें स्थित अविद्याका परिणाम भ्रम है सो इदमाकारवृत्ति नेत्रसैं रज्जु आदिक विषयके संबंधतैं होवै है, यातैं भ्रमज्ञानमें इंद्रियजन्यताप्रतीति होवै है. अनिर्वचनीय ख्यातिका निरूपण और अन्यथाख्याति आदिकनका खंडन गौड ब्रह्मानंद-कृत ख्यातिविचारमें लिखा है सो अति कठिन है; यातैं लिखा नहीं; इस रीतिसैं वेदांतसिद्धांतमें भ्रमज्ञान इंद्रियजन्य नहीं.

१८ न्याय और वेदांतकी अन्य विलक्षणता.

वेदांतसिद्धांतमें अभावका ज्ञानभी इंद्रियजन्य नहीं किंतु अनुपलब्धि नाम पृथक् प्रमाणतैं अभावका ज्ञान होवै है, यातैं अभावके प्रत्यक्षका हेतु विशेषणतासंबंधका अंगीकार निष्फल है. और जाति व्यक्तिका समवाय संबंध नहीं किंतु तादात्म्यसंबंध है. तैसैं गुणगुणीका क्रियक्रियावानका कार्यउपा-दानकारणकाभी तादात्म्यसंबंध है यातैं समवायके स्थानमें तादात्म्य कहै हैं. और जैसैं त्वक् आदिक इंद्रिय भूतजन्य हैं तैसैं श्रोत्रइंद्रियभी आकाशजन्य है, आकाशरूप नहीं. और मीमांसाके मतमें तो शब्द द्रव्य है, वेदांतमतमें गुण है; परंतु न्यायमतमें तो शब्द आकाशकाही गुण है. वेदांतमतमें वि-द्यारण्यस्वामीने पांच भूतनका गुण कह्या है. और वेदांतमतमें वाचस्पतिमि-श्रने तो मन इंद्रिय मान्या है और ग्रंथकारोंने मन इंद्रिय नहीं मान्या है. जिनके मतमें मन इंद्रिय नहीं तिनके मतमें सुख दुःखका ज्ञान प्रमाणजन्य नहीं, यातैं प्रमा नहीं; किंतु सुख दुःख साक्षीभास्य हैं. और वाचस्पतिके मतसैं सुखादिकनका ज्ञान मनरूपप्रमाणजन्य है, यातैं प्रमा है और ब्रह्मका अपरोक्ष ज्ञान तो दोनों मतमें प्रमा है. वाचस्पतिके मतमें मनरूप प्रमाणजन्य है. औरनके मतमें शब्दरूप प्रमाण जन्य है.

१९ वाचस्पतिके मतका (मनकी इंद्रियताका) सारग्राही दृष्टिसैं अंगीकार.

जिनके मतमें मन इंद्रिय नहीं तिनके मतमें इंद्रियजन्यता प्रत्यक्षज्ञानका

लक्षण नहीं; किंतु विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं अभेदही प्रत्यक्षज्ञानका लक्षण है. जैसैं वृत्तिचेतनका विषयचेतनका अभेद होवै है, तैसैं विचारसागरमें स्पष्ट है. वाचस्पतिका मतभी समीचीनही है; काहेतैं ? वाचस्पतिके मतमें ये दोष कहै हैं एक तो मनका असाधारण विषय नहीं है; यातैं मन इंद्रिय नहीं और गीतावचनका विरोध है. गीताके तीसरे अध्यायके बयालीसमें श्लोकमें इंद्रियनतैं मन पर है यह कहा है. जो मनभी इंद्रिय होवै तो इंद्रियनतैं मन पर है यह कहना संभवै नहीं, और मानस ज्ञानका विषय ब्रह्म नहीं है यह श्रुतिस्मृतिमें लिखा है. वाचस्पतिने मनकूं इंद्रियता मानिकै ब्रह्मसाक्षात्कारभी मनरूप इंद्रियजन्य है, यातैं मानस है यह कह्या है सो विरुद्ध है, और अंतःकरणकी अवस्थाकूं मन कहै हैं, सो अंतःकरण प्रत्यक्ष ज्ञानका आश्रय होनेतैं कर्ता है. जो कर्ता होवै सो करण होवै नहीं, यातैं मन इंद्रिय नहीं. ये दोष मनके इंद्रियपनेमें कहै हैं; सो विचारिकै देखै तो दोष नहीं. काहेतैं ? मनका असाधारण विषय सुख दुःख इच्छादिक हैं और अंतःकरणविशिष्ट जीव है और गीतामें इंद्रियनतैं पर मन है यह कह्या है; तहां इंद्रिय शब्दसैं बाह्य इंद्रियनका ग्रहण है, यातैं बाह्यइंद्रियनतैं मन इंद्रिय पर है; यह गीतावचनका अर्थ है. विरोध नहीं.

और मानसज्ञानका विषय ब्रह्म नहीं है या कहनेका यह अभिप्राय हैः— शमदमादि संस्काररहित विक्षिप्त मनसैं उपजे ज्ञानका विषय ब्रह्म नहीं है और मानसज्ञानकी फलव्याप्यता ब्रह्मविषे नहीं है. वृत्तिमें चिदाभास फल कहिये है. ताका विषय ब्रह्म नहीं है. घटादिक अनात्मपदार्थनकूं वृत्ति प्राप्ति होवै, तहां वृत्ति और चिदाभास दोनोंके व्याप्य कहिये विषय पदार्थ होवै हैं और ब्रह्माकारवृत्तिमें जो चिदाभास ताका व्याप्य कहिये विषय ब्रह्म नहीं है, वृत्तिमात्रका विषय ब्रह्म है यह विचारसागरके चतुर्थ तरंगमें स्पष्ट है. जैसै मनकी विषयता ब्रह्मविषे निषेध करी है, तैसै शब्दकी विषयताभी निषेध करी है. "यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सह" यह निषेधवचन है. तहां शब्दजन्यज्ञानका विषय ब्रह्म नहीं है, ऐसा अर्थ अंगीकार होवै तो

महावाक्यभी शब्दरूपही हैं. तिनतैं उपजे ज्ञानकाभी विषय ब्रह्म नहीं होवेगा, सिद्धांतका भी भंग होवेगा, यातैं निषेधवचनका यह अर्थ है:—शब्दकी शक्तिवृत्तिजन्य ज्ञानका विषय ब्रह्म नहीं; किंतु शब्दकी लक्षणावृत्तिजन्य ज्ञानका विषय ब्रह्म है. तैसैं लक्षणावृत्तिजन्य ज्ञानमेंभी चिदाभासरूप फलका विषय ब्रह्म नहीं है; किंतु आवरणभंगरूप वृत्तिमात्रकी विषयता ब्रह्मविषे है. जैसैं शब्दजन्यज्ञानकी विषयताका सर्वथा निषेध नहीं; तैसैं मानसज्ञानकी विषयताकाभी सर्वथा निषेध नहीं; किन्तु संस्काररहित मनकी ब्रह्मज्ञानमें हेतुता नहीं. और मानस ज्ञानमें जो चिदाभास अंश है ताकी विषयता नहीं. और जो ऐसे कहै:—ब्रह्मज्ञानमें मनकूं करणता है, तो दो प्रमाणजन्य ब्रह्मज्ञान कहना होवेगा; काहेतैं ? महावाक्यनमें ब्रह्मज्ञानकी करणता तो भाष्यकारादिकनने सर्वत्र प्रतिपादन करी है; ताका तो निषेध बनैं नहीं, मनकूं भी करणता कहैं तो प्रमाका करण प्रमाण कहिये है, यातैं ब्रह्मप्रमाके शब्द और मन दो प्रमाण सिद्ध होवैंगे, सो दृष्टविरुद्ध है. काहेतैं ? चाक्षुष आदिक प्रमाके नेत्रादिक एक एक ही प्रमाण हैं. किसी प्रमाके हेतु दो प्रमाण देखे सुने नहीं. नैयायिकभी चाक्षुषादिक प्रमामें मनकूं सहकारिता मानैं है; प्रमाणता नेत्रादिकनकूंही मानैं हैं, मनकूं नहीं. सुखादिकनके ज्ञानमें केवल मनकूं प्रमाणता मानै हैं, अन्यकूं नहीं. यातैं एक प्रमाकी दोनोंकूं प्रमाणता कहना दृष्टविरुद्ध है. जहां एक पदार्थमें दो इंद्रियकी योग्यता होवै. जैसैं घटमें नेत्र त्वक्की योग्यता है, तहां भी दो प्रमाणतैं एक प्रमा होवै नहीं; किंतु नेत्रप्रमाणतैं घटकी चाक्षुषप्रमा होवै है. त्वक् प्रमाणतैं त्वाच प्रमा होवै है. दो प्रमाणतैं एक प्रमाकी उत्पत्ति दृष्ट नहीं ? सो संका बनैं नहीं:-काहेतैं? प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्ष होवे तहां पूर्व अनुभव और इंद्रिय दो प्रमाणतैं एक प्रमा होवै है;यातैं दृष्टविरुद्ध नहीं.जहां प्रत्यभिज्ञा होवै तहां पूर्व अनुभव संस्कार द्वारा हेतु है,और संयोगादिक संबंधद्वारा इंद्रिय हेतु है;यातैं संस्कार रूप व्यापारवाला कारणपूर्व अनुभव है और संबंधरूप व्यापारवाला कारण इंद्रिय है, यातैं प्रमाके करण होनेतैं दोनों प्रमाण हैं.

तैसें ब्रह्मसाक्षात्काररूप प्रमाके शब्द और मन दो प्रमाण हैं. या कहनेमें दृष्ट विरोध नहीं, उलटा ब्रह्मसाक्षात्कारकूं मनरूप इंद्रियजन्यता मानें तो प्रत्यक्षता निर्विवादसैं सिद्ध होवै है. ब्रह्मज्ञानकूं केवल शब्दजन्यता मानैं तो विवादसैं प्रत्यक्षता सिद्ध करिये है: दशमदृष्टांतविषेभी इंद्रियजन्यता और शब्दजन्यताका विवाद है: इंद्रियजन्य ज्ञानकूं प्रत्यक्षतामें विवाद नहीं और जो ऐसे कहै प्रत्यभिज्ञाप्रत्यक्षमें पूर्व अनुभव जन्य संस्कार सहकारी है, केवल इंद्रियप्रमाण है. ताका यह समाधान है:—ब्रह्मसाक्षात्काररूप प्रमामेंभी शब्द सहकारी है केवल मन प्रमाण है और वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमें जो इंद्रियजन्य ज्ञानकूं प्रत्यक्षता कहनेमें दोष कहै हैं तिन्हके सम्यक् समाधान न्यायकौस्तुभ आदि ग्रंथनमें लिखे हैं. जाकूं जिज्ञासा होवै सो तिनमें देख लेवै. और जो मनकूं इंद्रियतामें दोष कह्या ज्ञानका आश्रय होनेतैं अंतःकरण कर्ता है, यातैं ज्ञानका करण बनैं नहीं ? यह दोषभी नहीं;—काहेतैं ? धर्मी अंतःकरण तो ज्ञानका आश्रय होनेतैं कर्ता है, और अंतःकरणका परिणाम रूप मन ज्ञानका करण है; इस रीतिसैं मनभी प्रज्ञानका करण है, यातैं प्रमाण है.

२० न्याय और वेदांतका प्रत्यक्षविचारमें भेद.

जहां इंद्रियतैं द्रव्यका प्रत्यक्ष होवै, तहां तो न्याय और वेदांतमतमें विलक्षणता नहीं, किन्तु द्रव्यका इंद्रियतैं संयोगही संबंध है और इंद्रियतैं द्रव्यकी जातिका अथवा गुणका प्रत्यक्ष होवैं, तहां न्यायमतमें तो संयुक्तसमवाय संबंध है और वेदांतमतमें संयुक्ततादात्म्यसंबंध है. काहेतैं ? न्यायमतमें जिनका समवाय संबंध है, तिनका वेदांतमतमें तादात्म्य संबंध है. और गुणकी जातिके प्रत्यक्षमें न्यायरीतिसैं संयुक्तसमवेतसमवाय संबंध है और वेदांतमतमें संयुक्ततादात्म्यवत्तादात्म्य संबंध है. याहीकूं संयुक्ताभिन्नतादात्म्य कहै हैं. इंद्रियतैं संयुक्त जो घटादिक तिन्हमें तादात्म्यवत् कहिये तादात्म्यसंबन्धवाले रूपादिक हैं, तिन्हमें तादात्म्यसंबंध रूपत्वादिक जातिका है जैसैं घटादिकनमें रूपादिक तादात्म्यवत् है, तैसैं घटादिकनसैं

अभिन्नभी कहियै है. अभिन्नकाही तादात्म्यसंबंध होवै है. जहां श्रोत्रसैं शब्दका साक्षात्कार होवै तहां न्यायमतमें समवायसंबंध है और वेदांतमतमें श्रोत्रइंद्रिय आकाशका कार्य है यातें जैसैं चक्षुरादिकनमें क्रिया होवै है तैसैं श्रोत्रमें क्रिया होयके शब्दवाले द्रव्यसैं श्रोत्रका संयोग होवै है. ता श्रोत्रसंयुक्त द्रव्यमें शब्दका तादात्म्य संबंध है. काहेतैं ? वेदांतमतमें पंच भूतनका गुण शब्द होनेतैं भेर्यादिकनमेंभी शब्द है; यातैं श्रोत्रके संयुक्तता-दात्म्यसंबंधसे शब्दका प्रत्यक्ष होवै है. और शब्दत्वका प्रत्यक्ष होवै तहां श्रोत्रका संयुक्ततादात्म्यवत तादात्म्य संबंध है. वेदांतमतमें जैसें शब्दत्व जाति है तैसे तारत्व मंदत्वभी जातिही है. न्यायमतकी न्यांई जातिसैं भिन्न उपाधि नहीं, यातैं शब्दत्वजातिका जो श्रोत्रसैं संबंध सोई संबंध तारत्व मंदत्वका है, विशेषणतासंबंध नहीं. और अभावका ज्ञान अनुपल-ब्धिप्रमाणतैं होवै है. किसी इंद्रियतैं अभावका ज्ञान होवै नहीं, यातैं अभा-वका इंद्रियतैं संबंध अपेक्षित नहीं. यह न्यायमत और वेदान्तमतका प्रत्यक्षविचारमें भेद है.

२१ प्रत्यक्षप्रमाका उपसंहार.

इसरीतिसैं प्रत्यक्ष प्रमाके षट् भेद हैं, ताके करण षट् हैं, यातैं नेत्रादिक षट् इंद्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण कहिये हैं. न्यायमतमें और वाचस्पतिमतमें छठा प्रत्यक्ष प्रमाण मन है. पंचपादिकाके कर्त्ता पद्मपादाचार्यके मतके अनुसारी मनकूं प्रमाण नहीं माने हैं,सुख दुख तो साक्षिभास्य हैं;यातैं सुख दुःखका ज्ञान प्रमा नहीं और विशिष्ट जीवमें अंतःकरण भाग साक्षिभास्य है, चेतन भाग स्वयंप्रकाश है, यातैं जीवका ज्ञानभी मानस नहीं. ब्रह्मविद्यारूप अपरोक्षज्ञान यद्यपि प्रमारूप है, तथापि ताका करण शब्द है; यातैं मन प्रमाण नहीं, परंतु पंचपादिका अनुसारी जो सिद्धांत है तहांभी प्रत्यक्षप्रमाके षट् भेद हैं. शब्दजन्य ब्रह्मकी प्रत्यक्षप्रमा छठी है; और अभावका ज्ञान यद्यपि अनुपल-ब्धिप्रमाणजन्य है, तथापि प्रत्यक्ष है. यह वार्ता अनुपलब्धि प्रमाणके निरू-पणमें कहेंगे, यातैं प्रत्यक्षप्रमाके सप्त भेद संभवे हैं, तथापि इस ग्रंथकी री-

तिसैं अभावज्ञानमें प्रत्यक्षता नहीं है. यातैं प्रत्यक्षप्रमाके षट् भेद हैं. सप्त नहीं. यह संक्षेपतैं प्रत्यक्षप्रमाण कह्या ॥

इति श्रीमन्निश्चलदासाह्वसाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरे प्रत्यक्षप्रमाण-निरूपणंनाम प्रथमः प्रकाशः ॥ १ ॥

अथानुमानप्रमाणनिरूपणं नाम द्वितीयप्रकाशप्रारम्भः ।

२२ अनुमितिकी सामग्रीका लक्षण और स्वरूप.

अनुमिति प्रमाका जो करण होवै सो **अनुमानप्रमाण** कहिये है. लिंगज्ञानजन्य जो ज्ञान सो **अनुमिति** कहिये है. जैसैं पर्वतमें धूमका प्रत्यक्षज्ञान होयके वह्निका ज्ञान होवै है. तहां धूमका प्रत्यक्षज्ञान **लिंगज्ञान** कहिये है. तासैं वह्निका ज्ञान उपजै है यातैं पर्वतमें वह्निका ज्ञान **अनुमिति** है. जाके ज्ञानसैं साध्यका ज्ञान होवै सो **लिंग** कहा है. अनुमिति ज्ञानका विषय **साध्य** कहिये है. अनुमितिका विषय वह्नि है, यातैं वह्नि **साध्य** है. धूमज्ञानतैं वह्निरूप साध्यका ज्ञान होवै है, यातैं धूम लिंग है. व्याप्यके ज्ञानतैं व्यापकका ज्ञान होवै है, यातैं व्याप्यकूं लिंग कहै हैं, व्यापककूं साध्य कहै हैं, व्याप्तिवालेकूं **व्याप्य** कहै हैं, व्याप्तिनिरूपककूं **व्यापक** कहै हैं, अविनाभावरूप संबंधकूं **व्याप्ति** कहै हैं. जैसैं धूमविषे वह्निका अविनाभावरूप संबंध है, सोई धूमविषे वह्निकी व्याप्ति है, यातैं धूम वह्निका **व्याप्य** है. ता व्याप्तिरूपसंबंधका निरूपक वह्नि है; यातैं धूमका **व्यापक** वह्नि है. जाविना जो होवै नहीं ताका **अविनाभावरूप संबंध** तामें कहिये है. वह्नि विना धूम होवै नहीं यातैं वह्निका अविनाभावरूपसंबंध धूममें है. वह्निमें धूमका अविनाभाव नहीं. काहेतैं ? तप्त लोहपिंडमें धूम विना वह्नि है. यातैं धूमका व्याप्य वह्नि नहीं, वह्निका व्याप्य धूम है. तैसैं रूपका व्याप्य रस है, पृथिवी जल तेजमें रूप रहै है, पृथिवी जलमें रस रहै है, यातैं रूपका अविनाभावरूप संबंध रसमें होनेतैं रूपका व्याप्य रस है, और रूपमें रसका विना

भाव है, तेजमें रस विना भाव कहिये सत्ता रूपकी है, यातैं रसका व्याप्य रूप नहीं.जो जासैं व्यभिचारी होवै सो ताका व्याप्य होवै नहीं. अधिक देशमें जो रहै सो व्यभिचारी कहिये है. धूमसैं अधिक देशमें रहै जो वह्नि; सो धूमका व्यभिचारी है. रसतैं अधिक देशमें रूप रहै है यातैं रसका व्यभिचारी रूप है. जो न्यून देशमें रहै ताके विषे अविनाभाव संबंध है, सोई व्याप्य है. वह्नितैं न्यून देशमें धूम है, यातैं वह्निकी धूमविषे अविनाभावरूप व्याप्ति है, सो धूम व्याप्य है. रूपतैं न्यून देशमें रस है, यातैं रसमें रूपकी व्याप्ति है. तिसवाला रस व्याप्य है. जैसैं न्यूनदेशमें रहनेवालेमें अधिक देशवालेकी व्याप्ति है, तैसैं दोय पदार्थ समान देशमें रहनेवाले होवें तिनकीभी परस्पर व्याप्ति होवै है. जैसें गंध गुण और पृथिवीत्वजाति केवल पृथिवीमें रहनेवाले हैं. तहां गंधकी व्याप्ति पृथिवीत्वमें है और पृथिवीत्वकी व्याप्ति गंधमें है; तैसैं स्नेह गुण और जलत्वजाति जलमें है, जल विना स्नेह और जलत्व रहै नहीं, यातैं समदेश वृत्ति होनेतैं दोनों परस्पर व्याप्तिवाले होनेतैं व्याप्य हैं. काहेतै ? जैसें न्यूनदेश वृत्तिमें अविनाभावरूप संबंध है; तैसे समान देशवृत्ति पदार्थनकाभी परस्पर अविनाभाव है. यद्यपि पृथिवीत्वसैं न्यूनदेशवृत्ति गंध है, और जलत्वसैं न्यूनदेशवृत्ति स्नेह है. काहेतैं ? प्रथम क्षणमें निर्गुणद्रव्य उपजै है, द्वितीय क्षणमें गुण उपजै है; और जाति प्रथम क्षणमैंभी द्रव्यविषै रहे है; यातैं घटके प्रथम क्षणमें गंधका व्यभिचारी पृथिवीत्व होनेतैं ताके विषे गंधका अविनाभावसंबंधरूप व्याप्तिका अभाव है. और उत्पत्तिक्षणवर्ति जलमें स्नेहका व्यभिचारी जलत्व होनेतैं ताके विषे स्नेहका अविनाभावरूप संबंध नहीं, यातैं स्नेहकी व्याप्तिका जलत्वमें अभाव होनेतैं स्नेहका व्याप्य जलत्व नहीं. इस रीतिसैं पृथिवीत्वका व्याप्य गंध है, गंधका व्याप्य पृथिवीत्व नहीं. तैसैं जलत्वका व्याप्य स्नेह है, स्नेहका व्याप्य जलत्व नहीं. तथापि गंधवत्त्व और पृथिवीत्व परस्पर व्याप्तिवाले हैं. यातैं दोनों परस्पर व्याप्य हैं. तैसैं स्नेहवत्त्व और जलत्व दोनों परस्पर व्याप्य हैं. काहेतैं ? गंधकी अधिकरणताकूं गंधवत्त्व कहै हैं और स्नेहकी अधिकरणताकूं स्नेह-

वत्त्व कहै हैं. जिसमें जो पदार्थ कदाचित् होवै तिसमें तापदार्थकी अधिक रणता सदा रहै है. यह व्याप्तिनिरूपणमें जगदीश भट्टाचार्य आदिकों लिख्या है. तहां यह प्रसंग हैः—अव्याप्यवृत्तिपदार्थकी अधिकरणता व्याप्य वृत्ति होवै है. अधिकरणता अव्याप्यवृत्ति नहीं होवै है. अव्याप्यवृत्ति दो प्रकारका होवै है, देशकृत अव्याप्यवृत्ति होवैहै, और कालकृत अव्याप्यवृत्ति होवै है, जो पदार्थके एक देशमें होवै और एकदेशमें न होवै सो देशकृतअव्याप्यवृत्ति कहिये है. जैसै पदार्थके एकदेशमें संयोग होवै है सो देशकृत अव्याप्यवृत्ति है; परंतु संयोगकी अधिकरणता सारै पदार्थमें होवै है, एकदेशमें नहीं; यातैं अव्याप्यवृत्ति संयोगकी अधिकरणता व्याप्यवृत्ति है, अव्याप्यवृत्ति नहीं; यह सिद्धांत है, और किसी कालमें होवै किसी कालमें नहीं होवै सो कालिक अव्याप्यवृत्ति कहिये है, पूर्व कही रीतिसैं गंधादिक गुण कालिक अव्याप्यवृत्ति हैं. तिन्हकी अधिकरणता द्रव्यके उत्पत्तिक्षणमें भी रहै है; यातैं गंधवत्त्व स्नेहवत्त्व पृथिवीत्व जलत्वके समदेश समकाल वृत्ति हैं; यह न्यायरीतिसैं समाधान है. और वेदांतमतमें तो निर्गुणद्रव्य उपजै नहीं, प्रथमही सगुण होवै है; यातैं गंधस्नेहकेभी पृथिवीत्व जलत्व व्याप्य हैं.

२३ अनुमितिज्ञानमें व्याप्तिज्ञानकी अपेक्षाका प्रकार.

इसरीतिसैं अविनाभावरूपसंबंध व्याप्ति है, तिसवाला व्याप्य है. व्याप्य जो धूम ताका पर्वतादिकनमें जाकूं प्रत्यक्ष ज्ञान होवै अथवा शब्दज्ञान होवै, ताकूं पर्वतादिकनमें अग्निका अनुमितिज्ञान होवै है; तैसैं रसके ज्ञानसैं रूपका ज्ञान होवैहै, परंतु जा पुरुषकूं धूम वह्निका व्याप्य है ऐसा ज्ञान पूर्व हुआ होवै ताकूं धूमज्ञानतैं व्याप्यत्वका स्मरण होयके वह्निकी अनुमिति होवै है. व्याप्तिकूं व्याप्यत्व कहै हैं. तैसैं रूपका व्याप्य रस है, ऐसा जाकूं ज्ञान हुया होवै ताकूं रसके ज्ञानतैं रूपकी रसमें व्याप्तिका स्मरण होयके रूपकी अनुमिति होवै है. जाकूं व्याप्यत्वका ज्ञान पूर्व हुआ नहीं ताकूं धूमादिकनके ज्ञानतैं वह्नि आदिकनकी अनुमिति होवै नहीं; यातैं व्याप्तिका ज्ञान अनुमितिका करण

है, व्याप्तिवालेकूं व्याप्य कहे हैं और व्याप्तिकूं व्याप्यता कहैहैं. सो व्याप्तिका ज्ञानभी संदेहरूप कारण नहीं. काहेतैं ? "धूम वह्निकी व्याप्तिवाला है वा नहीं" ऐसा जाकूं पूर्व ज्ञान हुआ है ताकूं धूमज्ञानतैं वह्निका ज्ञान होवै नहीं; किंतु "धूम वह्निकी व्याप्तिवाला है" ऐसा जाकूं निश्चयरूप ज्ञान हुआ है ताकूं धूमज्ञानतैं वह्निका अनुमिति रूप ज्ञान होवै है; यातैं व्याप्तिका निश्चय अनुमितिका हेतु है. सो व्याप्तिका निश्चय सहचारज्ञानसैं होवै है. महानसादिकनमें वारंवार धूमवह्निका सहचार देखके "वह्निका व्याप्य धूम है" ऐसा ज्ञान होवै है और धूमका व्याप्य वन्हि है ऐसा ज्ञान होवै नहीं" काहेतैं ? महानसादिकनमें जैसा वह्निका सहचार धूममें देखिये है, तैसा धूमका सहचार यद्यपि वह्निमें देखिये है, तथापि धूमका व्यभिचारभी वह्निमें देखिये हैं यातैं यह सिद्ध हुआः—जा पदार्थका जामें व्यभिचार नहीं प्रतीत होवै और सहचार प्रतीत होवै ता पदार्थकी व्याप्तिका तामें निश्चय होवै है, वह्निका धूममें व्यभिचार नहीं प्रतीत होवै है और सहचार प्रतीत होवै हैं, यातैं वह्निकी व्याप्तिका धूममें निश्चय होवै है. वह्निमें धूमका सहचार प्रतीति होवै है और व्यभिचारभी प्रतीत होवै है; यातैं "धूमका व्याप्य वह्नि है" यह निश्चय होवै नहीं. सहचार नाम साथ रहनेका है, व्यभिचार नाम जुदा रहनेका है; यद्यपि जलके धूममें वह्निका व्यभिचार है और अग्नि शांत हुए जो महानसमें धूम रहै ताके विषे वह्निका व्यभिचार है. तथापि जाके मूलका उच्छेद नहीं हुआ ऐसी ऊंची धूमरेखामें वह्निका व्यभिचार नहीं. यातैं विलक्षण धूमरेखामें वह्निकी व्याप्तिका प्रत्यक्षरूप निश्चय होवै है. तैसी विलक्षण धूमरेखाका पर्वतादिकनमें प्रत्यक्ष होयके "धूम वह्निका व्याप्य है" इस अनुभवके संस्कारका उद्भव होवै है; तिसतैं अनंतर "वह्निमान् पर्वत है" ऐसी अनुमिति होवै है.

२४ सकलनैयायिकमतमें अनुमितिका क्रम.

यद्यपि न्यायमतमें अनुमान प्रसंगमें अनेक पक्ष हैं, सो तिनके ग्रंथनमें स्पष्ट हैं, परंतु सकल नैयायिकमतमें अनुमितिका यह क्रम हैः—प्रथम तो म-

हानसादिकनमें हेतुसाध्यका सहचार दर्शन होवै है, तिसतैं अनंतर पर्वतादिकनमें हेतुका प्रत्यक्ष होवै है, तिसतैं अनंतर संस्कारका उद्भव होयके व्याप्तिकी स्मृति होवे है. तिसतैं अनंतर साध्यकी व्याप्तिविशिष्ट हेतुका पक्षमें प्रत्यक्ष होवै है, ताकूं **परामर्श** कहै हैं "वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतः" यह प्रसिद्धानुमानमें परामर्शका आकार है; "वह्निव्याप्यहेतुमान् पक्षः" यह परामर्शका सामान्य रूप है, तिसतैं अनंतर "वह्निमान् पर्वतः" ऐसा अनुमितिज्ञान होवै है. या क्रमतैं अनुमिति होवै है, परंतु प्राचीनमतमें अनुमितिका करण **परामर्श** है, और सकल ज्ञान अन्यथा सिद्ध है. ताके मतमें परामर्शही अनुमान है. यद्यपि परामर्शका व्यापार मिलै नहीं तथापि तिसके मतमें व्यापारहीन कारणकूं करण कहै हैं, यातैं परामर्शही अनुमितिका करण होनेतैं अनुमान है. और कोई नैयायिक ज्ञानहेतुकूं **अनुमान** कहै है, और कोई पक्षमें हेतुके ज्ञानकूं **अनुमान** कहै हैं. व्याप्तिकी स्मृति और परामर्शकूं **व्यापार** कहै हैं. और कोई व्याप्तिके स्मृतिज्ञानकूं **अनुमान** कहै हैं, परामर्शकूं **व्यापार** कहै हैं. ऐसें नैयायिकनके अनेक मत हैं, परंतु सर्वके मतमें परामर्शका अंगीकार है, कोई परामर्शकूं **करण** कहैहैं, कोई व्यापार कहैं हैं, परामर्शविना अनुमिति होवै नहीं, यह सकल नैयायिकनका मत है.

२५ अनुमितिविषे मीमांसाका मत.

मीमांसाका यह मत है:—जहां पर्वतमें धूमके प्रत्यक्षतैं व्याप्तिकी स्मृति होयके वह्निकी अनुमिति होय जावै तहां परामर्शतैं विना भी अनुमिति अनुभवसिद्ध है; यातैं जहां परामर्श होयके अनुमिति होवैं तहांभी परामर्श अनुमितिका कारण नहीं; किंतु परामर्श अन्यथासिद्ध कहिये है. जैसें दैवतैं आया रासभ वा कुलालपत्नी घटमें अन्यथा सिद्ध है, करणसामग्रीतैं बाह्य होवै सो **अन्यथासिद्ध** कहिये है. इसरीतिसैं मीमांसाके मतमें परामर्श कारण नहीं. ताके अनुसारीभी एक परामर्शकूं छोड़िके नैयायिकनकी नाईं अनेक पदार्थनकूं **अनुमान** कहै हैं. कोई व्याप्तिकी स्मृतिकूं, कोई महानसादिकनमें व्याप्तिके अनुभवकूं, कोई पक्षमें हेतुके ज्ञानकूं **अनुमान** कहै हैं.

२६ अद्वैतमतानुसार अनुमितिकी रीति.

अद्वैतग्रंथभी जहां विरोध न होवै तहां मीमांसाकी प्रक्रियाके अनुसार हैं; यातैं अद्वैतमतमेंभी परामर्श कारण नहीं; किंतु महानसादिकनमें जो व्याप्तिका प्रत्यक्ष रूप अनुभव होवै है सो अनुमितिका करण है सो व्याप्तिके अनुभवके उद्बुद्ध संस्कार व्यापार हैं और पर्वतमें जो धूमका प्रत्यक्ष सो संस्कारका उद्बोधक है, और जहां व्याप्तिकी स्मृति होय जावै तहांभी स्मृतिकी उत्पत्तिसैं संस्कारनका नाश तो होवै नहीं, यातैं स्मृति संस्कार दोनों हैं; तहां भी अनुमितिके व्यापाररूप कारण संस्कार हैं, व्याप्तिकी स्मृति कारण नहीं. काहेतैं ? अनुमितिमें व्याप्तिस्मृतिकूं व्यापाररूप कारण मानै तौ भी स्मृतिके कारण संस्कार मानने और स्मृतिमें अनुमितिकी करणता माननी यातैं दोनोंमें कारणताकल्पना गौरव होवेगा, और स्मृतिके कारण मानें जो संस्कार तिनकूं अनुमिति कारणता मानै तो स्मृतिकी कारणताका त्याग लाघव है; इसरीतिसैं व्याप्तिका अनुभव करण है और संस्कार व्यापार है, अनुमिति फल है; यह वेदांतपरिभाषादिकअद्वैतग्रंथनकी रीति है. नैयायिककी परामर्श अनुमितिका कारण नहीं.

२७ व्याप्तिकी स्मृतिकी व्यापारता और संस्कारकी अव्यापारता.

और जो संस्कारकूं अनुमिति व्यापार नहीं मानैं, स्मृतिकूं व्यापार मानैं, तोभी सिद्धांतकी हानि नहीं, यद्यपि वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमें विरोध है, तथापि युक्तिसैं अर्थनिर्णय करनेतैं आधुनिक ग्रंथके विरोधसैं हानि नहीं; किंतु श्रुतिस्मृतिके विरोधसैं अथवा सिद्धांतविरोधसैं हानि होवै है. अनुमितिका व्यापाररूप कारण स्मृति है अथवा संस्कार है; इस अर्थमें श्रुति स्मृति उदासीन हैं, और सिद्धांतभी उदासीन है. यातैं व्याप्तिस्मृतिकूं व्यापारता कहनेमें विरोध नहीं, उलटी साधक युक्ति है. काहेतैं ?

व्याप्तिसंस्कारकूं अनुमितिका कारण कहैं तो अनुद्बुद्ध संस्कारसैं अनुमिति होवे तो पर्वतमें धूमके प्रत्यक्ष विनाभी सदाही अनुमिति हुई चाहिये, यातैं उद्बुद्धसंस्कार अनुमितिके हेतु मानने होवैंगे, और उद्बुद्धसंस्कारनतैं ही

स्मृति होवै है. यातैं जहां अनुमितिकी सामग्री है, तहां नियमतैं स्मृतिकी सामग्री है. दोनोंकी सामग्री होनेतैं कौनसा ज्ञान होवै. यह धर्मराजकूं पूछना चाहिये. परस्पर प्रतिबध्यता और प्रतिबंधकता मानैं तो गौरव दोष होवेगा. विनिगमनाविरह होवेगा और अनुभव विरोध होवेगा. काहेतैं ? पर्वतमें धूमदर्शनतैं धूममें वह्निकी व्याप्तिके स्मरणतें उत्तरकालमें अनुमिति होवै है यह बुद्धिमानोंके अनुभवसिद्ध है.अनुमितिसैं व्याप्ति स्मृतिका प्रतिबंध अनुभवविरुद्ध है. और जहां दो ज्ञानोंकी सामग्री दो होवैं तहां एक सामग्रीका दूसरी सामग्री प्रतिबंधक होवै है.इहां अनुमितिकी सामग्री और स्मृतिकी सामग्री एक संस्कार है, ताका प्रतिबध्यप्रतिबंधकभाव बनै नहीं और अनुमितिसैं स्मृतिका प्रतिबंधक है तो अनुमिति भविष्यत् है सो उपजी नहीं, ताकूं प्रतिबंधकता संभवै नहीं और वेदांतपरिभाषामें तथा तिसकी टीकामें अनुमितिसैं स्मृतिका प्रतिबंध लिखा नहीं. काहेतैं ? टीकासहित वेदांतपरिभाषामें यह लिखा है:—धूमदर्शनतैं संस्कार उद्बुद्ध होवै है. तिनतैं कहूं स्मृति होवै हैं, कहूं नहीं होवै है. संस्कारा स्मृति होवै है तहांभी संस्कारनका नाश तो होवै नहीं. संस्कार स्मृति दोनों है; परंतु स्मृतिशून्य स्थलमें जैसैं संस्कार व्यापार है, तैसैं स्मृतिसद्भाव स्थलमेंभी संस्कारही व्यापार है स्मृति नहीं. यह धर्मराजका ग्रंथ है; तामें बुद्धिमानकूं यह आश्चर्य होवै है, उद्बुद्ध संस्कार होतें स्मृतिशून्य स्थल कैसैं होवै है. और स्मृतिकी उत्पत्तिसैं संस्कारका नाश होवै है, स्मृतिसैं अन्य संस्कार होवै है, यह सयुक्तिक पक्ष है; ताका उपपादन ग्रंथांतरमें प्रसिद्ध है. यापक्षमें स्मृति संस्कार दोनोंकी युक्ति सर्वथा विरुद्ध है.

२८ स्वार्थानुमिति और अनुमानका स्वरूप.

यातैं व्याप्तिका अनुभव करण है, व्याप्तिकी स्मृति व्यापार है, यह पक्ष निर्दोष है. इस रीतिसैं जहां अनुमिति होवै सो स्वार्थानुमिति कहिय है; परंतु न्यायमतमें धूमका प्रत्यक्ष और व्याप्तिका स्मरण हुएभी वह्निकी अनुमिति होवै नहीं. दोनों ज्ञानोंसे अनंतर परामर्श नाम तीसरा ज्ञान होवै है; तैसे अनुमिति होवै है. “ वह्निव्याप्य जो धूम तिसवाला पर्वत है ” ऐसे ज्ञानकूं परा-

मर्श कहै हैं, ताकूं वेदांतमें अनुमितिका कारण नहीं माने हैं. इसरीतिसैं वाक्यप्रयोग विना व्याप्तिज्ञानादिकनतैं जो अनुमिति होवै सो स्वार्थानुमिति कहिये हैं. ताके करण व्याप्तिज्ञानादिक स्वार्थानुमान कहिये हैं.

२९ परार्थानुमान अनुमिति और तर्कका स्वरूप.

जहां दोका विवाद होवै एक पुरुष कहै पर्वतमें वह्नि अनुमानप्रमाणसैं निर्णीत है एक कहैं नहीं है; तहां वह्निनिश्चयवाला पुरुष अपने प्रतिवादीकी निवृत्तिवास्ते वाक्यप्रयोग करैहै; ताकूं परार्थानुमान कहै हैं. सो वाक्य वेदांतमतमें तीनि अवयवका होवै है. प्रतिज्ञा १ हेतु २ उदाहरण ३ ये वाक्यके अवयवनके नाम हैं. " पर्वतो वह्निमान् १ धूमात् २ यो यो धूमवान् सोऽग्निमान् यथा महानसः ३ " इतना महावाक्य है. तामें तीनि अवांतरवाक्य हैं. तिन्हके प्रतिज्ञादिक क्रमतैं नाम हैं साध्यविशिष्ट पक्षका बोधक वाक्य प्रतिज्ञावाक्य कहिये है. ऐसा "पर्वतो वह्निमान्" यह वाक्य है "वह्निविशिष्ट पर्वत है" ऐसा बोध या वाक्यतैं होवै है. तहां वह्नि साध्य है, पर्वत पक्ष है.काहेतैं ? अनुमितिका जो विषय सो साध्य कहिये है;अनुमितिका विषय वह्नि है, यातैं साध्य है. यद्यपि" पर्वतोवह्निमान् " ऐसी अनुमिति होवै है; ताका विषय पर्वतभी है, सोभी साध्य कह्या चाहिये. तथापि वेदांतमतमें "पर्वतो वह्निमान्" यह ज्ञान तो एकही है; परंतु पर्वत अंशमें इंद्रियजन्य है और वह्नि अंशमें धूमज्ञानरूप अनुमानजन्य है. यातैं एक ज्ञानमें चाक्षुषता और अनुमितिता दो धर्म हैं. चाक्षुषता अंशकी विषयता पर्वतमें है, और अनुमितिता अंशकी विषयता वह्निमें है. यातैं अनुमितिका विषय पर्वत नहीं, केवल वह्नि है. जिस अधिकरणमें साध्यकी जिज्ञासा होयके साध्यका अनुमितिरूप निश्चय होवै सो पक्ष कहिये है. प्रतिज्ञावाक्यतैं उत्तर जो लिंगका बोधक वचन सो हेतुवाक्य कहिये है. ऐसा वाक्य " धूमात् " यह है. यद्यपि " धूमात्, धूमेन " इन दोनोंका एकही अर्थ है, तथापि "धूमेन" ऐसा वाक्य संप्रदायसिद्ध नहीं. यह अवयवग्रंथमें भट्टाचार्यने लिखा है. यातैं " धूमात् " इसरीतिका वाक्यही हेतुवाक्य कहिये है. हेतु सा-

व्यका सहचारबोधक जो दृष्टांतप्रतिपादक वचन सो उदाहरणवाक्य कहिये है. वादीप्रतिवादीका जहां विवाद न होवै, किंतु दोनोंका निर्णीत अर्थ जहां होवै सो दृष्टांत कहिये है. ऐसा महानस है. इस रीतिसैं प्रतिज्ञादिक तीनके समुदायरूप महावाक्यतैं विवादकी निवृत्ति होवै है. जो महावाक्य सुनिके भी आग्रह करे महानसादिकनविषे तो वह्निका सहचारी धूम है और पर्वतमें वह्निका व्यभिचारी धूम है. यातैं पर्वतमें धूम है वह्नि नहीं है, ऐसा प्रतिवादी आग्रह करै, अथवा व्यभिचारकी शंका होवे, तो तर्कसैं आग्रह और शंकाकी निवृत्ति होवै है. अनिष्टआपादनकूं तर्क कहै हैं. पर्वतविषे वह्नि विना धूम होवै तो वह्निका धूम कार्य नहीं होवैगा; यह तर्क है. यातैं धूमविषे वह्निका व्यभिचार संदेहनिवृत्त होवै है. वह्निधूमका कारणकार्यभाव इष्ट है, ताका अभाव अनिष्ट है: यातैं कारणकार्यभावका भंग आपादन करिये है सो कारणकार्यभावका भंग अनिष्ट है; यातैं अनिष्टका आपादनरूप तर्क है या तर्कतैं प्रतिवादीकी और शंकाकी निवृत्ति होवै है. काहेतैं? वह्निधूमका कारणकार्यभाव दोनोंकूं इष्ट है, ताका भंग दोनोंकूं अनिष्ट है. वह्निका व्यभिचार धूममें कहै तो अनिष्टकी सिद्धि होवैगी, ता[illegible] भयतैं वह्निका व्यभिचारी धूम है; यह वार्ता प्रतिवादी कहे नहीं. इस रीतिसैं तीनि अवयवका समुदायरूप जो महावाक्य ताकूं परार्थानुमान कहै हैं. तिसतैं उत्तर जो अनुमिति होवै सो परार्थानुमिति कहिये है. अनुमान प्रमाणसैं निर्णय करतें व्यभिचारशंका होवै तो तर्कसैं निवृत्ति होवै है; यातैं प्रमाणकारी तर्क है.

३० वेदान्तमतमें तर्कसहित परार्थानुमानका स्वरूप.

वेदांतवाक्यनसैं जीवमें ब्रह्मका अभेद निर्णीत है, सो अनुमानतैंभी इसरीतिसैं सिद्ध होवै है:— "जीवो ब्रह्माभिन्नः। चेतनत्वात्। यत्र यत्र चेतनत्वं तत्र तत्र ब्रह्माभेदः। यथा ब्रह्मणि"। यह तीनि अवयवका समुदायरूप महावाक्य है; यातैं परार्थानुमान कहिये है. इहां जीव पक्ष है, ब्रह्माभेद साध्य है चेतनत्व हेतु है, ब्रह्म दृष्टांत है. इहां प्रतिवादी जो ऐसैं कहै:—जीवमें चेतनत्व हेतु तो है और ब्रह्माभेदरूप साध्य नहीं है; इसरीतिसैं पक्षमें चेतनत्व

हेतुका ब्रह्माभेदरूप साध्यसैं व्यभिचार शंका कहै, तो तर्कसैं शंकाकी निवृत्ति करै. इहां तर्कका यह स्वरूप हैः—जीवमें चेतनत्व हेतु मानिके ब्रह्माभेदरूप साध्य नहीं मानैं तौ चेतनकूं अद्वितीयता प्रतिपादक श्रुतिका विरोध होवेगा. अनिष्टका आपादन तर्क कहिये. श्रुतिका विरोध सर्व आस्तिकनकूं अनिष्ट है; "व्यावहारिकः प्रपञ्चो मिथ्या । ज्ञाननिवर्त्यत्वात् । यत्र यत्र ज्ञाननिवर्त्यत्वं तत्र तत्र मिथ्यात्वम् । यथा शुक्तिरजतादौ" । इहां व्यावहारिक प्रपंच पक्ष है, मिथ्यात्व साध्य है, ज्ञाननिवर्त्यता हेतु है; शुक्तिरजतादिक दृष्टांत है, "व्यावहारिकः प्रपञ्चो मिथ्या" यह प्रतिज्ञावाक्य है, "ज्ञाननिवर्त्यत्वात्" यह हेतुवाक्य है, "यत्र यत्र ज्ञाननिवर्त्यत्वं तत्र तत्र मिथ्यात्वं यथा शुक्तिरजतादौ"यह उदाहरणवाक्य है. इहां भी प्रपंचकूं ज्ञाननिवर्त्यता मानिके मिथ्यात्व नहीं मानें तो सत्की ज्ञानतैं निवृत्ति बनै नहीं; यातैं ज्ञानसैं सकल प्रपंचकी निवृत्तिप्रतिपादक श्रुति स्मृतिका विरोध होवेगा; या तर्कतैं व्यभिचारशंकाकी निवृत्ति होवै है.

३१ वेदान्तमें अनुमानका प्रयोजन.

इसरीतिसैं वेदांत अर्थके अनुसारी अनेक अनुमान हैं; परंतु वेदांतवाक्यनतैं अद्वितीय ब्रह्मका जो निश्चय सिद्ध हुआ है, तिसकी संभावनामात्रका हेतु अनुमान प्रमाण है; स्वतंत्र अनुमान ब्रह्मनिश्चयका हेतु नहीं. काहेतैं ? वेदांतवाक्य विना अन्य प्रमाणकी ब्रह्मविषे प्रवृत्ति नहीं, यह सिद्धांत है. यह संक्षेपतैं अनुमान प्रमाण कहा.

इति श्रीमन्निश्चलदासाह्वसाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरे अनुमानप्रमाणनिरूपणं नाम द्वितीयप्रकाशः समाप्तः ॥ २ ॥

अथ शब्दप्रमाणनिरूपणं नाम तृतीयप्रकाशः ॥ ३ ॥

३२ शाब्दी प्रमाका भेद.

शाब्दी प्रमाके करणकूं शब्दप्रमाण कहे हैं. शाब्दीप्रमा दो प्रकारकी है. एक व्यावहारिक है, दूसरी पारमार्थिक है. व्यावहारिक शाब्दीप्रमाभी

दो प्रकारकी है. एक लौकिकवाक्यजन्य है, दूसरी वैदिकवाक्यजन्य है. "नीलो घटः " इत्यादिक लौकिकवाक्य है; "वज्रहस्तः पुरंदर, " इत्यादिक वैदिकवाक्य है. पदनके समुदायकूं वाक्य कहै हैं. अर्थवाला जो वर्ण अथवा वर्णका समुदाय सो पद कहिये है. अकारादिक वर्णभी विष्णु आदिक अर्थ-वाले हैं. नारायण आदिक पदनमें वर्णका समुदाय अर्थवाला है. व्याकरणकी रीतिसैं "नीलो घटः" इस वाक्यमें दो पद हैं; और न्यायकी रीतिसे च्यार पद हैं और व्याकरणके मतमेंभी अर्थबोधकता च्यार समुदायनमें है, पद च्यार नहीं.

३३ शाब्दी प्रमाका प्रकार.

तहां शाब्दीप्रमाका यह प्रकार है:—"नीलो घटः" या वाक्यकूं सुनै तब श्रोताकूं सकल पदनका श्रवण साक्षात्कार होवै है:पदनके साक्षात्कारसैं पदार्थ-नकी स्मृति होवै है. शंकाः—पदनका अनुभव पदनकी स्मृतिका हेतु है, और पदार्थका अनुभव पदार्थकी स्मृतिका हेतु है; पदनका साक्षात्कार पदार्थनकी स्मृतिका हेतु बनैं नहीं. काहेतैं ? जा वस्तुका सर्व अनुभव होवै ताकी स्मृति होवै है, अन्यके अनुभवसैं अन्यकी स्मृति होवै नहीं; यातें पदके ज्ञानमें पदार्थकी स्मृति बनै नहीं ? समाधानः—यद्यपि संस्कारद्वारा पदार्थनका अनुभवही पदार्थकी स्मृतिका हेतु है, तथापि उद्भूत संस्कारनसैं स्मृति होवै है; अनुद्भूत संस्कारनसैं स्मृति होवै नहीं. जो अनुद्भूत संस्कारनसैंभी स्मृति होवै तो अनुभूत पदार्थकी सदा स्मृति हुई चाहिये; तहां पदार्थनके संस्कार-नके उद्भवका हेतु पदज्ञान है. काहेतैं ?संबंधीके ज्ञानतैं तथा सादृश पदार्थ-नके ज्ञानतैं अथवा चिंतनतैं संस्कार उद्भूत होवै हैं, तिनतैं स्मृति होवै है. जैसैं पुत्रकूं देखिके पिताकी और पिताकूं देखिके पुत्रकी स्मृति होवै है. तहां संबंधीका ज्ञान संस्कारनके उद्भवका हेतु है, तैसैं एक तपस्वीकूं देखिके पूर्व देखे अन्य तपस्वीकी स्मृति होवै है. तहां संस्कारका उद्बोधक सदृश-दर्शन है. जहां एकांतमें बैठिके अनुभूत पदार्थका चिंतन करै, तासैं अनुभूत अर्थकी स्मृति होवै है, तहां संस्कारका उद्बोधक चिंतन है. इसरीतिसैं सं-

बंधी ज्ञानादिक संस्कारके उद्बोध द्वारा स्मृतिके हेतु हैं; और संस्कारकी उत्पत्तिद्वारा समानविषयक पूर्व अनुभव स्मृतिका हेतु है; यातैं पदार्थनका पूर्व अनुभव तो पदार्थविषयक संस्कारकी उत्पत्तिद्वारा हेतु है, और पदार्थनके संबंधी पद हैं. यातैं पदार्थनके संबंधी जो पद तिनका ज्ञान संस्कारके उद्बोधद्वारा पदार्थकी स्मृतिका हेतु हैं. यातैं पदनके ज्ञानसैं पदार्थनकी स्मृति संभवै है. जहां एक संबंधीके ज्ञानतैं अन्य संबंधीकी स्मृति होवै तहां दोनों पदार्थनके संबंधका जाकूं ज्ञान होवै ताकूं एकके ज्ञानसैं दूसरेकी स्मृति होवै है, जाकूं संबंधका ज्ञान होवै नहीं ताकूं एकके ज्ञानतैं दूसरेकी स्मृति होवै नहीं. जैसैं पितापुत्रका जन्यजनकभावसंबंध है. जाकूं जन्यजनकभावसंबंधका ज्ञान होवै, ताकूं एकके ज्ञानतैं दूसरेकी स्मृति होवै है. जाकूं जन्यजनकभावसंबंधका ज्ञान नहीं होवै, ताकूं एकके ज्ञानतैं दूसरेकी स्मृति होवै नहीं. तैसैं पद अर्थका जो आपसमें संबंध ताकूं वृत्ति कहै हैं; वृत्तिरूप जो पद अर्थका संबंध ताका जाकूं ज्ञान होवै ताकूं पदके ज्ञानतैं अर्थकी स्मृति होवै है. पद और अर्थका जो वृत्तिरूपसंबन्ध ताके ज्ञानरहितकूं पदके ज्ञानतैं अर्थकी स्मृति होवै नहीं, यातैं वृत्तिसहित पदका ज्ञान पदार्थकी स्मृतिका हेतु है.

३४ शब्दकी शक्तिवृत्तिका कथन.

सो वृत्ति दोप्रकारकी है:—एक शक्तिरूप वृत्ति है और लक्षणारूप वृत्ति है. न्यायमतमें ईश्वरकी इच्छारूप शक्ति है, मीमांसाके मतमें शक्ति नाम कोई भिन्न पदार्थ है, व्याकरणके मतमें और पातंजलके मतमें वाच्यवाचकभावका मूल जो पदअर्थका तादात्म्यसंबंध सोई शक्ति है और विचारसागरमें योग्यतारूप शक्ति व्याकरणके मतसैं लिखी है सो भूषणकारका मत है. व्याकरणके मंजूषा ग्रंथमें योगभाष्यकी रीतिसैं वाच्यवाचक भावका मूल तादात्म्यसंबंधही शक्ति कही है और अद्वैतसिद्धांतमें सारे अपना कार्य करनेकी सामर्थ्यही शक्ति है. जैसैं तुंतुमें पट करनेकी सामर्थ्य रूप शक्ति है, वह्निमें दाह करनेकी जो सामर्थ्य सो शक्ति है; तैसैं पदनमें अपने अर्थके ज्ञानकी सामर्थ्यही शक्ति है; परंतु इतना भेद है:—वह्नि आ-

दिक पदार्थनमें जो सामर्थ्यरूप शक्ति ताके ज्ञानकी अपेक्षा नहीं. शक्ति ज्ञात होवै अथवा अज्ञात होवै दोनों स्थानमें वह्नि आदिकनमें दाहादिक कार्य होवै हैं, और पदकी शक्तिका ज्ञान होवै तब तो अर्थकी स्मृतिरूप कार्य होवै है, शक्तिका ज्ञान होवै नहीं तब अर्थकी स्मृतिरूप कार्य होवै नहीं. यातैं पदकी सामर्थ्य शक्ति ज्ञात होवै, तब पदार्थकी स्मृतिरूप कार्य होवै है. **शंका:**—जहां अतीत पदकी स्मृति होवै तहां पदके स्मरणरूप ज्ञानतैं अर्थकी स्मृति होवै है, सो नहीं हुई चाहिये. काहेतैं ? सामर्थ्यरूप शक्तिवाले पदका ध्वंस हो गया, यातैं अर्थकी स्मृतिका हेतु जो पद ताका अभाव है ? **समाधानः**—मीमांसाके मतमें सारे पद नित्य हैं. तिन्हकी उत्पत्ति नाश होवै नहीं, यातैं पदका ध्वंस बने नहीं, और जो पदनकूं अनित्य मानै तो यह समाधान है:—पदार्थस्मृतिकी सामर्थ्य पदमें नहिं है; किंतु पदज्ञानमें पदार्थकी स्मृतिकी शक्ति है. जहां पदका ध्वंस हुआ है तहांभी पदका स्मरणरूप ज्ञान है. जहां वर्तमान पद है तहां पदका श्रवणसाक्षात्कार ज्ञान है. ताज्ञानमें पदार्थकी स्मृतिकी सामर्थ्य है सोई शक्ति है. यापक्षमें शक्तिवाला पद नहीं किंतु पदका ज्ञान है. यह पक्ष गदाधर भट्टाचार्यने शक्तिवादग्रंथमें ज्ञानशक्तिवाद करिके लिखा है. इसरीतिसैं पदकी सामर्थ्य वा पदके ज्ञानकी सामर्थ्य शक्ति कहिये है; दूसरे पक्षमेंभी पद शक्तिवाला है; इस व्यवहारकी सिद्धिवास्ते पदका धर्म शक्ति अपेक्षित होवे तो जिस पदका ज्ञान जिस अर्थकी स्मृतिमें समर्थ होवे तिस पदकी तिस अर्थमें शक्ति कहिये है.

३५ शाब्दीप्रमाकी रीतिपूर्वक शक्तिविषे विवाद.

इस रीतिसैं शक्तिसहित पदज्ञानमें पदार्थकी स्मृति होवै है. जितने पदार्थनकी स्मृति होवै उतने पदार्थोंके संबंधका ज्ञान अथवा संबंधसहित सकलपदार्थनका ज्ञान **वाक्यार्थज्ञान** कहिये है; ताहीकूं **शाब्दीप्रमा** कहैहैं. जैसैं "नीलोघटः" यह वाक्य है, तामें च्यार पद हैं. नीलपद है १ ओकारपद है २ घट पद है ३ विसर्ग पद है ४ नीलरूपविशिष्टमें नीलपदकी शक्ति है; ओकारपद निरर्थक है, यह वार्ता व्युत्पत्तिवादादिक ग्रंथनमें स्पष्ट है. अथवा

ओकारपदका अभेद अर्थ है, घटपदकी घटत्वविशिष्टमें शक्ति है, विसर्गकी एकत्व संख्यामें शक्ति है, शक्तिका ज्ञान कोश व्याकरणादिकनतैं होवै हैं, नीलपीतादिक पदनकी वर्णमें और वर्णवालेमें शक्ति है, यह कोशमें लिखा है और विसर्गकी एकत्व संख्यामें शक्ति है यह व्याकरणतैं जानी जावै है; घटपदकी घटत्वविशिष्टमें शक्ति है यह व्याकरणग्रंथनमें और शक्तिवादादिक तर्कग्रंथनमें लिखा है; और न्यायसूत्रमें गौतमने यह कह्याः—जाति आकृति व्यक्तिमें सकल पदनकी शक्ति है. अवयवके संयोगकूं आकृति कहै हैं. अनेक पदार्थनमें रहै जो नित्य एक धर्म सो जाति कहिये है. जैसें अनेक घटमें नित्य और एक घटत्व है सो जाति है. जातिके आश्रयकूं व्यक्ति कहै हैं. या मतमें घटपदकी शक्ति कपालसंयोगसहित घटत्वविशिष्ट घटमें है. और दीधितिकार शिरोमणि भट्टाचार्यके मतमें सकल पदनकी व्यक्तिमात्रमें शक्ति है, जाति और आकृतिमें नहीं. यामतमें घटपदका वाच्य केवल व्यक्ति है. घटत्व और कपालसंयोग घटपदके वाच्य नहीं. काहेतैं ? जिस पदकी जिस अर्थमें शक्ति होवै तिस पदका सो अर्थ वाच्य कहिये है और शक्य कहिये है. केवल व्यक्तिमें शक्ति है यातैं केवल व्यक्तिही वाच्य है. शंकाः—घटपदके उच्चारणतैं घटत्वकी गोपदके उच्चारणतैं गोत्वकी ब्राह्मणपदके उच्चारणतैं ब्राह्मणत्वकी प्रतीति होवै है. सो यामतमें नहीं हुई चाहिये. काहेतैं ? अवाच्य अर्थकी लक्षणा विना पदसैं प्रतीति होवै नहीं.जो अवाच्य अर्थकी लक्षणा विना पदसैं प्रतीति मानै तो घटपदके अवाच्य घटत्वकी जैसें घटपदसैं प्रतीति मानी, तैसें घटपदके अवाच्य पटादिकनकीभी घट पदसैं प्रतीति हुई चाहिये ? समाधानः—वाच्यकी प्रतीति पदसैं होवै है और वाच्यवृत्ति जो जाति ताकी प्रतीति होवै है; यातैं यह नियम हैः—जाति भिन्न अवाच्यकी प्रतीति होवै नहीं. और वाच्यवृत्ति जो जाति सो अवाच्यभी प्रतीव होवै है यातैं घटत्वादिक तो अवाच्यभी घटादिक पदनसैं प्रतीत होवै हैं, पटादिक अवाच्य प्रतीत होवै नहीं. पुनः शंकाः—वाच्यवृत्ति अवाच्य जातिकी पदनसैं प्रतीति मानैं तो घटपदसैं पृथिवीत्व जातिकी प्रतीति हुई

चाहिये. काहेतैं ? घटपदके वाच्यमें जैसैं घटत्व जाति रहै है तैसैं पृथिवीत्वभी रहै है यातैं दोनों वाच्यवृत्ति हैं, और अवाच्य हैं. घटत्वकी नांई पृथिवीत्वकीभी प्रतीति हुई चाहिये. गोपदका वाच्य जो गौ ताके विषे गोत्वकी नांई पशुत्व रहै है. और दोनों अवाच्य हैं. तैसैं ब्राह्मणपदसैं ब्राह्मणत्वकी नांई मनुष्यत्वकी प्रतीति हुई चाहिये ? **समाधानः**—वाच्यतावच्छेदक जो अवाच्य ताकी और वाच्यकी पदसैं प्रतीति होवै है, अन्यकी प्रतीति होवै नहीं. जैसैं घटपदका वाच्य घटव्यक्तिकी और वाच्यतावच्छेदक घटत्वकी प्रतीति घट पदसैं होवै है. पृथिवीत्व वाच्य नहीं और वाच्यतावच्छेदक नहीं; यातैं घटपदसैं पृथिवीत्वकी प्रतीति होवै नहीं. वाच्यतासैं न्यूनवृत्ति और अधिकवृत्ति न होवै; किंतु जितने देशमें वाच्यता होवै उतने देशमें रहै सो **वाच्यतावच्छेदक** होवै है. घटपदकी वाच्यता सकल घट व्यक्तिमें है, और घटत्वभी सकल घट व्यक्तिमें रहै है; यातैं घटकी वाच्यतासैं न्यूनवृत्ति और अधिक वृत्ति घटत्व नहीं; किन्तु समानदेश वृत्ति होनेतैं घटपदका वाच्यतावच्छेदक घटत्व है. घटपदकी वाच्यता पटमें नहीं, और पृथिवीत्व पटमें है यातैं अधिकवृत्ति होनेतैं घटपदका वाच्यतावच्छेदक पृथिवीत्व नहीं. गोपदकी वाच्यता सकल गोव्यक्तिमें है और गोत्वभी सकल गोव्यक्तिमें है, यातैं गोपदका वाच्यतावच्छेदक गोत्व है, और अश्वमें गोपदकी वाच्यता नहीं, तामें पशुत्व रहै है यातैं गोपदकी वाच्यतासैं अधिक वृत्ति होनेतैं गोपदका वाच्यतावच्छेदक पशुत्व नहीं. तैसैं ब्राह्मणपदकी वाच्यता सकल ब्राह्मणव्यक्तिमें हैं और ब्राह्मणत्वभी सकल ब्राह्मणव्यक्तिमें है, यातैं ब्राह्मणपदका वाच्यतावच्छेदक ब्राह्मणत्व है और क्षत्रियादिकनमें ब्राह्मणपदकी वाच्यता नहीं, तहां मनुष्यत्व रहै है, यातैं अधिकवृत्ति होनेतैं ब्राह्मणपदका वाच्यतावच्छेदक मनुष्यत्व नहीं. इसरीतिसैं घटादिक पदनतैं घटत्वादिकनकी प्रतीति होवै है और शक्ति नहीं होनेतैं घटादिपदनके वाच्य नहीं; किंतु वाच्यतावच्छेदक हैं. यह **शिरोमणि भट्टाचार्यका** मत है. और घटादिपदनकी जातिमात्रमें शक्ति है, व्यक्तिमें नहीं; यह मीमांसाका मत है.

शंकाः—जिस अर्थमें जिस पदकी शक्तिका ज्ञान होवै तिस अर्थकी तिस पदसैं स्मृति होयके शाब्दी प्रमा होवै हैं. पदकी शक्ति विना व्यक्तिकी पदसैं स्मृति और शाब्दी प्रमा नहीं हुई चाहिये ? समाधानः--शब्दप्रमाणसैं तो जातिकाही ज्ञान होवै, तथापि अर्थापत्ति प्रमाणतैं व्यक्तिका ज्ञान होवै है. जैसैं दिनमें अभोजी पुरुषकूं रात्रिभोजन विना स्थूलता संभवै नहीं. तैसैं व्यक्ति विना केवल जातिमें कोई क्रिया संभवै नहीं. यातैं अर्थापत्ति प्रमाणतैं व्यक्तिका बोध होवे है; "गामानय" इस वाक्यतैं गोत्वके आनयनका बोध होवै है; सो गोव्यक्तिके आनयन विना बनै नहीं, गोव्यक्तिका आनयन संपादक है, गोत्वका आनयन संपाद्य है, संपादकज्ञानका हेतु संपाद्यज्ञान अर्थापत्ति प्रमाण कहिये है; संपादकज्ञान प्रमा है, या स्थानमें जातिका ज्ञान प्रमाण है और व्यक्तिका ज्ञान प्रमा है यह भट्टमीमांसकका मत है. और कोई जातिशक्तिवादी अनुमानतैं व्यक्तिका बोध माने हैं, सो ग्रंथांतरमें स्पष्ट है. कठिन प्रसंग लिखा नहीं. केवल जातिमें शक्ति मानैं ताके मतमें व्यक्तिका बोध शब्द प्रमाणतैं होवै नहीं; किंतु अर्थापत्ति वा अनुमानसैं व्यक्तिका बोध होवै है, परंतु कोई ग्रंथकार जातिमें कुब्जशक्ति मानै हैं, ताके मतमें व्यक्तिका ज्ञानभी शब्दप्रमाणतैं ही होवै है. ताका यह अभिप्राय है:—सकल पदनकी शक्ति तो जातिविशिष्ट व्यक्तिमें है, परंतु शक्तिका ज्ञान जाकूं होवै ताकूं पदसैं अर्थकी स्मृति और शाब्दबोध होवै अन्यकूं नहीं; तहां घट पदकी घटत्वमें शक्ति है. इस रीतिसैं जाति शक्तिका ज्ञान पदार्थकी स्मृतिका और शाब्दबोधका हेतु है और व्यक्तिमें शक्तिके ज्ञानका उपयोग नहीं और व्यक्ति अनंत हैं. यातैं सकल व्यक्तिका ज्ञान संभवै नहीं, इस कारणतैं व्यक्तिकी शक्ति स्वरूपसैं पदार्थकी स्मृति और शाब्दबोधका हेतु है; ताका ज्ञान हेतु नहीं. इसरीतिसैं घट पदकी घटत्वविशिष्टमें शक्ति होनेतैं घटपदके वाच्य तो घटत्व और घट दोनों हैं; यातैं घटपदका वाच्य जो घटत्व और घट तिनके शाब्दबोधका हेतु घटत्वमें शक्तिका ज्ञान है; या पक्षकूं कुब्जशक्तिवाद कहै हैं. और प्रकारसैं कुब्जशक्तिवाद गदाधर

भट्टाचार्यनें शक्तिवादके अंतमें लिखा है सो कठिन है, यातैं इहां लिखा नहीं. और घटादिक पदनतैं जैसैं जातिविशिष्ट व्यक्तिका बोध होवै है, तैसैं जातिका व्यक्तिमें जो समवायादिक संबंध ताकाभी बोध होवै, यातैं जाति व्यक्ति संबंध इन तीनोंमें घटादि पदनकी शक्ति है; यह गदाधरभट्टाचार्यका मत है. सर्व मतनसें जातिविशिष्ट व्यक्तिमैं घटदिक पदानकी शक्ति है यह मत बहुत ग्रंथकारोंनें लिखा है. यातैं घटपदकी घटत्वविशिष्टमें शक्ति कही है.

३६ वाक्यनका भेद.

नीलके अभेदवाला एक घट है,यह "नीलो घटः" इस वाक्यका अर्थ है,तैसैं "वज्रहस्तः पुरंदरः" यह वैदिक वाक्य है. जैसैं "नीलो घटः" या वाक्यमें विशेषण बोधक नीलपद हैं और घटपद विशेष्यबोधक है, तैसैं वज्रहस्तपद विशेषणबोधक है और पुरंदरपद विशेष्यबोधक है. विशेषणपदके आगे विसर्ग निरर्थक है अथवा अभेदार्थक है. विशेष्यबोधकपदके आगे विसर्गका एकत्व अर्थ है. "वज्रहस्तके अभेदवाला एक पुरंदर है" यह वाक्यका अर्थ है. इस रीतिसे लौकिक वैदिक वाक्यनकी समान रीति है, परंतु वैदिक वाक्य दोप्रकारके हैंः—एक व्यावहारिक अर्थके बोधक हैं, दूसरे परमार्थ तत्त्वके बोधक हैं. ब्रह्मसैं भिन्न सारा व्यावहारिक अर्थ कहिये है, परमार्थतत्त्व ब्रह्म कहिये है. ब्रह्मबोधक वाक्यभी दो प्रकारके हैंः—तत्पदार्थ वा त्वंपदार्थके स्वरूपके बोधक अवांतर वाक्य हैं. जैसैं "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" यह वाक्य तत्पदार्थका बोधका है. "य एष हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः" यह वाक्य त्वं पदार्थके स्वरूपका बोधक है, तत्पदार्थ त्वंपदार्थके अभेदके बोधक "तत्त्वमसि" आदिक महावाक्य हैं.

३७ शब्दकी शक्तिलक्षणावृत्तिका संक्षेपतैं कथन.

जा अर्थमें जा पदकी वृत्ति होवै ता अर्थकी ता पदसैं प्रतीति होवै है. शक्ति और लक्षणाभेदतें सो वृत्ति दोप्रकारकी है; ईश्वरकी इच्छा अथवा वाच्यवाचकभाव संबंध मूल तादात्म्य अथवा पदार्थबोधहेतु सामर्थ्यकूं शक्ति

कहै हैं. जिस अर्थमें पदकी शक्ति होवै सो अर्थ पदका शक्य कहिये है, शक्यसंबंधकूं लक्षणा कहै हैं, जैसें गंगापदकी शक्ति प्रवाहमें है. यातें गंगापदका शक्य प्रवाह है, तासें संयोग संबंध तीरका है; इस रीतिसें पदका जो अर्थसें परंपरासंबंध सो लक्षणा है. जैसें गंगापदका तीरसें परंपरासंबंध है, सोई तीरमें गंगापदकी लक्षणा कहिये है. काहेतें ? साक्षात्संबंधवालेसें जो संबंध सो परंपरासंबंध कहिये है. गंगापदका शक्तिरूप संबंध प्रवाहते है तासें संयोग तीरका है. यातें स्वशक्य संयोगरूप गंगापदका तीरसें परंपरासंबंध है; सोई लक्षणा कहिये है. यातें यह सिद्ध हुआ, जा अर्थसें जिस-पदका शक्तिरूप साक्षात्संबंध होवै; सो अर्थ तिस पदका शक्य कहिये है, जा अर्थसें जिस पदके शक्यका संबंध होवै सो अर्थ तिस पदका लक्ष्य कहिये है. जैसें गंगापदका शक्य जो प्रवाह ताका तीररूप अर्थसें संयोग-संबंध है यातें गंगापदका शक्य प्रवाह है और तीर लक्ष्य है.

इस रीतिसें पदका साक्षात्संबंध और परंपरासंबंधरूप शक्तिलक्षणाभेद तैं वृत्ति दोप्रकारकी है. जापदकी वृत्ति जिस पुरुषकूं अज्ञात होवै ता पदका तिस पुरुषकूं साक्षात्कार हुए भी पदार्थकी स्मृति और शाब्द बोध होवै नहीं; यातें शक्तिलक्षणारूप वृत्तिका ज्ञान पदार्थकी स्मृति और शाब्दबोधका हेतु है.

३८ वाक्यार्थज्ञानका क्रम.

शाब्दबोधका यह क्रम है:—जा पुरुषकूं पदकी वृत्ति ज्ञात होवै ता पुरुषकूं वाक्यके सकल पदनका साक्षात्कार होवै, जिस पदकी जिस अर्थमें वृत्ति पूर्व जानी होवै तिस पदसें तिस अर्थकी स्मृति होवै है; तिसतैं अनंतर परस्पर संबंधवाले सकल पदार्थनका ज्ञान अथवा सकल पदार्थनका परस्पर संबंधज्ञान वाक्यार्थज्ञान होवै है. जैसें " गामानय त्वम् "या वाक्यमें गो आदिक पद हैं, तिनकी अपने अर्थमें वृत्तिका प्रथम ऐसा ज्ञान पुरुषकूं चाहियेः—गोपदकी गोत्वविशिष्ट पशुविशेषमें शक्ति है. द्वितीया विभक्तिकी कर्मतामें शक्ति है. आनयनमें आपूर्वक नीपदकी शक्ति है,

यकारोत्तर अकारकी कृति और प्रेरणामें शक्ति है. संबोधनयोग्य चेतनमें त्वंप-दकी शक्ति है. इस रीतिसैं शक्तिज्ञानवालेकूं "गामानय त्वम्" या वाक्यका श्रोत्रसैं संबंध होते ही गोआदिक सकल पदनका साक्षात्कार होयके तिन पदनके शक्य अर्थकी स्मृति होवै है. जैसैं हस्तिपालकके ज्ञानतैं ताके संबंधी हस्तीकी स्मृति होवै है, तैसैं पदनके ज्ञानतैं तिनके संबंधी शक्य अर्थनकी स्मृति होवै है. "यह हस्तिपालक है" ऐसा हस्ति और महावतके संबंधका जाकूं ज्ञान होवै नहीं; किंतु " मनुष्य है " ऐसा ज्ञान होवै ताकूं हस्तिपालक देखे भी हस्तीकी स्मृति होवै नहीं; तैसैं इस पदका यह शक्य है अथवा लक्ष्य है, ऐसा शक्ति वा लक्षणारूप संबंधका जाकूं पूर्व ज्ञान होवै नहीं; किंतु अज्ञातार्थपदका श्रावणसाक्षात्कार होवै, ताकूं पदनके श्रवणतैंभी अर्थनकी स्मृति होवै नहीं; यातैं वृत्तिसहित पदका ज्ञान पदार्थस्मृतिका हेतु है; केवल पदका ज्ञान हेतु नहीं. पदनके ज्ञानतैं सकल पदार्थनकी स्मृति होयके सकल पदार्थनके परस्पर संबंधका ज्ञान होवै है. अथवा पदनके ज्ञानतैं परस्परसंबंधरहित जिन पदार्थनका स्मरण हुआ है, तिन पदार्थनका परस्परसंबंधसहित ज्ञान होवै है; सो पदार्थनके संबंधका ज्ञान अथवा संबंधसहित पदार्थनका ज्ञान **वाक्यार्थज्ञान** कहिये है और **शाब्दी प्रमा** कहिये है. "गामानय त्वम्" या वाक्यमें गोपदार्थका द्वितीयार्थ कर्मतामें **आधेयता संबंध** है. आधेयताकूं **वृत्तित्व** कहै हैं; "आ-पूर्वक नीके " अर्थ आनयनमें कर्मताका **निरूपकता संबंध** है. यकारोत्तर अकारके कृति और प्रेरणा दो अर्थ हैं. तहां कृतिमें आनयनका **अनूकुलता संबंध** है; कृतिका त्वंपदार्थमें **आश्रयतासंबंध** है. प्रेरणाका त्वं पदार्थमें **विषयतासंबंध** है; यातैं "गोवृत्तिकर्मतानिरूपकआनयनानुकूलकृत्याश्रयः प्रेरणाविषयस्त्वंपदार्थः" यह ज्ञानवाक्य श्रोताकूं होवै है. तहां वृत्तिविशिष्ट सकल पदनका ज्ञान शब्दप्रमाण है, पदनके ज्ञानतैं तिनके अर्थकी स्मृति व्यापार है; वाक्यार्थज्ञान फल है, इस रीतिसैं लौकिक वैदिक वाक्यनतैं बहुत स्थानमें पदार्थनके संबंधका वा संबंधसहित पदार्थनका बोध ही फल होवै है. तथापि त्वंपदार्थका

संबंधी तत्पदार्थका तत्पदार्थके संबंधी त्वंपदार्थका महावाक्यनतैं बोध मानैं तो "असंगो ह्ययं पुरुषः" इत्यादिक श्रुतिवचनोंमें वेदांतप्रतिपाद्य ब्रह्मकूं असंगता कही है; ताका बाध होवैगा. यातैं महावाक्यनका प्रतिपाद्य अखंड ब्रह्म है. वाक्यनकूं अखंड अर्थकी बोधकतामें दृष्टांत संक्षेपशारीरकमें स्पष्ट है. विस्तारभयतैं लिखा नहीं.

३९ लक्षणाका प्रकार.

महावाक्यनमें लक्षणाका प्रकार विचारसागरमें लिखा है. सो जानि लेना. पदके शक्यसैं संबंधकूं लक्षणा कहै हैं, यातैं पदका परंपरासंबंधरूप लक्षणा है. काहेतैं ? पदका साक्षात्संबंध शक्यतैं होवै है.ता शक्यका संबंध लक्ष्यतैं होवै है.यातैं शक्यद्वारा पदका संबंध होनेतैं परंपरासंबंधरूप लक्षणावृत्ति है. इसी कारणतैं ग्रंथकारोंने लक्षणावृत्ति जघन्य कही है. जहां पदका साक्षात्संबंध रूप शक्तिवृत्ति नहीं संभवै, तहां परंपरासंबंधरूप लक्षणावृत्तिका अंगीकार है. इसीकारणतैं ग्रंथकारोंने लिखाहै:—जहां शक्य अर्थमें वक्ताका तात्पर्य नहीं संभवै, तहां लक्षणावृत्ति मानिके पदका लक्ष्य अर्थ मानना योग्य है. जहां शक्य अर्थमें वक्ताका तात्पर्य संभवै, तहां लक्ष्य अर्थ मानना योग्य नहीं. केवल लक्षणा और लक्षित लक्षणाके भेदतैं सो लक्षणा दो प्रकारकी है.— पदके शक्यका साक्षात्संबंध होवै ताकूं केवल लक्षणा कहै है. जैसैं गंगापदकी तीरमें लक्षणा होवै हैं, तहां गंगापदका शक्य जो प्रवाह ताका तीरसैं साक्षात् संबंध योग है, तहां गंगापदकी तीरमें केवल लक्षणा है. लक्षितलक्षणाका उदाहरण यह हैं.—"द्विरेफो रौति" या वाक्यका "दो रेफ ध्वनि करै हैं" यह अर्थ पदनकी शक्तिसैं प्रतीत होवै है; सो वर्णरूप रेफमें ध्वनि करना संभवै नहीं. यातैं शक्य अर्थमें वक्ताका तात्पर्य नहीं, किंतु दो रेफवाला जो भ्रमरपद तिसके शक्यमें ही रेफपदकी लक्षणा है. सो केवल लक्षणा तो हैं नहीं. काहेतैं ? जा अर्थमें पदके शक्यका साक्षात्संबंध होवै तामें केवल लक्षणा होवै है. द्विरेफ पदका शक्य दो रेफ हैं, तिनका अवयविता संबंध भ्रमरपदमें है; ता पदका शक्तिरूप संबंध अपने वाच्य मधुपमें हैं; यातैं

शक्यसंबंधी जो भ्रमरपद ताका संबंध होनेतैं शक्यका परंपरासंबंध है; यातैं लक्षणा है. यद्यपि दो रेफनकूं द्विरेफ नहीं कहै हैं,किंतु दो रेफवालेकूं द्विरेफ कहै हैं. दो रेफवाला भ्रमरपद है; यातैं द्विरेफपदका शक्य जो भ्रमरपद ताका मधुपसैं साक्षात्संबंध होनेतैं केवल लक्षणा संभवै है, तथापि व्याकरणके मतमें सो समासकी शक्ति है; यातैं द्विरेफ पदका शक्य दोरेफवाला भ्रमरपद है, न्यायवैशेषिकादिकनके मतमें समाससमुदायकी शक्ति नहीं मानैं हैं, किंतु समाससमुदायके जो अवयव हैं, तिनकी लक्षणावृत्तिसैं अधिक अर्थ समासमें प्रतीत होवै है. जैसें "द्विरेफ" इतना समाससमुदाय है. किसी अर्थमें ताकी शक्ति नहीं. तहां द्वित्वसंख्याविशिष्ट द्विपदका अर्थ है. रेफत्वजातिविशिष्ट अक्षर रेफपदका अर्थ है.द्विपदके शक्यका और रेफपदके शक्यका अभेद संबंध वाक्यार्थ होवै तो द्वित्वसंख्यावाले रेफ हैं यही अर्थ शक्य है; और दोरेफवाले पदकूं द्विरेफ कहै हैं, सो लक्षणावृत्ति मानिके कहै हैं; परंतु इतना भेद हैः—न्यायवैशेषिकमतमें वाक्यकी लक्षणा नहीं माने हैं, काहेतैं ? शक्यसंबंधकूं लक्षणा कहे हैं. पदसमुदायरूप वाक्यकी किसी अर्थमें शक्ति नहीं, यातैं वाक्यके शक्यका अभाव होनेतैं शक्यसंबंधरूप लक्षणा वाक्यकी बनै नहीं; किंतु पदकी लक्षणा होवै है. यामतमें रेफपदकी रेफवालेमें लक्षणा और मीमांसामतमें तथा वेदांतमतमें वाक्यकीभी लक्षणा मानै हैं. और वाक्यकी लक्षणामें जो दोष कहा है ताका यह समाधान हैः—पदसमुदायकूं वाक्य कहे है;सो समुदाय प्रत्येक पदसैं भिन्न नहीं; यातैं पदनका शक्यही वाक्यका शक्य है, अथवा शक्यसंबंधरूप लक्षणा नहीं किंतु बोध्य संबंधकूं लक्षणा कहे हैं. जैसैं पदकी शक्यताशक्ति वृत्तिसैं बोध्य है, तैसैं परस्पर संबंध सहित पदार्थ रूप वा पदार्थनका संबंधरूप वाक्यार्थ भी वाक्यबोध्य है. यातैं पदबोध्यसंबंधरूप लक्षणा जैसैं पदकी होवै है तैसैं वाक्य बोध्य संबंधरूप लक्षणा वाक्यकी भी होवै है. यामतमें द्विरेफसमुदायकी दोरेफवाले पदमें लक्षणा है. इसरीतिसैं द्विरेफपदसें लक्षित भ्रमरपदकी मधुपमें लक्षणा होनेतैं लक्षितलक्षणा कहावै है.सो भी लक्षणाके अंतर्भूत ही है.काहेतैं?द्विरेफ-

पदाका शक्य जो दो रेफ ताका भ्रमरपदसैं साक्षात्संबंध है; और भ्रमरतैं भ्रमरप-दद्वारा परंपरासंबंध है,यातैं शक्यसंबंधरूप लक्षणातैं लक्षितलक्षणा पृथक् नहीं. व्याकरणमतमें द्विरेफ पदका शक्य दोरेफवाला भ्रमरपद है, ताका भ्रमरसें साक्षात्संबंध है,यातें यह उदाहरण लक्षित लक्षणाका नहीं,केवल लक्षणाका है. तामतमें लक्षित लक्षणाके उदाहरण "सिंहोदेवदत्तः" इत्यादिक हैं.यास्थानमें "सिंहसैं अभिन्न देवदत्त है" यह वाक्यका अर्थ पदनकी शक्तिवृत्तिसैं प्रतीत होवै है, सो संभवै नहीं. काहेतैं? पशुत्व जाति और मनुष्यत्व जाति परस्पर विरुद्ध है, एकमें संभवै नहीं; यातैं सिंहशब्दकी शूरताक्रूरताधर्मवाले पुरुषमें लक्षणा है. तापुरुषतैं सिंहशक्यका साक्षात्संबंध नहीं होनैतैं केवल लक्षणा तो है नहीं, किन्तु शूरतादिकनतैं सिंह शब्दके शक्यका आधेयता संबंध है; और शक्य संबंधि शूरतादिकनका पुरुषमें आश्रयतासंबंध है; परंतु सिंहकी शूरता और पुरुषकी शूरताका अभेद मानैं तब तो सिंहकी शूरताका देवद-त्तमें अधिकरणताका संबंध है; और दोनों शूरताका परस्पर भेद माने तौ सिंहकी शूरताका पुरुषमें स्वजातीय शूरताधिकरणता संबंध है. सिंहकी शूर-ता स्वशब्दका अर्थ है; इसरीतिसैं वाक्यका परंपरासंबंध होनेतैं सिंहशब्दकी शूरतादिगुणविशिष्टमें लक्षितलक्षणा है. शक्यके परंपरासंबंधकूं लक्षित लक्षणा कहै हैं, यद्यपि लक्षितलक्षणाशब्दसैं उक्त अर्थकी सिद्धि क्लिष्ट है. काहेतैं ? लक्षितलक्षणाशब्दकी रूढि तो शक्यके परंपरासंबंधसैं कोशादिकनमें कही नहीं. और योगवृत्तिसें लक्षणाशब्दका उक्त अर्थ प्रतीत होवै नहीं. काहेतैं ? " लक्षितस्य लक्षणा लक्षितलक्षणा " इसरीतिसैं षष्ठीसमास करैं तो लक्षित कहिये लक्षणावृत्तिसें जो प्रतीत हुआ है ताकी लक्षणा यह लक्षित लक्षणाशब्दका अर्थ सिद्ध होवैहै. " द्विरेफो रौति,सिंहो देवदत्तः" इत्यादिक जो लक्षितलक्षणाके उदाहरण कहे तहां उक्तस्वरूप लक्षितलक्षणा संभवै नहीं. काहेतैं ? "द्विरेफो रौति" या वाक्यमें द्विरेफपदसैं भ्रमरपद लक्षित होवै और ताकी मधुपमें लक्षणा होवै तो उक्त अर्थका संभव होवै सो दोनों वार्ता हैं नहीं. काहेतैं? यद्यपि द्विरेफपदके शक्यका संबंध भ्रमरपदतैं है,तथापि द्विरेफ

पदसैं लक्षित भ्रमरपद नहीं. काहेतैं ? वक्ताके तात्पर्यका विषय शक्यसंबंधी लक्षित होवै है, केवल शक्यसंबंधी लक्षित नहीं होवै है. जो केवल शक्यसंबंधी लक्षित होवै तो गंगापदके शक्यके संबंधी मीनादिक अनेक हैं; ते सारेही गंगापदसैं लक्षित हुए चाहिये.यातैं वक्ताके तात्पर्यका विषय शक्यसंबंधी लक्षित होवै है. गंगापद शक्य संबंधी तो अनेक हैं तथापि " गंगायां ग्रामः "या वाक्यमें श्रोताकूं गंगापदसैं तीरका बोध होवै ऐसे तात्पर्यविषय शक्यसंबंधी केवल तीर है, यातैं गंगापदसैं तीरही लक्षित है. मीनादिकभी शक्य संबंधी तो हैं. उक्त तात्पर्यके विषय नहीं. यातैं गंगापदसैं लक्षित नहीं. उसरीतिसैं द्विरेफपदके शक्यका संबंधी तो भ्रमरपद है, परंतु द्विरेफपदसैं भ्रमरपदका बोध श्रोताकूं होवै, ऐसा वक्ताका तात्पर्य नहीं, किंतु द्विरेफपदसैं भ्रमरपदके शक्य मधुपका बोध श्रोताकूं होवै ऐसा वक्ताका तात्पर्य होवै है;यातैं द्विरेफपदके शक्यका संबंधीभी भ्रमरपद है.वक्ताके उक्त तात्पर्यका विषय नहीं होनेतैं द्विरेफपदसैं लक्षित भ्रमरपद नहीं.और किसी रीतिसैं द्विरेफपदसैं लक्षित भ्रमरपद है,इस वार्ताकूं मानिलेवै तो भी भ्रमरपदकी मधुपमें शक्ति है;यातैं ताकी लक्षणा कथन असंगत है.इसरीतिसैं "लक्षितस्य भ्रमरपदस्य लक्षणा लक्षितलक्षणा" इसरीतिसैं षष्ठी समासका अर्थ उक्त उदाहरणमें संभवै नहीं; तैसैं "सिंहो देवदत्तः"या उदाहरणमें भी उक्तअर्थ संभवै नहीं. सिंहवृत्ति शूरतादिक सिंहशब्दके शक्य संबंधी तो हैं,परंतु सिंहशब्दसैं शूरतादिकनका बोध श्रोताकूं होवै, ऐसा वक्ताका तात्पर्य नहीं; किंतु सिंह शब्दसैं सिंहसदृश पुरुषका बोध श्रोताकूं होवै ऐसा वक्ताका तात्पर्य होवै है. यातैं ? शक्य संबंधीभी शूरतादिक गुण उक्त तात्पर्यके विषय नहीं होनेतैं सिंहशब्दसैं लक्षित नहीं, और किसी रीतिसैं सिंहशब्दसैं लक्षित शूरतादिक हैं; याकूं मानि लेवै तोभी तिनकी लक्षणा कहना विरुद्ध है. काहेतैं ? शक्ति और लक्षणा वर्णात्मक शब्दकी होवै है. शूरतादिक गुण शब्दरूप नहीं, यातैं तिनकी शक्ति वा लक्षणा संभवै नहीं. इस रीतिसैं " लक्षितस्य भ्रमरपदस्य लक्षणा लक्षितलक्षणा " और " लक्षितस्य शूरतादिगुणसमुदायस्य लक्षणा लक्षितलक्षणा " इस प्रकारका अर्थ षष्ठीस-

मास मानिके होवै है. या अर्थमें शक्यके परंपरासंबंधका लक्षितलक्षणा शब्दसैं बोध होवै नहीं; पूर्व उक्त दोनों उदाहरणोंमें शक्यका परंपरासंबंध तो मधुप और पुरुषमें है, और पूर्वोक्त रीतिसैं लक्षितलक्षणा शब्दका योग अर्थ संभवै नहीं; तथापि या वक्ष्यमाण रीतिसैं लक्षितलक्षणा शब्दका योग अर्थ षष्ठीसमास मानिके शक्यका परंपरासंबंधही संभवैहै:—यद्यपि वक्ताके तात्पर्यका विषय शक्य संबंधी लक्षित शब्दका अर्थ है तथापि भागत्यागलक्षणासैं वक्तृतात्पर्यविषय इतना भाग त्यागिके इहां शक्यसंबंधी लक्षितशब्दका अर्थ है. तैसैं लक्षणाशब्दका अर्थभी शक्य संबंध है. तामें शक्य भाग त्यागिके भागत्याग लक्षणासैं संबंधमात्र लक्षणाशब्दका अर्थ है. यातैं लक्षित कहिये शक्यसंबंधीकी लक्षणा कहिये संबंध लक्षितलक्षणाशब्दका अर्थ होवै है. इस रीतिसैं शक्य संबंधीका संबंध लक्षितलक्षणा शब्दसैं योग वृत्तिसैं ही सिद्ध होवै है. अथवा लक्षितशब्दकी तो शक्य संबंधीमें भागत्याग लक्षणा है, और लक्षणा शब्दका शक्यसंबंधही अर्थ है. ताकी संबंधमात्रमें लक्षणा नहीं, और " लक्षितेन लक्षणा लक्षितलक्षणा " इस रीतिसैं तृतीया समास मानैं इष्ट अर्थकी सिद्धि होवै है. लक्षितेन कहिये शक्यसंबंधीद्वारा लक्षणा कहिये शक्यका संबंध यह लक्षितलक्षणा शब्दका अर्थ है. शक्यका संबंध कहूं साक्षात् होवै है, कहूं शक्यसंबंधीद्वारा शक्यका संबंध होवै है. "द्विरेफो रौति" इत्यादि स्थानमें द्विरेफपदका शक्य जो दो रेफ तिनका मधुपसैं साक्षात्संबंध नहीं, किंतु शक्यसंबंधी भ्रमरपद है तिसका संबंधी मधुप है. यातैं द्विरेफपदका शक्य जो दो रेफ तिनका भ्रमरपदद्वारा मधुपसैं संबंध है. तैसैं सिंहशब्दके शक्यके संबंधी जो शूरतादिक गुण तिनद्वारा सिंहशब्दके शक्यका संबंध शूरतादिगुणविशिष्टमें है. यातैं सिंहशब्दका लक्षित कहिये शक्यसंबंधी जे शूरतादिगुण तिनद्वारा लक्षणा कहिये सिंहशब्दके शक्यका संबंध पुरुषमें है. षष्ठीसमास मानै तौ लक्षित शब्द और लक्षणा शब्दमें भागत्याग लक्षणा माननी होवै है; और तृतीयासमास मानै तौ लक्षणा शब्दका मुख्य अर्थ रहै है. एक लक्षितशब्दमें भागत्यागलक्षणा माननी होवै

है; और लक्षितलक्षणाशब्दमें **कर्मधारयसमास** मानें तो लक्षित शब्द और लक्षणाशब्द इन दोनोंका मुख्य यौगिक अर्थ रहैहै. भागत्यागलक्षणा माननी होवै नहीं. अवयवकी शक्तिसैं जो शब्द अपने अर्थकूं जनावै ताकूं **यौगिक शब्द** कहै हैं. जैसैं " पाचक " शब्द है तहां "पाच् " अवयवका पाक अर्थ है, " अक " अवयवका कर्ता अर्थ है; इसरीतिसैं अवयवशक्तिसैं पाककर्ता पाचक शब्दका अर्थ होनेतैं पाचकशब्द यौगिक है. अवयवशक्तिकूं **योग** कहै हैं. शास्त्रका असाधारण संकेत **परिभाषा** कहिये है. परिभाषातैं अर्थका बोधक शब्द **पारिभाषिक शब्द** कहिये है. लक्षितशब्दके लक्ष और इत दो अवयव हैं, तिनमें लक्षशब्दका अर्थ **लक्षण** है, इतशब्दका अर्थ संबंधी है, यातैं लक्षणसंबंधी अर्थका बोधक लक्षितशब्द यौगिक है. यातैं लक्षणवाला लक्षितशब्दका अर्थ है; तैसें शक्य संबंधका नाम **लक्षणा** है: यह शास्त्रका संकेत है. यातैं लक्षणा शब्द परिभाषातैं शक्यसंबंध रूप अर्थ बोधक होनेतैं पारिभाषिक है. " लक्षिता चासौ लक्षणा लक्षितलक्षणा " यह **कर्मधारयसमास** है. लक्षणवाली लक्षणा यह अर्थ कर्मधारयसमासतैं सिद्ध होवै है. असाधारण धर्मकूं **लक्षण** कहै हैं, शक्यसंबंधकूं लक्षणा कहै हैं, यातैं लक्षणाका असाधारण धर्म शक्य संबंधत्व है; सोई ताका लक्षण है. यद्यपि शक्यका संबंध साक्षात् परंपराभेदतैं दोप्रकारका है और बहुत स्थानमें शक्यका **साक्षात्संबंधरूपलक्षणा** है. " द्विरेफो रौति, सिंहो देवदत्तः " इत्यादिकनमें शक्यका साक्षात्संबंध है नहीं, तथापि लक्षणाका असाधारणधर्म शक्यसंबंधत्व है. संबंधमें साक्षात्पना लक्षणाके लक्षणमें प्रविष्ट नहीं. जहां शक्यका परंपरा संबंध है, तहांभी शक्यसंबंधत्वरूप स्वलक्षणवाली लक्षणा है. " गंगायां ग्रामः " इत्यादिक उदाहरणमें यद्यपि शक्यका साक्षात्संबंधरूप लक्षणा है, तथापि संबंधका साक्षात्पना लक्षणाके लक्षणमें प्रविष्ट नहीं किंतु साक्षात्परंपरा साधारणसंबंधत्वरूपतैं लक्षणाके लक्षणमें संबंधमात्रप्रविष्ट है. इसीवास्ते " शक्यसंबन्धो लक्षणा " ऐसा कह्या है; "शक्यसाक्षात्संबन्धो लक्षणा " ऐसा नहीं कहै हैं. इस रीतिसैं लक्षिता कहिये

शक्यसंबंधत्वरूप स्वलक्षणवाली लक्षणा लक्षितलक्षणा शब्दका अर्थ है. सो परंपरासंबंधस्थलमें संभवै है. यद्यपि लक्षितलक्षणा शब्दका उक्त अर्थ साक्षात्संबंधस्थलमेंभी संभवै है तहांभी लक्षितलक्षणा कही चाहिये. तथापि "लक्षितालक्षणा लक्षितलक्षणा" या कहनेका यह अभिप्राय है:— शक्यसाक्षात्त्वविशिष्टसंबंधत्वरहिता केवलशक्यसंबंधत्वरूपलक्षणवती लक्षणा लक्षितलक्षणा; यातैं केवल लक्षणाका संग्रह होवै नहीं; इसरीतिसैं कर्मधारयसमास है.

४० शब्दकी तृतीयगौणवृत्तिका कथन.

और कितने ग्रंथोंमें यह लिखा है:— "सिंहोदेवदत्तः" इत्यादिवाक्यनमें सिंहादिशब्द गौणीवृत्तिसैं पुरुषादिकनके बोधक हैं. जैसै शक्ति और लक्षणा पदकी वृत्ति है तैसैं तीसरी गौणी वृत्ति है. पदके शक्य अर्थमें जो गुण होवे तिसवाले अशक्य अर्थमें पदकी गौणीवृत्ति कहिये है. जैसैं सिंहपदके शक्यमैं शूरतादिक गुण हैं: तिनवाला जो सिंहशब्दका अशक्य पुरुष तामें सिंहशब्दकी गौणीवृत्ति है, सो पूर्व प्रकारसै लक्षणाके अंतर्भूत है.

४१ चतुर्थव्यंजनावृत्तिका कथन.

और चौथी व्यंजनावृत्ति अलंकारग्रंथनमें लिखी है, ताका यह उदाहरण है:— शत्रुगृहमें भोजननिमित्त प्रवृत्त पुरुषकूं दूसरा प्रिय पुरुष कहै "विषं भुंक्ष्व" तहां 'विषका भोजन कर' यह शक्तिवृत्तिसैं वाक्यका अर्थ है; और भोजनके अभावमें वक्ताका तात्पर्य है. सो भोजनमें शक्तिवाले पदकी अभावमें संबंधके अभावतैं लक्षणाभी बनैं नहीं; यातैं शत्रुगृहतैं भोजनानिवृत्तिवाक्यका व्यंग्यअर्थ है. व्यंजनावृत्तिसैं जो अर्थ प्रतीत होवै सो व्यंग्य अर्थ कहिये है. अन्य उदाहरण:—संध्याकालमें अनेक पुरुषनकूं नानाकार्यमें प्रवृत्तिनिमित्त किसीने "सूर्योऽस्तं गतः" यह वाक्य उच्चारण किया; ताकूं सुनिके नाना पुरुष तिसकालमें अपने अपने कर्तव्यकूं जानिके प्रवृत्त होवै हैं; तहां अनेक पुरुषनकूं नाना कर्तव्यका बोध व्यंजनावृत्तिसैं होवै है. इस रीतिसैं व्यंजनावृत्तिके अनेक उदाहरण काव्यप्रकाश काव्यप्रदीप आदिक ग्रंथनमें मम्मटभट्ट गोविंदभट्ट आदिकोंने लिखे हैं; सो बहुत उदाहरण शृंगार

रसके हैं यातैं नहीं लिखे. न्यायग्रंथनमें व्यंजनावृत्तिकाभी लक्षणावृत्तिमें अंतर्भाव कह्या हैं. और जो अलंकारिक कहै हैः—शक्य संबंधी अर्थका तो लक्षणावृत्तिसैं बोध संभवै है, और शक्य अर्थके संबंधी अर्थमें लक्षणा संभवै नहीं. ताकी शब्दसैं प्रतीतिके अर्थ व्यंजनावृत्ति माननी चाहिये ? ताका यह समाधान हैः—साक्षात् और परंपराभेदतैं संबंध दो प्रकारका होवै है. तिनमें साक्षात् संबंध तो परस्पर किनोका ही होवै है, सर्वका होवै नहीं; और परंपरासंबंध तो सर्व पदार्थनका परस्पर संभवै है. बहुत क्या कहैंः—गोत्व अश्वत्वकाभी परस्पर व्यधिकरणता संबंध है. घटाभाव और घट परस्पर विरोधी हैं. तोभी घटाभावका घटमें प्रतियोगिता संबंध और घटका अपने अभावमें स्ववृत्तिप्रतियोगितानिरूपकता संबंध है, इसरीतिसैं सर्व पदार्थनका आपसमें परंपरासंबंध संभवै है. यातैं व्यंग्य अर्थभी शक्यसंबंधी होनेतैं लक्ष्यके अंतर्भूत है और व्यंजनावृत्तिका प्रतिपादन काव्यप्रकाशमें और ताकी टीकामें जयराम भट्टाचार्यादिकोंने लिखा है; तैसैं काव्यप्रदीपमें और ताकी टीका उद्योतनमें नागोजीभट्टने लिखा है, ताका खंडनभी न्यायग्रंथनमें लिखा है. और व्याकरण ग्रंथनमें कहूं खंडन लिखा है, कहूं प्रतिपादन लिखा है. अद्वैतसिद्धांतमें खंडनका वा प्रतिपादनका आग्रह नहीं, यातैं प्रतिपादनकी रीतिमात्र जनाई है.

४२ लक्षणाके भेदका कथन.

शक्ति और लक्षणा दो वृत्ति सर्वके मतमें हैं और महावाक्यके अर्थनिरूपणमें भी दोकाही उपयोग है. तिनमें शक्तिका निरूपण किया, और शक्यके साक्षात्संबंध और परंपरासंबंधके भेदतैं केवल लक्षणा और लक्षित लक्षणारूप दो भेद लक्षणाके कहे. जहत् लक्षणा, अजहत् लक्षणा, भागत्याग लक्षणा इन भेदनतैं फेरि तीनि प्रकारकी लक्षणा है.

जहां शक्यकी प्रतीति नहीं होवै केवल शक्य संबंधी प्रतीति होवै तहां जहल्लक्षणा होवै है. जैसैं " विषं भुंक्ष्व " या स्थानमें शक्य जो विषभोजन ताकूं त्यागिके शक्यसंबंधी भोजननिवृत्तिकी प्रतीति होनेतैं जहल्लक्षणा है. यद्यपि जहां शक्य अर्थका संबंध नहीं संभवै तहां जहल्लक्षणाका अंगीकार

होवै है. जैसैं "गंगायां ग्रामः" या स्थानमें पदनके शक्य अर्थनका परस्पर संबंध संभवै नहीं. और "विषं भुंक्ष्व" या स्थानमें शक्य अर्थका अन्वय संभवै है: मरणका हेतुभी विष है तोभी भोजनमें विषका अन्वय संभवै है; तथापि अन्वयानुपपत्ति लक्षणामें बीज नहीं; किंतु तात्पर्यानुपपत्ति लक्षणामें बीज है. यह ग्रंथनमें है, ताका भाव है:–अन्वय कहिये शक्य अर्थका संबंधताकी अनुपपत्ति कहिये असंभव जहां होवै तहां लक्षणा होवै है यह नियम नहीं. जो यही नियम होवै तो "यष्टीः प्रवेशय" या वाक्यमें यष्टिपदकी यष्टिधरमें लक्षणा नहीं होवैगी. काहेतैं? यष्टिपदके शक्यका प्रवेशमें अन्वय संभवै है, यातैं तात्पर्यानुपपत्ति लक्षणामें बीज है; अन्वयानुपपत्ति नहीं. तात्पर्य कहिये वाक्यकर्ताकी इच्छा ताकी अनुपपत्ति कहिये शक्यअर्थमें असंभवलक्षणा माननेका बीज कहिये हेतु है. "यष्टीः प्रवेशय" या वाक्यमें तात्पर्यानुपपत्ति है; काहेतैं? यष्टिका प्रवेश जो शक्य अर्थ तामें वक्ताका तात्पर्य भोजनके समय संभवै नहीं, यातैं यष्टिपदकी यष्टिधर पुरुषनमें लक्षणा है, तैसैं मरण हेतु विषभोजनमें पिताका तात्पर्य संभवै नहीं; यातैं भोजननिवृत्तिमें जहत्लक्षणा है "गंगायां ग्रामः" या स्थानमें तात्पर्यानुपपत्तिभी संभवै है, यातैं जहां तात्पर्यानुपपत्ति होवै तहां लक्षणा मानिये है, यह नियम है. "गंगायां ग्रामः" या स्थानमेंभी गंगापदका शक्य जो देवनदी प्रवाह ताकूं त्यागिके शक्यसंबंधी तीरकी प्रतीति होवै है, यातैं जहत् लक्षणा है.

जहां सामान्य तीरबोधमें वक्ताका तात्पर्य नहीं है; किंतु गंगातीरके बोधमें वक्ताका तात्पर्य है तहां गंगापदकी गंगापदतीरमें अजहल्लक्षणा है. और अजहल्लक्षणाके असाधारण उदाहरण तो "काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्" इत्यादिक है. सहित शक्यसंबंधीकी जहां प्रतीति होवै तहां अजहल्लक्षणा होवै है. भोजनवास्ते दधिरक्षामें वक्ताका तात्पर्य है, सो बिडालादिकनसैं दधिरक्षण विना संभवै नहीं; यातैं काकपदकी दधिउपघातकमें अजहत्लक्षणा है. इसरीतिसैं "छत्रिणो यांति" यास्थानमें छत्रिपदकी छत्रिसंयुक्त एक सार्थमें अजहल्लक्षणा है. न्यायमतमें नीलादिकपदनकी गुणमात्रमें शक्ति है. "नीलो घटः"

इत्यादिक वाक्यनमें नीलरूपवालेके बोधक नीलादिकपद लक्षणातैं हैं. तहां शक्यसहित संबंधीकी प्रतीति होवै है, यातैं अजहल्लक्षणा है और कोशकारके मतमें नीलादिकपदनकी गुण और गुणीमें शक्ति है, लक्षणा नहीं. वेदांतपरिभाषाग्रंथमें नीलादिकपदनकी गुणीमें अजहत्‌लक्षणा कही सो न्यायका मत है.

और शक्य अर्थके एकदेशकूं त्यागिके एकदेशके बोधमें वक्ताका तात्पर्य होवै, तहां भागत्यागलक्षणा होवै है. जैसैं "सोऽयं देवदत्तः" या स्थानमें भागत्यागलक्षणा है.इहां परोक्षवस्तु तत्पदका अर्थ है और अपरोक्षवस्तु इदंपदका अर्थ है. दकारादि वर्णविशिष्ट नामवाला पुरुषशरीर देवदत्तपदका अर्थ है, तत्पदार्थका इदंपदार्थसैं अभेद तत्पदोत्तर विभक्तिका अर्थ है, इदंपदार्थका देवदत्तपदार्थसैं अभेद इदंपदोत्तरविभक्तिका अर्थ है, अथवा तत्पद और इदंपदसैं उत्तर विभक्ति निरर्थक है. समानविभक्तिवाले पदनके सन्निधानतैं पदार्थनका अभेद प्रतीत होवै है, यातैं परोक्षवस्तुसैं अभिन्न अपरोक्ष वस्तु स्वरूप देवदत्तनामवाला शरीर है. यह वाक्यके पदनका शक्य अर्थ है. सो उष्ण शीतल है, याकी नाई बाधित है. बाधित अर्थमें वक्ताका तात्पर्य संभवै नहीं. यातैं तत्पद इदंपदके शक्यमें परोक्षता अपरोक्षता भागकूं त्यागिके वस्तुभागमें लक्षणा होनेतैं भागलक्षणा है.

इसरीतिसैं तीनि भांतिकी लक्षणा प्रयोजनवती लक्षणा और निरूढलक्षणा भेदतैं दोप्रकारकी है:—जहां शक्तिवाले पदकूं त्यागिके लाक्षणिक शब्दप्रयोगमें प्रयोजन कहिये फल होवै सो प्रयोजनवतीलक्षणा कहिये है. जैसैं गंगापदकी तीरमें प्रयोजनवती लक्षणा है. "तीरे ग्रामः" ऐसा कहै तो तीरमें शीतपावनतादिकनकी प्रतीति होवे नहीं, गंगापदसैं तीरका बोध न करे गंगाके धर्म शीतपावनतादिक तीरमें प्रतीति होवैं है; इसी वास्ते व्यंजनावृत्तिकूं आलंकारिक मानै हैं. न्यायमतमें शीतपावनतादिक शब्दबोधके विषय नहीं, किंतु अनुमितिके विषय हैं. "तथाहि। गंगातीरं शीतपावनत्वादिमत्। गंगापदबोध्यत्वात् गंगावत्" यह अनुमान है. सर्वथा प्रयोजनवती लक्षणा है.

और पदकी जिस अर्थमें शक्तिवृत्ति होवै नहीं और शक्यकी नाईं जिस अर्थकी प्रतीति जिस पदसैं सबकूं प्रसिद्ध होवै तिस अर्थमें तापदकी प्रयोजन-शून्यलक्षणा निरूढलक्षणा कहिये हैं. जैसैं नीलादिक पदनकी कोशरीतिसैं गुणगुणीमें शक्ति मानैं तो गौरवदोष है. और शक्यतावच्छेदक एक एक धर्मका लाभ होवै नहीं यातैं गुणमात्रमें शक्ति है और "नीलो घटः" इत्यादिक वाक्यनकूं सुनतेही सर्व पुरुषनकूं गुणीकी प्रतीति अतिप्रसिद्ध है; यातैं नीलादिक पदनकी गुणीमें प्रयोजनशून्यलक्षणा होनेतैं निरूढलक्षणा है. निरूढलक्षणा शक्तिके सदृश होवै है. कोई विलक्षण अनादि तात्पर्य होवै तहां निरूढलक्षणा होवै है.

और जहां प्रयोजन और अनादि तात्पर्य दोनों होवैं नहीं; किंतु ग्रंथकार अपनी इच्छातैं लाक्षणिक शब्दका प्रयोग विना प्रयोजन करे है; तहां तीसरी ऐच्छिकलक्षणा होवै है; परंतु अनादि तात्पर्य और प्रयोजन विना लाक्षणिक शब्दके प्रयोगकूं विद्वान् समीचीन नहीं कहै हैं; इसी कारणतैं काव्यप्रकाशादिक साहित्य ग्रंथनमें निरूढलक्षणा और प्रयोजनवती लक्षणाके भेद उदाहरणसहित लिखे हैं. ऐच्छिक लक्षणा लिखी नहीं. गदाधरभट्टाचार्यादिकोंने ऐच्छिक लक्षणा लिखी है. तिनका तात्पर्य ऐच्छिक लक्षणाकी संभावनामें है, और " ऐच्छिकलक्षणावाले पदका प्रयोग साधु है " इस अर्थमें तात्पर्य नहीं. लक्षणाके अवांतर भेद मम्मट आदिकोंने और बहुत लिखे हैं. तथापि वेदांतग्रंथनमें कहूं लिखे नहीं, यातैं जिज्ञासूकूं तिनके लिखनेका उपयोग नहीं.

४२ शाब्दबोधकी हेतुताका विचार.

जैसैं शक्यतावच्छेदकमें शक्ति है तैसैं लक्ष्यतावच्छेदक तीरत्वादिकनमें गंगादिकपदनकी लक्षणा नहीं; किंतु व्यक्तिमात्रमें लक्षणावृत्ति होवै है, और पदकी वृत्ति विना लक्ष्यतावच्छेदककी स्मृति और शाब्दबोध होवै है. यह वार्ता शब्दार्थनिर्णयके ग्रंथनमें प्रतिपादन करी है. और मीमांसाके मतमें लाक्षणिकशब्दसैं लक्ष्य अर्थकी स्मृति तो होवै है और लक्ष्य अर्थके शाब्दबोधका हेतु लाक्षणिकपद नहीं, किंतु लाक्षणिकपदके

समीप जो पदोत्तर सो अपने शक्य अर्थके शाब्दबोधका और लक्ष्य अर्थके शाब्दबोधका हेतु होवै है. जैसै "गंगायां ग्रामः" यावाक्यमें गंगापद तीरमें लाक्षणिक है: सो तीरकी स्मृतिका हेतु है. और तीर विषे शाब्दबोधका हेतु नहीं. किंतु तीर विषे शाब्दबोधका हेतु और अपने शक्यविषे शाब्द बोधका हेतु "ग्राम" पद है, या मतकी साधक यह युक्ति है:— लाक्षणिक शब्दकूं शाब्दबोधकी जनकता मानै तो सकल शाब्दबोधकी जनकताका अवच्छेदक धर्मका लाभ नहीं होगा. काहेतैं ? मीमांसाके मतमें तो शाब्द बोधकी जनकता लाक्षणिक पदमें है नहीं; किंतु शक्तपदमें है. यातैं शाब्दबोधकी जनकताका अवच्छेदक शक्ति है और लाक्षणिक पदकूंभी शाब्दबोधकी जनकता मानैं तो ता जनकतासैं शक्ति न्यूनवृत्ति होनेतैं ताका अवच्छेदक नहीं होवेगा. जो न्यूनदेशवृत्ति और अधिक देशवृत्ति न होवे किंतु जाके समान देशवृत्ति जो होवै ताका अवच्छेदक सो होवै है. शाब्दबोधकी जनकता सकल शक्तपदमें रहै है, ताके समानदेशमें शक्ति रहै है, यातैं शाब्दबोधकी जनकताका अवच्छेदक शक्ति संभवैहै. लाक्षणिक पदमेंभी शाब्दबोधकी जनकता मानैं तो लाक्षणिकपदमें शक्ति है नहीं, शाब्दबोधकी जनकता है; यातैं न्यूनदेशवृत्ति होनेतैं शाब्दबोधकी जनकताका अवच्छेदक शक्ति तो संभवै नहीं और शक्त लाक्षणिक सारे पदनमें रहनेवाला एक धर्म है नहीं; यातैं शाब्दबोधकी जनकता निरवच्छेदक होवैगी, सो निरवच्छेदक जनकता अलीक है. दंडकुलालादिकनमें घटादिनकी जनकताके अवच्छेदक दंडत्व कुलालत्वादिक हैं; यातैं निरवच्छेदक जनकता अप्रसिद्ध है. इस रीतिसैं लाक्षणिकपदकूं शाब्दबोधकी जनकता नहीं. यह मीमांसाका मत है. और अद्वैतवादका अतिविरोधी है. काहेतैं? महावाक्यनमें सकलपद लाक्षणिक हैं. तिनतैं शाब्दबोधकी अनुपपत्ति होवैगी. यातैं इस मतका खंडन अवश्य कर्तव्य है; तामें यह दोष है:—"गंगायां ग्रामः" या वाक्यमें ग्रामपदसें तीरविषे शाब्दबोध मानै तो ग्रामपदकी तीरमें भी शक्ति हुई चाहिये. काहेतैं ? जो पद लक्षणा विना जिस अर्थ विषे शाब्दबोधका

जनक होवै तिसपदकी ता अर्थविषे शक्ति है, यह नियम है. मीमांसक मतमें ग्रामपद लक्षणा विना तीरविषे शाब्दबोधका जनक होनेतैं तीरमें शक्ति हुई चाहिये; और यह नियम हैः—जापदमें जिस अर्थकी वृत्ति होवैं तापदसैं तिस अर्थ विषे स्मृति होवै है. और तिस अर्थविषे ही ता पदसैं शाब्दबोध होवै है. मीमांसकमतमें या नियमका भंग होवैगा. काहेतैं ? मीमांसक मतमें लक्षणावृत्ति तो तीरमें गंगापदकी और तीरकी स्मृतिभी गंगापदसैं और तीरविषे शाब्दबोध गंगापदसैं नहीं; किंतु शाब्दबोध तीरका ग्रामपदसैं होवै है? ता ग्रामपदकी तीरमें शक्ति वा लक्षणावृत्ति नहीं और ग्रामपदसैं तीरकी स्मृति भी नहीं; यातैं यह मत बुद्धिमानोंकूं हसने योग्य है. और ग्रामपदतैं तीरका शाब्दबोध मानैं तो ग्रामविषे शाब्दबोध नहीं होवैगा. काहेतैं ? जहां हरिआदिक एकपदकी अनेक अर्थनमें शक्ति है तहांभी एककालमें एक पुरुषकूं हरिपदसैं एकही अर्थका बोध होवै है. जो अनेक पदार्थनका एक पदसैं बोध होवै है तौ हरि या कहनेतैं वानरके उपरि सूर्य है इस रीतिसैं शाब्दबोधका हुआ चाहिये. जैसैं एक ग्रामपदतैं परस्पर संबधी ग्रामतीरका शाब्दबोध होवै है तैसैं एक हरिपदतैं परस्परसंबधी वानर सूर्यका शाब्दबोध हुआ चाहिये. जो ऐसैं कहैंः— एकपदतैं दो शक्यका शाब्दबोध होवै नहीं ता एक पदतैं अपने शक्यके साथ अपने अशक्य अलक्ष्यके संबंधका तो शाब्दबोध अत्यंत दूर है. यातैं "लाक्षणिकं नानुभावके" यह मीमांसाका वचन असंगत है. और जो लाक्षणिक शब्दकूं शाब्दानुभवकी जनकतामें दोष कह्या कि शाब्दबोधकी जनकताका अवच्छेदक नहीं मिलेगा. ताका यह समाधान हैः—शब्दमें शक्ति और लक्षणाके भेदतैं दो प्रकारकी वृत्ति है. कहूं अर्थकी शक्तिवृत्ति है; कहूं अर्थकी लक्षणावृत्ति है. शाब्दबोधकी जनकता शब्दमात्रमें है और वृत्तिभी शब्दमात्रमें है: यातैं तिस जनकताके समान देशमें रहनेतैं ताका अवच्छेदक वृत्ति है, अथवा शाब्दबोधकी जनकताका अवच्छेदक योग्य शब्दत्व है; इस रीतिसैं लाक्षणिक पदसैं भी शाब्दबोध होवै है.

४४ महावाक्यमें लक्षणाका उपयोग और तामें शंकासमाधान.

महावाक्यनमें जहत्लक्षणा और अजहत्लक्षणा नहीं; किंतु भागत्याग लक्षणा है. ताकी रीति विचारसागरमें लिखी है. सो भागत्यागलक्षणा महावाक्यनमें लक्षितलक्षणा नहीं; किंतु केवल लक्षणा है. काहेतैं ? लक्ष्य चेतनतैं वाच्यका साक्षात् संबंध है, परंपरा नहीं. जहां भागत्यागलक्षणा होवै तहां वाच्यका एकदेश लक्ष्य होवै है, तावाच्यके एकदेशतैं वाच्यका साक्षात् संबंध होवै है; यातैं केवल लक्षणा होवै है और महावाक्यतैं जिज्ञासूकूं अखंड ब्रह्मका बोध होवै ऐसा ईश्वरका अनादि तात्पर्य है; यातैं निरूढ लक्षणा है, प्रयोजनवती नहीं. इहां ऐसी शंका होवै है:—वाक्यअर्थका लक्ष्य चेतनसैं संबंध मानैं तो लक्ष्य अर्थमें असंगताकी हानि होवैगी, संबंध नहीं माने तो लक्षणा बनै नहीं. काहेतैं ? शक्य संबंध अथवा बोध्य संबंधकूं लक्षणा कहै हैं, सो असंगमें संभवै नहीं ? ताका यह समाधान है:—वाच्य अर्थमें चेतन और जड दो भाग हैं. ताका चेतन भागका लक्ष्य अर्थमें तादात्म्यसंबंध है. सकल पदार्थनका स्वरूपमें तादात्म्यसंबंध होवै है. वाच्य भाग चेतनका स्वरूपही लक्ष्य चेतन है; यातैं वाच्यमें चेतन भागका लक्ष्य चेतनमें तादात्म्यसंबंध है, और वाच्यमें जड भागका लक्ष्यचेतनसैं अधिष्ठानता संबंध है. कल्पितके संबंधतैं अधिष्ठानका स्वभाव बिगरे नहीं, और अपने तादात्म्यसंबंधसैं भी स्वभावकी हानि होवै नहीं; यातैं लक्ष्य अर्थकी असंगता बिगरे नहीं. अन्यशंका:—तत्पदकी अखंडचेतनमें लक्षणा मानै और त्वंपदकीभी अखंड चेतनमें लक्षणा मानै तो पुनरुक्ति दोष होनेतैं "घटो घटः" इस वाक्यकी नाईं अप्रमाण वाक्य होवैगा. दोनों पदनका लक्ष्य अर्थ जुदा मानै तो अभेदबोधकता नहीं होवेगी ? ताका यह समाधान है:—मायाविशिष्ट और अंतःकरणविशिष्ट तो तत्पद और त्वंपदका शक्य है, उपहित लक्ष्य है, जो ब्रह्मचेतन दोनों पदनका लक्ष्य होवै तो पुनरुक्ति दोष होवै सो ब्रह्मचेतन लक्ष्य नहीं; किंतु मायाउपहित लक्ष्य होवै तो पुनरुक्ति दोष होवै सो उपाधिके भेदतैं भिन्न है, पुनरुक्ति नहीं. और उपहित दोनों परमार्थसैं अभिन्न हैं यातैं अभेद-

बोधकता वाक्यकूं संभवै है. इसरीतिसैं तत्पदार्थ और त्वंपदार्थका उद्देश विधेय भाव मानिके अभेद बोधकता निर्दोष है. तत्पदार्थमें परोक्षता भ्रम निवृत्तिके अर्थ तत्पदार्थकूं उद्देश करिके त्वंपदार्थता विधेय है. त्वंपदार्थमें परिच्छिन्नता भ्रमनिवृत्तिके अर्थ त्वंपदार्थकूं उद्देश करिके तत्पदार्थता विधेय है. और पुनरुक्तिके परिहारवास्ते कोई ग्रंथकारका यह तात्पर्य है:——जो दोपदनकूं भिन्न २ लक्षकता मानैं तो पुनरुक्तिकी शंका होवै सो भिन्न भिन्न लक्षकता नहीं; किंतु मीमांसक रीतिसैं दोनों पद मिलिके अखंड ब्रह्मके लक्षक हैं; इसीवास्ते प्राचीन आचार्योंने महावाक्यनकूं प्रातिपदिकार्थमात्रकी बोधकता कही है. यद्यपि उद्देशविधेयभावशून्य अर्थका बोधक वाक्य लोकमें अप्रसिद्ध है, तथापि अलौकिक अर्थ महावाक्यनका है; यातैं अप्रसिद्धि दोष नहीं किंतु भूषण है, जो अप्रसिद्ध दोष होवै तो असंगी अर्थकी बोधकताभी वाक्यकूं लोकमें अप्रसिद्ध है; यातैं असंगी ब्रह्मकी बोधकताभी महावाक्यनकूं नहीं होवैगी. जैसैं लोकमें अप्रसिद्ध असंगी ब्रह्मकी बोधकता मानी है; तैसैं उद्देश विधेयभाव शून्य अखंड अर्थकी बोधकता संभवै है; इसरीतिसैं लक्षणाके प्रसंगमें बहुत विचार प्राचीन आचार्योंने लिखा है.

४५ लक्षणा विना शक्तिवृत्तिसैं महावाक्यनकूं अद्वैतब्रह्मकी बोधकता।

कोई आधुनिक ग्रन्थकार लक्षणा विना शक्तिवृत्तिसैंही महावाक्यनकूं अद्वितीय ब्रह्मकी बोधकता मानैहैं. तिन्होंने यह प्रकार लिखा है:—विशिष्टवाचक पदके अर्थका अन्यपदके विशिष्ट अर्थसैं जहां संबंध नहीं संभवै तहां पदकी शक्तिसैंही विशेषणकूं त्यागिके विशेष्यकी प्रतीति होवै है. जैसै "अनित्यो घटः" या वाक्यमें घटत्वविशिष्ट व्यक्तिका वाचक घटपद है, ताका अनित्यत्व विशिष्ट अनित्यपदार्थसैं अभेदसंबंध बोधन करिये है, और घटत्वजाति नित्य है, यातैं घटत्वविशिष्टका अनित्यपदार्थसैं अभेद बाधित होनेतैं ताका अनित्यपदार्थसैं अभेदसंबंध संभवै नहीं, तहां घटत्वरूप विशेषणकूं त्यागिके व्यक्तिमात्रकी घटपदसैं स्मृति और अनित्यपदार्थसैं संबंध बोधरूप शाब्द-

बोध होवै है. तैसें "गेहे घटः" यावाक्यमें, घटत्वरूप विशेषणकूं त्यागिके विशेष्य व्यक्तिमात्रकी घटपदसैं स्मृति और शाब्दबोध होवैहै; तैसें "घटे रूपम्" या वाक्यमेंभी घटत्वकूं त्यागिके व्यक्तिमात्रकी प्रतीति होवै है. काहेतैं? "गेहे घटः" या वाक्यतैं गेहकी आधेयता घटपदार्थमें प्रतीत होवै है, और घटत्व जातिमें अपना आश्रय व्यक्तिकी आधेयता होवैहै; गेहकी आधेयता बाधित है, यातैं घटत्वकूं त्यागिके व्यक्तिमात्रमें गेहकी आधेयता संबंध बोधन करिये है, तैसें गेह पदार्थमें गेहत्वका त्याग होवै है. "घटे रूपम्" या वाक्यमें भी घटत्वकूं त्यागिके द्रव्यरूप व्यक्तिमात्रमें अधिकरणता और रूपत्वकूं त्यागिके गुणमात्रमें आधेयता प्रतीत होवै है. काहेतैं? घटपदार्थकी आधेयतावाला रूप पदार्थ है यह वाक्यका अर्थ है. तहां घटत्वकी आधेयता किसीमें है नहीं यातैं घटत्वकूं त्यागिके व्यक्तिमात्र घटपदका अर्थ है. ताकी आधेयता रूपत्वजातिमें नहीं; किंतु रूपव्यक्तिकी आधेयता रूपत्वमें है. यातैं रूपपदार्थमें रूपत्वका त्याग है. तैसें "उत्पन्नो घटः, नष्टो घटः" इत्यादिक वाक्यनमें जातिरूप विशेषणकूं त्यागिके व्यक्तिमात्र घटादिक पदनका अर्थ हैं; काहेतैं? जाति नित्य है ताके उत्पत्ति नाश बनै नहीं. जैसें पूर्व वाक्यनमें विशिष्टवाचक पदनमें शक्तिबलतैंही विशेष्यमात्रका बोध होवै है, तैसें महावाक्यनमेंभी विशिष्टवाचक पदनकी शक्तिबलतैं ही माया अंतःकरणरूप विशेषणकूं त्यागिके चेतनरूप विशेष्यमात्रकी प्रतीति संभवै है. लक्षणाका अंगीकार निष्फल है, परंतु इतना भेद है:— विशिष्टवाचक पदके वाच्यका एकदेश विशेष्य होवै है और एकदेश विशेषण होवै है. जाति विशेषण होवैहै और व्यक्ति विशेष्य होवै हैं. तिनमें विशेष्य भागका बोध तो शक्तिसैं होवै है और केवल विशेषणका बोध होवै नहीं. जो वाच्यके विशेषणमात्रकाभी विशिष्टवाचकके शब्दकी शक्तिसैं बोध होवै तो "अनित्यो घटः" या वाक्यकी नाईं "नित्यो घटः" यह वाक्यभी घटपदसैं जातिमात्रका बोध करिके साधु हुआ चाहिये; यातैं विशिष्टवाचक पदकी शक्तिसैं विशेष्य मात्रकी प्रतीति होवै है. "सोऽयं देवदत्तः" या वाक्यमें भी परोक्षत्व अपरोक्षत्व विशेषणकूं त्यागिके विशेष्य मात्रकी प्रतीति शक्ति वृत्तिसैं ही होवै

है. भागत्याग लक्षणाका कोई उदाहरण है नहीं; यातैं जहती लक्षणा अजहती लक्षणा भेदतैं दोप्रकारकी लक्षणा माननी चाहिये. भागत्यागलक्षणा अलीक है. और वेदांतपरिभाषामें धर्मराजने पूर्वप्रकारसैं महावाक्यनमें लक्षणाका खंडन करिके भागत्यागलक्षणाका स्वरूप और उदाहरण इस रीतिसैं कहे हैं:— सांप्रदायिक रीतिसैं वाच्यके एकदेशमें वृत्ति भागलक्षणाका स्वरूप है; या मतमें वाच्यके एकदेशमें वृत्ति शक्तिकाही स्वरूप है. सो भागलक्षणाका स्वरूप नहीं; किंतु शक्य और अशक्यमें जो वृत्ति सो भागत्यागलक्षणा कहिये हैं. यद्यपि अजहल्लक्षणाभी शक्य अशक्यमें वृत्ति है, तथापि जहां शक्य अर्थका विशेषणतासे बोध और अशक्यका विशेष्यतासैं बोध होवै, तहां अजहल्लक्षणा कहिये है. जैसे "नीलो घटः" या वाक्यमें नीलपदका शक्य रूप है, ताका विशेषणतासे बोध होवै है; और नीलरूपका आश्रय द्रव्य अशक्य है, ताका विशैष्यतासे बोध होवै है. यातैं नीलपदकी नीलरूपके आश्रयमें अजहत् लक्षणा है; ऐसैं "मंचाः क्रोशंति" या वाक्यमें मंचपदका शक्य विशेषण है, अशक्य पुरुष विशेष्य हैं; यातैं अजहत् लक्षणा है. और जहां शक्य अशक्य दोनों विशेष्य होवें और शक्यतावच्छेदकसैं व्यापक लक्ष्यतावच्छेदक धर्म विशेषण होवै तहां भागत्यागलक्षणा कहिये है. जैसैं "काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्" या वाक्यमें काकपदका शक्य वायस और अशक्य बिडालादिक विशेष्य हैं; और शक्यतावच्छेदक काकत्वका व्यापक दध्युपघातकत्व लक्ष्यतावच्छेदकत्व विशेषण है. काहेतैं ? दधिके उपघातक काकबिडालादिकनतैं दधिकी रक्षा कर यह वाक्यका अर्थ है. तहां काकत्वविशिष्ट व्यक्ति काकपदका शक्य है. तामें काकत्वका त्याग करिके दध्युपघातकत्व विशिष्ट काकाबिडालादिकनका लक्षणासैं बोध होनेतैं काकपदके वाच्यके एक भाग काकत्वका त्याग होवै है, व्यक्तिभागका बोध होवै है, तैसै बिडालत्वादिकनको त्याग व्यक्तिका बोध होवै है; यातैं भागत्यागलक्षणा है. तैसैं " छत्रिणो यांति " या वाक्य भी भाग त्यागलक्षणा है. काहेतैं? छत्रसहित और छत्ररहित एकसाथवाले पुरुष जावै हैं. यह वाक्यका अर्थ है. तहां छत्रिपदका शक्य छत्रसहित अशक्य

छत्ररहित दोनों विशेष्य हैं. और शक्यतावच्छेदक छत्रिताका व्यापक एक सार्थवाहिता लक्ष्यतावच्छेदक विशेषण है, या स्थानमें भी छत्रके संबंधविशिष्ट जो छत्रीपदका शक्य तामें छत्रसंबंधरूप शक्यतावच्छेदककूं त्यागिके एक सार्थवाहित्व विशिष्ट छत्री तदन्यका लक्षणासै बोध होनेतैं वाच्यके एक भाग छत्रसंबंधकूं त्याग करिके एक भाग पुरुषका बोध होवै है. यातैं **भागत्यागलक्षणा** है. इसरीतिसैं वेदांतपरिभाषामें भागत्यागलक्षणाके उदाहरण कहै हैं सो सांप्रदायिक मतमें सारै अजहत्लक्षणाके उदाहरण हैं. कहूं अजहत्लक्षणाके उदाहरणमें शक्य अर्थ विशेषण है, कहूं विशेष्य है; शक्यसहित अशक्यकी प्रतीति समान है. किंचित् भेदकूं देखके लक्षणाका भेद मानना निष्फल है. सर्व आचार्योंने अजहत् लक्षणाके जो उदाहरण कहे तिनकूं भागत्याग लक्षणाके उदाहरण कहनेका आचार्योंके वचनतैं विरोधही फल है और शक्य अर्थकी विशेषणता और विशेष्यतामें अजहत् लक्षणा और भागत्याग लक्षणाका भेद मानैं तो जहां शक्य अर्थकी विशेषणता तहां **भागत्यागलक्षणा** और जहां शक्य अशक्य दोनोंकी विशेष्यता तहां **अजहत्लक्षणा** इसरीतिसैं विपरीत माने तो कोई बाधक नहीं, यातैं महावाक्यनसें " सोऽयं देवदत्तः" या वाक्यमें लक्षणाका निषेध करिके भागत्यागलक्षणाका स्वरूप और उदाहरण कथन धर्मराजका निष्फल है; और महावाक्यनमें लक्षणा विना जो निर्वाह कह्या सोभी असंगत है. काहेतैं ? घटादिकपदनकी जातिविशिष्टमें शक्ति मानिके लक्षणा विना केवल व्यक्तिका पदतैं बोधकथन निर्युक्तिक है. केवल व्यक्तिमें शक्ति मानैं और जातिविशिष्ट व्यक्तिमें नहीं मानै तो केवल व्यक्तिका बोध घटादिक पदनतैं संभवै है, सो माना नहीं; किंतु विशिष्टवाचक पदकी शक्तिसैं विशेष्यमात्रका बोध होवै है. यह धर्मराजने लिखा है. सो **शक्तिवादादिक** ग्रंथनमें निपुणमति पंडितकूं आश्चर्यका जनक है. शक्तिवादमें यह प्रसंग स्पष्ट है; कोई शब्द एक धर्मविशिष्ट धर्मीका वाचक है, कोई शब्द अनेक धर्मविशिष्ट धर्मीका वाचक है, कोई शब्द अनेक धर्मविशिष्ट अनेक धर्मीका वाचक है. जिसपदकी जा अर्थमें शक्ति है

सो पद ता अर्थका वाचक कहिये है. जैसैं घटपदकी घटत्वरूप एक धर्मविशिष्ट धर्मीमें और गोपदकी गोत्वरूप एक धर्मविशिष्ट धर्मीमें शक्ति है, सो तिनके वाचक हैं. और धेनुपदकी प्रसव और गोत्वरूप अनेक धर्मविशिष्ट एक धर्मीमें शक्ति है, सो ताका वाचक है. पुष्पवंतपदकी चंद्रसूर्यत्वरूप अनेक धर्मविशिष्ट अनेक धर्मी चंद्रसूर्यमें शक्ति है; सो पुष्पवंतपद चंद्र सूर्य दोनोंका वाचक है. जिस धर्मविशिष्टमें शक्ति है ता धर्मकूं त्यागिके केवल आश्रयका बोध लक्षणातैं होवै है; लक्षणा विना होवै नहीं. यातैं घटादिक पदनतैं केवल व्यक्तिका बोध लक्षणातैं होवै है; और अनेक धर्मविशिष्ट धर्मीका वाचक जो धेनुपद है तासैं एक धर्मकूं त्यागिके एक धर्मविशिष्ट धर्मीका बोध लक्षणा विना होवै नहीं; यातैं धेनुपदतैं अप्रसूत गोका वा प्रसूत महिषीका शक्तिसैं बोध होवै नहीं. और कहूं गोमात्रका बोध धेनुपदसैं होवै है सो भागत्यागलक्षणातैं होवै है, शक्तिसैं नहीं. तैसैं पुष्पवंतपदसैं चंद्रकूं त्यागिके सूर्यका और सूर्यकूं त्यागिके चंद्रका बोध शक्तिसैं होवै नहीं, इसरीतिसैं शक्तिवादमें लिखा है, सोई संभवै है. शक्ति तो विशिष्टमें और शक्तिसैं बोध विशेष्यका यह कथन सर्वथा निर्युक्तिक है. जिस धर्मवाले अर्थमें पदकी शक्ति होवै उसतैं न्यून वा अधिक अर्थ लक्षणातैं प्रतीत होवै है. शक्तिसैं उस धर्मवाले अर्थकीही प्रतीति होवै है; यह नियम है. जो ऐसे कहै व्यक्तिमात्रमें शक्ति है, विशिष्टमें नहीं. यह धर्मराजका अभिप्राय है, सो बनै नहीं:—काहेतैं? विशिष्टवाचक पदकी शक्तिसैं विशेष्यका बोध होवै है यह धर्मराजने कहा है, जो व्यक्तिमात्रमें शक्ति वांछित होती तो व्यक्तिमात्रमें पदकी शक्तिसैं ताका बोध होवै है ऐसा कहते, विशिष्टवाचक पद नहीं कहते. और व्यक्तिमात्रमें शक्ति किसीके मतमें है नहीं, सर्वमतमें विरुद्ध है. यद्यपि शिरोमणि भट्टाचार्यनें व्यक्तिमात्रमें शक्ति मानी है तथापि पदसैं अर्थकी स्मृति और शब्दबोध जातिविशिष्टका ताके मतमें होवै है. व्यक्तिमात्रका शाब्दबोध शक्तिसैं किसीके मतमें होवै नहीं. और जो ऐसे कहै घटादिक पदनकी जातिविशिष्टमें शक्ति है और केवल व्यक्तिमें शक्ति है. कहूं जातिविशिष्टका

बोध होवै है, कहूं केवल व्यक्तिका बोध होवै है. जैसैं हरिपद नानार्थ है तैसैं सकल पद नानार्थ हैं; यह अर्थ अत्यंत अशुद्ध है, और ताके ग्रंथनमें यह अर्थ है नहीं. अशुद्धतामें यह हेतु है:—लक्षणातैं जहां निर्वाह होवै तहां नाना अर्थमें शक्तिकूं त्यागै हैं, एक अर्थमें शक्ति और दूसरेमें लक्षणा मानै हैं. धर्मराजने ही लिखा है:—नीलादिक शब्दनकी गुणमें शक्ति है और गुणीमें लक्षणा है. दोनोंमें शक्ति नहीं कही. यातैं लक्षणाके भयतैं नानार्थताका अंगीकार नहीं, किंतु नानार्थताके भयतैं लक्षणाका अंगीकार है; यातैं विशिष्टमें शक्ति है और व्यक्तिमात्रमैं शक्ति है इस अशुद्ध अर्थमें धर्मराजका तात्पर्य नहीं; किंतु विशिष्टमें सकल पदनकी शक्ति है. ता विशिष्टमें शक्तिके माहात्म्यतैं कहूं विशिष्टका अन्यपदार्थसैं अन्वय होवै है, कहूं विशेष्यका अन्यपदार्थसैं अन्वय होवै है. जहां विशिष्टमें अन्वयकी योग्यता होवै तहां विशिष्टका और जहां विशिष्टमें अन्वयकी योग्यता नहीं तहां विशेष्यमात्रका शक्तिसैं अन्वयबोध होवै है; यह धर्मराजका मत है, सो असंगत है. काहेतैं ? शक्ति विशिष्टमें और लक्षणा विना अन्वयबोध व्यक्ति मात्रका मानें तो धेनुपदतैं भी अप्रसूत गोकी अथवा प्रसूत महिषीकी लक्षणा विना प्रतीति हुई चाहिये और पुष्पवंत पदसैं लक्षणा विना एक सूर्यका अथवा एक चंद्रका बोध हुआ चाहिये और होवै नहीं, यातैं "अनित्यो घटः" इत्यादिक वाक्यनमें घटादिपदनकी व्यक्तिमात्रमें भागत्यागलक्षणा है. जो ऐसे कहै बहुत प्रयोगनमें व्यक्तिमात्रका बोध होनेतैं शक्तिसैंही बोध होवै है, ताका यह समाधान है:—प्रयोगबाहुल्यतैं अर्थमें शक्यता माने तो नीलादिपदनका प्रयोगबाहुल्य गुणीमें है सोभी शक्य हुआ चाहिये. और नीलादिपदनका गुणी शक्य नहीं किंतु लक्ष्य है. यह धर्मराजने और वेदांतचूडामणी टीकामें ताके पुत्रने लिखा है; यातैं जहां विशिष्टवाचकपदतैं विशेष्यमात्रका बोध होवै तहां सारे भागत्यागलक्षणा है, परंतु सो निरूढलक्षणा हैं. निरूढलक्षणाका शक्तिसैं ईषत्‌ही भेद होवै है; ताका प्रयोगबाहुल्य होवै है. जिस अर्थमें शब्दप्रयोगका बाहुल्य होवै तिस अर्थमें सारे शक्ति माने तो जातिशक्तिवादमें व्यक्तिका बोध सारे लक्षणातैं होवै है

सो असंगत होवेगा. और न्यायमतमें राजपुरुष इत्यादिक वाक्यनमें राजपदकी राजसंबंधीमें सारै लक्षणा है, सो असंगत होवेगी. इसरीतिसैं विशिष्टवाचकपदतैं विशेष्यमात्रका बोध लक्षणा विना होवै नहीं, यातैं महावाक्यनमें लक्षणा है. यह सांप्रदायिक मतही जिज्ञासुकूं उपादेय है. वेदांतवाक्यनतैं असंग ब्रह्मका आत्मरूपकरिके साक्षात्कार होवै है; तासैं प्रवृत्तिनिवृत्तिशून्य ब्रह्मरूपतैं स्थिति फल होवै है; यह अद्वैतवादका सिद्धान्त है.

४६ मीमांसाका मत.

तामें मीमांसाके अनुसारीकी यह शंका है:—सकल वेद प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिका बोधक है.प्रवृत्तिनिवृत्तिरहित अर्थकूं वेद बोधन करै नहीं. और जो बोधन करै तो निष्फल अर्थका बोधक वेद अप्रमाण होवैगा. यातैं विधिनिषेध शून्य वेदांतवाक्यका विधिवाक्यनसैं संबंध होनेसैं विधिवाक्यनके वेदांतवाक्य शेष हैं. कोई वाक्य कर्मकर्ताके स्वरूपके बोधक हैं, जैसैं त्वं पदार्थके बोधक पंचकोशवाक्य हैं, कोई वाक्य कर्मशेष देवताके स्वरूपके बोधक हैं सो तत्पदार्थ बोधक वाक्य है. जीव ब्रह्मका अभेदबोधक वाक्यनका यह अर्थ है:—कर्मकर्ता जीव देवभावकूं प्राप्त होवै है, यातैं कर्म अवश्य कर्तव्य है; इस रीतिसैं कर्मके फलकी स्तुति करनेतैं अभेदबोधक वाक्य अर्थवाद रूप है. यद्यपि मीमांसामतमें मंत्रमयी देवता है, विग्रहवान् ऐश्वर्यवाला कोई देव है नहीं, यातैं देवभावकी प्राप्ति कहना संभवै नहीं, तथापि संभावनामात्रसैं कर्मफलकी स्तुति है. जैसैं कृष्णप्रभाकी उपमा कोटिसूर्य प्रभा कही है, तहां कोटिसूर्यप्रभा अलीक पदार्थ है, तोभी संभावनासैं उपमा कही है. जो कोटि सूर्यकी प्रभा एकत्र होवे तो कृष्णप्रभाकी उपमा संभवै इस रीतिसें सर्वज्ञतादिक गुणविशिष्ट परमऐश्वर्यवाला कोई अद्भुत देव होवे तो ऐसा स्वरूप कर्मकर्ताका होवै है. इस रीतिसें संभावनातैं देवभावकी प्राप्ति कही है. इस रीतिसैं साक्षात् वा परंपरातैं प्रवृत्तिनिवृत्तिका बोधक सकल वेद है. प्रवृत्तिमें अनुपयोगी ब्रह्मबोध वेदवाक्यनतैं संभवै नहीं.

४७ प्राचीन वृत्तिकारका मत.

और प्राचीनवृत्तिकार वेदांती कहावैं हैं, तिनका यह मत हैः—कर्मविधिके प्रकरणमें वेदांतवाक्य नहीं, यातैं भिन्नप्रकरणमें पठित वेदांतवाक्य कर्मविधिके शेष नहीं; किंतु उपासनाविधि वेदांतप्रकरणमें है; यातैं सकल वेदांतवाक्य उपासनाविधिके शेष हैं. त्वंपदार्थके बोधक वाक्य उपासकके स्वरूपकूं बोधन करे हैं. तत्पदार्थबोधक वाक्य उपास्यके स्वरूपकूं बोधन करे हैं. त्वंपदार्थ और तत्पदार्थकी अभेदबोधक वाक्यनका यह अर्थ हैः—संसारदशामें जीवब्रह्मका भेद है और उपासनाके बलतैं मोक्षदशामें अभेद होवै हैः अद्वैतवादमें तो सदा अभेद है. भेदप्रतीति संसारदशामेंभी भ्रमरूप है. और या मतमें संसारदशामें भेद और मोक्षदशामें अभेद होवै हैं. मोक्षदशामेंभी जीवब्रह्मका भेद माननेवालें या मतमें दोष कहै हैं. जीवमें ब्रह्मका भेद स्वरूपसैं है अथवा उपाधिकृत है? जो स्वरूपसैं भेद मानै तो जितने स्वरूप रहै उतने भेदकी निवृत्तिं होवै नहीं. जो मोक्षदशामें भेदकी निवृत्तिवास्ते जीवके स्वरूपकी निवृत्ति मानें तो सिद्धांतका त्याग और मोक्षकूं अपुरुषार्थता होवैगी. काहेतैं? मोक्षदशामें स्वरूपकी निवृत्ति वृत्तिकारने मानी नहीं और किसीके सिद्धांतमें स्वरूपकी निवृत्ति मोक्षमें होवै नहीं. जो कोई स्वरूपकी निवृत्ति मोक्षदशामें मानें तो स्वरूपकी निवृत्तिमें किसी पुरुषकी अभिलाषा होवै नहीं; यातैं मोक्षमें पुरुषार्थताका अभाव होवैगा. पुरुषकी अभिलाषाका विषय पुरुषार्थ कहिये है. यातैं जीवमें ब्रह्मका भेद स्वरूपसैं मानै तो मोक्षदशामें अभेद संभवै नहीं. जीवमें ब्रह्मके भेदकूं उपाधिकृत कहै तो उपाधिकी निवृत्तिसैं मोक्षदशामें अभेद तो संभवै, परंतु अद्वैतमतसैं या मतका भेद सिद्ध नहीं होवैगा. काहेतैं? अद्वैतवादमेंभी उपाधिकृत भेदका अंगीकार है, और उपाधिकृत भेद मिथ्या होवैगा. ताकी निवृत्तिभी अद्वैतवादकी नाईं केवल ज्ञानसैं माननी योग्य है. मोक्षनिमित्त उपासना क्रिया निष्फल होवैगी. वृत्तिकारके मतमें नैयायिकादिक यह कुतर्क करै हैं. सो संभवै नहीं. काहेतैं? जीवमें ब्रह्मका भेद स्वरूपसैं नहीं, उपाधिकृत है. उपाधि मिथ्या होवै तो

उपाधिकृत भेदभी मिथ्या होवै; ताकी केवल ज्ञानसैं निवृत्ति होवै. वृत्तिकारके मतमैं प्रलयपर्यंत स्थायी आकाशादिक पदार्थ हैं सो मिथ्या नहीं. तैसैंही जीवकी उपाधि अंतःकरणादिक सत्य हैं; ज्ञानमात्रसैं तिनकी निवृत्ति होवै नहीं. यद्यपि मोक्षदशामें अंतःकरणादिकनका नाश होवै है यातैं ध्वंसशून्यतारूप नित्यता वृत्तिकारके मतमेंभी बनै नहीं; तथापि ज्ञानतैं अबाध्यतारूप नित्यता वृत्तिकारके मतमें सकल पदार्थमें संभवै है; इस रीतिसैं उपाधि सत्य है, ता सत्यउपाधिकृत भेदभी सत्य है. जैसैं जलसंयोगरूप सत्यउपाधिकृत शीतलता पृथिवीमें सत्य है, तैसैं सत्यउपाधिकृत भेद सत्य है. ता सत्यभेदकी और उपाधिकी ज्ञानमात्रसैं निवृत्ति होवै नहीं; किंतु नित्यकर्म और उपासनासहित ज्ञानतैं उपाधिनिवृत्तिसैं मोक्षदशामें भेदकी निवृत्ति होवै है. और अद्वैतमतमें सकल उपाधि और भेद मिथ्या हैं, तिनकी ज्ञानमात्रसैं निवृत्ति होवै है; और संसारदशामेंभी मिथ्या उपाधितैं पारमार्थिक अद्वैतता बिगरै नहीं; यातैं अद्वैतमतसैं वृत्तिकारके मतका भेद है. इस रीतिसैं वृत्तिकारके मतमें भेदबोधक और अभेदबोधक वाक्यनकी गति संभवै है. जीवमें ब्रह्मका भेदबोधक वाक्य तो सांसारिक जीवका स्वरूप बोधन करे है; और अभेदबोधक वाक्य मुक्तजीवका स्वरूप बोधन करै है. मुक्तदशामेंभी जो भेद अंगीकार करें तिनके मतमें अभेदबोधक वाक्यनका बाध होवै है; अद्वैतवादमें सदा अभेदका अंगीकार है. ता मतमें जीवब्रह्मका भेदबोधक वाक्यनका बाध होवै, यातैं संसारदशामें भेद और मुक्तिदशामें अभेद मानना योग्य है.

यह मतभी समीचीन नहीं. काहेतैं ? सकल वेदांतवाक्य अहेय अनुपादेय ब्रह्मके बोधक हैं, विधिशेष अर्थके बोधक नहीं. यह अर्थ प्रथमाध्यायके चतुर्थ सूत्रके व्याख्यानमें भाष्यकारने विस्तारसैं लिखा है. किसी मंदमति पुरुषकी मीमांसावृत्तिकारादिकनके मतमें अधिक श्रद्धा होवै और शास्त्रमें प्रवेश होवे तो भामतीनिबंध और ब्रह्मविद्याभरणसैं आदि व्याख्यानसहित भाष्यविचारसैं बुद्धिदोषकी निवृत्ति करै. सूत्रभाष्यविचारमें जाकी बुद्धि समर्थ नहीं होवै

सो भाष्यकारके व्याख्यानसहित उपनिषद्ग्रंथनकूं विचारै; तिनका तात्पर्य अहेय अनुपादेय ब्रह्मबोधमें है. उपासनाविधिमें तात्पर्य नहीं. काहेतैं ? लौकिकवाक्यका तात्पर्य तो प्रकरणादिकनतैं जानिये है. सो प्रकरणादिक काव्यप्रकाश काव्यप्रदीपमें लिखे हैं.

४८ षट् वैदिकवाक्यके तात्पर्यके लिंग.

और वैदिक वाक्यके तात्पर्यज्ञानके हेतु उपक्रमोपसंहारादिक षट् हैं. उपक्रमउपसंहारकी एकरूपता १ अभ्यास २ अपूर्वता ३ फल ४ अर्थवाद ५ उपपत्ति ६ ये षट् वैदिकवाक्यके तात्पर्यके लिंग है. इनतैं वैदिक वाक्यनका तात्पर्य जानिये है; यातैं तात्पर्यके लिंग कहिये है; जैसे धूमतैं वह्नि जानिये है याते वह्निका लिंग धूम कहिये है तैसें उपनिषदनतैं भिन्न कर्मकांडबोधक वेदका तात्पर्य कर्मविधिमें है. जैसें उपक्रमोपसंहारादिक पूर्व वेदके कर्मविधिमें हैं तैसें जैमिनिकृत द्वादशाध्यायीमें स्पष्ट है. और उपनिषद्रूप वेदके उपक्रमोपसंहारादिक अद्वितीयब्रह्ममें हैं; यातैं अद्वितीयब्रह्ममें तिनका तात्पर्य है. जैसे छांदोग्यके षष्ठाध्यायका उपक्रम कहिये आरंभमें अद्वितीय ब्रह्म है, और उपसंहार कहिये समाप्तिमें अद्वितीय ब्रह्म है. जो अर्थ आरंभमें होवै सोई समाप्तिमें होवै, तहां उपक्रमोपसंहारकी एकरूपता कहिये है. पुनः पुनः कथनका नाम अभ्यास है. छांदोग्यके षष्ठाध्यायमें नववार तत्त्वमसि वाक्य है; यातैं अद्वितीय ब्रह्ममें अभ्यास है. प्रमाणांतरतैं अज्ञातताकूं अपूर्वता कहे हैं. उपनिषद्रूप शब्दप्रमाणतैं और प्रमाणका अद्वितीय ब्रह्म विषय नहीं यातैं अद्वितीय ब्रह्ममें अज्ञाततारूप अपूर्वता है. अद्वितीय ब्रह्मके ज्ञानतैं मूलसहित शोकमोहकी निवृत्ति फल कह्या है. स्तुति अथवा निंदाका बोधक वचन अर्थवाद कहिये है; अद्वितीय ब्रह्मबोधकी स्तुति उपनिषद्नमें स्पष्ट है. कथन करे अर्थके अनुकूल युक्तिकूं उपपत्ति कहे हैं. छांदोग्यमें सकल पदार्थनका ब्रह्मसैं अभेद कथनके अर्थ कार्यका कारणतैं अभेद प्रतिपादन अनेक दृष्टांतनमें कह्या है. इस रीतिसैं षट्लिंगनतैं सकल उपनिषदनका तात्पर्य अद्वितीय ब्रह्ममें है. सो उपनिषदनके व्याख्या-

नमें भाष्यकारने षट् लिंग स्पष्ट लिखे हैं. तिनमें वेदांतवाक्यनका अद्वैतब्रह्ममें तात्पर्य निश्चय होवै है. जा अर्थमें वक्ताके तात्पर्यका ज्ञान होवै ता अर्थका श्रोताकूं शब्दसैं बोध होवै है. काहेतैं ? शब्दकी शक्तिवृत्ति अथवा लक्षणा वृत्तिका ज्ञान शाब्दबोधका हेतु है.

४९ आकांक्षा आदिक चार शाब्दबोधके सहकारी.

और आकांक्षाज्ञान, योग्यताज्ञान, तात्पर्यज्ञान, आसत्ति ये चार सहकारी हैं. एक पदार्थका पदार्थान्तरसैं अन्वयबोधका अभाव **आकांक्षा** कहिये है. "अयमेति पुत्रो राज्ञः पुरुषोऽपसार्यताम्" या वाक्यमें राजपदार्थका पुत्रपदार्थसैं अन्वयबोध हुयां पाछै पुरुषपदार्थसैं आकांक्षाके अभावतैं शाब्दबोध होवै नहीं. काहेतैं ? एक पदार्थसैं अन्वय हुयां पाछै अन्वयबोधाभावरूप आकांक्षा है नहीं. स्थूलरीति यह है:—**आकांक्षा नाम** इच्छाका है, सो यद्यपि चेतनमें होवै है तथापि पदके अर्थका जितने काल पदार्थांतरसैं अन्वयका ज्ञान होवै नहीं इतनेकाल अपने अर्थके अन्वयवास्ते पदांतरकी इच्छासदृश प्रतीत होवै है. अन्वयबोध हुयां पाछे प्रतीत होवै नहीं, सो **आकांक्षा** कहिये है. आकांक्षाका स्वरूप सूक्ष्मरीतिसैं ग्रंथनमें लिखा है, सो कठिन है; यातैं रीतिमात्र जनाई है. यह राजाका पुत्र आवै है, इस रीतिसैं राजपदार्थका पुत्रपदार्थसैं अन्वयबोध हुयां पाछे पुरुषपदार्थसैं अन्वयबोधकी हेतु आकांक्षा राजपदार्थमें है नहीं; यातैं राज़ाके पुरुषकूं निकासो ऐसा बोध होवै नहीं; किंतु पुरुषकूं निकासो ऐसा बोध होवै है. जो आकांक्षाज्ञान शाब्दबोधका हेतु नहीं होवै तो राजाका पुत्र आवै है, राजाके पुरुषकूं निकासो, ऐसा बोध हुआ चाहिये; यातें आकांक्षाज्ञान शाब्दबोधका हेतु है. एक पदार्थका पदार्थांतरमें संबंधकूं **योग्यता** कहै हैं. जहां योग्यता नहीं होवै तहां शाब्दबोध होवै नहीं. जैसैं "वह्निना सिंचति" या वाक्यमें वह्निवृत्ति करणतारूप तृतीया पदार्थका सेचनपदार्थमें निरूपकतासंबंधरूप योग्यता है नहीं, यातैं शाब्दबोध होवै नहीं. जो शाब्दबोधमें योग्यता हेतु नहीं होवै तो "वह्निना सिंचति" या वाक्यतें शाब्दबोध हुआ चाहिये. वक्ताकी इच्छाकूं **तात्पर्य** कहै हैं. जा अर्थमें तात्पर्यज्ञान होवै नहीं ताका शाब्दबोध होवै

नहीं.जैसैं "सैंधवमानय" या वाक्यतैं भोजनसमयमें अश्वविषे वक्ताकी इच्छारूप तात्पर्य संभवै नहीं; यातैं अश्वका शाब्दबोध होवै नहीं. गमनसमयमें लवणका शाब्दबोध होवै नहीं. जो तात्पर्यज्ञान शाब्दबोधका हेतु नहीं होवै तो "सैंधवमानय" या वाक्यतैं भोजनसमयमें अश्वका बोध और गमनसमयमें लवणका बोध हुआ चाहिये; यातैं शाब्दबोधमें तात्पर्यज्ञान हेतु है.

इहां ऐसी शंका होवै है:—वक्ताकी इच्छाकूं तात्पर्य कहै हैं. शुकवाक्यमें वक्ताकी इच्छा है नहीं, और शुकवाक्यतैं शाब्दबोध होवै है; यातैं तात्पर्यज्ञान शाब्दबोधका हेतु संभवे नहीं. और मीमांसक वेदकूं नित्य माने हैं, ईश्वरका तिनके मतमें अंगीकार नहीं, और कोई जीवभी वेदका कर्ता नहीं; किन्तु वेद नित्य हैं. तिनकूं वक्ताकी इच्छारूप तात्पर्यका ज्ञान वैदिक वाक्यनमें संभवै नहीं.

या शंकाका समाधान **मंजूषाग्रंथमें** नागोजीभट्टने यह लिखा है:—सकल शाब्दबोधका हेतु तात्पर्यज्ञान होवै तो यह दोष होवै, सकल शाब्दका हेतु तात्पर्यज्ञान नहीं, किंतु नानार्थकपदसहित वाक्यजन्य शाब्दबोधका हेतु तात्पर्यज्ञान है, यातैं दोष नहीं.

और **विवरणग्रंथमें** प्रकाशात्म श्रीचरणने तात्पर्यज्ञानकूं शाब्दबोधकी कारणता सर्वथा निषेध करी है, सो दोनोंकी उक्ति समीचीन नहीं. काहेतैं ? इन दोनोंके मतमें वेदवाक्यनका तात्पर्य निर्णयके हेतु पूर्वमीमांसा उत्तरमीमांसा व्यर्थ होवैंगे, यातैं तात्पर्यनिश्चय सकल शाब्दबोधका हेतु है. शुकवाक्यमें और मीमांसककूं तात्पर्यज्ञान संभवै नहीं. ताका यह **समाधान** है:—मीमांसककूं वेदकर्ताके तात्पर्यका ज्ञान तो नहीं संभवै; परंतु वेदवक्ता जो पाठक ताके तात्पर्यका ज्ञान संभवै है. शुकवाक्यमें यद्यपि तात्पर्यज्ञान संभवै नहीं, तथापि श्रोताकूं बोधकी इच्छा करिके जो वाक्य उच्चारण करिये सो **बुबोधयिषाधीन वाक्य** कहिये है. शुकवाक्य बुबोधयिषाधीन नहीं और वेदवाक्यभी पाठककी बुबोधयिषाधीन है. बुबोधयिषाधीन वाक्यजन्य ज्ञानमें तात्पर्यज्ञान कारण है, बोधकी इच्छाकूं **बुबोधयिषा** कहैहैं. शुककूं बोधकी इच्छा नहीं,

यातैं शुकवाक्यजन्यज्ञानमें तात्पर्यज्ञान कारण नहीं. और वेदांतपरिभाषामें शुकवाक्यमेंभी तात्पर्य मान्या है, सो वक्ताकी इच्छारूप तात्पर्य नहीं किंतु इष्ट अर्थका बोधजननमें योग्यताकूं तात्पर्य कह्या है. यामें शंका समाधान औरभी लिखा है, सो सारा निष्फल है. तात्पर्यका अर्थ वक्ताकी इच्छा प्रसिद्ध है. ताकूं त्यागिके पारिभाषिक अर्थ तात्पर्यका मानिके शुकवाक्यमें तात्पर्य प्रतिपादनका लोकप्रसिद्धिके विरोध विना और फल नहीं, केवल लोकप्रसिद्धिका विरोधही फल है. काहेतैं ? "शुकवाक्यं न तात्पर्यवत्" यह सर्व लोकमें अनुभव प्रसिद्ध है. और "शुकवाक्यं तात्पर्यवत्"ऐसा कोई कहै नहीं; यातैं बुबोधयिषाधीनवाक्यजन्य शाब्दबोधमें तात्पर्यज्ञान हेतु है. और बोधरहित पुरुषने उच्चारण करे वाक्यतैं शाब्दबोध होवै है, परंतु सो वाक्य बुबोधयिषाधनि नहीं; यातैं ताके अर्थके बोधमें तात्पर्यज्ञान हेतु नहीं. और मौनिरचित श्लोकमें वक्ताकी इच्छा तात्पर्य संभवै नहीं. काहेतैं? उच्चारणका कर्ता वक्ता कहिये है, मौनी उच्चारण करे नहीं; यातैं मौनीकी इच्छा वक्ताकी इच्छा नहीं. यह वेदांतपरिभाषाकी टीकामें धर्मराजके पुत्रने लिखा है.

सो शब्दरत्नव्याकरणके ग्रंथसैं खंडित है. तहां यह प्रसंग है:—उच्चारण करे शब्दसैं बोध होवै है. उच्चारण विना शाब्दबोध होवै नहीं या अर्थका बोधक महाभाष्यका वचन लिखिके यह शंका लिखी:—उच्चारणतैं विना शाब्दबोध नहीं होवै तो एकांतमें उच्चारण विना पस्तक देखनेवालेकूं शाब्दबोध नहीं हुआ चाहिये. ताका समाधान यह लिखा है:—तहां भी पुस्तक देखनेवाला सूक्ष्म उच्चारण करे है. या रीतिसैं मौनिलिखितश्लोकका उच्चारणकर्ता मौनी है.

और अभेदरत्नकारका यह मत है:—जहां तात्पर्यका संदेह होवै तहां शाब्दबोध होवै नहीं. और जहां तात्पर्यके अभावका निश्चय होवै तहांभी शाब्दबोध होवै नहीं. जहां प्रथम तात्पर्यका संदेह होवै अथवा तात्पर्याभावका निश्चय होवै, उत्तरकालमें तात्पर्यका निश्चय होय जावै तहां शाब्दबोध होवै है; यातैं तात्पर्यके संदेहतैं उत्तरकालभावी शाब्दबोधमें और तात्पर्याभावनिश्चयतैं उत्तरकालभावी शाब्दबोधमें तात्पर्यज्ञान हेतु है, सारे शाब्दबोधमें हेतु नहीं. या मतमें

दोष वेदान्तशिखामणिमें लिखा है, खंडनमें आग्रह नहीं; यातैं दोष लिखा नहीं. विवरणकार और मंजूषाकारके मतमें जैसैं पूर्वउत्तरमीमांसा निष्फल होवै है तैसैं या मतमें मीमांसा निष्फल नहीं. काहेतैं? या मतमें तात्पर्यसंदेहोत्तर-शाब्दबोधका तात्पर्यज्ञान हेतु है,और वेदवाक्यनमें तात्पर्यका संदेह होवै है, ताकी निवृत्ति मीमांसातैं होवै है. और जैसैं वेदवाक्यनमें संदेह और ताकी निवृत्ति होवै सो पूर्वोत्तर मीमांसामें स्पष्ट हैं.

इस रीतिसैं आकांक्षायोग्यतातात्पर्य शाब्दबोधके हेतु हैं, परंतु आकांक्षा-दिकका ज्ञान हेतु हैं; स्वरूपसैं आकांक्षादिक हेतु नहीं. काहेतैं ? जहां आ-कांक्षादिक शून्यवाक्यमें आकांक्षादिकनका भ्रम होवै तहां शाब्दबोध होवै है, स्वरूपसैं आकांक्षादिकनकूं हेतुता माने तो आकांक्षादिके भ्रमस्थलमें शाब्दबोध नहीं हुआ चाहिये और आकांक्षादिके ज्ञानकूं हेतुता मानें शाब्दबोधका का-रण भ्रमरूप ज्ञान होनेतैं शाब्दबोध संभवै है; और स्वरूपसैं आकांक्षादिक-नकूं हेतुता माने, जहां आकांक्षादिक हैं और श्रोताकूं ऐसा भ्रम होवै यह वाक्य आकांक्षादिकशून्य है तहां शाब्दबोध हुआ चाहिये और होवै नहीं; यातैं आकांक्षादिकनका ज्ञान हेतु है, सो ज्ञान भ्रम होवै चाहिये प्रमा होवै शाब्दबोधका हेतु भ्रमप्रमासाधारण आकांक्षादिकनका ज्ञान है. भ्रमसामग्रीतैं शाब्दबोध भ्रम नहीं होवै हैं; किंतु विषयके अभावतैं शाब्दबोध भ्रम होवै है. जैसैं वह्निकी व्यभिचारी पृथ्वीत्वमें वह्निव्याप्यताभ्रम होयके पृथिवीत्व हेतुसैं वह्निवाले पर्वतमें वह्निका अनुमितिज्ञान होवै सो विषयके सद्भावतैं प्रमा होवै है. विषयशून्य देशमें व्यभिचारी हेतुसैं अनुमितिभ्रम होवै है, यातैं विषयके सद्भावसैं जैसैं भ्रमसामग्रीतैं अनुमितिप्रमा होवै है तैसैं आकांक्षा-दिक ज्ञान शाब्दबोधकी सामग्री भ्रम होवै अथवा प्रमा होवै है. जहां विष-यका सद्भाव होवै तहां शाब्दबोध प्रमा होवै है. जहां विषयका अभाव होवै तहां शाब्दबोधभ्रम होवै है. परंतु जहां योग्यताज्ञान भ्रम होवै तहां नियमतैं शाब्दबोध होवै है, प्रमा होवै नहीं: काहेतैं ? जहां शाब्दबोधका विषय होवै तहां नियमतैं योग्यताज्ञान प्रमा होवै है. जहां योग्यताज्ञान भ्रम होवै, तहां

नियमतैं शाब्दबोधका विषय होवै नहीं. यातैं यह नियम है:—विषयके सद्भावतैं शाब्दबोध प्रमा और विषयके अभावतैं भ्रम होवै है. जैसैं आकांक्षादिकनके ज्ञान शाब्दबोधके हेतु हैं, तैसैं आसत्ति भी शाब्दबोधका हेतु है. न्यायके ग्रंथनमें पदनकी समीपताकूं आसत्ति कहै हैं. व्यवहित पदनके अर्थोंका अन्वयबोध होवै नहीं; जैसैं " गिरिर्भुक्तं वह्निमान् देवदत्तेन " या वाक्यतैं अन्वयबोध होवै नहीं; किंतु " गिरिर्वह्निमान्, भुक्तं देवदत्तेन " ऐसा कहै तो शाब्दबोध होवै है. यातैं पदनकी समीपतारूप आसत्ति शाब्दबोधका हेतु है: जहां समीपता न होवै और समीपताका भ्रम होवै तहां शाब्दबोध होवै है. यातैं भ्रमप्रमा साधारण आसत्तिका ज्ञान हेतु है, स्वरूपसैं आसत्ति हेतु नहीं. और ग्रंथनमें यह लिखा है:—जहां व्यवहितपद हैं तहां श्लोकादिकनमें शाब्दबोध होवै है; यातैं उक्त आसत्ति शाब्दबोधकी हेतु नहीं किंतु शक्ति वा लक्षणारूप पदके संबंधसैं जो पदार्थनकी व्यवधानरहित स्मृति सो आसत्ति शाब्दबोधकी हेतु है. पदनका व्यवधान होवै अथवा अव्यवधान होवै, जा पदार्थका जा पदार्थसैं अन्वयबोध होवै तिन पदार्थनकी स्मृति व्यवधानरहित चाहिये. पदार्थनकी स्मृतिमात्रसैं शाब्दबोध होवै तो किसी रीतिसैं जा पदार्थकी स्मृति होवै ताका शाब्दबोध हुआ चाहिये. पदके संबंधसैं पदार्थकी स्मृतिकूं शाब्दबोधका हेतु कहैं तो सकलपदनका आकाशतैं समवायसंबंध है और आत्मामें सकलपदनका स्वानुकूलकृति संबंध है. यातैं घटादि पदके समवायसंबंधतैं आकाशकी जहां स्मृति होवै और स्वानुकूल कृति संबंधतैं आत्माकी जहां स्मृति होवै तिनकाभी 'घटमानय' इत्यादि वाक्यनतैं बोध हुआ चाहिये. यातैं शक्ति वा लक्षणावृत्तिरूप पदके संबंधतैं पदार्थकी स्मृति शाब्दबोधका हेतु है, घटादिपदनका समवायसंबंध आकाशमें है और स्वानुकूल कृतिसंबंध आत्मामें है. शक्ति वा लक्षणावृत्तिरूप संबंध घटादिपदनका आकाश आत्मामें नहीं, आकाशगगनादिपदनका शक्तिरूप संबंध आकाशमें है. स्वपदआत्मपदका शक्तिसंबंध आत्मामें है. यातैं आकाशपदसहित वाक्यतैं आकाशका शाब्दबोध होवै है. आत्मपदसहित वाक्यतैं आत्माका शाब्दबोध होवै है; इस रीतिसैं जा प-

दके वृत्तिरूप संबंधतैं जापदार्थकी स्मृति होवै ताका शाब्दबोध होवै है, ऐसा कहेभी "घटमानय" या वाक्यतैं जो बोध होवै है ता बोधकी उत्पत्ति "घटः कर्मता, आनयनं कृतिः" इतने पदनतैं हुई चाहिये. काहेतैं ? दोनों वाक्य-नके पदनकी शक्ति समान है. और प्रथम वाक्यतें शाब्दबोध होवै है, दूसरे-तैं होवै नहीं याके विषे यह हेतु हैः—योग्यपदकी वृत्तिसैं जा पदार्थकी स्मृति होवै ताका शाब्दबोध होवै है. प्रथम वाक्यके पद योग्य हैं, दूसरेके योग्य नहीं. योग्य-ता अयोग्यता अनुभवके अनुसार अनुमेय है. जिन पदनतैं शाब्दबोध अनुभव-सिद्ध है तिनमें योग्यता है, जिन पदनतैं शाब्दबोधका अभाव अनुभवसिद्ध है ति-नमें योग्यता नहीं. इस रीतिसैं योग्यपदके वृत्तिरूप संबंधतैं व्यवधानरहित प-दार्थनकी स्मृति **आसत्ति** कहिये है. इस रीतिकी आसत्ति स्वरूपसैं शाब्दबोधका हेतु है, ताका ज्ञान हेतु नहीं. या प्रकारतैं आकांक्षाज्ञान, योग्यताज्ञान, तात्पर्य-ज्ञान और आसत्ति शाब्दबोधके हेतु हैं. इन चारकूं **शाब्दसामग्री** कहै हैं.

५० उत्कटजिज्ञासाकूं बोधकी हेतुता.

अनुमितिकी सामग्री व्याप्तिज्ञान है, प्रत्यक्षसामग्री इंद्रियसंयोगादिक हैं. जहां दो सामग्री होवैं तहां दोनोंका फल होवै नहीं. काहेतैं ? एक क्षणमें दो ज्ञानोंकी उत्पत्ति होवै नहीं. यद्यपि ज्ञानद्वयका आधार तो एक क्षण होवै है, तथापि ज्ञानद्वयकी उत्पत्तिका आधार एक क्षण होवै नहीं. सो उत्पत्तिभी व्यधिकरण दो ज्ञानोंकी तो एक क्षणमें होवै है. जैसैं देवदत्तका ज्ञान और यज्ञदत्तका ज्ञान व्यधिकरण है, तिनकी उत्पत्ति एक क्षणमें होवै है, तथापि समानाधिकरण दो ज्ञाननकी उत्पत्ति एकक्षणमें होवै नहीं, यह **सिद्धांत है.** दोनों सामग्रीका फल एक कालमें होवै नहीं; यातैं प्रबल सामग्रीका फल होवै है. दुर्बलका बाध होवै है. प्रबलता दुर्बलता अनुभवके अनुसार अनुमेय है. जैसैं भूतल और घटके साथ नेत्रका संयोग होवै तिस कालमें "घटवद्भूत-लम्" इस वाक्यका श्रवण होवै, तहां 'घटवाला भूतल है' ऐसे प्रत्यक्ष ज्ञानकी और शाब्द ज्ञानकी सामग्री है तथापि प्रत्यक्ष ज्ञान होवै है, शाब्दज्ञान होवै नहीं; यातैं समानविषयक **प्रत्यक्षज्ञानकी और शाब्दज्ञानकी दो**

सामग्री होवैं, तहां प्रत्यक्ष ज्ञानकी सामग्री प्रबल है, शाब्दज्ञानकी सामग्री दुर्बल है और जहां भूतलसंयुक्त घटसैं नेत्रका संयोग होवैं और उसकालमें " पुत्रस्ते जातः " इस वाक्यका श्रवण होवै तहां भूतलमें घटका प्रत्यक्ष होवै नहीं; किंतु पुत्रजन्मका शाब्दबोध होवै है. यातैं भिन्नविषयक ज्ञानकी प्रत्यक्षसामग्री और शाब्दसामग्री होवै तहां शाब्दसामग्री प्रबल है. प्रत्यक्ष सामग्री दुर्बल है. इस रीतिसैं बाध्यबाधक भाव विचारिकै सूक्ष्मदर्शी पुरुष प्रबल-दुर्बलताकूं जानि लेवै; परंतु जिज्ञासाशून्य स्थलमें पूर्वउक्त बाध्यबाधकभाव है. जहां एकवस्तुकी जिज्ञासा होवै अपरकी जिज्ञासा होवै नहीं और दोनोंके बोधकी सामग्री होवै तहां जिज्ञासितका बोध होवै है अजिज्ञासितका बोध होवै नहीं; यातैं जिज्ञासितके बोधकी सामग्री प्रबल है अजिज्ञासितके बोधकी सामग्री दुर्बल है. ज्ञानकी इच्छा **जिज्ञासा** कहिये है. ताका विषय **जिज्ञासित** कहिये है. जिज्ञासासहित सामग्री सारी प्रबल है. जहां उभयकी जिज्ञासा होवै तहां उत्कटजिज्ञासा बाधक है. इसी कारणतैं अध्यात्मग्रंथनमें लिखा है. उत्कटजिज्ञासावालेकूं ब्रह्मबोध होवै है. उत्कटजिज्ञासारहितकूं ब्रह्मबोध होवै नहीं. काहेतैं ? जिज्ञास्यपदार्थकी जिज्ञासासहित बोधसामग्री होवै, तासैं उत्कट जिज्ञासा सहित बोधसामग्रीतैं ताका बोध होवै है; अन्यथा जिज्ञासासहित सामग्रीतैं अन्य सामग्रीका बाध होवै है, लौकिकपदार्थनकी जिज्ञासा और तिनके प्रत्यक्षादिक बोधकी सामग्रीका सर्वदा जाग्रत् कालमें संभव है, तासैं जिज्ञासारहित ब्रह्मबोधकी सामग्रीका बाध होवैगा; यातैं लौकिक पदार्थनके जिज्ञासासहित प्रत्यक्षादि बोधकी सामग्रीके बाधवास्ते ब्रह्मकी उत्कट जिज्ञासा चाहिये. उत्कट जिज्ञासासहित ब्रह्मबोधकी सामग्रीतैं लौकिपदार्थनके बोधकी सामग्रीका बाध होवै है. " अथातो ब्रह्मजिज्ञासा " या सूत्रकाभी इसी अर्थमें तात्पर्य है. यद्यपि व्याख्यानकारोंने विचारमें जिज्ञासापदकी लक्षणा कही है और कर्तव्यपदका अध्याहार कह्या है; यातैं ब्रह्मज्ञानके अर्थ वेदांतवाक्यनका विचार कर्तव्य है यह सूत्रका अर्थ है; तथापि विचारवाचक पदकूं त्यागिके लाक्षणिक जिज्ञासापदके प्रयोगतैं सूत्रकारका वाच्य और लक्ष्य दोनों

अर्थनमें तात्पर्य है. ब्रह्मजिज्ञासा ब्रह्मबोधका हेतु है, यह वाच्य अर्थ है और एक शब्दसैं लक्षणावृत्ति और शक्तिवृत्तिसैं दो अर्थका बोध होवै नहीं या प्राचीन उक्तिका "गंगायां मीनघोषौ" यावाक्यमें व्यभिचार होनेतैं श्रद्धायोग्य नहीं."गंगायां मीनघोषौ"या वाक्यमें गंगापदके वाच्य अर्थका मीनसैं संबंध और लक्ष्य अर्थका घोषसैं संबंध होवै हैं, यातैं गंगाके प्रवाहमें मीन है और तीरमें घोष है यह वाक्यका अर्थ है. ग्रंथकारोंने यद्यपि सूत्रके अनेक अर्थ लिखे हैं तथापि अनेक अर्थ सूत्रका भूषण है, विचारकी नाईं जिज्ञासामें विधिका संभव है अथवा नहीं इस अर्थके लिखनेमें ग्रंथकी वृद्धि होवै है, यातैं लिखा नहीं.

५१ वेदांतके तात्पर्य और वेद अरु शब्दविषे विचार॰

आकांक्षाज्ञानादिक शाब्दबोधके हेतु हैं; तिनमें तात्पर्यज्ञान है. वेदवाक्यके तात्पर्यज्ञानके हेतु उपक्रमादिक हैं, तिन उपक्रमादिकनतैं वेदांतवाक्यनका तात्पर्य अद्वितीय ब्रह्ममें है, उपासनाविधिमें तात्पर्य नहीं. यह अर्थ भाष्यकारने समन्वयसूत्रके भाष्यमें विस्तारसैं लिखा है. यातैं मीमांसक और वृत्तिकारका मत समीचीन नहीं. तिनके मतखंडनके अनुकूल तर्क भाषाके श्रोताकूं दुर्ज्ञेय हैं; यातैं लिखे नहीं. इस वाक्यतैं श्रोताकूं इस अर्थका बोध होवै ऐसी वक्ताकी इच्छा तात्पर्य कहिये है. मीमांसकमतमें वेद नित्य है, तहां कर्ताकी इच्छा तो संभवै नहीं, अध्यापककी इच्छा संभवै है. नैयायिकमतमें शब्दका तीसरे क्षणमें नाश होवै है. वेदभी शब्दरूप है. यातैं क्षणिक है. तीसरे क्षणमें जाका नाश होवै सो क्षणिक कहिये है. नैयायिकमतमें उच्चारणके भेदतैं वेदका भेद है. एक बेर उच्चारण करिके फेरि जो उच्चारण करिये सो वाक्य पूर्ववाक्यतैं भिन्न होवै है; परंतु पूर्ववाक्यके सजातीय उत्तरवाक्य हैं यातैं अभेदभ्रम होवै है. नैयायिकमतमें भारतादिकनकी नाईं वेद पौरुषेय है और क्षणिक है. काहेतैं ? वर्णसमुदायतैं भिन्न तो वेद है नहीं, वर्णसमुदायकूंही वेद कहै हैं, सौ समुदाय प्रत्येक वर्णतैं न्यारा नहीं. यातैं वेद वर्णरूप है. सो वर्ण शब्दरूप है, आकाशका गुण शब्द है. नानाशब्दकी एक कालमें उत्पत्ति होवै नहीं. काहेतैं? जैसैं आत्माके विशेष गुण ज्ञानादिक हैं तैसैं आकाशका विशेष

गुण शब्द है. और विभुके जो विशेष गुण सो एककालमें दो उत्पन्न होवै नहीं. यद्यपि देवदत्तका शब्द और यज्ञदत्तका शब्द एककालमें होवै है, और भेरीका शब्द तैसे तालका शब्द एककालमैं होवै है और जो ऐसैं कहै समानाधिकरण दोशब्दनकी एक कालमें उत्पत्ति होवै नहीं. तौभी सारेशब्दका समवाय एक अकाशमें है. सारे शब्द समवायसंबंधतैं आकाशवृत्ति होनेतैं समानाधिकरण हैं, कोई शब्द व्यधिकरण नहीं; तथापि जैसैं आकाशमें शब्दका समवायसंबंध है तैसैं कंठ तालु दन्त नासिका ओष्ठ जिह्वा मूल उरस् शिरस् इन अष्ट अंगनमें वर्णरूपशब्दका अवच्छेदकतासंबंध है. और ध्वनिरूपशब्दका भेरी तालादिकनमें अवच्छेदकतासंबंध है. एक अधिकरणमें वृत्तिकूं समानाधिकरण कहै हैं. समवाय संबंधसैं सारे शब्द आकाशवृत्ति होनेतैं समानाधिकरणहैं भी परंतु अवच्छेदकतासंबंधसैं देवदत्तशब्द यज्ञदत्तशब्द व्यधिकरण है. तैसैं भेरीशब्द तालशब्दभी अवच्छेदकता संबंधसैं व्यधिकरण है. और यह नियम है:—अवच्छेदकतासंबंधसैं एक अधिकरणमें दो शब्दनकी उत्पत्ति एक कालमें होवै नहीं. अर्थ यह है:—एक अवच्छेदकमें दो शब्दनकी उत्पत्ति एक कालमें होवै नहीं। यातैं वाक्यपदके अवयवरूप वर्णनकी एक कालमें उत्पत्ति होवै नहीं; किंतु सारे वर्ण क्रमतैं उपजैं हैं. क्रमते उपजते वर्णनका निमित्त विना नाश माने तो सकल वर्णनकी प्रथम क्षणमें उत्पत्ति और द्वितीय क्षणमें नाश होवैगा. यातैं उत्पत्ति नाश विना शब्दमें और कोई प्रत्यक्षतादिक व्यापार सिद्ध नहीं होवैगा.यातैं शब्दके नाशका कोई निमित्त मानना चाहिये. जा निमित्त विना द्वितीयक्षणमें शब्दका होवै नहीं सो और तौ कोई शब्दके नाशका निमित्त संभवै नहीं. पूर्व शब्दके नाशका हेतु स्वोत्तरवर्त्ति शब्द है. "गौः" या वाक्यमें पुरुषकी कृतिसैं नाभिदेशतैं वायुमें क्रिया होयके गकारका जनक जिह्वामूलमें वायुका संयोग होयके औकारका जनक कंठओष्ठसैं वायुका संयोग होवै है.तिसतैं अनंतर विसर्गका जनक कंठसैं वायुका संयोग होवै है.जिस क्रमतैं तीनि संयोग होवै हैं उसी क्रमतैं गकार औकार विसर्गरूप तीनिवर्ण होवै हैं. यद्यपि कौमुदी आदिक ग्रंथनमें कवर्गका कंठ-

स्थान लिखा है तथापि पाणिनिकृत शिक्षामें कवर्गका जिह्वामूल स्थान लिखा है:—ता शिक्षावचनके अनुसारतैं जिह्वामूलमें वायुके संयोगतैं गकारकी उत्पत्ति कही है. व्याकरणमतमें यद्यपि 'गौः' इतने वर्ण वाक्यरूप नहीं हैं तथापि न्यायमतसैं वाक्य कह्या है. प्रथमक्षणमें गकारकी, द्वितीयक्षणमें औकारकी और तृतीयक्षणमें विसर्गकी उत्पत्ति होवै है. तहां गकारनाशमें औकार हेतु है, औकारके नाशमें विसर्ग हेतु है. तृतीयक्षणमें शब्दका नाश होवै है, द्वितीयमें नहीं. काहेतैं ? नाशका हेतु स्वोत्तरशब्द है, सो द्वितीय क्षणमें उपजै है. कारणकी सिद्धि विना कार्य होवै नहीं. प्रथम क्षणमें द्वितीय शब्द असिद्ध है यातैं द्वितीय क्षणमें सिद्ध द्वितीय शब्दसैं तृतीय क्षणमें प्रथमशब्दका नाश होवै है. ऐसैं तृतीय शब्दसैं द्वितीयका नाश होवै है.इस रीतिसैं उपांत्यशब्द पर्यंत स्वोत्तरवर्तिशब्दसैं शब्का नाश होवै है.और अंत्यशब्दका उपांत्यशब्दसैं सुंदोपसुंदन्यायतैं नाश होवै है. सुंद और उपसुंद दो भ्रांता हुए हैं. तिनका परस्पर नाश भारतमें प्रसिद्ध है. परंतु यामें यह दोष है:—जो उपांत्यशब्दसैं अंत्य शब्दका नाश मानै तो द्वितीय क्षणमेंही अंत्यशब्दका नाश होवेगा; यातैं उत्पत्तिनाशतैं अन्यव्यापाररहित अंत्यशब्द अप्रत्यक्ष हुआ चाहिये. जो ऐसैं कहै जगदीश भट्टाचार्यने अंत्यशब्द अप्रत्यक्ष कह्या है; यातैं अप्रत्यक्षका आपादन इष्ट है, दोष नहीं, तौभी तृतीय क्षणमें शब्दका नाश होवै है या नियमका भंग होवैगा. यातैं अंत्य शब्दके नाशमें उपांत्य शब्दका नाश हेतु है, उपांत्य शब्द हेतु नहीं. यापक्षमें अंत्यशब्दके नाशमें द्वितीयक्षणमें नाशकी आपत्ति नहीं. काहेतैं? उपांत्यशब्दका नाश अंत्यशब्दसैं होवै है. यातैं अंत्यशब्दके द्वितीयक्षणमें उपांत्यका नाश तासैं उत्तर क्षणमें अंत्यका नाश होवै है.इसरीतिसैं सकल शब्दका नाश तृतीय क्षणमें होवै है. यामें यह शंका होवै है:—जहां एकही वर्णरूप शब्द होवै तहां शब्दके नाशका हेतु कोई शब्द नहीं. ताका यह समाधान है:—जैसैं कंठादिकनतैं वायुका संयोग वर्णरूप शब्दका हेतु है और भेरी आदिकनतैं दंडादिकनका संयोग ध्वनिरूप शब्दका हेतु है, और वंशके दलद्वयका विभाग ध्वनिरूप शब्दका हेतु है तैसैं शब्दभी

शब्दका हेतु हैं. भेरीदंडके संयोगतैं जो भेरीदेशमें शब्द होवै है तासैं उत्पन्न हुआ जो शब्द ताका श्रवणसैं साक्षात्कार होवै है. तैसैं कंठादिकदेशमें वायुके संयोगतैं जो वर्णरूप शब्द उपजै है ताका श्रोत्रसैं साक्षात्कार होवै नहीं; किंतु वर्णरूप शब्दसैं अन्यशब्द उपजै है, ताका साक्षात्कार होवैहै. इस रीतिसैं अन्यशब्दरहित एक शब्द अलीक है,परंतु या मतमें वर्णका समुदायरूप पदका एककालमें संभव नहीं यातैं पदका साक्षात्कार तौ संभवै नहीं, तथापि प्रत्येकवर्णके साक्षात्कारनतैं सकलवर्णकूं विषय करनेवाली एक स्मृति होवैहै. स्मृतपदसैं पदार्थकी स्मृति होवै है,तासैं शाब्दबोध होवे है, अथवा पूर्व पूर्व वर्णके अनुभवतैं संस्कार होवैहै. संस्कारसहित अंत्यवर्णका अनुभवही पदका अनुभव कहिये है, तासैं पदार्थकी स्मृति होवै है, तासैं शाब्दबोध होवै है; यह न्यायका मत है. और मीमांसाके मतमें वर्ण नित्य है, यातैं वर्णका समुदायरूप वेदभी नित्य है और सारै वर्ण विभु हैं. जहां कंठादिदेशमें अध्यात्मवायुका संयोग होवै, तहां वर्णकी अभिव्यक्ति होवै है. नैयायिकमतमें जो वर्णकी उत्पत्तिके हेतु हैं सोई मीमांसकमतमें वर्णका अभिव्यक्तिके हेतु हैं. इस रीतिसैं वर्णसमुदायरूप वेद नित्य है,यातैं आपौरुषेय है. औरे वेदांतमतमें वर्ण और तिनका समुदायरूप वेद नित्य नहीं. काहेतैं ? वेदकी उत्पत्ति श्रुतिने कही है, और चेतनसे भिन्न सकल अनित्य है, यातैं वेद नित्य नहीं और क्षणिक नहीं; किंतु सृष्टिके आदिकालमें सर्वज्ञ ईश्वरके संकल्पमात्रतैं वेदकी उत्पत्ति होवै है; यातैं श्वासकी नाईं अनायासतैं ईश्वर वेदकूं रचै है. नैयायिकमतमें भारतादिकनकी नाईं वेद पौरुषेय हैं. वेदांतमतमें भारतादिकनकी नाईं ईश्वररूप पुरुषतैं रचित होनेतैं पौरुषेय तो हैं, परंतु सर्वज्ञ व्यासादिक सकल सर्गमें भारतादिकनकूं रचै हैं, तहां यह नियम नहीं. कि जैसी पूर्व सर्गमें आनुपूर्वी होवै तैसैं ही भारतादिक उत्तरसर्गमें होवै हैं; किंतु अपनी इच्छाके अनुसार भारतादिकनकी आनुपूर्वी रचै है. और वेदकी आनुपूर्वी विलक्षण नहीं होवै है. किंतु पूर्वसर्गकी आनुपूर्वीकूं यादि करिके उत्तरसर्गमें पूर्व कल्पके समान आनुपूर्वीवाले वेदकूं ईश्वर रचै है. पुरुषरचिततारूप पौरुषेयता वेदमें भारतादि-

कनके समान है. अन्यसर्गकी आनूपूर्वीके स्मरण विना पुरुषरचितत्वरूप पौरुषेयत्व भारतादिकनमें है. वेदमें नहीं, वेदमें पूर्व सर्गकी आनुपूर्वीकूं स्मरण करके पुरुषरचितत्व है; यातैं वेदकी आनुपूर्वी अनादि है और ईश्वररूप पुरुषकरिके रचित है, विरोध नहीं.

इति श्रीमन्निश्चलदासाह्वसाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरे शब्दप्रमाणनिरूपणं नाम तृतीयः प्रकाशः ॥ ३ ॥

अथोपमानप्रमाणनिरूपणं नाम चतुर्थप्रकाशप्रारम्भः ।

५२ क्रमभंगके अभिप्रायपूर्वक दो न्यायरीतिसैं उपमान और उपमितिका द्विधास्वरूप.

यद्यपि न्यायवेदांतके सकल ग्रंथनमें उपमान निरूपणतैं उत्तर शब्द निरूपण किया है, तथापि तीनि प्रमाणवादी सांख्यादिक उपमानकूं नहीं मानै हैं. प्रत्यक्ष अनुमान शब्द ये तीनि मानैं हैं; तिनके उपयोगी प्रमाण पहले कहे चाहिये; यातैं शब्द प्रमाणतैं उत्तर उपमान निरूपण करिये है. जिस क्रमतैं शास्त्रोंमें अधिक प्रमाणका अंगीकार है तिस क्रमतैं या ग्रंथमें प्रमाणनिरूपण है, यातैं अन्यसंगतिकी इहां अपेक्षा नहीं.

उपमिति प्रमाका करण उपमानप्रमाण कहिये है. न्यायरीतिसैं उपमिति उपमानका यह स्वरूप है:—संज्ञीमें संज्ञाकी वाच्यताका ज्ञान उपमिति कहिये है, ताका करण कहिये व्यापारवाला असाधारणकारण जो होवै सो उपमान कहिये है. कोई नगरवासी पुरुष गवय शब्दके वाच्यकूं नहीं जानिके आरण्यक पुरुषतैं कीदृश गवय होवै है ? ऐसा प्रश्न करे तब गोके सदृश गवय होवै है, ऐसा आरण्यक पुरुषका वचन सुनिके वाक्यार्थ अनुभव करिके वनमें गोसदृश गवयकूं देखिके गोके सदृश गवय होवै है; इस रीतिसैं वाक्यार्थका स्मरण करे है. तिसतैं अनंतर दृष्ट पशुमें गवयपदवाच्यता जानै है, तहां पशुविशेषमें गवयपदवाच्यता ज्ञानउपमिति है. आरण्यक पुरुषबोधित वाक्यके अर्थका शब्दानुभव करण है. गोसदृश पिंडकूं देखिके वा-

क्यार्थकी स्मृति व्यापार है और गोसदृश पिंडका प्रत्यक्ष संस्कारका उद्बोधक होनेतैं सहकारी है; यातैं वाक्यार्थानुभव उपमान है,वाक्यार्थस्मृति व्यापार है. जैसैं आकांक्षादिक शाब्दके सहकारी हैं, तैसैं गोसदृश पिंडका प्रत्यक्ष सहकारी है, उपमिति फल है; यह सांप्रदायिक नैयायिकनका मत है.

और नवीन नैयायिक यह कहै हैं:—गोसदृश पिंडका प्रत्यक्ष सहकारी मान्या है सो उपमान है, और वाक्यार्थस्मृति व्यापार है. गवयपदकी वाच्यताका ज्ञान उपमितिरूप फल है. या मतमें वाक्यार्थका अनुभव कारणका कारण होनेतैं कुलालपिताकी नाईं अन्यथासिद्ध है. अर्थ यह है:— जैसैं कुलालपिता घटकी सामग्रीतैं बाह्य है तैसैं उपमितिसामग्रीतैं वाक्यार्थानुभव बाह्य है. ये दो मत नैयायिकनके हैं. इनमें अनेक शंका समाधानरूप विचार न्यायकौस्तुभादिकोंमें लिखा है. सिद्धांतमें उपयोगी नहीं, यातैं हमने लिखा नहीं.

जैसैं सदृशज्ञानतैं उपमिति होवै है तैसैं विधर्मज्ञानसैं भी होवै है. जहां खड्गमृगपदके वाच्यकूं नहीं जानता आरण्यक पुरुषतैं उष्ट्रविधर्मा शृंगसहित नासिकावाला खड्गमृगपदका वाच्य है. इस वाक्यकूं सुनिके वाक्यार्थानुभवसें उत्तर वनमें जायके उष्ट्रविधर्म खड्गमृगके प्रत्यक्षसैं उत्तर गौडमें खड्गमृगपदकी वाच्यता जानैहै. और पृथिवीपदके वाच्यकूं नहीं जानता "जलादिवैधर्म्यवती पृथिवी"ऐसा गुरुवाक्य सुनिके ताके अर्थकूं अनुभव करिके जलादिवैधर्म्यवान् पदार्थकूं देखिके वाक्यार्थकूं स्मरण करिके ता पदार्थमें पृथिवीपदकी वाच्यता निश्चय करे है. विरुद्धधर्मवालेकूं विधर्म कहै हैं, विरुद्ध धर्मकूं वैधर्म्य कहै हैं. खड्गमृगमें उष्ट्रतैं विरुद्ध धर्म ह्रस्वग्रीवादिक हैं, पृथिवीमें जलादिकनतैं विरुद्ध धर्म गंध है. दोनों उदाहरणनमें सांप्रदायिक रीतिसैं वाक्यार्थानुभव करण है, वाक्यार्थस्मृति व्यापार है, विरुद्धधर्मवत्पदार्थदर्शन सहकारी है. नवीनरीतिसैं विरुद्धधर्मविशिष्ट पदार्थका प्रत्यक्ष करण है, वाक्यार्थस्मृतिव्यापार है, वाक्यार्थानुभव सामग्री बाह्य है. खड्गमृगपदकी वाच्यताज्ञान और पृथिवीपदकी वाच्यताज्ञान उपमितिरूप फल है. इस रीतिसैं

न्यायमतमें संज्ञाका वाच्यताज्ञान उपमानप्रमाणका फल है. और प्राचीनमतमें वाक्यार्थानुभवकूं **उपमानप्रमाण** कहै हैं. नवीनमतमें सादृश्यविशिष्ट पिंडदर्शन वा वैधर्म्यविशिष्ट पिंडदर्शनकूं **उपमानप्रमाण** कहै हैं.

५३ वेदांतरीतिसैं उपमान और उपमितिका स्वरूप.

वेदांतमतमें उपमिति उपमानका अन्य स्वरूप है:—ग्रामविषे गोव्यक्तिकू देखनेवाला वनमें जायके गवयकूं देखै तब "यह पशु गौके सदृश है" ऐसा प्रत्यक्ष होवै है, तिसतैं अनंतर मेरी गौ इस पशुके सदृश है ऐसा ज्ञान होवै है; तहां गवयमें गोसदृशका ज्ञान **उपमानप्रमाण** कहिये है और गौमें गवयका सादृश्यज्ञान **उपमिति** कहिये है. या मतमेंभी उपमितिका करणही **उपमान** कहिये है, परंतु उपमितिका स्वरूप और लक्षण भिन्न हैं; यातैं उपमानके लक्षणभेद विना स्वरूपका भेद सिद्ध होवै है. **न्यायमतमें** तो संज्ञाका संज्ञीमें वाच्यता ज्ञान **उपमिति** कहिये है. और **वेदांतमतमें** सादृश्यज्ञानतैं जन्य ज्ञानकूं **उपमिति** कहै हैं. गवयमें गौके सादृश्यज्ञानतैं गोमें गवयका सादृश्यज्ञान जन्य है. इस रीतिसैं उपमितिका लक्षण न्यायमतसैं भिन्न है. ताका जो करण होवै सो **उपमान** कहिये है. सादृश्यज्ञानजन्यज्ञानरूप उपामिति गौमें गवयका सादृश्यज्ञान है; ताका करण गवयमें गोका सादृश्यज्ञान है सोई उपामान है: या मतमें उपमानप्रमाण व्यापारहीन है. उपमानतैं अनंतर उपमितिकी उत्पत्तिमें कोई व्यापार मिलै नहीं. या मतमें वैधर्म्यविशिष्टज्ञानतैं उपमितिका अंगीकार नहीं. काहेतैं ? सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञानकूंही **उपमिति** कहै हैं. अन्यकूं नहीं.

५४ विचारसागरमें न्यायरीतिसैं उपमितिके कथनका अभिप्राय.

और विचारसागरमें न्यायकी रीतिसैं उपमितिका स्वरूप कह्या है ताका यह अभिप्राय है:—न्यायकी रीतिसैं उपमिति उपमानका स्वरूप माने तोभी अद्वैतसिद्धांतमें हानि नहीं, उलटा न्यायकी रीतिसैं सिद्धांतके अनुकूल उदाहरण मिलैं हैं. काहेतैं ? वैधर्म्यज्ञानतैं उपमिति न्यायमतमें मानी है ताका सिद्धांतके अनुकूल यह उदाहरण है—"आत्मपदका अर्थ कैसा है" याप्र-

श्नका " देहादिवैधर्म्यवान् आत्मा " ऐसा गुरुके उत्तरसैं अनित्यअशुचिदुःखस्वरूप देहादिकनसैं विधर्मा नित्यशुद्धआनंदरूप आत्मपदका वाच्य है; ऐसा एकांतदेशमें विवेचनकालमें मनका आत्मासैं संयोग होके उपमितिज्ञान होवै है, और सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञानकूं ही उपमिति माने तो आत्मामें किसीका सादृश्य नहीं; यातैं जिज्ञासुके अनुकूल उदाहरण मिले नहीं. यद्यपि असंगतादिक धर्मनतैं आकाशके सदृश आत्मा है यातैं आकाशमें आत्माका सादृश्यज्ञान उपमान है, आत्मामें आकाशका सादृश्यज्ञान उपमिति है; यह जिज्ञासुके अनुकूल उदाहरण सिद्धांतकी उपमितिका संभवै है; तथापि जिस अधिकरणमें जिस पदार्थके अभावका ज्ञान होवै तहां अभावज्ञानमें भ्रमबुद्धि हुए विना तिस अधिकरणमें ता पदार्थका ज्ञान होवै नहीं. जैसैं आत्मामें कर्तृत्वादिकनका अभावज्ञान हुयां और न्यायादिक शास्त्र सुनै तौभी प्रथमज्ञानमें भ्रमबुद्धि हुयांविना कर्ता भोक्ता आत्मा है ऐसा ज्ञान होवै नहीं. जाकूं वेदांत अर्थ निश्चय करिके नैयायिकादिकनके कुसंगतैं कर्ता भोक्ता आत्मा है ऐसा ज्ञान होवै है, तहां प्रथमज्ञानमें भ्रमबुद्धि होयके होवै है. प्रथमज्ञानमें भ्रमबुद्धि हुए विना विरोधीज्ञान होवै नहीं. सो भ्रमबुद्धि भ्रमरूप होवै अथवा यथार्थ होवै इसमें आग्रह नहीं; परंतु भ्रमबुद्धिमें भ्रमत्वनिश्चय नहीं चाहिये यह आग्रह है. इसरीतिसैं जिसकालमें गुरुवाक्यनतैं जिज्ञासुकूं ऐसा दृढनिश्चय हुआ है:—आकाशादिक सकलप्रपंच गंधर्वनगरकी नाईं दृष्टनष्टस्वभाव हैं; तातैं विलक्षणस्वभाव आत्मा है, आकाशादिकनमें आत्माका किंचित्भी सादृश्य नहीं. तिस कालमें आकाश और आत्माका सादृश्यज्ञान संभवै नहीं; यातैं उत्तम जिज्ञासुके अनुकूल सिद्धांतकी उपमितिका उदाहरण मिलै नहीं.

५५ पूर्व उक्त वेदांतरीति और न्यायरीतितैं विलक्षण उपमिति और उपमानका लक्षण.

और सर्वथा नैयायिक रीतिकी उपमितिमें विद्वेष होवै तौ उपमितिका यह लक्षण करना चाहियेः—सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञान अथवा वैधर्म्यज्ञानजन्य ज्ञान इन दोनोंमें कोई एक होवै सो उपमिति कहिये है. खड्गमृगमें उष्ट्रके वैधर्म्य-

ज्ञानतैं उष्ट्रमें खड्गमृगका वैधर्म्यज्ञान होवै है. पृथिवीमें जलके वैधर्म्यज्ञानतैं जलमें पृथिवीका वैधर्म्यज्ञान होवै है. यातैं उष्ट्रमें खड्गमृगका वैधर्म्यज्ञान और जलमें पृथिवीका वैधर्म्यज्ञान उपमिति है, ताका करण उपमान कहिये है. इहां खड्गमृगमें उष्ट्रका वैधर्म्यज्ञान और पृथिवीमें जलका वैधर्म्यज्ञान करण होनेतैं उपमान है, और विपरीतभी उपमानउपमितिभाव संभवै है. इंद्रियसंबद्धमें सादृश्यज्ञान उपमान है और इंद्रियसैं व्यवहितमें सादृश्यज्ञान उपमिति है, तैसैं प्रपंचमें आत्माके वैधर्म्यज्ञानतैं आत्मामें प्रपंचका वैधर्म्यज्ञान उपमिति होवै है. इसरीतिसैं सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञान और वैधर्म्यज्ञानजन्य ज्ञान दोनोंकूं उपमिति कहैं तो जिज्ञासुके अनुकूल उदाहरण संभवै है.

५६ वेदांतपरिभाषा और ताकी टीकाकी उक्तिका खंडन.

और वेदांतपरिभाषामें एक सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञानही उपमितिका लक्षण कह्या है. और ताके व्याख्यानमें ताके पुत्रने दूसरी उपमितिके खंडनवास्ते यह कह्या है:—जहां "कमलेन लोचनमुपमिनोमि" इसरीतिसैं उपमानउपमेयभाव होवै तिसी स्थानमें उपमान प्रमाण होवै है.वैधर्म्यज्ञान होवै तहां उपमानउपमेयभाव होवै नहीं; यातैं उपमान प्रमाण संभवै नहीं. ताकूं यह पूछना चाहिये:— वैधर्म्यज्ञानजन्य उपमितिके जो उदाहरण कहे तिनमें उपमितिके विषयका ज्ञान उपमानप्रमाणसैं होवै नहीं तो किस प्रमाणतैं तिनका ज्ञान होवै है? जा प्रमाणतैं तिनका ज्ञान कहै तिसी प्रमाणतैं सादृश्यज्ञानजन्य उपमितिके विषयकाभी ज्ञान होय जावेगा. उपमानप्रमाणका प्रयोजनके अभावतैं अंगीकार चाहिये.जो ऐसैं कहै गवयके प्रत्यक्षमें गोका सादृश्य तो प्रत्यक्ष है, परंतु गौमें गवयका सादृश्य प्रत्यक्ष नहीं. काहेतैं ? धर्मीके साथ इंद्रियका संयोग होवै तो इंद्रियसंयुक्त तादात्म्यसंबंधसैं सादृश्यधर्मका प्रत्यक्ष होवै. गोरूपधर्मीके साथ इंद्रियसंयोगके अभावतैं गौमें गवयका सादृश्य प्रत्यक्षका विषय नहीं; यातैं गौमें गवयके सादृश्यज्ञानका हेतु गवयमें गोका सादृश्यज्ञानरूप उपमानप्रमाण चाहिये, तो तैसैंही खड्गमृगमें उष्ट्रके वैधर्म्यका तो प्रत्यक्ष ज्ञान है. उष्ट्रके साथ इंद्रियसंयोगके अभावतैं उष्ट्रमें खड्गमृगके वैधर्म्यका

ज्ञान प्रत्यक्षरूप संभवै नहीं; ताका हेतु खड्गमृगमें उष्ट्रका वैधर्म्यज्ञानरूप उपमानही प्रमाण मानना योग्य है; और जो वेदांतपरिभाषाकी टीकामें लिखा है:—जो ज्ञानतैं उत्तर ' उपमिनोमि ' ऐसी प्रतीति ज्ञाताकूं होवै सो ज्ञान उपमिति है. और वैधर्म्यज्ञानजन्य वैधर्म्यज्ञानसैं उत्तर ' उपमिनोमि ' ऐसी प्रतीति होवै नहीं, यातैं उपमिति नहीं. सोभी अशुद्ध है:—काहेतैं ? मुखमें चंद्रके सादृश्यप्रत्यक्षसैं उत्तर " मुखं चंद्रेण उपमिनोमि " ऐसी प्रतीति होवै है और मुखमें चंद्रके सादृश्यका प्रत्यक्षज्ञान है उपमिति नहीं; यातैं ' उपमिनोमि ' इस व्यवहारका विषय **उपमालंकार** है. जहां उपमान-उपमेयकी समान शोभा होवै तहां **उपमालंकार** कहिये है. अलंकारका सामान्यलक्षण और उपमादिकनके विशेष लक्षण **अलंकारचंद्रिकादिकनमें** प्रसिद्ध हैं. कठिन और अनुपयोगी जानिके इहां लिखे नहीं; यातैं जहां ' उपमिनोमि ' ऐसी प्रतीति होवै ताका विषय उपमितिज्ञान नहीं, किंतु सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञान और वैधर्म्यज्ञानजन्यज्ञानमें उपमिति शब्द पारिभाषिक है. शास्त्रके संकेतकूं **परिभाषा** कहे हैं. परिभाषातैं बोधक शब्दकूं **पारिभाषिक** कहै हैं. जैसैं **छंदोग्रंथनमें** पंचषट्सप्तमें बाणरसमुनिशब्द पारिभाषिक हैं, तैसैं उपमिति शब्दभी न्यायशास्त्र और अद्वैतशास्त्रमें भिन्न भिन्न अर्थमें पारिभाषिक हैं; यातैं अद्वैतशास्त्रमें सादृश्यज्ञानजन्यज्ञानकी नांई वैधर्म्यज्ञान-जन्य ज्ञानभी **उपमितिशब्दका अर्थ** है.

भेदसहित समानधर्मकूं **सादृश्य** कहै हैं. जैसैं गवयमें गोके भेदसहित समान अवयव गवयमें है, सोई गोका सादृश्य है. गोके समान धर्म गोमें है, भेद नहीं. गोका भेद अश्वमें है समानधर्म नहीं, यातैं सादृश्य नहीं. चंद्रके भेद-सहित आल्हादजनकतारूप समानधर्म मुखमें है, सोई मुखमें चंद्रका सादृश्य है. इस रीतिसैं उपमानउपमेयका भेदसहित समानधर्मही **सादृश्यपदका अर्थ** है. और कोई ऐसैं कहै हैं:—सादृश्य नाम कोई भिन्नपदार्थ है, उपमान उपमेय वृत्ति है, उपमान उपमेयके निर्णीत धर्मनसैं भिन्न है, सो समीचीन नहीं. काहेतैं ? जहां दोपदार्थनमें अल्प समानधर्म होवै तहां **अपकृष्टसादृश्य**

कहिये है, समानधर्म अधिक होवै तहां उत्कृष्टसादृश्य कहिये है, इसरीतिसैं समानधर्मकी न्यूनता अधिकतासैं सादृश्यमें अपकर्ष उत्कर्ष होवै है. निर्णीत धर्मनसैं अतिरिक्त सादृश्य होवै तो ब्राह्मणत्वादिक जातिकी नांई अखंड होवैगा, तामें अपकर्ष उत्कर्ष बनैं नहीं; यातैं समानधर्मरूप सादृश्य है. यह उदयनाचार्यका मत सिद्धांतमें अंगीकरणीय है.

५७ करणके लक्षणका निर्णय.

उपमितिशब्दकी परिभाषाका न्यायमतमें और अद्वैतमतमें भेद है. उपमानशब्दका अर्थ यद्यपि दोनों मतमें भिन्न नहीं, काहेतैं? उपमितिका करण उपमान कहिये है सो न्यायमतमें गवयपदकी वाच्यताज्ञान उपमिति पदका पारिभाषिक अर्थ है, ताका करण वाक्यार्थानुभव वा सादृश्यविशिष्ट पिंडप्रत्यक्ष है. और अद्वैतमतमें सादृश्यज्ञानजन्य ज्ञान और वैधर्म्यज्ञानजन्य ज्ञान उपमितिपदका पारिभाषिक अर्थ है; ताका करण सादृश्यज्ञान और वैधर्म्यज्ञान है. इस रीतिसैं उपमितिशब्दका परिभाषामें भेद है. ताके भेदतैं उपमानका भेद सिद्ध होवैहै. उपमानपद पारिभाषिक नहीं; किंतु यौगिक है. व्याकरणकी रीतिसैं जो पद अवयव अर्थकूं त्यागै नहीं सो यौगिक पद कहिये है. इहां व्याकरणकी रीतिसैं उपमितिका करण उपमानपदके अवयवनका अर्थ है. उपमानसैं उपमितिकी उत्पत्तिमें व्यापार नहीं है; यातैं व्यापारवत्कारणही करण होवै है, यह नियम नहीं है; किंतु निर्व्यापार कारणभी करण होवै है. यद्यपि न्यायमत निरूपणके प्रसंगमें व्यापारवाले असाधारण कारणकूं ही करणता कही है, यातैं निर्व्यापार कारणमें करणता संभवै नहीं, तथापि सिद्धांतमतमें व्यापारसैं भिन्न असाधारणकारणकूं करणता कही चाहिये. व्यापारवाले असाधारणकारणकूंही करणता नहीं. जैसैं व्यापारवत् कहनेसैं व्यापारमें करणलक्षण जावै नहीं तैसैं व्यापारभिन्न कहनेतैंभी व्यापारमें करणलक्षण जावै नहीं. काहेतैं? जैसैं व्यापारमें व्यापारवत्ता नहीं है, तैसैं व्यापारसैं भिन्नताभी व्यापारमें नहीं है; इस रीतिसैं व्यापारभिन्न असाधारण कारण करण कहिये है. सो निर्व्यापार होवै अथवा सव्यापार होवै, प्रत्यक्ष अनुमान शब्द

तीनि तो प्रत्यक्षप्रमा अनुमितिप्रमा शाब्दीप्रमाके व्यापारवाले कारण हैं, और उपमान अर्थापत्ति अनुपलब्धि ये तीनों उपमिति आदिक प्रमाके निर्व्यापार कारण हैं; यातैं सिद्धांतकी रीतिसैं करणलक्षणमें व्यापारवत् पदके स्थानमें व्यापारभिन्न कह्या चाहिये. और न्यायमतमें तो करणलक्षणकी व्यापारमें अतिव्याप्तिके परिहारके अर्थ व्यापारवत् पदका निवेश होवै अथवा व्यापारभिन्नपदका निवेश होवै दोनों प्रकारसैं करणलक्षण संभवै है. काहेतैं? न्यायमतमें उपमितिप्रमाके करण उपमानप्रमाणमें वाक्यार्थ स्मृति व्यापार है. यह न्यायानुसारी उपमानके निरूपणमें पूर्व कह्या है; यातैं उपमितिके करण उपमानमें व्यापारवत् कहनेसेभी करणलक्षणकी अव्याप्ति नहीं. और अर्थापत्तिका अनुमानमें अंतर्भाव नैयायिक मानै हैं, यातैं अर्थापत्तिमें प्रमाकरणतारूप प्रमाणताके अनंगीकारतैं तामें करणताव्यवहारकी अपेक्षा नहीं. तैसैं अभावकी प्रमामें अनुपलब्धिकूं सहकारी कारणही मानै हैं और प्रमाकरणतारूप प्रमाणता अनुपलब्धिकूं नैयायिक मानै नहीं; किंतु अभावप्रमामें अनुपलब्धि सहकृत इंद्रियादिकनकूं प्रमाणता मानै है. यातैं अनुपलब्धिमें भी प्रमाकरणतारूप प्रमाणताके अनंगीकारतैं कारणताव्यवकारकी अपेक्षा नहीं. या स्थानमें यह निष्कर्ष है:—अर्थापत्ति और अनुपलब्धिमें करणताव्यवहार इष्ट होवै और करणता लक्षण नहीं होवै तो करणलक्षणमें अव्याप्ति दोष होवै. अर्थापत्ति और अनुपलब्धिमें प्रमाणता होवै तो करणताकी अवश्य अपेक्षा होवै. काहेतैं ? प्रमाके करणकूं प्रमाण कहैहैं; यातैं प्रमाणतामें करणताका प्रवेश होनेतैं करणता विना प्रमाणता संभवै नहीं. तिस प्रमाणताका न्यायमतमें अर्थापत्ति अनुपलब्धिमें अनंगीकार होनेतैं दोनोंमें करणताव्यवहार अपेक्षित नहीं. इसरीतिसैं करणरहित अर्थापत्ति अनुपलब्धिमें करणलक्षणके नहीं होनेतैं अव्याप्ति दोष होवै नहीं. इसरीतिसैं न्यायमतमें व्यापारवत् असाधारण कारणकूं करणता कहैंभी अव्याप्ति नहीं और सिद्धांतमें तो व्यापारवत् कहे उपमानादिक तीनि प्रमाणोंमें करणलक्षणकी अव्याप्ति होवै है. काहेतैं ? सिद्धांतमतमें इंद्रियसंबंधि गवयमें गोका प्रत्यक्षरूप सा-

दृश्यज्ञान उपमानप्रमाण है; और व्यवहित गौमें गवयका सादृश्यज्ञान उपमिति प्रमा है, तैसैं इंद्रियसंबंधि पशुमें व्यवहित पशुका वैधर्म्यज्ञान तो उपमान प्रमाण है और व्यवहित पशुमें इंद्रियसंबंधि पशुका वैधर्म्यज्ञान उपमिति प्रमा है; इसप्रकारसैं उपमानतैं उपमितिकी उत्पत्तिमें कोई व्यापार संभवै नहीं और उपमिति प्रमाके करणकूं उपमानप्रमाण कहै हैं; यातैं उपमानप्रमाणमें करणता व्यवहार इष्ट है. तैसैं अर्थापत्ति और अनुपलब्धिमेंभी प्रमाणता कहैंगे यातैं करणता व्यवहार इष्ट है और व्यापारका संभव नहीं, यातैं उपमान अर्थापत्ति अनुपलब्धिमें करणलक्षणकी अव्याप्ति होवैगी; यातैं करणके लक्षणमें सिद्धांतरीतिसैं व्यापारवत् पदकूं त्यागिके व्यापारभिन्न कह्या चाहिये. वेदांतपरिभाषा ग्रंथमें धर्मराजने "व्यापारवत् असाधारणं कारणं करणम्" यह करणलक्षण कह्या है, और "प्रमाकरणं प्रमाणम्" यह प्रमाणका लक्षण कह्या है. और धर्मराजके पुत्रनें वेदांतपरिभाषाकी टीकामें यह कह्या हैः—उपमितिका असाधारणकारण उपमान है, सो व्यापारहीन है. तैसैं अर्थापत्ति और अनुपलब्धिभी व्यापारहीन कारण है; यातैं उपमानादिक तीनिके लक्षणमें व्यापारका प्रवेश नहीं. उपमिति प्रमाका व्यापारवत् असाधारण कारण उपमान है; उपपादककी प्रमाका व्यापारवत् असाधारण कारण अर्थापत्तिप्रमाण है, अभावप्रमाका व्यापारवत् असाधारणकारण अनुपलब्धिप्रमाण है; इस रीतिसैं उपमानादिक तीनोंके व्यापारवत् पदघटित लक्षण करै तो तीनोंकूं व्यापारवत्वके अभावतैं उपमानादिकनके विशेष लक्षणोंका असंभव होवैगा; यातैं व्यापारवत् पदरहित विशेष लक्षण है, उपमितिप्रमाका असाधारणकारण उपमानप्रमाण कहिये है. इस रीतिसैं अर्थापत्ति और अनुपलब्धिके लक्षणमेंभी व्यापारवत् नहीं कहना; यातैं असंभव नहीं. इस रीतिसैं धर्मराजके पुत्रने उपमान प्रमाणादिकनके विशेषलक्षण तो यथासंभव कहे. और करणका लक्षण तथा प्रमाणका सामान्य लक्षण जो मूलकारका पूर्व कह्या है तामें कछु विलक्षणता कही नहीं; यातैं तिसके पुत्रकी उक्तिमें न्यूनता है. काहेतैं ? करणके लक्षणमें विशेष कहे विना

व्यापारवत्ताके अभावतैं उपमितिका करण उपमान है, और अर्थापत्ति प्रमाका करण अर्थापत्ति है; अभावप्रमाका करण अनुपलब्धि है, ऐसा व्यवहार नहीं हुआ चाहिये. तैसैं करणताके अभावतैं उपमानादिकनमें प्रमाणता व्यवहारभी नहीं हुआ चाहिये; यातैं मूलकारके करणलक्षणमें व्यापारवत् पदका व्यापारभिन्न व्याख्यान करनेमें सर्व इष्टकी सिद्धि होवै है; यातैं मूलकारके करणलक्षणमें व्यापारवत्पदका विलक्षण अर्थ नहीं करनेतैं पुत्रकी उक्तिमें न्यूनता है और हमारी रीतिसैं तो व्यापाररहित उपमानादिकनमेंभी उपमिति आदिक प्रमाकी करणता संभवै है; इस रीतिसैं प्रपंचमें ब्रह्मकी विधर्मताका ज्ञान उपमान है और प्रपंचतैं विधर्म ब्रह्म है, यह उपमानप्रमाणका फल उपमितिज्ञान है.

इति श्रीमन्निश्चलदासाहसाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरे
उपमाननिरूपणं नाम चतुर्थः प्रकाशः ॥ ४ ॥

अथार्थापत्तिप्रमाणनिरूपणं नाम पंचमप्रकाशप्रारम्भः ।

५८ न्यायमतमें अर्थापत्तिका अनंगीकार त्रिधाअनुमानका वर्णन.

नैयायिकमतमें पूर्वउक्त च्यारिही प्रमाण हैं, व्यतिरेकि अनुमानमें अर्थापत्तिप्रमाणका अंतर्भाव है और सिद्धांतमें केवलव्यतिरेकि अनुमानका अंगीकार नहीं, यातैं अर्थापत्ति भिन्न प्रमाण है, केवल व्यतिरेकि अनुमानका प्रयोजन अर्थापत्तिसैं सिद्ध होवै है. जहां अन्वयव्याप्तिका उदाहरण मिलै नहीं और साध्याभावमें हेतुके अभावकी व्याप्तिका उदाहरण मिलै सो केवल व्यतिरेकि अनुमान कहिये है. जैसैं "पृथिवी इतरभेदवती गन्धवत्वात्" यास्थानमें "यत्र गन्धवत्वं तत्रेतरभेदः" या अन्वयव्याप्तिका उदाहरण मिलै नहीं. काहेतैं ? पक्षसैं भिन्न दृष्टांत होवै है. इहां सकल पृथिवी पक्ष है, तासैं भिन्न जलादिकनमें इतर भेद और गंध रहै नहीं; यातैं यह केवलव्यतिरेकि अनुमान है. " यत्र इतरभेदाभावास्तत्र गन्धाभावः, यथा जले " इस रीतिसैं

साध्याभावमें हेतुके अभावकी व्याप्तिज्ञानका हेतु जो सहचारज्ञान सो जलादिकनमें होवै है, यातैं जलादिक उदाहरण हैं. व्याप्तिज्ञानका हेतु सहचारज्ञान जहां होवै सो **उदाहरण** कहिये है, अन्वयि अनुमानमें जैसा व्याप्यव्यापक भाव होवै तासैं विपरीत व्यतिरेकिमें होवै है. अन्वयिमें हेतु व्याप्य होवै है और साध्य व्यापक होवै है. व्यतिरेकिमें साध्याभाव व्याप्य होवै है, और हेतु अभाव व्यापक होवै है; परंतु या स्थानमें **नैयायिकनके दो मत** हैं. साध्याभावमें हेतुके अभावका सहचारदर्शन होवै है; यातैं हेतुके अभावकी व्याप्तिका ज्ञानभी साध्याभावमें होवै है. यापक्षमें कोई नैयायिक यह **दोष** कहे हैं:—जा पदार्थमें जिसकी व्याप्तिका ज्ञान होवै ता हेतुसैं तिस साध्यकी अनुमिति होवै है. जिन पदार्थनका परस्पर व्याप्यव्यापकभाव जान्या नहीं तिनका परस्पर हेतु साध्यभाव बनै नहीं. व्याप्यव्यापकभाव तो इतरभेदाभाव गंधाभावका और गंध इतर भेदका हेतु साध्यभाव कहना आश्चर्यजनक है. यातैं सध्याभाव हेत्वभावके सहचारदर्शनतैंभी हेतुमें साध्यकी व्याप्तिका ज्ञान होवै है. अन्वयिव्यतिरेकि अनुमानका इतनाही भेद है:—जहां हेतु साध्यके सहचारज्ञानतैं हेतुमें व्याप्तिका ज्ञान होवै है सो **अन्वयि अनुमान** कहिये है. जहां साध्याभावमें हेत्वभावके सहचारदर्शनतैं हेतुमें साध्यकी व्याप्तिका ज्ञान होवै सो **व्यतिरेकि अनुमान** कहिये है. साध्याभावमें हेत्वभावकी व्याप्तिका ज्ञान कहूंभी होवै नहीं और जहां साध्याभावमें हेतुके अभावकी व्याप्तिका ज्ञान हो जावै तहां साध्याभावतैं हेत्वभावकी अनुमिति होवै है, हेतुसैं साध्यकी अनुमिति होवै नहीं. काहेतैं? व्याप्यज्ञानतैं व्याप्यकी अनुमिति होवै है **यह नियम** है. आदि पक्ष प्रीचनका है, द्वितीय पक्ष नवीनका है, अनुमानप्रकरणमें न्यायग्रंथके अध्ययन विना बुद्धिका प्रवेश होवै नहीं, यातै कोई अर्थ अनुमानका हमने विस्तारसैं लिखा नहीं. इस रीतिसैं केवलव्यतिरेकि अनुमानके उदाहरण हैं. और जहां साध्याभाव हेत्वभावके सहचारका उदाहरण मिलै नहीं सो **केवलान्वयि अनुमान** कहिये है. जैसैं " घटः पदशक्तिमान् ज्ञेयत्वात् पटवत्" इहां साध्याभाव हेत्वभावका सहचार कहूं मिलै नहीं.

न्यायमतमें ज्ञेयता और पदशक्ति सर्वमें हैं. यातैं अभावनके सहचारका उदाहरण मिलै नहीं. जहां दोनोंके उदाहरण मिलैं सो अन्वयव्यतिरेकि अनुमान कहिये है, ऐसा प्रसिद्ध अनुमान है. 'पर्वतो वह्निमान्' याकूं प्रसिद्धानुमान कहै हैं. इहां अन्वयके सहचारका उदाहरण महानस है और व्यतिरेकके सहचारका उदाहरण महाह्रद है. इस रीतिसैं तीनि प्रकारका अनुमान नैयायिक कहै हैं.

५९ वेदांतरीतिसैं एक अन्वयि (अन्वयव्यतिरेकि) अनुमान और अर्थापत्तिका स्वीकार.

वेदांतमतमें केवलव्यतिरेकिका प्रयोजन अर्थापत्तिसैं होवै है. इतरभेद विना गंधवत्ता संभवै नहीं; यातैं गंधवत्ताकी अनुपपत्ति इतरभेदकी कल्पना करै है. इस रीतिसैं अर्थापत्ति प्रमाणतैं केवल व्यतिरेकि गतार्थ है, और केवलान्वयि अनुमान कोई है नहीं. काहेतैं? सर्व पदार्थनका ब्रह्ममें अभाव है; यातैं व्यतिरेकसहचारका उदाहरण ब्रह्म मिलै है. यद्यपि वृत्तिज्ञानकी विषयतारूप ज्ञेयता ब्रह्मविषे है, ताका अभाव ब्रह्मविषे बनैं नहीं, तथापि ज्ञेयतादिक मिथ्या हैं. मिथ्यापदार्थ और ताका अभाव एक अधिष्ठानमें रहै है. यातैं जिसकूं नैयायिक अन्वयव्यतिरेकि कहै हैं सोई अन्वयि नाम एक प्रकारका अनुमान है, यह वेदांतका मत है. यामतमें केवलव्यतिरेकि अनुमानका अंगीकार नहीं, अर्थापत्ति प्रमाणका अंगीकार है और विचारदृष्टि करै तो दोनों मानने चाहिये. काहेतैं? जहां एक पदार्थके ज्ञानके अनुव्यवसाय भिन्न होवैं, तहां तिसपदार्थके ज्ञानोंके प्रमाण भिन्न होवैं हैं. व्यवसायज्ञानका जनक ज्ञान प्रमाणभेद विना अनुव्यवसायका भेद होवै नहीं. एक वह्निका प्रत्यक्ष ज्ञान होवै तब "वह्निं साक्षात्करोमि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै है, अनुमानजन्यज्ञान होवै तब "वह्निमनुमिनोमि" ऐसा अनुव्ययसाय होवै है. जहां शब्दतैं वह्निका ज्ञान होवै तहां "वह्निं शाब्दयामि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै है. और जहां सूर्यमें वह्निके सादृश्यज्ञानरूप उपमान प्रमाणतैं सूर्यसदृश वह्निका ज्ञान होवै तहां "सूर्येण वह्निमुपमिनोमि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै है. ज्ञान-

के ज्ञानकूं **अनुव्यवसाय** कहै हैं, अनुव्यवसायका विषय जो ज्ञान होवै सो **व्यवसाय** कहिये है; इस रीतिसैं व्यवसाय ज्ञानका जनक प्रमाणके भेदतैं अनुव्यवसायका भेद होवै है. कदाचित् "गन्धेन इतरभेदं पृथिव्यामनुमिनोमि" ऐसा **अनुव्यवसाय** होवै है और "गन्धानुपपत्त्या इतरभेदं पृथिव्यां कल्पयामि" कदाचित् ऐसा अनुव्यवसाय होवै है. जहां अनुव्यवसायका विषय व्यवसाय अनुमानप्रमाणजन्य है, तहां प्रथम अनुव्यवसाय होवै है. जहां अनुव्यवसायका विषय व्यवसाय अर्थापत्ति प्रमाणजन्य है तहां द्वितीयअनुव्यवसाय होवै है. इस रीतिसैं अनुव्यवसायके भेदतैं व्यवसायके भेदतैं व्यवसायज्ञानके जनक अनुमान अर्थापत्ति दोनों हैं. एककूं मानिके दूसरेका निषेध बनै नहीं. और **शब्दशक्तिप्रकाशिकादि** ग्रंथनमें अनुमानप्रमाणतैं शब्दप्रमाणका भेद अनुव्यवसायके भेदसैं ही सिद्ध कह्या है. यातैं प्रमाणके भेदकी सिद्धिमें अनुव्यवसायका भेद प्रबल हेतु है. इसरीतिसैं अर्थापत्ति और केवलव्यतिरेकि अनुमान दोनों मानने चाहिये. जहां विषयका प्रकाश एक प्रमाणतैं सिद्ध होवै तहां अपरप्रमाणका निषेध होवै नहीं. केवलव्यतिरेकिका स्वरूप संक्षेपतैं दिखाया है.

६० अर्थापत्तिप्रमाण और प्रमाका स्वरूपभेद अरु उदाहरण.

अर्थापत्तिका यह स्वरूप है:—जैसैं प्रमाण और प्रमाका बोधक प्रत्यक्ष शब्द है तैसैं अर्थापत्ति शब्दभी प्रमाण और प्रमा दोनोंका बोधक है. उपपादक कल्पनाका हेतु उपपाद्य ज्ञानकूं **अर्थापत्ति प्रमाण** कहै हैं, उपपादक ज्ञानकूं **अर्थापत्ति प्रमा** कहै हैं; उपपादक संपादक पर्यायशब्द हैं, उपपाद्य संपाद्य पर्याय हैं; यातैं विचारसागरमें संपादक ज्ञानकूं **अर्थापत्ति** कह्या है, तासैं विरोध नहीं. जिस विना जो संभवै नहीं तिसका सो **उपपाद्य** कहिये है. जैसैं रात्रिभोजन विना दिवा अभोजी पुरुषमें स्थूलता संभवै नहीं; यातैं रात्रिभोजनका स्थूलता उपपाद्य है. जिसके अभावसैं जाका अभाव होवै सो ताका **उपपादक** कहिये है. जैसैं रात्रिभोजनके अभावसे स्थूलताका दिवा अभोजीकूं अभाव होवै है; यातैं रात्रिभोजन स्थूलताका उपपादक है.

शंकाः—इसरीतिसैं व्यापककूं उपपादकता और व्याप्यकूं उपपाद्यता सिद्ध होवै है. उपपादक ज्ञानका हेतु उपपाद्यज्ञान **अर्थापत्तिप्रमाण** है, या कहनेतैं व्यापकज्ञानका हेतु व्याप्यज्ञान **अर्थापत्तिप्रमाण** है, यह सिद्ध होवै है. ऐसा अनुमान प्रमाण है. अर्थापत्तिप्रमाणका अनुमानप्रमाणसैं भेद प्रतीत होवै नहीं. उत्तर—स्थूलता रात्रिभोजनका व्याप्य है और स्थूलतावाला देवदत्त है ऐसैं दो ज्ञान होयके जहां रात्रिभोजनका ज्ञान होवै तहां अनुमितिज्ञान है और दिवा आभोजीपुरुषमें रात्रिभोजन विना स्थूलताकी अनुपपत्ति है ऐसा ज्ञानतैं उत्तर रात्रिभोजनका ज्ञान **अर्थापत्तिप्रमा** है; इसी कारणतैं प्रथमरीतिसैं रात्रिभोजनके ज्ञानतैं उत्तर "स्थौल्येन रात्रिभोजनमनुमिनोमि" ऐसा अनुव्यवसाय होवैहै. द्वितीयरीतिसैं रात्रिभोजनके ज्ञानतैं उत्तर "स्थूलतानुपपत्त्या रात्रिभोजनं कल्पयामि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै है. इस रीतिसैं उपपाद्य अनुपपत्ति ज्ञानतैं उपादक कल्पना **अर्थापत्तिप्रमा** कहिये है. उपपादक कल्पनाका हेतु उपपाद्यकी अनुपपत्तिका ज्ञान **अर्थापत्तिप्रमाण** कहिये है. **अर्थ** कहिये उपपादक वस्तु ताकी **आपत्ति** कहिये कल्पना, या अर्थसैं अर्थापत्ति शब्दप्रमाका बोधक है. तहां "अर्थस्य आपत्तिः" ऐसा षष्ठीतत्पुरुष समास है. और "अर्थस्य आपत्तिर्यस्मात्" इस बहुव्रीहिसमासतैं अर्थकी कल्पना जिसतैं होवै सो उपपाद्यकी अनुपपत्तिका ज्ञानरूप प्रमाण **अर्थापत्तिशब्दका अर्थ है. अर्थापत्ति दोप्रकारकी** है, एक दृष्टार्थापत्ति है, दूसरी श्रुतार्थापत्ति है. जहां दृष्ट उपपाद्यकी अनुपपत्तिके ज्ञानतैं उपपादककी कल्पना होवै तहां **दृष्टार्थापत्ति** कहिये है. जैसैं दिवा अभोजी स्थूलमें रात्रिभोजनका ज्ञान **दृष्टार्थापत्ति** है. काहेतैं ? उपपाद्य स्थूलता दृष्ट है और जहां श्रुत उपपाद्यकी अनुपपत्तिके ज्ञानतैं उपपादककी कल्पना होवै तहां **श्रुतार्थापत्ति** कहिये है. जैसैं "गृहेऽसत् देवदत्तो जीवति" या वाक्यकूं सुनिके गृहसैं बाह्य देशमें देवदत्तकी सत्ता विना गृहमें असत् देवदत्तका जीवन बनैं नहीं; यातैं गृहमें असत् देवदत्तके जीवनकी अनुपपत्तिसैं देवदत्तकी गृहतैं बाह्य सत्ताकल्पना करिये है, तहां गृहमें असत् देवदत्तका जीवन दृष्ट नहीं किंतु श्रुत है. श्रुत-

अर्थकी अनुपपत्तिसैं उपपादककी कल्पना **श्रुतार्थापत्तिप्रमा** कहिये है, ताका हेतु श्रुत अर्थकी अनुपपत्तिका ज्ञान **श्रुतार्थापत्तिप्रमाण** कहिये है. या स्थानमें गृहमें असत् देवदत्तका जीवन उपपाद्य है; गृहतैं बाह्यसत्ता उपपादक है. अभिधानानुपपत्ति और अभिहितानुपपत्ति भेदतैं **श्रुतार्थापत्ति दो प्रकारकी** है. "द्वारम् अथवा पिधेहि" इत्यादिस्थानमें जहां वाक्यका एकदेश उच्चारित होवै एक देश उच्चारित नहीं होवै, तहां श्रुतपदके अर्थके अन्वय योग्य अर्थका अध्याहार होवै है. अथवा अन्वययोग्य अर्थका बोधक जो पद ताका अध्याहार होवै है. इनहीकूं क्रमतें **अर्थाध्याहारवाद और शब्दाध्याहारवाद** ग्रंथनमें कहै हैं; परंतु अर्थके अध्याहारका ज्ञान वा पदके अध्याहारका ज्ञान अन्यप्रमाणतैं संभवै नहीं, अर्थापत्ति प्रमाणतैं होवै है. इहां **अभिधानानुपपत्तिरूप श्रुतार्थापत्ति** है. काहेतैं ? अन्वयबोधफलवाले शब्दप्रयोगकूं **अभिधान** कहै हैं. 'द्वारम्' इत्यादिक शब्दप्रयोगरूप अभिधानकी अभिधानरूप अर्थके वा 'पिधेहि' पदके अध्याहार विना अनुपपत्ति है. अथवा या स्थानमें एक पदार्थका इष्टपदार्थांतरमें अन्वयबोधमें वक्ताका तात्पर्य अभिधानशब्दका अर्थ है. 'द्वारम्' इतना कहै तहां द्वारकर्मताका निरूपकता संबंधसैं **पिधानान्वयि बोध** श्रोताकूं होवै ऐसा वक्ताका तात्पर्यरूप **अभिधान** है. और 'पिधेहि' इतना कहै तहांभी पूर्वोक्त वक्ताका तात्पर्यरूप **अभिधान** है. वक्ताके तात्पर्यरूप अभिधानकी अध्याहार विना अनुपपत्ति है; यातैं **अभिधानानुपपत्ति** कहिये है. इहां अर्थका अध्याहार अथवा शब्दका अध्याहार उपपादक है, बोधफल शब्दप्रयोगरूप उपपाद्य है, अथवा पूर्वउक्त तात्पर्य उपपाद्य है, बोधफलक शब्दप्रयोगरूप उपपाद्यकी अनुपपत्तिसैं अथवा उपपाद्यकी अनुपपत्तिसैं अर्थ अथवा शब्दरूप उपपादककी कल्पना है; यातैं अध्याहृत अर्थका वा शब्दका अभिधानानुपपत्तिरूप अर्थापत्ति प्रमाणतैं बोध होवै है. जहां सारे वाक्यका अर्थ अन्य अर्थ कल्पन विना अनुपपन्न होवे तहां **अभिहितानुपपत्तिरूप श्रुतार्थापत्ति** है. जैसैं "स्वर्गकामो यजेत" या वाक्यका अर्थ अपूर्वकल्पन विना अनुपपन्न है; यातैं अभिहितानुपपत्तिरूप श्रुतार्थापत्ति है.

इहां यागकूं स्वर्गसाधनता उपपाद्य है, ताकी अनुपपत्तिसैं उपपादक अपूर्वकी कल्पना है, और स्वर्गसाधनता दृष्ट नहीं किंतु श्रुत है, यातैं श्रुतार्थापत्ति है.

६१ अर्थापत्तिका जिज्ञासुके अनुकूल उदाहरण.

श्रुतार्थापत्तिका जिज्ञासुके अनुकूल उदाहरण "तरति शोकमात्मवित्" यह है. इहां ज्ञानतैं शोककी निवृत्ति श्रुत है. ताकी शोकमिथ्यात्व विना अनुपपत्ति है, यातैं ज्ञानतैं शोककी निवृत्तिकी अनुपपत्तिसैं बंधमिथ्यात्वकी कल्पना होवै है. बंधमिथ्यात्व उपपादक है; ज्ञानतैं शोकनिवृत्ति उपपाद्य है, सो दृष्ट नहीं; किंतु श्रुत है; यातैं श्रुतार्थापत्ति है. तैसैं महावाक्यनमें जीवब्रह्मका अभेद श्रवण होवै है सो औपाधिक भेद होवै तो संभवै, स्वरूपसैं जीवब्रह्मका भेद होवै तो संभवै नहीं; यातै जीवब्रह्मके अभेदकी अनुपपत्तिसैं भेदका औपाधिकत्वज्ञान अर्थापत्तिप्रमाणजन्य है. इहां जीवब्रह्मका अभेद उपपाद्य है, भेदसैं औपाधिकता उपपादक है, सारै उपपाद्य ज्ञान प्रमाण है उपपादकज्ञान प्रमा है, इहां जीवब्रह्मका अभेद विद्वानकूं दृष्ट है, अन्यकूं श्रुत है; यातैं दृष्टार्थापत्ति और श्रुतार्थापत्ति दोनोंका उदाहरण है. जहां वाक्यमैं पदका वा अर्थका अध्याहार नहीं होवै और अन्यअर्थकी कल्पना विना वाक्यार्थकी अनुपपत्ति होवै तहां **अभिहितानुपपत्तिरूप श्रुतार्थापत्ति** होवै है;यातैं 'द्वारम्' इस एक उदाहरण विना अभिहितानुपपत्तिरूप श्रुतार्थापत्तिके उदाहरण है तैसैं रजतके अधिकरण शुक्तिमें रजतका निषेध दृष्ट है, सो रजतके मिथ्यात्व विना संभवे नहीं; यातैं निषेधकी अनुपपत्तिसैं रजतमिथ्यात्वकी कल्पना होवै है, यह **दृष्टार्थापत्तिका उदाहरण** है. इहां रजतनिषेध उपपाद्य है और मिथ्यात्व उपपादक है, और मनके विलयसैं अनंतर निर्विकल्पसमाधिकालमें अद्वितीय ब्रह्ममात्र शेष रहै हैं. सकल अनात्मवस्तुका अभाव होवै है सो अनात्मवस्तु मानस होवै तो मनके विलयतैं ताका अभाव संभवै. जो मानस नहीं होवै तो मनके विलयतैं अभाव होवै नहीं. काहेतैं ? अन्यके विलयतैं अन्यका अभाव होवै नहीं; यातैं मनके विलयतैं सकल द्वैताभावकी अनुपपत्तिसैं सकल द्वैत मनोमात्र है यह कल्पना होवै है. या स्थानमें मनके

विलयतैं सकल द्वैतका विलय उपपाद्य है, ताका ज्ञान अर्थापत्ति प्रमाण है. सकल द्वैतकूं मानसता उपपादक है, ताका ज्ञान अर्थापत्ति प्रमा है. या स्थानमें उपपादक प्रमाका असाधारण कारण अर्थापत्ति प्रमाण है; सो निर्व्यापार है, तोभी तामें उपपादक प्रमाकी करणता संभवै है, यह उपमाननिरूपणमें कह्या है.

इति श्रीमन्निश्चलदासाह्वसाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरे अर्थापत्तिप्रमाणनिरूपणं नाम पंचमःप्रकाशः समाप्तः ॥ ५ ॥

अथानुपलब्धिप्रमाणनिरूपणं नाम षष्ठप्रकाशप्रारंभः ।

६२ अभावका सामान्य लक्षण और भेद.

अनुपलब्धिप्रमाणतैं अभावकी प्रमा होवै है; यातैं अभावकी प्रमाके असाधारण कारणकूं अनुपलब्धिप्रमाण कहैं हैं. न्यायवेदांतके संस्काररहीन अभावके स्वरूपकूं जानैं नहीं; यातैं प्रथम अभावका स्वरूप कहै हैं. निषेधमुख प्रतीतिका विषय होवै अथवा प्रतियोगी सापेक्ष प्रतीतिका विषय होवै सो अभाव कहिये है. प्राचीन मतसैं प्रथम लक्षण है. नवीन मतमें ध्वंस और प्रागभाव नशब्दजन्य प्रतीतिके विषय नहीं; यह अर्थ आगे स्पष्ट होवैगा, यातैं दूसरा लक्षण कह्या है. प्रतियोगीकूं त्यागिके अभावकी प्रतीति होवै नहीं यातैं प्रतियोगी सापेक्ष प्रतीतिके विषय सकल अभावकी प्रतीति यद्यपि अभावकी नांई संबंध और सादृश्यभी प्रतियोगी निरपेक्ष प्रतीतिके विषय नहीं किंतु प्रतियोगिसापेक्ष प्रतीतिके विषय है तिनमें अभावलक्षण जावै है तथापि संबंध और सादृश्यकी प्रतियोगितासैं अभावकी प्रतियोगिता विलक्षण है सो न्यायग्रंथनमें अभावभावरूपता अभावकी प्रतियोगिताका स्वरूप आचार्यनें लिखा है. ऐसी प्रतियोगिता संबंधकी और सादृश्यकी है नहीं; यातैं संबंधकी और सादृश्यकी प्रतियोगितासैं विलक्षण प्रतियोगितावाला जाका प्रतियोगी होवै सो अभाव कहिये है. स्थूल रीति यहः—संबंध सादृश्यतै भिन्न होवै और प्रतियोगिसापेक्षप्रतीतिका विषय होवै सो अभाव कहिये है.

सो अभाव दो प्रकारका है. एक संसर्गाभाव है दूसरा अन्योन्याभाव है. तिनमें अन्योन्याभाव तो एकविधही है. संसर्गाभावके चारि भेद हैं. प्रागभाव १ प्रध्वंसाभाव २ सामयिकाभाव ३ और अत्यंता भाव ४ है. इस रीतिसैं च्यारिप्रकारका संसर्गाभाव और अन्योन्याभाव मिलिके पांच प्रकारका अभाव है. कपालमें घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व घटका अभाव है. और कच्चे कपालमें रक्तरूपकी उत्पत्तिसैं पूर्व रक्तरूपका अभाव है सो प्रागभाव है. उत्पत्तिसैं उत्तर मुद्गरादिकतैं कपालमें घटका अभाव है सो प्रध्वंसाभाव है. और पक्व कपालमें श्यामरूपका अभाव होवै है सो श्यामरूपका प्रध्वंसाभाव है, नैयायिकमतमें प्रध्वंसाभाव सादि है और अनंत है. काहेतैं? घटके ध्वंसकी उत्पत्ति तो होवै है यह अनुभव सिद्ध है. और ध्वंसका ध्वंस संभवै नहीं. काहेतैं? प्रागभाव, प्रतियोगी और ध्वंस इन तीनोंमें एकका अधिकरण काल अवश्य होवै है. प्रागभावध्वंसका अनाधार काल प्रतियोगीका आधार होवै है यह नियम है. वैसैं घटकी उत्पत्ति हुए नाशतैं पूर्व घटके प्रागभावध्वंसका अनाधार काल है. काहेतैं? प्रागभावका नाश होगया और घटका ध्वंस हुआ नहीं यातैं घटध्वंसका अनाधार काल है,सो घटका आधार काल है. जो घटके ध्वंसका ध्वंस मानैं तो घटध्वंसके ध्वंसका अधिकरणकाल-घटप्रागभावका और घटध्वंसका अनाधार होनेतैं घटका आधार हुआ चाहिये इसरीतिसैं ध्वंसका ध्वंस मानैं तो प्रतियोगीका उन्मज्जन हुआ चाहिये. इसी वास्ते प्रागभावकूं अनादि मानै हैं. जो सादि मानै तो प्रागभावकी उत्पत्तिसैं प्रथमकालप्रागभाव और ध्वंसका अनाधार होनेतैं प्रतियोगीका आधार हुआ चाहिये; यातैं प्रागभाव अनादि सांत है, ध्वंस अनंत सादि है, भूतलादिकनमें जहां कदाचित् घट होवै तहां घटशून्य कालमें घटका सामयिकाभाव है. किसी समयमें होवै सो सामयिकाभाव कहिये है. वायुमें रूप कदाचित्भी होवै नहीं यातैं वायुमें रूपका अत्यंताभाव है. घटसैं इतर पदार्थनमें जो घटका भेद सो घटका अन्योन्याभाव है, सामयिकाभाव तो सादि सांत है. अत्यंताभाव अन्योन्याभाव दोनों अनादि अनंत हैं; इस रीतिसैं पांच प्रकारका अभाव है.

६३ प्राचीन न्यायमतमें अभावके परस्पर विलक्षणताकी साधकप्रतीति.

तिनकी परस्पर विलक्षणताकी साधक विलक्षण प्रतीति कहै हैं:— कपालमें घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व "कपाले घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै है, ताका विषय घटका **प्रागभाव** है. काहेतैं ? प्रतियोगीके उपादानकारणमें सामयिकाभाव और अत्यंताभाव तो रहै नहीं यह अर्थ आगे कहैंगे; किंतु अपने प्रतियोगीके उपादानकूं त्यागिके अन्य स्थानमें दोनों अभाव रहै हैं; यातैं "कपाले घटो नास्ति" इस प्रतीतिके विषय सामयिकाभाव अत्यंताभाव नहीं और घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व ध्वंसका संभव नहीं. काहेतैं? ध्वंसका प्रतियोगी निमित्तकारण होवै है; कारणतैं पूर्व कार्य संभवै नहीं यातैं, घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व "कपाले घटो नास्ति" इस प्रतीतिका विषय घटध्वंसभी नहीं और घटका अन्योन्याभाव यद्यपि कपालमें सर्वदा है तथापि "कपालो न घटः" ऐसी अन्योन्याभावकी प्रतीति होवै है. "कपाले न घटः" ऐसी प्रतीति अन्योन्याभावकी होवै नहीं. जो ऐसी प्रतीतिका विषय है सो **प्रागभाव** कहिये है. तैसैं मुद्गरादिकनतैं घटका अदर्शन होवै तब "कपाले घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै हैं ताका विषय प्रागभाव नहीं है. काहेतैं ? प्रागभावका नाश प्रतियोगिरूप होवै है. घटकी उत्पत्तिसैं उत्तर प्रागभावका संभव नहीं और जो तीनि अभाव हैं तिनकाभी पूर्वउक्त प्रकारसैं संभव नहीं यातैं मुद्गरादिजन्य घटके अदर्शनकालमें "कपाले घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै है; ताका विषय **प्रध्वंसाभाव** है. इस रीतिसैं प्रागभाव और प्रध्वंसाभावभी नशब्दजन्य प्रतीतिके विषय हैं, यह प्राचीनका मत है.

६४ नवीन न्यायमतमें अभावके परस्पर विलक्षणताकी साधक प्रतीति.

और नवीनमतमें प्रतियोगीके उपादानकारणमेंभी अत्यंताभाव रहै है. काहेतैं ? अत्यंताभावका प्रतियोगीसैं विरोध है, अन्यतैं नहीं; जहां प्रतियोगी नहीं होवै तहां सारे अत्यंताभाव होवै है; यातैं घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व और प्रतियोगीके नाशकालमैं प्रतियोगीका अत्यंताभाव होनेतैं "कपाले घटो नास्ति" इस प्रतीतिका विषय **अत्यंताभाव** है; ऐसी प्रतीतिसैं प्रागभाव

प्रध्वंसाभावकी सिद्धि होवै नहीं; किंतु "कपाले घटो भविष्यति" ऐसी प्रतीति घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व होवै है. ताका विषय प्रागभाव है. और "घटो ध्वस्तः" ऐसी प्रतीतिका विषय ध्वंस है. इसरीतिसैं घटकी उत्पत्तिसैं प्रथम कपालमें घटका अत्यंताभाव और प्रागभाव दोनों हैं. तिनमें "कपाले घटो नास्ति" इस प्रतीतिका विषय कपालमें घटका अत्यंताभाव है और "कपाले घटो भविष्यति" इस प्रतीतिका विषय कपालमें घटका प्रागभाव है, तैसैं मुद्गरादिकनतैं कपालमें घटका अदर्शन होवै तिसकालमें भी "कपाले घटो नास्ति, कपाले घटो ध्वस्तः" इसरीतिसैं द्विविध प्रतीति होवै है तिनमें आद्यप्रतीतिका विषय घटका अत्यंताभाव है. और द्वितीय प्रतीतिका विषय कपालमें घटका प्रध्वंसाभाव है, इसरीतिसैं नवीनमतमें प्रागभाग प्रध्वंसाभाव नशब्दजन्य प्रतीतिके विषय नहीं; यातैं प्रथम लक्षण प्राचीन मतके अनुसारी है. उभयमतानुसारी द्वितीय लक्षण है, यातैं द्वितीय लक्षणही समीचीन है.

६५ अभावका द्वितीयलक्षण और विलक्षण प्रतीति.

संबंध और सादृश्यतैं भिन्न जो अन्यसापेक्षप्रतीतिका विषय होवै सो अभाव कहिये है; यह द्वितीय लक्षण है: भूतलमें 'घटो नास्ति' इस प्रतीतिके विषय प्रागभाव और ध्वंस नहीं. काहेतैं ? प्रतियोगिके उपादानमें दोनों अभाव रहैहैं. घटाभावके प्रतियोगी घटका उपादान भूतल नहीं यातैं उक्त प्रतीतिके विषय दोनों अभाव नहीं. अत्यंताभाव अन्योन्याभाव तो नित्यहैं और भूतलमें घटाभाव अनित्य है; यातैं घटका सामयिकाभावही उक्त प्रतीतिका विषय है. "वायौ रूपं नास्ति" इस प्रतीतिका विषय केवल अत्यंताभाव है. अनंत होनेतैं प्रागभाव नहीं, अनादितासैं ध्वंस नहीं, सर्वदा होनेतैं सामयिकाभाव नहीं; यातैं उक्त प्रतीतिका विषय अत्यंताभाव है. तैसैं "वायुर्न रूपवान्" इस प्रतीतिका विषय अन्योन्याभाव है. उक्त प्रतीतिसैं वायुमें रूपवत्का भेद भासे है, तैसैं "घटः पटो न" या प्रतीतिका विषय अन्योन्याभाव है. अन्योन्याभावकूं ही भेद कहैहैं.

६६ अन्योन्याभावलक्षण और तामें शंका समाधान.

अभेदका निषेधक जो अभाव सो **अन्योन्याभाव** कहिये है. "घटः पटो न" ऐसा कहनेतैं घटमें पटके अभेदका निषेध होवै है, यातैं घटमें पटका **अन्योन्याभाव** है. काहेतैं? नशब्द विना जामें जो प्रतीत होवै ताका नशब्दसैं निषेध होवै है. जैसैं नशब्दविना 'घटः पटः' या वाक्यतैं 'नीलो घटः' इत्यादिकनकी नाई पटमें घटका अभेद वा घटमें पटका अभेद प्रतीत होवै है. तिस अभेदका निषेध नशब्दसैं होवै है. परंतु इतना भेद है:—जा पदसैं नशब्दका संबंध होवै ता पदके अर्थके अभेदका निषेध होवै है. जैसैं "घटः पटो न" या वाक्यमें पदपदसैं नशब्दका संबंध है तहां घटमें पटपदके अर्थके अभेदका निषेध होवै है, और "पटो घटो न" या वाक्यमें नशब्दका संबंध घटपदसैं है. तहां घटपदके अर्थके अभेदका निषेध पटमें होवै है; इसीवास्ते "घटः पटो न" या वाक्यतैं जो अन्योन्याभाव प्रतीत होवै ताका घट **अनुयोगी** है और पट **प्रतियोगी** है. तैसैं "पटो घटो न" या वाक्यतैं प्रतीत हुए अन्योन्याभावका पट **अनुयोगी** है, घट **प्रतियोगी** है. जामें अभाव होवै सो अभावका **अनुयोगी** कहिये है. जाका अभाव होवै सो **प्रतियोगी** कहिये है.

शंका:—जाका निषेध करिये ताका **अभाव** कहिये है, सोई **अभावका प्रतियोगी** कहिये है और पूर्व यह कह्या:—"घटः पटो न" या वाक्यतैं घटमें पटके अभेदका निषेध करिये है, और "पटो घटो न" या वाक्यतैं पटमें घटके अभेदका निषेध करिये है; यातैं "घटः पटो न" या वाक्यतैं प्रतीत हुए अभावका प्रतियोगी पटका अभेद है पट नहीं. तैसैं "पटो घटो न" या वाक्यतैं प्रतीत हुए अभावका प्रतियोगी घटका अभेद है घट नहीं; यातैं दोनों वाक्यनमें अभेदका निषेध कहैं तो पटमें और घटमें क्रमतैं प्रतियोगिताकथनसैं विरोध होवेगा?

ताका **समाधान**:—अभेद नाम असाधारण धर्मका है. जो अपने आत्मा विना किसीपदार्थमें नहीं रहै केवल अपनेमेंही रहै सो **अपना असाधारण धर्म** कहि-

ये है. घटका अभेद घटमेंही रहै है अन्यमें नहीं, यातैं घटका अभेद घटका असाधारण धर्म है; सो असाधारण धर्मरूप अभेदही सकल पदार्थनका अपनेमें संबंध है. इस रीतिसैं सारे पदार्थनका असाधारण धर्मरूप अभेदसंबंध अपने स्वरूपमें रहै है. जा पदार्थका जो संबंध जामें रहै है सो पदार्थ तासंबंधसैं तिसमें रहै है. जैसैं घटका संयोगसंबंध भूतलमें होवै तहां संयोगसंबंधसैं भूतलमें घट रहै हैं यह व्यवहार होवै है; यातैं घटका भूतलमें संयोगसंबंध है और संयोगसंबंधतैं भूतलमें घट है या कहनेमें अर्थका भेद नहीं. तैसैं संयोगसंबंधतैं भूतलमें घटाभाव है और भूतलमें घटसंयोगका अभाव है या कहनेमें एकही अर्थ है; इस प्रकारतैं पटमें अभेदसंबंधतैं घटाभाव और घटके अभेदसंबंधका पटमें अभाव दोनों समनियत होनेतैं एकही पदार्थ है. समनियत अभावनका भेद होवै नहीं. जैसैं घटत्वात्यंताभाव और घटान्योन्याभाव दोनों घटसैं भिन्न सकल पदार्थनमें रहै हैं यातैं समनियत होनेतैं परस्पर भिन्न नहीं; किंतु एकही अभावमें घटत्वात्यंताभावत्व और घटान्योन्याभावत्व दो धर्म हैं. और एकही अभावके घटत्व और घट दोनों प्रतियोगी हैं. घटत्वात्यंताभावत्वरूपतैं जिस अभावका घटत्व प्रतियोगी है तिसी अभावका घटान्योन्याभावत्वरूपतैं घटभी प्रतियोगी है. और जिस रीतिसैं एकही अभावके रूपभेदसैं दो प्रतियोगी हैं. तैसैं रूपभेदसैं एकही अभावके प्रतियोगितावच्छेदक दो संबंध हैं. घटत्वात्यंताभावत्वरूपतैं प्रतियोगितावच्छेदक समवाय संबंध है, और घटान्योन्याभावत्वरूपतैं तिसी अभावका प्रतियोगितावच्छेदक समवाय संबंध है. इस रीतिसैं पटादिक सकल पदार्थनमें घटाभेदका अत्यंताभाव और घटान्योन्याभावभी एक है एक तिस अभावमें घटाभेदात्यंताभावत्व और घटान्योन्याभावत्व दो धर्म हैं. और घटाभेदात्यंताभावत्वरूपतैं तिस अभावका घटाभेद प्रतियोगी है, प्रतियोगितावच्छेदक स्वरूपसंबंध है, और घटान्योन्याभावत्वरूपतैं तिसी अभावका घट प्रतियोगी है, प्रतियोगितावच्छेदक अभेदसंबंध है, तिस अभेद संबंधकूंही तादात्म्य कहै हैं, तव्द्यक्तित्व कहै हैं. इस रीतिसैं घटके अभेदके निषेधका घट प्रतियोगी है यह कथनभी संभवै है।विरुद्ध नहीं.

या स्थानमें यह निष्कर्ष है:—जिस वाक्यतैं नशब्द विना जा पदार्थमें जा-संबंधसें जो पदार्थ प्रतीत होवै तिस वाक्यतैं नशब्दसहित तापदार्थमें तासंबंधसैं तिस पदार्थका निषेध प्रतीत होवै है. जैसैं "नीलो घटः" या वाक्यतैं घटपदार्थमें अभेदसंबंधसैं नीलपदार्थ प्रतीत होवै है. काहेतैं ? अभेदसंबंधसैं नीलविशिष्ट घट है. यह वाक्यका अर्थ है. नसहित "घटो न नीलः" या वाक्यतैं अभेदसंबंधतैं नीलका निषेध घटमें प्रतीत होवै है. तैसैं "घटः पटः" या वाक्यतैंभी नशब्द विना पटपदार्थमें अभेदसंबंधतैं घटपदार्थ प्रतीत होवै है. काहेतैं ? जहां दोनों पदनमें समानविभक्ति होवै तहां एक पदार्थमें अभेद-संबंधसैं अपरपदार्थ प्रतीत होवै है; यह नियम है. "नीलो घटः" या वाक्य-की नांई "घटः पटः" या वाक्यमें दोनों पद समान विभक्तिवाले हैं. यातैं नशब्द विना "घटः पटः" या वाक्यतैं भी पटपदार्थमें अभेदसंबंधसैं घट-पदार्थ प्रतीत होवै है. यद्यपि अभेदसंबंधसैं पटपदार्थमें घटपदार्थ संभवै नहीं. तथापि एक पदार्थमें अभेद संबंधसैं अपरपदार्थकी प्रतीतिकी सामग्री समान विभक्ति है. सो "घटः पटः" यावाक्यमें भी है. यातैं नशब्द विना "घटः पटः" या वाक्यतैं पटपदार्थमें अभेद संबंधसैं घटप्रतीत होवै है, परंतु पटपदार्थमें अभेद संबंधसैं घटपदार्थकी प्रतीति भ्रमरूप होवैगी प्रमा नहीं; यातैं नशब्द विना एक पदार्थमें जा संबंधसैं अपर पदार्थकी प्रतीति भ्रम-रूप वा प्रमारूप होवै तहां नशब्द मिलै तो एक पदार्थमें ता संबंधसैं अपर पदार्थका निषेध होवै है. इस रीतिसैं एक पदार्थमें अभेद संबंधसैं अपरपदा-र्थका निषेधक अभाव **अन्योन्याभाव** कहिये है.

६७ नवीनरीतिसैं संसर्गाभावके चार भेद और तिनके लक्षण और परीक्षा.

तासैं भिन्न जो अभाव ताकूं **संसर्गाभव** कहै हैं. संसर्गाभाव प्राची-नमतमें चार प्रकारका है:—अनादि सांत जो अभाव सो **प्रागभाव** क-हिये है. अपने प्रतियोगिके उपादान कारणमें प्रागभाव रहै है जैसैं घटके प्रागभावका प्रतियोगी घट है, ताके उपादानकारण कपालमें घटका प्रागभाव

रहै है. कपालकी उत्पत्तिसैं भी प्रथम कपालके उपादानकारणमें घटका प्राग-भाव रहै है. इसरीतिसैं सृष्टितैं प्रथम घटारंभक परमाणुससुदायमें घटका प्रागभाव रहैहैं.और परमाणु घटके मध्ये जो व्यणुकादि कपालांत अवयवी हैं तिन सर्वके प्रागभाव सृष्टितैं प्रथमपरमाणुमें रहै हैं. इस रीतिसैं प्रागभाव अनादि कहिये उत्पत्तिरहित है, और सांत कहिये अंतवाला है. अंत नाम ध्वंसका है जाकूं नाश कहै हैं. जो घटकी उत्पत्तिकी सामग्री तासैं घटके प्रागभावका अंत होवै है यातैं घटके प्रागभावका अंत घटरूपही है. घटके प्रागभावका ध्वंस घटसैं पृथक् नहीं. यद्यपि प्रध्वंसाभाव अनंत है और घट सांत है, घटके प्रागभावका ध्वंस घटरूप होवै तो प्रध्वंसाभावभी सांत होवेगा, प्रध्वंसाभाव अनंत है या नियमका भंग होवैगा. ध्वंस नाश अंत ये पर्यायशब्द हैं. सो ध्वंस दो प्रकार होवै है. एक तो भावपदार्थका नाशरूप ध्वंस होवै है और दूजा अभावका नाशरूप ध्वंस होवै है. भावपदार्थका नाशरूप ध्वंस तो अभावरूप होवै है; ताहीकूं प्रध्वंसाभाव कहै हैं. जैसैं घटादिक भावपदार्थका नाश अभावरूप है ताकूं प्रध्वंसाभाव कहै हैं, और अभावपदार्थका नाशरूप ध्वंसभावरूप होवै है ताकूं ध्वंस प्रध्वंस तो कहै हैं और ध्वंसाभाव प्रध्वंसाभाव कहैं नहीं. जैसैं घटका प्रागभाव अभाव पदार्थ है ताका नाशरूप ध्वंस घट है सो भावरूप है, ताकूं प्रध्वंसाभाव नहीं कहै हैं; किंतु घटके प्रागभावका नाशरूप घटकूं स्वप्रागभावका ध्वंस और प्रध्वंस ही कहै हैं.इस रीतिसैं दोप्रकारका ध्वंस होवै है. तिनमें भावरूपध्वंस तो सांत है, परंतु अभावरूप ध्वंस अनंत है; यातैं घटके प्रागभावका ध्वंस घटरूप तो सांत है तथापि प्रध्वंसाभाव अनंत है या नियमकी हानि नहीं. इसरीतिसैं अनादि सांत जो अभाव सो प्रागभाव कहिये है, अनादि अभाव तो अत्यंताभावभी है सो सांत नहीं. और सांत अभाव सामयिकाभावभी है सो अनादि नहीं. और वेदांतसिद्धांतमें अनादि और सांत माया है सो अभाव नहीं; किंतु जगत्का उपादानं कारण माया है जो अभावरूप माया होवै तो उपादानकारणता संभवै नहीं. काहेतैं ? घटादिकनके उपादानका-

रण कपालादिक भावरूपही प्रसिद्ध है, अभाव किसीका उपादानकारण नहीं यातैं माया अभावरूप नहीं किंतु भावरूप हैं. यद्यपि माया भावअभावसैं विलक्षण अनिर्वचनीय है तथापि अभावरूप माया नहीं यातैं भावरूपताभी मायाविषे संभवै नहीं; यातैं प्रागभावलक्षणमें अभावपदके प्रवेशतैं मायामैं प्रागभावलक्षण जावै नहीं, और माया भावरूप नहीं या कथनका यह अभिप्राय है:—कालत्रयमें जाका बाध न होवै सो **परमार्थ सत्** कहिये है और भाव कहिये हैं ऐसा ब्रह्म है माया नहीं. काहेतैं? ज्ञानतैं उत्तरकालमें मायाका बाध होवै है. यातैं परमार्थ सत्स्वरूप भाव तो यद्यपि माया नहीं तथापि विधिमुखप्रतीतिका विषय होवै सो भी **सत्** कहिये है और **भाव** भी कहिये है. निषेधमुखप्रतीतिका जो विषय होवै सो **अभाव** कहिये है. निषेधमुखप्रतीतिकी विषयता मायामें नहीं यातैं माया भी भावरूप है.

यद्यपि **माया प्रकृति अविद्या अज्ञान** ये शब्द पर्याय हैं, और अविद्या अज्ञानशब्दनमें अकार निषेधका वाचक है यातैं माया भी निषेधमुख प्रतीतिका विषय होनेतैं अभावरूपही कही चाहिये, तथापि अकारका केवल निषेध अर्थ नहीं है किंतु विरोधि भेदवान् अल्पभी अकारके अर्थ हैं. जैसैं अधर्मशब्दमें अकारका विरोधी अर्थ है. धर्मविरोधीकूं **अधर्म** कहै हैं. और "अब्राह्मणो नाचार्यः" या स्थानमें अकारका भेदवान् अर्थ है. ब्राह्मणसैं भिन्न आचार्यताके योग्य नहीं यह वाक्यका अर्थ है. और "अनुदरा देवदत्तकन्या" या स्थानमें अकारका अल्प अर्थ है. अल्पउदरवाली देवदत्तकी कन्या है यह वाक्यका अर्थ है. जैसैं इतने स्थानमें अकारका निषेध अर्थ नहीं तैसैं अविद्या शब्द और अज्ञानशब्दमेंभी अकारका निषेध अर्थ नहीं किंतु विरोधी अर्थ है. मायाका ज्ञानसैं वध्यघातक भाव विरोध है यातैं **अज्ञान** कहै हैं. माया वध्य है और ज्ञान घातक है. वेदांतवाक्यजन्य ब्रह्माकार वृत्तिकूं विद्या कहै हैं, सो मायाकी विरोधिनी है; यातैं **अविद्या** कहै हैं. अज्ञानशब्द और अविद्याशब्दका वाच्यभी **माया** है तो भी अकारका विरोधी अर्थ होनेतैं माया भावरूप है. भावरूपभी ब्रह्मकी नाईं परमार्थसत् रूप नहीं; किंतु विधिमुख प्रतीतिका विषय होनेतैं व्यावहारिक सत् रूप है.

प्रागभावके लक्षणमें अभाव पद नहीं होता तो मायामें लक्षणकी अतिव्याप्ति होती. काहेतैं ? माया अनादि है और सांत है; यातैं अनादि सांत जो अभाव सो **प्रागभाव** कहिये है, सादि अनंत जो अभाव सो **प्रध्वंसाभाव** कहिये है. घटादिकनका ध्वंस मुद्गरादिकनतैं होवै है यातैं सादि है और अनंततामें युक्ति पूर्व कही है. अनंत अभावकूं **प्रध्वंसाभाव** कहें तो अत्यंताभावमें अतिव्याप्ति होवेगी; यातैं प्रध्वंसाभावके लक्षणमें सादि कह्या चाहिये. अत्यंताभाव सादि नहीं; किंतु अनादि है और सादि अभावकूं प्रध्वंसाभाव कहै तो सादि अभाव सामयिकाभावभी है. तहां अतिव्याप्ति होवेगी; सामयिकाभाव अनंत नहीं किंतु सात है: सादि अनंतकूं **प्रध्वंसाभाव** कहै तो मोक्षमें अतिव्याप्ति होवैगी. काहेतैं? मोक्ष होवै है यातैं सादि है और मुक्तकूं फेरि संसार होवै नहीं यातैं अनन्त है, परंतु मोक्ष भावरूप है अभावरूप नहीं. यातैं प्रध्वंसाभावके लक्षणमें अभाव कह्या चाहिये. यद्यपि अज्ञान और तिसके कार्यकी निवृत्तिकूं मोक्ष कहै हैं. और निवृत्ति नाम ध्वंसका है यातैं मोक्षभी अभावरूप है; यातैं प्रध्वंसाभावके लक्षणमें अभावपद नहीं गेरै तौभी मोक्षमें अतिव्याप्तिरूप दोष नहीं. काहेतैं ? अलक्ष्यमें लक्षण जावै ताकूं अतिव्याप्ति कहै हैं. अज्ञान और ताके कार्यके ध्वंस मोक्षकूं लक्ष्यता स्पष्टही है. सकल नाशध्वंसाभावके लक्षणके लक्ष्य है, सकल नाशनके अंतर्भूतही कार्यसहित अज्ञानका नाशरूप मोक्ष है, तथापि कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप होवै है अज्ञान और ताका कार्य कल्पित है,यातैं तिनकी निवृत्ति अधिष्ठान ब्रह्मरूप है; यातैं अभावरूप मोक्ष नहीं;किंतु ब्रह्मरूप होनेतैं भावरूप है. तामें ध्वंसका लक्षण जावै तो अतिव्याप्ति होवैगी,यातैं सादि अनंत जो अभाव सो **प्रध्वंसाभाव** कहिये है. उत्पत्ति और नाशवाला जो अभाव सो **सामयिकाभाव** कहिये है. जहां किसी कालमें पदार्थ होवै और किसी कालमें न होवै तहां पदार्थशून्यकालमें तिन पदार्थका **सामयिकाभाव** होवै है. जैसैं भूतलादिकनमें घटादिक किसी कालमें होवै है किसी कालमें नहीं होवै है.तहां घटशून्यकालसंबंधी भूतलादिकनमें घटादिकनका सामयिकाभाव है. समयविशेषमें और उ-

पजै समयविशेषमें नष्ट होवै सो **सामयिकाभाव** कहिये है; भूतलसैं घटकूं अन्य देशमें लेजावै तब घटका अभाव भूतलमें उपजै है और तिसी भूतलमें घटकूं ले आवै तब घटका अभाव भूतलमें नष्ट होवै है, इस रीतिसैं सामयिकाभाव उत्पत्ति नाशवाला है. उत्पत्तिवाला अभाव प्रध्वंसाभावभी है तहां अतिव्याप्तिपरिहारवास्तैं सामयिकाभावके लक्षणमें नाशपद कह्या है. प्रध्वंसाभाव यद्यपि उत्पत्तिवाला अभावहै तथापि नाशवाला नहीं यातैं नाशपद कहें तौ अतिव्याप्ति दोष नहीं. नाशवाले अभावकूं **सामयिकाभाव** कहैं तो प्रागभावमें अतिव्याप्ति होवेगी, यातैं सामयिकाभावकी लक्षणमें उत्पत्तिपद कह्या है. लक्षणमें उत्पत्तिपदके प्रवेशतैं प्रागभावमें अतिव्याप्ति नहीं. काहेतैं? प्रागभावका नाश तो होवै है परंतु अनादि होनेतैं उत्पत्ति होवै नहीं; और सामयिकाभावके लक्षणमें अभावपद नहीं गेरैं किंतु उत्पत्तिनाशवालेकूं **सामयिकाकाभाव** कहैं तो घटादिकनमें अतिव्याप्ति होवैगी. काहेतैं ? घटादिकभी भूत भौतिक अनंत पदार्थ उत्पत्ति और नाशवाले हैं और अभावपदके प्रवेशतैं घटादिकनकूं भावरूपता होनेतैं तिनमें सामयिकाभावके लक्षणकी अतिव्याप्ति नहीं, इस रीतिसैं भूतलादिकनमें घटादिकनका उत्पत्ति और नाशवाला अभाव **सामयिकाभाव** है. अन्योन्याभावसैं भिन्न जो उत्पत्तिशून्य और नाशशून्य अभाव सो **अत्यंताभाव** कहिये है. जहां किसी कालमें जो पदार्थ न होवै तहां तिस पदार्थका **अत्यंताभाव** कहिये हैं, जैसैं वायुमें रूप किसी कालमें नहीं होवै है तहां रूपका **अत्यंताभाव** है. तैसैं गंधकी वायुमें सर्वदा नहीं होवै है, यातैं गंधका वायुमें अत्यंताभाव है. स्नेह गुण केवल जलमेंही रहै है अन्यमें कदी रहै नहीं यातैं जल विना अन्यपदार्थमें स्नेहका **अत्यंताभाव** है. आत्मामें रूप रस गंध स्पर्श शब्द कदीभी रहै नहीं. यातैं रूपादिकनका अत्यंताभाव आत्मामें रहै है. पृथिवी और जलमें रस रहै है अन्यमें कदी रहै नहीं; यातैं पृथ्वीजलभिन्नपदार्थनमें रसका **अत्यंताभाव** है. पृथिवीत्व जाति केवल पृथिवीमें रहै है जलादिकनमें कदी रहै नहीं; यातैं जलादिकनमें पृथिवीत्वका **अत्यंताभाव** है. ब्राह्मणभिन्न क्षत्रियादिकनमें ब्राह्मणत्व कदी

रहै नहीं, यातैं क्षत्रियादिकनमें ब्राह्मणत्वका अत्यंताभाव है. आकाश काल दिशा आत्मा व्यापक है तिनमें कदीभी क्रिया होवै नहीं; यातैं आकाशादिकनमें क्रियाका अत्यंताभाव है. पृथिवी जल तेज पवन मनमें क्रिया होवै है और कदाचित् क्रियाका अभाव होवै है यातैं पृथिवी आदिक निष्क्रिय होवै तब पृथिवी जल तेज पवन मनमें क्रियाका अत्यंताभाव नहीं: तैसैं सामयिकाभावभी नहीं. काहेतैं ? सामयिकाभाव केवल द्रव्यका होवै है, क्रियाका सामयिकाभाव संभवै नहीं. यह वार्ता आगैं कहेंगे. यातैं सामयिकाभावभी नहीं. किंतु पृथिवी आदिक पांचमें क्रियाका प्रागभाव और ध्वंसाभाव है.

६८ च्यारीसंसर्गाभावका प्रतियोगीसैं विरोध और अन्योन्याभावका अविरोध.

इस रीतिसैं भूतलादिकनमें जहां कदाचित् घटादिक होवै कदाचित् नहीं होवै तहां सारैं सामयिकाभाव है, अत्यंताभाव नहीं. काहेतैं ? अभावका प्रतियोगीसैं विरोध है. जहां प्रतियोगी होवै तहां अभाव होवै नहीं; किंतु अभावका अभाव होवै है. और जहां भूतलादिकनमें कदाचित् घटादिक होवै और कदाचित् नहीं होवै तहां अत्यंताभाव मानैं तौ अत्यंताभाव नित्य है यातैं घटकालमें भी घटका अत्यंताभाव होनेतैं अत्यंताभावका अपने प्रतियोगिसैं विरोध नहीं होवेगा; यातैं भूतलादिकनमें घटादिकनका अत्यंताभाव संभवै नहीं. जैसैं घटकी उत्पत्तिसैं प्रथम कपालमें घटका प्रागभाव होवैहै. घटरूप प्रतियोगिके उपजै कपालमें घटका प्रागभाव रहै नहीं ताका नाश होय जावै है, यातैं प्रागभावका प्रतियोगिसैं विरोध है. तैसैं कपालमें घटका प्रध्वंसाभाव होवै तब घट रहै नहीं और घट तो रहैहै. जितने काल कपालमें घटका प्रध्वंसाभाव होवै नहीं, यातैं प्रध्वंसाभावकाभी प्रतियोगीसैं विरोध स्पष्ट है तैसैं भूतलादिकनमें संयोगसंबंधसैं घटादिक रहै. जितनें भूतलादिकनमें घटादिकनके सामयिकाभाव रहै नहीं; किंतु जितनेकाल घटादिक प्रतियोगि भूतलादिकनमें न होवै उतने काल सामयिकाभाव रहे है और घटादिक प्रतियोगि आय जावै तब साम-

यिकाभावका नाश होवै है. आये घटकूं उठाय लेवैं तब सामयिकाभाव और उपजै है; इसीवासतैं सामयिकाभावके उत्पत्ति और नाश मानै है. इस रीतिसैं सामयिकाभावकाभी प्रतियोगीसैं विरोध स्पष्ट है. जैसैं प्रागभावादिकनका प्रतियोगीसैं विरोध है तैसैं अत्यंताभावकाभी प्रतियोगीसैं विरोध कह्या चाहिये. यद्यपि सकल अभावनका प्रतियोगीमें विरोध होवै तौ जिसकालमें भूतलमें घट धऱ्या होवै तिसकालमें घटका अन्योन्याभाव भूतलमें नहीं हुआ चाहिये; और घटवाले भूतलमें घटका अन्योन्याभाव रहै हैं. काहेतैं? भेदकूं **अन्योन्याभाव** कहै हैं. जाकूं अपनेसैं **अतिरिक्तता** कहै हैं, **भिन्नता** कहै हैं, जुदापना कहै हैं, घटवाला भूतलभी घटस्वरूप नहीं; किंतु घटसैं अतिरिक्त कहिये है, घटसैं भिन्न कहिये है, घटतैं जुदा कहिये है. इसरीतिसैं घटवाले भूतलमें घटका अन्योन्याभाव है; यातैं घटके अन्योन्याभावका घटरूप प्रतियोगीसैं विरोध नहीं, तैसैं पटादिकनके अन्योन्याभावका पटादिकनसैं विरोध नहीं, यातैं सकल अभावनका प्रतियोगीसैं विरोध कहना संभवै नहीं; किंतु किसी अभावका प्रतियोगिसैं विरोध है किसीका विरोध नहीं है.

प्रागभावादिक दृष्टांतसैं अत्यंताभावका प्रतियोगिसैं विरोध साधै तब अन्योन्याभावदृष्टांतसैं अत्यंताभावका प्रतियोगिसैं अविरोधभी सिद्ध होवैगा; यातैं घटके अन्योन्याभावकीनाईं घटका अत्यंताभावभी घटके अधिकरणमें संभवै है.

तथापि घटके अधिकरणमें घटका अत्यंताभाव संभवै नहीं. काहेतैं ? **अभावके दो भेद हैं:**— एक अन्योन्याभाव है १ दूसरा संसर्गाभाव है २ संसर्गाभाव च्यारि प्रकारका है.इसरीतिसैं **पंचविध अभाव** है. तिनमें अभाववत्व धर्म सर्वमें समान है और निषेधमुखप्रतीतिकी विषयताभी सर्व अभावनमें समान है तथापि अन्योन्याभावसें चतुर्विध संसर्गाभावमें विलक्षणता अनेकविध है. जिसवाक्यमें प्रतियोगि अनुयोगिबोधक भिन्न विभक्तिवाले पद होवै तिस वाक्यसैं संसर्गाभावकी प्रतीति होवै है.जैसै उत्पत्तिसैं पूर्व "कपाले घटो नास्ति"

इस वाक्यमें अनुयोगिबोधक कपालपद सप्तम्यंत है और प्रतियोगिबोधक घटपद प्रथमांत है, तहां प्रागभावकी प्रतीति होवैहै. तैसैं मुद्गरादिकनतैं घटका अदर्शन होवै, तब तिस वाक्यतैं घटध्वंसकी प्रतीति होवै है. "वायौ रूपं नास्ति" इस वाक्यतैं वायुमें रूपात्यंताभावकी प्रतीति होवै है, तहांभी अनुयोगिबोधक वायुपद सप्तम्यंत है और प्रतियोगिबोधक रूपपद प्रथमांत है; तैसैं "भूतले घटो नास्ति" इसवाक्यजन्य प्रतीतिका विषय सामयिकाभाव है; तहांभी अनुयोगिबोधक भूतलपद सप्तम्यंत है प्रतियोगिबोधक घटपद प्रथमांत है और "भूतलं न घटः" इसवाक्यमें भूतलमें घटका अन्योन्याभाव प्रतीत होवै है; तहां अनुयोगिबोधक भूतलपद और प्रतियोगिबोधक घटपद दोनों प्रथमांत हैं. इसरीतिसैं भिन्नविभक्त्यंतपदघटित वाक्यजन्य प्रतीतिकी विषयता संसर्गाभावमें है अन्योन्याभावमें नहीं, और समानविभक्त्यंतपदघटितवाक्यजन्य प्रतीतिकी विषयता अन्योन्याभावमें है संसर्गाभावमें नहीं. इसरीतिसैं अन्योन्याभावतैं विलक्षण स्वभाववाले चतुर्विध संसर्गाभाव है; यातैं प्रागभाव प्रध्वंसाभावके दृष्टांतसैं अत्यंताभावका प्रतियोगिसैं विरोधही सिद्ध होवै है, विलक्षणस्वभाववाले अन्योन्याभावके दृष्टांतसैं प्रतियोगितैं अविरोध सिद्ध होवै नहीं. संसर्गाभावकी अन्योन्याभावतैं औरभी विलक्षणता है.

६९ चतुर्विधसंसर्गाभावका परस्परविरोध और अन्योन्याभावका तिनसैं अविरोध.

चतुर्विधसंसर्गाभावका परस्पर विरोध है. एक संसर्गाभावके अधिकरणमें अपरस्पर संसर्गाभाव रहै नहीं. जैसैं कपालमें घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व घटका प्रागभाव है तहां घटका ध्वंस वा अत्यंताभाव वा सामयिकाभाव रहैं नहीं तैसैं कपालमें घटका ध्वंस होवै तब प्रागभावादिक तीनों संसर्गाभाव रहैं नहीं और घटका अन्योन्याभाव कपालमें सदा रहै है. तैसैं भूतलमें घटका सामयिकाभाव रहै तहांभी घटका प्रागभाव प्रध्वंसाभाव अत्यंताभाव तीनों रहै नहीं; और घटका अन्योन्याभाव तहांभी रहै है. तैसैं वायुमें रूपका अत्यंताभाव रहै है; तामें रूपका प्रागभाव प्रध्वंसाभाव सामयिकाभाव तीनों है

नहीं, और रूपका अन्योन्याभाव वायुमें रहै है. इसरीतिसैं चतुर्विध संसर्गाभावका परस्पर विरोध है; अन्योन्याभावका तिनसैं अविरोध है. जैसैं अन्योन्याभावका अन्यअभावनतैं अविरोध होतेंभी प्रागभावादिकनके परस्पर अविरोधकी सिद्धि होवै नहीं. तैसैं अन्योन्याभावका प्रतियोगीतैं अविरोध देखिके किसी संसर्गाभावका प्रतियोगीसैं अविरोध सिद्ध होवै नहीं.

७० प्राचीनमतमें अभावनके परस्पर और प्रतियोगीसैं विरोधाविरोधका विस्तारसैं प्रतिपादन.

अब अभावनका परस्पर और प्रतियोगिसैं विरोधाविरोधका विस्तारसैं प्रतिपादन करै हैं:—यद्यपि प्रतियोगिके उपादान कारणमें प्रागभाव प्रध्वंसाभाव दोनों रहै है. जैसै घटके उपादान कारण कपालमें घटप्रागभाव घटकी उत्पत्तिसैं प्रथम रहैहै. मुद्गरादिकनतैं घटकूं तोडै तब घटका प्रध्वंसाभाव तिसी कपालमें रहै है; यातैं प्रागभाव प्रध्वंसाभावका परस्परविरोध कहना संभवै नहीं, तथापि एककालमें दोनों रहै नहीं किंतु भिन्न कालमें रहै है, यातैं एकदा सहानवस्थानरूपविरोध प्रागभावप्रध्वंसाभावका परस्पर है. तैसैं अत्यंताभावकाभी तिनसैं विरोध मानना चाहिये. यद्यपि अन्योन्याभावका किसी अभावसैं विरोध नहीं है. काहेतैं ? कपालमें घटका प्रागभाव है तहां घटका अन्योन्याभावभी है; और जब कपालमें घटका प्रध्वंसाभाव होवै तबभी घटका अन्योन्याभाव है. और तंतुमें घटका अत्यंताभाव है तहांभी घटका अन्योन्याभाव है, भूतलमें घटका सामयिकाभाव है तहांभी घटका अन्योन्याभाव है, इस रीतिसैं अन्योन्याभावका किसी अभावसैं विरोध नहीं तथापि संसर्गाभावका यह स्वभाव है:—चतुर्विध संसर्गाभावमें एक संसर्गाभाव एककालमें रहै है दूसरा रहै नहीं. जैसैं कपालमें उत्पत्तिसैं प्रथम घटका प्रागभाव रहै है तिस कालमें घटका प्रध्वंसाभाव रहै नहीं. प्रध्वंसाभाव घटका होवै तब प्रागभाव रहै नहीं; और सामयिकाभाव अत्यंताभाव कपालमें घटके कदीभी रहैं नहीं. यद्यपि कपालमें घटके प्रागभावप्रध्वंसाभाव होवैं तब पटका अत्यंताभावभी रहै है, तथापि एक प्रतियोगिके दो संसर्गाभाव

रहे नहीं यह नियम है. अपर प्रतियोगिका दूसरा संसर्गाभाव रहनेका विरोध नहीं. तैसैं भूतलादिकनमें घटका सामयिकाभाव रहै है,. तहां घटका अत्यंताभाव अथवा प्रागभाव तथा ध्वंसाभाव रहै नहीं; और वायुमें रूपात्यंताभाव है तहां रूपके प्रागभावादिक रहै नहीं.

यद्यपि संयोगसंबंधतैं कदाचित् भूतलादिकनमें घट रहैहै समवाय संबंधतैं कपाल विना अन्यपदार्थमें घट कदीभी रहै नहीं, यातैं समवाय संबंधतैं घटका अत्यंताभाव भूतलादिकनमें है और संयोगसंबंधतैं घटका सामयिकाभाव है यातैं सामयिकाभाव और अत्यंताभावका परस्पर विरोध संभवै नहीं, तथापि घटके संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभावका घटके संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावसैं विरोध है. समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावसैं विरोध नहीं. यातैं यह नियम सिद्धहुया:—जिस अधिकरणमें जाकालमें जिसपदार्थका जा संबंधसैं एक संसर्गाभाव होवै तिस अधिकरणमें ताकालमें तिस पदार्थका तासंबंधसैं अपरसंसर्गाभाव होवै नहीं. अन्यसंबंधसैं होवै है; जासंबंधसैं जो पदार्थ जहां न होवै तहां तिसपदार्थका तत्संबंधावच्छिन्नाभाव कहिये है. भूतलमें संयोगसंबंधतैं कदाचित् घट होवैहै यातैं संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव घटका भूतलमें कदीभी नहीं; किंतु भूतलत्व जातिमें और भूतलके रूपादिक गुणनमें संयोगसंबंधतैं घट कदाचित् भी रहै नहीं. काहेतैं ? दो द्रव्यका संयोग होवै है, द्रव्यका और जातिका, तैसैं द्रव्यका और गुणका संयोग होवै नहीं यातैं भूतलत्वमें और भूतलके रूपादिगुणनमें घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है, और भूतलत्वमें तैसैं रूपादिक गुणनमें समवायसंबंधतैंभी घट कदाचित् भी रहै नहीं. काहेतैं:—

कार्य द्रव्यका अपने उपादान कारणमें समवायसंबंध होवै है अन्यमें नहीं. गुणका समवाय गुणीमें होवै है, जातिका समवाय व्यक्तिमें होवै है, क्रियाका समवाय क्रियावालेमें होवै है, अन्य स्थानमें कहूं समवायसंबंध होवै नहीं. यद्यपि परमाणुआदिक नित्यद्रव्यनमेंभी विशेषपदार्थका समवाय नैयायिक मानै हैं तथापि विशेषपदार्थ अप्रसिद्ध है ताकी कल्पना निष्प्रयोजन है, यह अ-

द्वैतग्रंथनमें स्पष्ट है. और दीधितिकारशिरोमणिभट्टाचार्यनेभी विशेष पदार्थका खंडनही कह्या है, यातैं उपादानकारण गुणी व्यक्ति क्रियावानमेंही कार्य द्रव्य गुण जाति क्रियाका क्रमतैं समवायसंबंध है और किसीका किसीमें समवायसंबंध नहीं. इसरीतिसैं भूतलत्वमें और भूतलके रूपादिक गुणनमें घटका समवायसंबंध कदीभी होवै नहीं; किंतु कपालमेंही घटका समवाय होवै है; यातैं घटके उपादानकारण कपालकूं त्यागिके और स्थानमें सारै घटका समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है; और घटका अन्यसंसर्गाभाव तिस अत्यंताभावके साथि रहै नहीं. काहेतैं ? घटका प्रागभाव प्रध्वंसाभाव तो कपाल विना अन्य स्थानमें रहै नहीं और सामयिकाभाव तहां होवै है, जहां किसी कालमें जा संबंधसैं प्रतियोगी होवै किसी संबंधसैं जा कालमें प्रतियोगी न होवै ताकालमें तत्संबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव होवै है; जहां किसी कालमें जा संबंधसैं प्रतियोगी होवै नहीं तहां तत्संबंधावच्छिन्न अत्यंताभावही होवै है. कपाल विना अन्यपदार्थनमें समवायसंबंधतैं घट कदाचित् रहै नहीं यातैं घटके समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावके अधिकरणमें घटका समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव रहै नहीं.

और विचार करै तो द्रव्यका समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव अप्रसिद्ध है. संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभावही द्रव्यका प्रसिद्ध है. काहेतैं ? नित्यद्रव्य तौ समवायसंबंधतैं किसीमें रहै नहीं; यातैं नित्यद्रव्यका तो समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंतभावभी है. समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव नित्यद्रव्यका कहूं नहीं; और कार्यद्रव्यका अपने उपादानकारणमें तौ प्रागभाव अथवा प्रध्वंसाभाव होवै है तहां समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव अथवा समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव रहै नहीं, और अपनें उपादानकारणकूं त्यागिके अन्यपदार्थमें समवायसंबंधतैं कार्यद्रव्य कदाचित् रहता होवै कदाचित् नहीं रहता होवै तौ समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव होवै है. और उपादानसैं भिन्नमें कार्य द्रव्य कदाचितभी रहै नहीं, यातैं उपादानसैं भिन्न पदार्थनमें कार्य द्रव्यका समवायसंबंधावच्छिन्न सामयि-

काभाव संभवै नहीं; किंतु तहांभी समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावही कार्य द्रव्यका है. इस रीतिसैं समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव द्रव्यका अप्रसिद्ध है.

और गुणक्रियाभी समवायसंबंधतैं जाद्रव्यमें उपजिके नष्ट होय जावै ताद्रव्यमें समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव नहीं; किंतु प्रथम प्रागभाव है, पश्चात् प्रध्वंसाभाव है, और घटके गुणक्रिया समवायसंबंधसैं अन्यद्रव्यमें कदीभी रहै नहीं; तहाभी तिनका **समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव** है सामयिकाभाव नहीं; इस रीतिसैं गुणक्रियाकाभी समवायसंबंधावच्छिन्नसामयिकाभाव अप्रसिद्ध है; तैसैं संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभावभी गुणक्रियाका अप्रसिद्ध है. काहेतैं ? संयोगसंबंधतैं गुणक्रिया कदाचित् रहते होवै, कदाचित् नहीं रहते होवै तौ संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव गुणक्रियाका होवै, और संयोगसंबंधतैं गुणक्रिया किसीमें कदाचित् रहै नहीं; यातैं गुणक्रियाका संयोग संबंधावच्छिन्न **अत्यंताभाव** ही है. सो अत्यंताभाव सकलपदार्थनमें है. काहेतैं ? संयोगसंबंधतैं गुणक्रिया किसी पदार्थमें रहते होवै तो तिस पदार्थमें संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव गुणक्रियाका नहीं होवै, सो संयोगसंबंधतैं गुणक्रियाका आधार कोई है नहीं; यातैं गुणक्रियाका संयोग संबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव केवलान्वयि है. जाका अभाव कहूं न होवै सो **केवलान्वयि** कहिये है. उक्त अत्यंताभाव सारै है तिस अत्यंताभावका अभाव कहूं नहीं; यातैं **केवलान्वयी** कहिये है. इस रीतिसैं समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव और संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव गुणका और क्रियाका अप्रसिद्ध है.

तैसैं जातिकाभी सामयिकाभाव अप्रसिद्ध है. काहेतैं? संयोग संबंधसैं तो जाति किसी पदार्थमें कदाचित्भी रहै नहीं यातैं सकलपदार्थनमें जातिका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है. सामयिकाभाव नहीं; तैसैं अपना आश्रय जो व्यक्ति तामें समवायसंबंधसैं जाति सदा रहे हैं ता व्यक्तिमें जातिका समवायसंबंधतैं कोई अभाव रहै नहीं. जैसैं घटत्वजाति घटव्यक्तिमें समवाय-

संबंधतैं रहै है तहां घटत्वका अत्यंताभाव वा सामयिकाभाव अथवा प्रागभाव तथा प्रध्वंसाभाव रहै नहीं. काहेतैं ? प्रागभाव प्रध्वंसाभाव तो अनित्यके होवै हैं. घटत्व नित्य है ताके प्रागभाव प्रध्वंसाभाव संभवै नहीं और जहां प्रतियोगी कदाचित्‌भी होवै नहीं तहां अत्यंताभाव होवै है. और जहां प्रतियोगी कदाचित् होवै कदाचित् नहीं होवै तहां सामायिकाभाव होवै है. घटमें घटत्व सदा समवायसंबंधतैं रहै हैं; यातैं घटमें घटत्वका समवायसंबंधावच्छिन्नात्यंताभाव और समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव संभवै नहीं, तैसें घटसैं भिन्न जो घटत्वके अनाधार सकल पटादिक हैं तिनमें घटत्व जाति समवायससंबंधतैं कदीभी रहै नहीं, यातैं तिनमेंभी घटत्व जातिका समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव नहीं; किंतु समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है. इस रीतिसैं द्रव्यसैं भीन्नपदार्थका सामयिकाभाव अप्रसिद्ध है.

और द्रव्यभी नित्य अनित्य भेदसैं दो प्रकारके हैं. पृथिवी जल तेज वायु द्व्यणुकादिरूप अनित्य है, आकाश काल दिशा आत्मा मन और परमाणुरूप पृथिवी जल तेज वायु ये नित्य द्रव्य हैं. सो नित्यद्रव्य समवायसंबंधतैं कदाचित् किसी पदार्थमें रहै नहीं, यातैं तिनका तो समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव कहूं नहीं; किंतु समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावही सारै है. तैसैं अनित्य द्व्यणुकादिद्रव्य समवायसंबंधतैं अपने अवयव परमाणु आदिकमें रहै हैं अवयव विना अन्यपदार्थमें अनित्य द्रव्य समवाय संबन्धसैं कदीभी रहै नहीं. अवयवनमें अवयवीका प्रागभाग प्रध्वंसाभाव होवै हैं, यातैं समवायसंबंधावच्छिन्न सामायिकाभाव अवयवमें कार्यद्रव्यका नहीं होवै है. अवयवसैं भिन्न पदार्थनमें समवायसंबंधतैं अवयव कदीभी रहै नहीं; यातैं समवाय संबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव तहां नहीं किंतु समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है,इस रीतिसैं द्रव्यकाभी समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव अप्रसिद्ध है; केवल संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव द्रव्यका प्रसिद्ध है सोभी कार्य द्रव्यका है. नित्य द्रव्यका तो संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभावही सारै है, सामयिकाभाव कहूंभी नित्यद्रव्यका नहीं.

काहेतैं? नित्यद्रव्यका अवृत्ति स्वभाव है; यातैं संयोगसंबंधतैं नित्यद्रव्य किसी पदार्थमें कदाचित् भी रहै नहीं. यद्यपि नित्यद्रव्यकाभी अपर द्रव्यसैं संयोग होवै है और जाका संयोग जामें होवै सो तामें संयोगसंबंधसैं रहै है तथापि नित्यद्रव्यका संयोगवृत्तिनियामक नहीं. जैसैं कुंडबदरका संयोग बदरकी वृत्तिका नियामक है कुंडकी वृत्तिका नियामक नहीं, तैसैं नित्य द्रव्यका कार्यद्रव्यसैं संयोगभी कार्यद्रव्यकी वृत्तिका नियामक है नित्य द्रव्यकी वृत्तिका नियामक नहीं. इसकारणतैं संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव नित्यद्रव्यका अप्रसिद्ध है. संयोगसंबंधतैं वा समवायसंबंधतैं जो पदार्थ किसीमें रहै नहीं सो अवृत्ति कहियेहै. नित्यद्रव्यमें तो संयोगसंबंधतैं और समवायसंबंधतैं अन्य पदार्थ रहैहैं अन्यपदार्थनमें संयोगसंबंधतैं वा समवायसंबंधतैं नित्यद्रव्य रहै नहीं; यातैं नित्यद्रव्यनकूं अवृत्ति कहैहैं, इसरीतिसैं संसर्गाभाव अन्योन्याभावके भेदतैं अभाव दोप्रकारका है; तिनमें संसर्गाभावके चारि भेद हैं. तिन चारोंका परस्पर विरोध है और तिन चारिकाही अपनें प्रतियोगिसैं विरोध है. प्रतियोगिसैं विरोध इस भांति है:—जो प्रतियोगी जा संबंधसैं जहां होवै ताका तत्संबंधावच्छिन्नाभाव होवै नहीं और एक संबंधसैं प्रतियोगी होवै अन्यसंबंधतैं ताका अभावभी होवै है. जैसैं संयोगसंबंधतैं भूतलमें घट होवै तब समवायसंबंधतैं घट है नहीं, यातैं संयोगसंबंधतैं घटवाले भूतलमैंभी घटका समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है; यातैं जा संबंधसैं प्रतियोगी होवै तत्संबंधावच्छिन्न संसर्गाभावका प्रतियोगिसैं विरोध है. संसर्गाभावका परस्पर विरोधभी समानसंबंधसैं है, और एक संबंधावच्छिन्न एक संसर्गाभाव जहां होवै तहां भी अन्य संबंधावच्छिन्न अपरसंसर्गाभाव होवै है. जैसैं घटशून्य भूतलमें घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव है और किसी घटका समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव तिसी भूतलमें रहै हैं; इसरीतिसैं प्रतियोगितैं संसर्गाभावका एकसंबंधतैं विरोध है और समानसंबंधतैं ही परस्पर संसर्गाभावनका विरोध है, और अन्योन्याभावका तो जैसैं प्रागभावादिकनतैं विरोध नहीं तैसैं स्वप्रतियोगिसैंभी विरोध नहीं

और विचार करै तौ अन्योन्याभावका अन्यभावनतैं यद्यपि विरोध नहीं तथापि अपनें प्रतियोगितैं अन्योन्याभावकाही विरोध है. और बहुत ग्रंथनमें यह लिखाहैः—संसर्गाभावका प्रतियोगिसैं विरोध है और अन्योन्याभावका प्रतियोगिसैं विरोध नहीं किंतु प्रतियोगितावच्छेदक धर्मसैं विरोध है. जैसैं भूतलमें घट होवै तिस कालमें भी घटका अन्योन्याभाव है. काहेतैं? भेदकूं अन्योन्याभावका कहैहैं. घटवाला भूतलभी घटरूप नहीं किंतु घटसैं भिन्न है.घटसैं भिन्न कहिये घटके भेदवाला भूतल है. भेदवाला और अन्योन्याभाववाला कहनेमें एकही अर्थ है. घटविना और सारै पदार्थ घट भिन्न है घटमें घटत्व रहैहैं तहां घटका भेदरूप घटान्योन्याभाव रहै नहीं. घटविना और किसी पदार्थनमें घटत्व रहै नहीं तहां सारै घटका अन्योन्याभाव है;इसरीतिसैं घटान्योन्याभावका घटसैं विरोध नहीं; किंतु घटत्वसैं विरोध है; तहां घटान्योन्याभावका प्रतियोगी घटहै और प्रतियोगितावच्छेदक घटत्व है.जाका अभाव होवै सो प्रतियोगी कहिये है, और प्रतियोगीमें जो धर्म रहै सो प्रतियोगितावच्छेदक कहिये है. यद्यपि प्रतियोगीमें रहनेवाले धर्म बहुत है, जैसैं घटमें घटत्व है,और पृथ्वीत्व द्रव्यत्व पदार्थत्वादिक भी घटमें रहैहैं तिनमें पृथ्वीत्वादिकभी घटान्योन्याभावके प्रतियोगितावच्छेदक हुये चाहिये, और पृथ्वीत्वादिक घटान्योन्याभावके प्रतियोगितावच्छेदक नहीं है. पृथिवी अन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक पृथ्वीत्व है, द्रव्यान्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक द्रव्यत्व है, घटान्योन्याभावके प्रतियोगितावच्छेदक पृथिवीत्व द्रव्यत्वादिक नहीं है और घटरूप प्रतियोगिमें तौ रहै हैं, यातैं घटत्वकी नांई घटान्योन्याभावके पृथिवीत्व द्रव्यत्वादिक प्रतियोगितावच्छेदक कहे चाहिये; तथापि अभावबोधकपदके साथ प्रतियोगिबोधक पदके उच्चारण करें जिस धर्मकी प्रतीति होवै है सो प्रतियोगितावच्छेदक कहिये है.घटान्योन्याभाव कहनेमें प्रतियोगिबोधक घटपद हैं,तैसैं "पटो घटो न" इसरीतिसैंभी प्रतियोगिबोधक घटपद है, ताके उच्चारण करें घटत्वकी प्रतीति होवै है पृथिवीत्व द्रव्यत्वादिकनकी प्रतीति होवै नहीं; यातैं घटान्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक घटत्व है पृथिवीत्वादिक नहीं, और

"जलं पृथिवी न" इसरीतिसैं कहैं और पृथिवी अन्योन्याभाव कहै तब प्रतियोगिबोधक पृथिवीपद है ताके उच्चारण करैं तो पृथिवीत्वकी प्रतीति होवै है; तहां प्रतियोगितावच्छेदक पृथिवीत्व है. "गुणो द्रव्यं न" इसरीतिसैं कहैं और द्रव्यान्योन्याभाव कहैं तब प्रतियोगिबोधक द्रव्यपद है ताके उच्चारण करैं द्रव्यत्वकी प्रतीति होवै है, तहां प्रतियोगितावच्छेदक द्रव्यत्व है; घटपदके उच्चारण करैं घटत्वकी प्रतीति होवै है पृथिवीत्वादिकनकी नहीं. यामें यह हेतु है:—घटपदकी घटत्व विशिष्टमें शक्ति है. जिस धर्मविशिष्टमें जा पदकी शक्ति होवै तिस धर्मकी तापदसैं प्रतीति होवै है; इसरीतिसैं घटान्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक घटत्व है सो घटमें रहै है घटान्योन्याभाव घटमें रहै नहीं. घटसैं भिन्न सकल पदार्थनमें घटका अन्योन्याभाव रहै है तहा घटत्व रहै नहीं; यातैं घटत्वरूप प्रतियोगितावच्छेदकसैं घटान्योन्याभावका विरोध है और घटरूप प्रतियोगिसैं विरोध नहीं और संसर्गाभावका प्रतियोगिसैं विरोध है, इसरीतिसैं बहुत ग्रंथकारोंने लिखा है. और संसर्गाभाव अन्योन्याभावके लक्षणभी इसी अर्थके अनुसारी करै है. प्रतियोगीविरोधी जो अभाव सो **संसर्गाभाव** कहिये है, और प्रतियोगितावच्छेदक विरोधीअभाव **अन्योन्याभाव** कहिये है. इस रीतिके लक्षण कहनेसेभी अन्योन्याभावका प्रणियोगिसैं अविरोधही सिद्ध होवै है; और चतुर्विध संसर्गाभावका प्रतियोगिसैंही विरोध सिद्ध होवै है; परंतु ग्रंथकारनका यह समग्र लेख स्थूल दृष्टिसैं है विवेक दृष्टिसैं नहीं. काहेतैं? अत्यंताभावका जिसरीतिसैं प्रतियोगितैं विरोध है तिसरीतिसैं अन्योन्याभावकाभी प्रतियोगितैं विरोध है. जा भूतलमें संयोगसंबन्धतैं घट होवै तिसी भूतलमें समवायसंबंधावच्छिन्न घटका अत्यंताभावकाभी प्रतियोगिसैं सर्वथा विरोध नहीं; किंतु जिस संबंधसैं प्रतियोगी होवै तत्संबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव होवै नहीं, यातैं अभावका प्रतियोगितावच्छेदक संबंधविशिष्टप्रतियोगिसैं विरोध है, प्रतियोगितावच्छेदकसंबंधतैं अन्यसंबंधविशिष्टप्रतियोगिसैं किसी अभावका विरोध नहीं; जिस संबंधसैं पदार्थका अभाव कहिये सो

प्रतियोगितावच्छेदक संबंध कहिये है. अत्यंताभावके प्रतियोगितावच्छेदक संबंध अनेक हैं. काहेतैं? जिस अधिकरणमें एक संबंधसैं जो पदार्थ होवै तिसी अधिकरणमें अपरसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव तिस पदार्थका होवै है. जैसैं पृथिवीमें समवायसंबंधतैं गंध होवै है, संयोगसंबंधतैं कदीभी होवै नहीं; यातैं पृथिवीमें गंधका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है, तहां प्रतियोगितावच्छेदक संयोगसंबंध है. जलमें संयोगसंबंधतैं वा समवायसंबंधतैं गंध नहीं; किंतु कालिक संबंधतैं जलमें भी गंध है, यातैं जलमें गंधका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है और समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है; तहां प्रथम अभावका प्रतियोगितावच्छेदक संयोगसंबंधहै, द्वितीय अभावका प्रतियोगिताच्छेदक समवायसंबंध है;और कालिक संबंधसैं एक एक जन्यमें सारै पदार्थ रहै है; यातैं द्व्यणुकादिरूप जलमें गंध होनेतैं जलवृत्ति गंधाभावका प्रतियोगितावच्छेदक कालिक संबंध नहीं,और नित्यपदार्थमें कालिक संबंधसैं कोई पदार्थ रहै नहीं; यातैं परमाणुरूप जलमें गंधका कालिक संबंधावच्छिन्न अत्यंताभावभी है;यातैं परमाणुवृत्ति गंधाभावका प्रतियोगितावच्छेदक कालिक संबंध है. इस रीतिसैं अत्यंताभावके प्रतियोगितावच्छेदक संबंध अनेक हैं. अन्य भावनका प्रतियोगिताच्छेदक संबंध एक एक है. जैसैं कपालमें घटका प्रागभाव है अन्यमें कहूं घटका प्रागभाव नहीं सो कपालमें घटके प्रागभावका प्रतियोगितावच्छेदक समवायसंबंध है. प्रागभावका प्रतियोगितावच्छेदक अन्यसंबंध नहीं. यत्संबंधावच्छिन्न प्रागभाव जाका जामें होवै तासंबंधसैं ताकी उत्पत्ति तिसमें होवै है यह नियम है. कपालमें घटकी उत्पत्ति समवायसंबंधतैं होवै है अन्यसंबंधसैं नहीं होवै है; यातैं कपालमें घटका समवायसंबंधावच्छिन्नप्रागभाव है. ताका प्रतियोगितावच्छेदक एक समवायसंबंध है. तैसैं "कपाले समवायेन घटो नष्टः" ऐसी प्रतीति ध्वंसाभावकी होवै है यातैं ध्वंसका प्रतियोगितावच्छेदकभी एक समवायसंबंध है, तैसैं सामयिकाभावभी जन्य द्रव्यकाही होवै है, और जन्यद्रव्यका भी संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव ही होवै है. समवायसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव अप्रसिद्ध है, यह पूर्व कही

है; यातैं सामयिकाभावकाभी प्रतियोगितावच्छेदक संयोगसंबंध है, तैसैं अन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक एक अभेदसंबंध है; तिस अभेदकूं ही नैयायिक तादात्म्यसंबंध कहे हैं. अभेदसंबंधावच्छिन्नाभावकूंही अन्योन्याभाव कहे हैं, अन्यसंबंधावच्छिन्नाभावकूं संसर्गाभाव कहे हैं, अन्योन्याभाव कहैं नहीं. इसरीतिसैं अन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदकसंबंध एक तादात्म्यनामा अभेद है; और कोई संबंध अन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक नहीं. और प्रतियोगितावच्छेदक संबंधविशिष्ट प्रतियोगीका अभावसैं विरोध है, अन्य संबंधविशिष्टप्रतियोगीका तो अत्यंताभावसैंभी विरोध नहीं यह निर्णीतही है. अन्योन्याभावका जो प्रतियोगितावच्छेदक अभेद संबंध है ता अभेदसंबंधसैं अपने आत्मामें ही घट रहै है भूतलकपालादिकनमें अभेदसंबंधसैं घट कदीभी रहै नहीं. जहां अभेदसंबंधसैं घट नहीं रहै तहां सारे घटका अन्योन्याभाव है. और अपनें स्वरूपमें अभेदसंबंधसैं घट रहै है. तहां घटका अन्योन्याभाव नहीं. इसरीतिसैं प्रतियोगितावच्छेदक संबंधविशिष्ट प्रतियोगिका जैसैं अत्यंताभावसैं है; विरोध तैसैं अन्योन्याभावसैंभी प्रतियोगितावच्छेदक संबंधविशिष्ट प्रतियोगीका विरोध स्पष्ट है. प्रतियोगितावच्छेदक संबंधविशिष्टप्रतियोतियोगिसैं अत्यंताभावकीनाई अन्योन्याभावका विरोध स्पष्ट होनेतैं प्रतियोगिसैं अविरोध कथन सकल ग्रंथकारोंनें विवेकनेत्र निमीलनसै कह्या है; यातैं सकल अभावनका प्रतियोगिसैं विरोध है. प्रथम प्रसंग यह है:—जहां भूतलादिकनमें कदाचित् घट होवै कदाचित् नहीं होवै तहां घटकासामयिकाभाव है, अत्यंताभाव नहीं. काहेतैं ? अभावका प्रतियोगिसैं विरोध होवै है, सो विरोध पूर्व उक्तरीतिसैं निर्णीत है; यातैं भूतलमें संयोगसंबंधतैं घट होवै तब तो घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव नहीं; और घटकूं उठायलेवै तब घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है ऐसा मानना होवैगा. यातैं भूतलमें घटके अत्यंताभावके उत्पत्तिनाश मानने हेवैगा. उत्पत्तिनाश माने विना कदाचित है कदाचित नहीं यह कहना अत्यंताभावमें संभवै नहीं, सो उत्पत्तिनाश घटात्यंताभावके संभवै नहीं. काहेतैं ? जहां संयोगसंबंधतैं घट

नहीं तहां सारे घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है, सो घटका अत्यंताभाव सारे पदार्थनमें एक है नाना नहीं. काहेतें ? प्रतियोगिभेदसें अभावका भेद होवै है. अधिकरणभेदसें अभावका भेद होवै नहीं यह तार्किकसिद्धांत है. जैसें घटाभाव पटाभावके प्रतियोगी भिन्न है सो अभाव भिन्न है; और भूतलमें संयोगसंबंधतें घटात्यंताभाव है तैसें भूतलत्वमेंभी संयोगसंबंधतें घट नहीं है; तैसें घटत्व जातिमेंभी संयोगसंबंधतें घट नहीं, यातें संयोगसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव है तैसें पटत्वादिकनमेंभी संयोगसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव है. इस रीतिसें अनंत अधिकरणमें संयोगसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव है तिसके अधिकरण यद्यपि अनंत है तथापि प्रतियोगी घट है; यातें संयोगसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव एक है, परंतु भूतलत्व घटत्वादिक जातिसें तो घटका संयोगसंबंध कदीभी होवै नहीं; यातें भूतलत्व एक घटत्वादिक जातिमें घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव उत्पत्तिनाशरहित नित्य है, और भूतलादिकनमें संयोगसंबंधतें कदाचित् घट होवै है कदाचित् नहीं होवै है; यातें घटकालमें भूतलवृत्ति घटात्यंताभाव नष्ट होवै है. और घटके अपसरणकालमें घटात्यंताभाव उपजै है; इस रीतिसें घटत्वादिजातिमें घटात्यंताभाव नित्य कहनां सोई घटात्यंताभाव भूतलादिकनमें उत्पत्तिनाशवाला अनित्य है, यह कहना असंगत है; यातें जहां संयोगसंबंधतें कदाचित् घट होवै तहां घटशून्य कालमें घटका संयोगसंबंधावच्छिन्नाभाव कोई अनित्यअभाव मान्या चाहिये सोई सामयिकाभाव कहिये है. और तिसी भूतलमें समवायसंबंधतें कदाचितभी घट होवै नहीं यातें घटका समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव है. तैसें घटत्व भूतलत्वादिकनमें संयोगसंबंधतें कदाचित्भी घट होवै नहीं और समवायसंबंधतैंभी कपालविना अन्यपदार्थमें घट होवै नहीं; यातें घटत्वादिकनमें संयोगसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव है. और समवाय संबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव है सो अत्यंताभाव उत्पत्तिनाशरहित नित्य है; यातें यह निष्कर्ष सिद्ध हुवाः—जहां कदाचित् संयोगसंबंधतें प्रतियोगी होवै कदाचित् नहीं होवै तहां संयोगसंबंधाव-

च्छिन्सामयिकाभा कहिये है. घटके सामयिकाभा उत्पत्तिनाशवाले हैं, यातैं प्रतियोगिभेदविनाभी एक घटके सामयिकाभाव अनंत हैं और जा संबंधसैं जहां घटरूप प्रतियोगी कदीभी रहै नहीं तहां घटका तत्संबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव कहियेहै. सो अत्यंताभाव उत्पत्तिनाशरहित है यातैं नित्य है; और घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव अनंत अधिकरणमें एक है. तैसैं समवायसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभावभी अनंत अधिकरणमें एक है. किसी अधिकरणका नाशभी होय जावै तौभी सोई अत्यंताभाव अन्यअधिकरणमें रहैहै यातैं अत्यंताभावका नाश होवै नहीं. जैसैं घटका समवायसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव तंतुमें है, तंतुत्व जातिमें है घटत्वमें है पटलमें है कपालत्वमें है एक कपालकूं त्यागिके सारे पदार्थनमें है, तिनमें सारै समवायसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव एक है; तंतु आदिक अनित्यपदार्थनका नाश हुयेंभो तंतुत्वादिक नित्यपदार्थनमें सोई अत्यंताभाव रहै है, यातैं अत्यंताभाव नित्य है और प्रतियोगिभेदसैं अत्यंताभावका भेद होवै है. जैसैं घटात्यंताभावसैं पटात्यंताभाव भिन्न है और प्रतियोगितावच्छेदकसंबंधके भेदसैं प्रतियोगिभेदविनाभी अत्यंताभावका भेद होवै है समवायसंबंधावच्छिन्न गंधात्यंताभावका और संयोगसंबंधावच्छिन्न गंधात्यंताभावका प्रतियोगी तो एक गंध है, परंतु प्रतियोगितावच्छेदक संबंध दो होनेतैं दोअभाव हैं. जो दोनहीं होवै एकही मानै तौ पृथ्वीमें समवाय संबंधावच्छिन्न गन्धात्यन्ताभावके नहीं होनेतैं संयोगसंबंधावच्छिन्न गंधात्यंताभावभी नहीं होवैगा. जो ऐसें कहै पृथिवीमें संयोगसम्बंधावच्छिन्न अत्यन्ताभावभी नहीं है तौ " पृथिव्यां संयोगेन गंधो नास्ति " ऐसी प्रतीति नहीं हुई चाहिये, यातैं पृथिवीमें संयोगसंबंधावच्छिन्न गंधात्यंताभाव है और समवायसंबंधावच्छिन्न गंधात्यंताभाव नहीं है, यातैं प्रतियोगीभेदतैं जैसैं अत्यंताभावका भेद होवै है तैसैं प्रतियोगितावच्छेदक संबंधभेदतैंभी अत्यंताभावका भेद होवै है और सामयिकाभावका प्रतियोगितावच्छेदक संबंधके भेद विनाभी समय भेदसैं भेद होवै है. जैसैं भूतलमें घटका संयोग जितनें होवै नहीं तब घटका

संयोगसंबंधावच्छिन्न सामयिकाभाव है और भूतलमें घटका संयोग होवै तब घटके प्रथमसामायिकाभावका नाश होय जावै है. जब भूतलमें घटकूं उठाय लेवैं तब घटका संयोगसंबंधावाच्छिन्न सामयिकाभाव और उपजै है. तिसी घटकूं भूतलमें फेरि ल्यावै तब दूसरा सामयिकाभाव नष्ट होवै है; फेरि तिस घटकूं उठाय लेवैं तब तिसी घटका संयोगसंबंधावाच्छिन्न सामयिकाभाव और तृतीय उपजै है, इस रीतिसैं प्रतियोगिभेदविना और प्रतियोगितावच्छेदक संबंधभेदविनाभी कालभेदसैं सामयिकाभावका भेद होवै है; यह सामयिकाभाव और अत्यंताभावकी विलक्षणता स्पष्ट है, इसरीतिसैं न्यायसंप्रदायमें पांचप्रकारका अभाव है.

७१ नवीन तार्किककरि सामयिकाभावके स्थानमें अनित्यअत्यंताभावका अंगीकार और तामें शंकासमाधान.

और नवीन तार्किक सामयिकाभावकूं नहीं मानैं हैं. भूतलादिकनमें घटादि कनका जहां सामयिकाभाव कह्या है तहांभी सारै घटादिकनका अत्यंताभाव है और जो भूतलादिकनमें घटादिकनका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव माननेमें दोष कह्याहै, जाति गुणादिकनमें घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव नित्य है, और भूतलादिकनमें तिसी घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अभाव अनित्य है सो नित्य अनित्य परस्पर भिन्नहै एक नहीं. जातिगुणादिकनमें और भूतलादिकनमें संयोगसंबंधावच्छिन्न घटाभावका भेद नहीं मानै तो नित्यता और अनित्यतारूप जो विरोधी धर्म तिनका संकर होवैगा ताका **समाधान** इसरीतिसैं गंगेशोपाध्यायदिक नवीन करें हैं:--भूतलादिकनमेंभी घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अभाव अनित्य नहीं किंतु नित्य है. जब भूतलमें घटका संयोग होवै तिंसकालमें भी घटका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव रहै है ताका नाश होवै नहीं, यातैं अत्यंताभाव केवलान्वयी है. जाका अभाव कहूं न होवै किंतु सकल पदार्थनमें सर्वदा रहैं सो केवलान्वयी कहिये है.

और जो यह शंका होवै:— संयोगसंबंधतैं घटके होनेतैं संयोगसंबंधाव-

च्छिन्न घटात्यंताभाव मानोगे तौ संयोगसंबंधतैं घटवाले भूतलमें " संयोगेन घटो नास्ति " ऐसी प्रतीति हुई चाहिये.

ताका यह समाधान करै हैः—यद्यपि संयोगसंबंधतैं घटवाले भूतलमेंभी निर्घटभूतलकीनांई संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव घटका है, तथापि निर्घटभूतलमें तो "संयोगेन भूतले घटो नास्ति " ऐसी प्रतीति होवै है,और सघट भूतलमें उक्त प्रतीति होवै नहीं. काहेतैं ? उक्त प्रतीतिका विषय केवल घटका अत्यंताभाव नहीं है किंतु भूतलसंबंधी घटके आधारकालतैं अतिरिक्त काल और संयोगसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव ये दोनों जहां होवैं तहां "संयोगेन घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै है. भूतलमें संयोगसंबंधतैं घट नहीं होवै तब भूतलसंबंधीघटाधार काल नहीं है किंतु भूतल असंबंधी जो घट ताका अनाधारकाल है; यातैं भूतलसंबंधी घटके आधारकालसैं अतिरिक्त काल है. और संयोगसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव है,यातैं "संयोगेन घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवैहै, और जहां भूतलमें संयोगसंबंधतैं घट है तहांभी अत्यंताभावकूं नित्यता होनेतैं संयोगसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव तो है परंतु भूतलसंबंधी जो घट ताका आधार काल है, यातैं भूतलसंबंधी घटाधारकालसैं अतिरिक्त काल नहीं है; यातैं संयोगसंबंधतैं घट होनेतैं " संयोगेन भूतले घटो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै नहीं. इसरीतिसैं अत्यंताभाव तो सारे देशमें प्रतियोगीके होनेतैं और नहीं होनेतैं सर्वदा रहै हैं, परंतु अभावका घटादिक प्रतियोगिका संबंधि जो भूतलादिक अनुयोगी ताका आधारकाल प्रतियोगीके होनेतैं होवै है. प्रतियोगीसंबंधी अनुयोगीके आधारकालसैं अतिरिक्त काल होवै नहीं, यातैं प्रतियोगी 'नास्ति' ऐसी प्रतीति प्रतियोगीके होनेतैं होवै नहीं और प्रतियोगी नहीं होवै तब प्रतियोगी संबंधी अनुयोगीके आधारकालसैं अतिरिक्तकाल और अत्यंताभाव दोनों है, यातैं " भूतले संयोगेन घटो नास्ति " ऐसी प्रतीति होवै है. इसरीतिसैं जहां प्राचीन सामयिकाभाव मानै है तहांभी सारे अत्यंताभाव हैं और अत्यंताभावकूं अनित्यता होवै नहीं. और उक्त कालके अभावतैं प्रतियोगीके होनेतैं अत्यंताभावकी प्रतीति होवै नहीं.

७२ नवीनतार्किकके उक्तमतका खंडन,

यह नवग्रंथकारोंका मत है सो समीचीन नहीं,प्राचीनमतही समीचीन है:— काहेतैं ? प्रतियोगीके होनेतैं अत्यंताभाव मानै तो प्रतियोगी अभावका रस्पर विरोध है या कथाका उच्छेद हुया चाहिये. और जो नवीन ऐसैं कहैं विरोध दो प्रकारका होवै है:—एक तो सहानवस्थानरूप होवै है और दूजा सहाप्रतीतिरूप विरोध होवै है. एक अधिकरणमें एक कालमें नहीं रहैं तिनको सहानवस्थान रूप विरोध कहिये है. जैसें आतप शीतताका है. ऐसा विरोध अभावप्रतियोगीका नहीं है. काहेतैं ? प्रतियोगीके होनेतैं अत्यंताभाव रहै हैं; किंतु अभाव प्रतियोगीका सहाप्रतीतिरूप विरोध है. एक कालमें एक अधिकरणमें जिनकी प्रतीति न होवै तिनका सहाप्रतीतिरूप विरोध कहिये है. प्रतियोगीके होनेतैं अत्यंताभावकी प्रतीति होवै नहीं, यातैं प्रतियोगी अभावका सहाप्रतीति रूप विरोध है. सहानवस्थानरूप विरोध नहीं, इस रीतिसैं नवीनका समाधान सर्व लोकशास्त्रसैं विरुद्ध है. काहेतैं ? अभावका अभाव प्रतियोगी कहिये है. जहां अभाब न होवै तहां अभावका अभाव होवै है. जैसै घटवाले देशमें घटका अभाव नहीं है किंतु घटाभावका अभाव है सोई घट है और घटाभावका प्रतियोगी है, इस रीतिसैं अभावके अभावकूं सर्व शास्त्रनमें प्रतियोगी कहै हैं; नवीन रीतिसैं सो कथन असंगत होवैगा. काहेतैं? नवीन मतमें घटवाले देशमें घटका अभावभी है यातैं घटाभावका अभाव कहना बनैं नहीं. यद्यपि वक्ष्यमाण रीतिसैं घटतैं भिन्नही घटाभावाभाव है घटरूप नहीं तथापि घटके समनियत घटाभावाभाव है; यह वार्ता निर्विवाद है. और नवीन रीतिसैं घटवाले देशमें घटाभाव है यातैं घटाभावका अभाव नहीं होनैतैं दोनोंकी समनियतता संभवै नहीं, यातैं नवीन मत शास्त्रविरुद्ध है और प्रतियोगी अभाव समानाधिकरण होवै नहीं यह सर्व लोकमें प्रसिद्ध है; तो लोकप्रसिद्ध अर्थका नवीन कल्पनासैं बाध होवैगा और घटके अधिकरणमें घटका अत्यंताभाव मानना प्रमाणशून्य है, किसी प्रमाणसैं सिद्ध होवै नहीं. जहां घट नहीं है तहां 'घटो नास्ति' इस प्रती-

तिसैं अत्यंताभाव सिद्ध होवै है. घटवाले देशमें ' घटो नास्ति ' ऐसी प्रतीति होवै नहीं और कोई प्रतीति घटवाले देशमें अत्यंताभावकी साधक है नहीं यातैं प्रतियोगिदेशमें अत्यंताभावका अंगीकार प्रमाणसिद्ध नहीं उलटा घटवाले देशमें " घटात्यंताभावो नास्ति " ऐसी प्रतीति होवै है. ता प्रतीतिसैं विरुद्ध अत्यंताभावका अंगीकार है, और घटवाले देशमें जो घटात्यंताभावकूं मानै ताकूं वृद्धिवाछा करिके चले पुरुषका मूलभी नष्ट होगया इस न्यायकी प्राप्ति होवैगी. काहेतैं ? अत्यंताभावकं केवलान्वयी साधनेवास्ते और नित्यता साधनेवास्ते घटवाले देशमें घटात्यंताभाव मान्या है, परंतु घटवाले देशमें घटात्यंताभाव मानै सो अत्यंताभावहीं निष्फल और निष्प्रमाण हो जावैगा. तथाहि सर्व पदार्थनका फलव्यवहार सिद्ध है. ' घटो नास्ति ' इस व्यवहारकी सिद्धि विना और तो घटात्यंताभावका फल संभवै नहीं. उक्तव्यवहारकी सिद्धिही फल है, और ' घटो नास्ति ' या प्रतीतिसैंही घटात्यंताभाव सिद्धि होवै है उक्तप्रतीतिविना घटात्यंताभावके होनेमें कोई प्रमाण नहीं. नवीन मतमें घटात्यंताभावसैं ' घटो नास्ति ' इस व्यवहारकी सिद्धि होवै नहीं; किंतु घटसंबंधी भूतलाधिकरणकालतैं अतिरिक्त कालसैं उक्तव्यवहारकी सिद्धि होवै है. काहेतैं? घटसंबंधी भूतलाधिकरण कालतैं अतिरिक्ताकाल होवै तब 'घटो नास्ति' यह प्रतीति होवै है. घटसंबंधी भूतलाधिकरण काल होवै तब 'घटो नास्ति' ऐसी प्रतीति होवै नहीं इस रीतिसैं 'घटो नास्ति' या प्रतीतिसैं घटसंबंधी भूतलाधिकरणकालतैं अतिरिक्त कालकी सिद्धि होवै है, घटात्यंताभावकी सिद्धि होवै नहीं. प्रतीतिकी नाई 'घटोनास्ति' इस व्यवहारकी सिद्धि नवीनमतमें घटात्यंताभावसैं होवै नहीं; किंतु उक्तकालसैं 'घटो नास्ति' यह व्यवहार होवैहै; यातैं घटात्यंताभाव नवीनमतमें निष्फल और निष्प्रमाण है. शब्दप्रयोगकूं व्यवहार कहैहैं, ज्ञानकूं प्रतीति कहै हैं, इस रीतिसैं नवीन मतसैं अत्यंताभावकूं नित्यता माननेवास्ते प्रतियोगीवाले देशमें अत्यंताभाव मानैं तो मूलतैं अत्यंताभावकी हानी होवैगी, यातैं घटवाले देशमें घटात्यंताभाव संभवै नहीं. और जहां भूतलमें कदाचित् घट होवै तहां अत्यंताभाव होवै तो अत्यंताभाव यह संज्ञाभी

निरर्थक होवैगी. जहां अत्यंताभाव होवै तीनि कालमें प्रतियोगी न होवै सो अत्यंताभाव संज्ञाकी रीतिसैं सिद्ध होवै है. यातैं जहां कदाचित् प्रतियोगी होवै कदाचित् न होवै तहां त्रिकालमें प्रतियोगीका अभाव नहीं यातैं अत्यंताभाव नहीं तासैं भिन्न कोई अभाव है ताकूं **सामयिकाभाव** कहै हैं.

७३ न्यायसंप्रदायमें घटके प्रध्वंसके प्रागभावकी घट और घटप्रागभावरूपता.

इस रीतिसै च्यारि प्रकारका संसर्गाभाव और अन्योन्याभाव मिलिके **पांच प्रकारका अभाव** हैः सो अभाव एक एक दो प्रकारका हैः—एक भावप्रतियोगिक होवै है दूसरा अभावप्रतियोगिक होवै है. भावका अभाव **भावप्रतियोगिक अभाव** कहिये है, अभावका अभाव **अभावप्रतियोगिक अभाव** कहिये है, जैसैं **प्रागभाव दोप्रकारका है,** घटादिकनका कपालादिकनमें **प्रागभाव भावप्रतियोगिक** है. जैसैं भावपदार्थका प्रागभाव है तैसैं अभावकाभी प्रागभाव होवै है, परंतु सादिपदार्थनका प्रागभाव होवै है अनादिका प्रागभाव होवै नहीं. अत्यंताभाव अन्योन्याभाव प्रागभाव तो अनादि हैं; यातैं तिनका तो प्रागभाव संभवै नहीं. प्रध्वंसाभाव अनंत तो है परंतु सादि है यातैं प्रध्वंसाभावका प्रागभाव होवै है; सो प्रध्वंसाभावका प्रागभाव प्रतियोगीरूप और प्रतियोगीका प्रागभावरूप होवै है. जैसैं मुद्गरादिकनतैं घटका नाश होवै ताकूं घटका प्रध्वंसाभाव कहै हैं; सो प्रध्वंसाभाव मुद्गरादिजन्य है. मुद्गरादिकनके व्यापारतैं पूर्व घटकालमें और घटके प्रागभाव कालमें नहीं होनेतैं सादि है, यातैं मुद्गरादिव्यापारतैं पूर्व घटध्वंसका प्रागभाव है सो ध्वंसका प्रागभाव घटकालमें है और घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व घटके प्रागभाव कालमें है; यातैं घटध्वंसका प्रागभाव घटकालमें तो घटरूप है और घटकी उत्पत्तिसैं पूर्व घटका प्रागभावरूप है; इस रीतिसैं घटध्वंसका प्रागभाव घट और घटके प्रागभावके अंतर्भूत है तिनतैं न्यारा नहीं, यह सांप्रदायिक मत है.

७४ उक्तमतका खंडन और घटप्रध्वंसके अभाव प्रतियोगिक प्रागभावकी सिद्धि.

परंतु यह मत युक्तिविरुद्ध हैः--काहेतैं ? घट तो भावरूप है और सादि है. घटका प्रागभाव अभावरूप है और अनादि है. एकही घटध्वंसप्रागभावकूं कदाचित् भावरूपता कदाचिदभावरूपता कहना विरुद्ध है, तैसैं कदाचित् सादिरूपता और कदाचिदनादिरूपता कहनाभी विरुद्ध है और घटकालमें "कपाले समवायेन घटोऽस्ति, घटप्रध्वंसो नास्ति" इस रीतिसैं विधिरूप और निषेधरूप दो प्रतीति विलक्षण होवै हैं तिनके विषयी परस्पर विलक्षण दो पदार्थ मानने चाहिये. तैसैं घटकी उत्पत्तिसैं पूर्वभी "कपाले घटो नास्ति, घटप्रध्वंसो नास्ति" इस रीतिसैं दो प्रतीति होवै है. यद्यपि सो दोनों प्रतीति निषेधमुख हैं तथापि विलक्षण हैं. काहेतैं ? प्रथम प्रतीतिमें तो नास्ति कहनेसैं प्रतीति जो होवै है अभाव ताका प्रतियोगी घट प्रतीत होवै है. और दूसरे प्रतीतिमें नास्ति कहनेसैं प्रतीत हुये अभावका घटप्रध्वंस प्रतियोगी प्रतीत होवै है; यातैं प्रतियोगीका भेद होनेतैं घट प्रागभावका घटप्रध्वंस प्रागभावका अभेद संभवै नहीं; किंतु घट और ताके प्रागभावतैं घटप्रध्वंसका प्रागभाव न्यारा मानना योग्य है अनुभवसिद्ध पदार्थका लाघवबलसैं लोप संभवै नहीं, यातैं सांप्रदायिक रीतिसैं घटप्रध्वंसप्रागभावका घट और ताके प्रागभावमें अंतर्भाव मानैं तौ लाघवभी अकिंचित्कर है. इस रीतिसैं प्रध्वंसाभावका प्रागभाव अभावप्रतियोगिक प्रागभाव अभाव है.

७५ सामयिकाभावके प्रागभावकी अभावप्रतियोगिता.

तैसैं सामयिकाभाव भी सादि होवै है, ताका प्रागभावभी अभावप्रतियोगिक प्रागभाव होवै है.

७६ प्राचीनप्रागभावके प्रध्वंसकी प्रतियोगिप्रतियोगी और प्रतियोगिप्रतियोगीके ध्वंसमें अंतर्भावका नवीनकरि खंडन और ताकी अभावप्रतियोगिता.

और प्रध्वंसाभावभी अत्यंताभाव अन्योन्याभावका तो होवै नहीं. का-

हेतैं ? दोनों अभाव अनादि अनंत हैं तैसैं प्रध्वंसाभावभी अनंत हैः ताकाभी प्रध्वंस संभवैं नहीं, परंतु प्रागभाव और सामयिकाभावका प्रध्वंस होवै है सांप्रदायिक रीतिसैं प्रागभावध्वंसकी प्रतियोगिप्रतियोगी और प्रतियोगिप्रतियोगीके ध्वंसके अंतर्भूत है तिनतैं पृथक् नहीं. जैसैं घटके प्रागभावका ध्वंस होवै है. सो घटकालमें और घटके ध्वंसकालमें है. घटकालमें तौ घटप्रागभावका ध्वंसप्रतियोगीस्वरूप है.काहेतैं? घटप्रागभावके ध्वंसका प्रतियोगी घटप्रागभावका है और घटप्रागभावका प्रतियोगी घट है. यातैं घटकालमें घटप्रागभावका ध्वंसप्रतियोगिका प्रतियोगीस्वरूप है, और मुद्गरादिकनतैं घटका नाश होवै तिसकालमेंभी घटप्रागभावका ध्वंस है और घट है नहीं यातैं तिसकालमें घटप्रागभावका ध्वंसप्रतियोगि प्रतियोगीका ध्वंसरूप है. है. काहेतैं ? घटप्रागभावध्वंसका प्रतियोगी जो घटप्रागभाव ताका प्रतियोगी घट है; ता घटका ध्वंसही घट प्रागभावका ध्वंस है. घटध्वंसतैं पृथक् घटप्रागभाव ध्वंस नहीं. इस रीतिसैं प्रागभावका ध्वंस कदाचित् अपने प्रतियोगीका प्रतियोगीरूप है और कदाचित् अपने प्रतियोगीके प्रतियोगीका ध्वंसरूप है प्रागभावध्वंस पृथक् नहीं.

यह सांप्रदायिक रीतिभी युक्तिविरुद्ध है. काहेतैं ? घट तो सांत है. और भावरूप है. और घटध्वंस अनंत है अभावरूप है. एकही घटप्रागभाव ध्वंसकूं सांत और अनंतसैं अभेदकथन तैसैं भाव और अभावसैं अभेद कथन विरुद्ध है. और घटकी उत्पत्ति होवै तब 'घटो जातः' और 'घटप्रागभावो नष्टः' इस रीतिसैं दो विलक्षण प्रतीति होवैहै;तिनमें 'घटो जातः' या प्रतीतिका विषय उत्पन्न घट है और 'घटप्रागभावो नष्टः' याप्रतीतिका विषय घटप्रागभावका ध्वंस है. तिनका अभेदकथन संभवै नहीं. तैसैं मुद्गरादिकनसैं घटका ध्वंस होनेसें ही ऐसी प्रतीति होवै है "इदानीं घटध्वंसो जातः,घटप्रागभावध्वंसा पूर्व घटोत्पत्तिकाले जातः" तहां वर्तमानकालमें घटध्वंसकी उत्पत्ति और अप्रतीतकालमें घटप्रागभावध्वंसकी उत्पत्ति सिद्ध होवै है. वर्तमानकालमें उत्पत्तिवालेसैं प्रतीतकालकी उत्पत्तिवालेका अभेद संभवै नहीं, यातैं घटप्रा-

गभावका ध्वंस घट और घटके ध्वंसतैं पृथक् है. यद्यपि वेदातपरिभाषादिक अद्वैत ग्रंथनमेंभी ध्वंसाप्रागभाव और प्रागभावका ध्वंस पृथक् नहीं लिखे किंतु पूर्वोक्तन्यायसंप्रदायकी रीतिसैं अंतर्भावही लिख्या है, तथापि श्रुति सूत्र भाष्य तौ इस निरूपणमें उदासीन हैं; यातैं जैसा अर्थ युक्ति अनुभवके अनुसार होवै सो मानना चाहिये. युक्ति अनुभवसैं विरुद्ध आधुनिक ग्रंथकार लेख प्रमाण नहीं, यातैं पूर्व उक्त अर्थ प्रमाणविरुद्ध नहीं; उलटा पृथक् माननाही युक्ति अनुभवके अनुसार है. इस रीतिसैं प्रागभावका ध्वंस अभावप्रतियोगिक प्रध्वंसाभाव है.

७७ घटान्योन्याभावके अत्यंताभावकी घटत्वरूपता और तामें दोष.

सामयिकाभाव केवल द्रव्यकाही होवै है यह पूर्व प्रतिपादन किया है यातैं अभावप्रतियोगिक सामयिकाभाव अप्रसिद्ध है. अभावप्रतियोगिक अत्यंताभावके तो अनेक उदाहरण हैं. कपालमें घटका प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव है तंतुमें नहीं; यातैं तंतुमें घटप्रागभावका अत्यंताभाव है और घटप्रध्वंसाभावका अत्यंताभाव है तैसैं कपालमें घटका सामयिकाभाव और घटका अत्यंताभाव नहीं यातैं कपालमें घटके सामयिकाभावका अत्यंताभाव है, और घटात्यंताभावका अत्यंताभाव है. तैसैं कपालमें कपालका अन्योन्याभाव नहीं. तहां कपालान्योन्याभावका अत्यंताभाव है. तैसैं घटमें घटका अन्योन्याभाव नहीं, तहां घटान्योन्याभावका अत्यंताभाव है, परंतु अन्योन्याभावका अत्यंताभाव पृथक् नहीं, किंतु अन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक धर्मरूप है. जैसैं घटान्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक धर्म घटत्व है सो केवल घटमेंही रहै है और घटान्योन्याभावका अत्यंताभावभी घटमेंही रहै है घटसे भिन्न सकलपदार्थनमें घटान्योन्याभाव रहै है; यातैं घटान्योन्याभावका अत्यंताभाव घटसैं भिन्नपदार्थनमें रहै नहीं. इस रीतिसैं घटत्वके समनियत घटान्योन्याभावका अत्यंताभाव होनेतैं घटत्वरूपही घटान्योन्याभावका अत्यंताभाव है.

इस रीतिका प्राचीन लेखभी श्रद्धायोग्य नहीं. काहेतैं ? "घटे समवायेन

घटत्वम्" या प्रतीतिका विषय घटत्व हैं और "घटे घटान्योन्याभावो नास्ति" याप्रतीतिका विषय घटान्योन्याभावका अत्यंताभाव है यातैं अन्योन्याभावका अत्यंताभाव अन्योन्याभावका प्रतियोगितावच्छेदक धर्मरूप नहीं तासैं पृथक् ही अभावरूप है.

७८ अत्यंताभावके अत्यंताभावकी प्रथमात्यंताभावकी प्रतियोगिरूपताका प्रतिपादन और खंडन.

तैसैं अत्यंताभावके अत्यंताभावकूं भी प्रथम अभावका प्रतियोगिरूप प्राचीन माने हैं ताका खंडन तौ नवीन्यायग्रंथनमें स्पष्ट है. तथाहिः—जहां घट कदीभी न होवै तहां घटका अत्यंताभाव है, जहां घट होवै तहां घटात्यंताभाव नहीं है, यातैं ताका अत्यंताभाव है. इस रीतिसैं घटात्यंताभावका अत्यंताभाव प्रथमात्यंताभावका प्रतियोगी जो घट ताके समनियत होनेतैं घटस्वरूप है तासैं पृथक् नहीं; और घटात्यंताभावका अत्यंताभावका घटरूप नहीं मानैं, पृथक् मानै तो अत्यंताभावनकी अनवस्था होवैगी. जैसैं घटात्यंताभावका अत्यंताभाव पृथक् है तैसैं द्वितीय अत्यंताभावका तृतीय अत्यंताभाव, तृतीयका चतुर्थ अत्यंताभाव, ताका पंचम, इस रीतिसैं अत्यंताभावनकी कहूं समाप्ति न होवै, ऐसी अनन्त धारा होवैगी. और द्वितीय अत्यंताभावकूं प्रथम अत्यंताभावका प्रतियोगिस्वरूप मानैं तब अनवस्था दोष नहीं. काहेतैं, घटात्यंताभावका अत्यंताभाव घटरूप मानै द्वितीयात्यन्ताभावका अत्यंताभावभी घटात्यंताभावही है. काहेतै ? द्वितीय अत्यंताभाव घटरूप है, यातैं ताका अत्यंताभाव घटकाही अत्यंताभाव है. तैसैं तृतीय अत्यंताभावका चतुर्थ अत्यंताभाव फेरि घटरूप है, चतुर्थ अत्यंताभावका पंचम अत्यंताभाव घटात्यंताभावरूप है. इस रीतिसैं प्रतियोगी और एक अत्यंताभावके अंतर्भूत सारे अत्यंताभाव होवै है. अनवस्था दोष होवै नहीं; यातैं अत्यंताभावका अत्यंताभाव प्रथमात्यंताभावका प्रतियोगीस्वरूप प्राचीनोंनें मान्या है.

तहां नवीन ग्रंथकारोंनें यह दोष लिखा हैः—जहां भूतलमें घट होवै तहां " भूतले घटो नास्ति, भूतले घटात्यंताभावो नास्ति " इस रीतिसैं विल-

क्षण प्रतीत होवै है. विधिमुख प्रतीति और निषेधमुख प्रतीतिका एक विषय संभवै नहीं, यातैं विधिमुख प्रतीतिका विषय घट है और निषेधमुख प्रतीतिका विषय घटात्यंताभावका अत्यंताभाव है सो घटरूप नहीं; किंतु अभावरूप है यातैं घटसैं पृथक् है.

और द्वितीय अत्यंताभावकूं पृथक् मानैं तो अनवस्था दोष कह्या है. ताका यह समाधान है:—द्वितीय अत्यंताभाव प्रथम अत्यंताभावके प्रतियोगीके समनियत है और तृतीयाभाव प्रथमाभावके समनियत है और प्रतियोगीके समान देशमें जो द्वितीयाभाव ताके समनियत चतुर्थाभाव है. प्रथमतृतीयके समनियत पंचम अभाव है; इस रीतिसैं युग्मसंख्याके सारे अभाव द्वितीयाभावके समनियत हैं; और विषम संख्याके सारे अभाव प्रथमाभावके समनियत हैं. तहां द्वितीयाभाव यद्यपि प्रथमाभावके प्रतियोगीके समनियत हैं, तथापि भाव अभावकी एकता बनैं नहीं; यातैं घटके समनियतभी घटात्यंताभावाभाव घटसैं पृथक् है. और प्रथमाभावके समनियत तृतीयाभाव तो प्रथमाभावस्वरूप है पृथक् नहीं. काहेतैं? 'घटो नास्ति' ऐसा निषेधमुख प्रतीतिका विषय प्रथमाभाव है, और 'घटात्यंताभावाभावो नास्ति' ऐसी निषेधमुखप्रतीतिकाही विषय तृतीयाभाव है, यातैं तृतीयाभाव प्रथमाभावरूप है. तैसैं 'घटात्यंताभावो नास्ति' ऐसी निषेधमुख प्रतीतिका विषय द्वितीयाभाव है और 'तृतीयाभावो नास्ति' इस रीतिसैं चतुर्थाभावभी निषेधमुख प्रतीतिका विषय है; यातैं द्वितीयाभावके समनियत चतुर्थाभाव द्वितीयाभावरूप है; परंतु घटके समनियतभी द्वितीयाभावाभावरूप घटसैं पृथक् अभावरूप है; इस रीतिसैं प्रथमाभाव और द्वितीयाभावके अंतर्भूत सारी अभावमाला होवै है अनवस्था दोष नहीं.

यद्यपि प्राचीन रीतिसैं प्रतियोगी और अभावके अंतर्भूत सारे अभाव होवै हैं यातैं एकही अभाव मानना होवै है, नवीन रीतिसैं दो अभाव मानना होवै हैं; यातैं नवीनमतमें गौरव है तथापि भावाभावकी एकता बनैं नहीं. यातैं प्राचीनमत प्रमाणविरुद्ध है, और नवीनमत अनुभवानुसारी है,

यातैं प्रमाणसिद्ध गौरव दोषकर नहीं, इस रीतिसैं घटात्यंताभावका अत्यंताभावभी अभावप्रतियोगिक अभाव है; इस रीतिसैं अभावप्रतियोगिक संसर्गाभावके उदाहरण कहैं.

७९ अभावप्रतियोगिक अन्योन्याभावके उदाहरण और उक्तार्थका अनुवाद.

और अभावप्रतियोगिक अन्योन्याभावके उदाहरण अति स्पष्ट हैं. जैसैं प्रागभावका अन्योन्याभाव प्रागभावमें नहीं और सकल पदार्थनमें है. काहेतैं ? भेदकूं अन्योन्याभाव कहै हैं; स्वरूपमें भेद रहै नहीं. स्वरूपातिरिक्त सर्वमें सर्वका भेद रहै है; यातैं प्रागभावभिन्न पदार्थनमें प्रागभावका अन्योन्याभाव है, प्रध्वंसाभावतैं भिन्नमें प्रध्वंसाभावका अन्योन्याभाव है, अत्यंताभावसैं भिन्नमें अत्यंताभावका अन्योन्याभाव है, अन्योन्याभावसैं भिन्नमें अन्योन्याभावका अन्योन्याभाव है, अन्योन्याभावसैं भिन्न चारि प्रकारका संसर्गाभाव और सारे भावपदार्थ हैं. काहेतैं ? संसर्गाभाव और भावपदार्थ अन्योन्याभावरूप नहीं, यातैं अन्योन्याभावसैं भिन्न हैं. जो जासैं भिन्न होवै तामें तिसका अन्योन्याभाव होवै है. यातैं संसर्गाभावमें और सकल भाव पदार्थनमें अन्योभावका अन्योन्याभाव है.

इस रीतिसैं पंचविध अभावमें सामयिकाभाव तो केवल द्रव्यकाही होवै है यातैं अभावप्रतियोगिक है नहीं. च्यारि अभावनके अभाव प्रतियोगिकके उदाहरण कहे. अभावप्रतियोगिक अभावकूं कितनी जगहमें प्राचीन भावरूप माने हैं. जैसैं घटप्रागभावके ध्वंसकूं घटरूप माने हैं, घटध्वंसके प्रागभावकूं घट माने हैं, घटान्योन्याभावके अत्यंताभावकूं घटत्व माने हैं, घटात्यंताभावके अत्यंताभावकूं घट माने हैं, ताका खंडन कर्या; यातैं अभावप्रतियोगिकभी अभाव है और भावप्रतियोगिक अभाव तो अतिप्रसिद्ध है. इस रीतिसैं अभावका निरूपण न्यायशास्त्रकी रीतिसैं किया और कहूं प्राचीन मतमें वा नवीन मतमें दोष कहे सोभी न्यायकी मर्यादा लेके दोष कहे हैं.

८० उक्त न्यायमतमें वेदांतसैं विरुद्धआशंकाप्रदर्शन और अनादिप्रागभावका खंडन.

और उक्त प्रकारसैं अभावका निरूपण वेदांतशास्त्रसैंभी विरुद्ध नहीं, और जितना अंश वेदांतविरुद्ध है सो दिखावै हैं. कपालमें घटके प्रागभावकूं अनादि कहै हैं सो प्रमाणविरुद्ध है, यातैं वेदांतके अनुसारी नहीं. काहेतैं ? घटप्रागभावका अधिकरण कपाल सादि और प्रतियोगी घटभी सादि प्राग-भावकूं अनादिता किस रीतिसैं होवै और मायामें सकल कार्यके प्रागभावकूं अनादिता कहै तो संभवै है. काहेतैं ? माया अनादि है, परंतु मायामें कार्यका प्रागभाव मानना व्यर्थ है, और सिद्धांतमें इष्टभी नहीं. काहेतैं ? घटकी उत्पत्ति कपालमें होवै है अन्यमें नहीं; तैसैं पटकी उत्पत्ति तंतुमें होवै है कपालमें नहीं; यातैं घटका प्रागभाव कपालमें है तंतुमें नहीं. पटका प्रागभाव तंतुमें है कपालमें नहीं. जाका जिसमें प्रागभाव है ताकी तिसमें उत्पत्ति होवै है, अन्यमें होवै नहीं. सर्वसैं सर्व कार्यकी उत्पत्ति मत होवै इसवास्तै प्रागभावका अंगीकार है.

और मुख्य प्रयोजन प्रागभावका नैयायिक यह कहै हैं:—कपाल तंतु आ-दिकनके घटपटादिक परिणाम तो हैं नहीं; किंतु कपालमें घटका आरंभ होवै है तंतुमें पटका आरंभ होवै है और घटपटादिक होवै तब पूर्वकी नाईं कपाल तंतुभी विद्यमान रहै हैं. जो परिणामवाद होवै तो घटाकारकूं प्राप्त हुयां पाछे स्वरूपसैं कपाल रहै नहीं. तैसैं पटाकारकूं प्राप्त हुयां पाछे तंतु रहै नहीं, सो परिणामवाद तो है नहीं, आरंभवाद है. कपाल ज्यूं का त्यूं रहै है और अपने घटकी उत्पत्ति करे है. जब घट उत्पन्न होय लेवै तबभी घटकी सामग्री पूर्वकी नाईं बनी रहै है. परिणामवादमें तो कार्यकी उत्पत्ति हुयां उपादानकारण रहै नहीं. काहेतैं ? परिणामवादमें उपादानकारणही कार्यरूपकूं प्राप्त होवै है; यातैं घटरूपकूं प्राप्त हुयां कपाल घटकी सामग्री नहीं और आरंभवादमें उपादानकारण अपने स्वरूपकूं त्यागै नहीं; उ-पादानसैं भिन्न कार्यकी उत्पत्ति होवै है; अपने स्वरूपसैं उपादानकारण बन्या

रहै है, यातैं घटकी उत्पत्ति हुयांभी ज्यूंकी त्यूं सामग्री होनेतैं फेरि घटकी उत्पत्ति चाहिये. यद्यपि एक घटकी उत्पत्ति हुयां अन्य घटकी उत्पत्तिमें तो प्रथम घट प्रतिबंधक है. घटसैं निरुद्ध कपालमें अन्यघटकी उत्पत्ति होवै नहीं, तथापि प्रथम उत्पन्न घटकी फेरि उत्पत्ति हुयी चाहिये. जो प्रथम उत्पत्तिकी फेरि उत्पत्ति मानै तो जैसैं उत्पत्तिकालमें "घट उत्पद्यते" यह व्यवहार होवै है, तैसैं उत्पत्तिकालसैं उत्तरकालमेंभी "घट उत्पद्यते" यह व्यवहार हुया चाहिये. सिद्ध घटका जो आधारकाल सो घटकी उत्पत्तिकालसैं उत्तरकाल है. सिद्ध घटके आधारकालमें "उत्पन्नो घटः" यह व्यवहार होवै है और "उत्पद्यते घटः" ऐसा व्यवहार एक उत्पत्तिक्षणमें होवै है घटके आधार द्वितीयादि क्षणमें 'उत्पद्यते' ऐसा व्यवहार होवै नहीं. काहेतैं ? वर्तमान उत्पत्तिवाला घट है यह अर्थ "घट उत्पद्यते" या कहनेसैं प्रतीत होवै है. 'उत्पन्नो घटः' या कहनेतैं अतीतउत्पत्तिवाला घट है यह अर्थ प्रतीत होवै है. 'उत्पन्नकी उत्पत्ति मानैं तो घटकी सिद्ध दशामेंभी कोई उत्पत्ति वर्तमान रहैगी; यातैं उत्पन्न घटमें भी उत्पद्यते घटः' ऐसा व्यवहार चाहिये; यातें उत्पन्न घटकी फेरि उत्पत्ति नहीं देखनेतैं घटकी उत्पत्तिकी सामग्री रहै है, ऐसा मानना चाहिये; तहां और सामग्री कपालादिक तो है तिस घटका प्रागभाव नहीं रहै है. घटके प्रागभावका घट उत्पत्तिक्षणमें ध्वंस होवै है, सो घटका प्रागभाव घटकी उत्पत्तिमें कारण है, ताके अभावतें उत्पन्न घटकी फेरि उत्पत्ति होवै नहीं, यह प्रागभावका मुख्य प्रयोजन है.

सो मायामें घटादिकनके प्रागभावका प्रथम प्रयोजन तो संभवै नहीं, काहेतैं ? घटादिकनका साक्षात् उपादान माया नहीं; किंतु कपालादिक है और मायाकूं सर्व पदार्थनकी साक्षात् उपादानता सिद्धांतपक्षमें मानी है तोभी कार्यकी उत्पत्तिमें दूसरे कारणकी अपेक्षा करै नहीं. अद्भुतशक्ति मायामें है, यातैं प्रागभावादिरूप अन्यकारणकी अपेक्षा नहीं, यातैं मायामें किसीका प्रागभाव नहीं, और कपालमें घटकी उत्पत्ति होवै है पटकी नहीं. यामें प्रागभाव हेतु कह्या सोभी बनै नहीं. कपालमें घटकी कारणता है पटकी

नहीं. काहेतैं ? अन्वयव्यतिरेकसैं कारणताका ज्ञान होवै है; और कपालके अन्वय कहिये सत्ता होवै तो घटका अन्वय होवै है. कपालके व्यतिरेक कहिये अभावतैं घटका व्यतिरेक होवै है. इसरीतिसैं कपालके अन्वयव्यतिरेकतैं घटका अन्वयव्यतिरेक देखिये है पटका नहीं; यातैं कपालमें घटकी कारणता है पटकी नहीं; इसवासतैं कपालसैं घटही होवै है पटादिक होवै नहीं. पटादिकनकी व्यावृत्तिवासतैं घटका प्रागभाव कपालमें संभवै नहीं; और जो मुख्य प्रयोजन प्रागभावका कह्या कपालमें घटकी उत्पत्तिसैं अनंतर उत्पत्ति हुई चाहिये; सोभी परिणामवादमें दोष नहीं. काहेतैं ? स्वरूपसैं स्थित कपाल घटकी उत्पत्ति करै है. कार्यरूपकूं प्राप्तहुए कपालसैं घटकी उत्पत्ति होवै नहीं; यातैं परिणामवादमें प्रागभाव निष्फल है.

और विचार करै तो आरंभवादमेंभी प्रागभाव निष्फल है. काहेतैं ? घटकी उत्पत्ति हुया फेरि उत्पत्ति हुई चाहिये. जो ऐसे कहैं ताकूं यह पूछना चाहियेः—घटांतरकी उत्पत्ति हुई चाहिये अथवा जो घट जिस कपालमें उपज्या है तिसकी उत्पत्ति हुई चाहिये ? जो ऐसैं कहैं अन्य घटकी उत्पत्ति हुई चाहिये सो तो संभवै नहीं. काहेतैं ? जिस कपालसैं जो घट होवै है तिसकपालमें तिसी घटकी कारणता है; घटांतरकी कारणता कपालांतरमें है; यातैं अन्य घटकी उत्पत्तिकी प्राप्ति नहीं और जो ऐसैं कहै जो घट पूर्व उपज्या है तिसीकी उत्पत्ति होवैगी सोभी संभवै नहीं. काहेतैं ? जहां कपालसैं घटकी उत्पत्ति होवै तहां प्रथम उत्पत्ति अन्य उत्पत्तिकी प्रतिबंधक है, यातैं फिर उत्पत्तिकी प्रतीति नहीं, प्रागभाव निष्फल है.

और उत्पत्तिके स्वरूपका सूक्ष्मविचार करै तो फेरि उत्पत्ति हुई चाहिये यह कथनही विरुद्ध है. काहेतैं ? आद्यक्षणसैं संबंधकूं उत्पत्ति कहै हैं. घटका आद्यक्षणसैं संबंध घटकी उत्पत्ति कहिये है. घटाधिकरणक्षणके ध्वंसका अनधिकरण जो क्षण सो घटका आद्यक्षण कहिये है. घटके अधिकरण अनंतक्षण हैं; तिनमें घटके अधिकरण जो द्वितीयादि क्षण तिनमें घटाधिकरण प्रथम क्षणका ध्वंस रहै है. और प्रथम क्षणमें घटाधिकरणक्षणका ध्वंस है

नहीं, यातैं घटाधिकरणक्षणके ध्वंसका अनाधिकरण घटका प्रथमक्षण हैं ता क्षणसैं संबंधही घटकी उत्पत्ति कहिये है. द्वितीयादिक्षणमें प्रथमक्षणसैं संबंध होवै नहीं, यातैं प्रथमक्षणमैंही ' उत्पद्यते ' ऐसा व्यवहार होवै है द्वितीयादिक्षणमें नहीं. इस रीतिसैं प्रथमपक्षणसंबंधरूप उत्पत्ति फेरि हुई चाहिये, ऐसा कहना " मम जननी वंध्या " इसवाक्यतुल्य है. काहेतैं ? घटकी उत्पत्तिसैं उत्तरक्षण घटाधिकरणके ध्वंसका अधिकरणही होवेगा; यातैं घटाधिकरणक्षणके ध्वंसका अनधिकरणक्षण फेरि संभवे नहीं; यातैं उत्पन्नकी उत्पत्ति हुई चाहिये यह कहना विरुद्ध है. इसरीतिसैं प्रागभाव निष्फल है, "कपाले समवायेन घटो नास्ति" या प्रतीतिका विषय सामयिकाभावही संभवै है और " कपाले घटो भविष्यति " या प्रतीतिका विषयभी घटका भविष्यत्काल है, प्रागभाव असिद्ध है.

और अपने शास्त्रके संस्कारसैं नैयायिक प्रागभावकूं मानै तोभी सादि मानना चाहिये, अनादि संभवै नहीं. काहेतैं ? अन्यमतमें तो सारे अभावनका अधिकरणभेदसैं भेद होवै है. और नैयायिकमतमें अधिकरणभेदसैं अभावका भेद नहीं; किंतु प्रतियोगिभेदसैं अभावका भेद होवै है. यातैं एक प्रतियोगिक अभाव नाना अधिकरणमें एकही होवै है, परंतु प्रागभाव तो नैयायिकमतमें भी अधिकरण भेदसैं भिन्नही होवै है. काहेतैं ? घटका प्रागभाव घटके उपादान कारण कपालमेंही रहै है. तिनमेंभी जो घट तिस कपालमें होवै ताघटका प्रागभाव तिस कपालमें है, अन्यघटका प्रागभाव अन्यकपालमें है इस रीतिसैं एक प्रागभाव एकही अधिकरणमें रहै है. सो कपालादिक प्रागभावके अधिकरण सादि हैं, तिनमें रहनेवाला प्रागभाव किसी रीतिसैं अनादि संभवै नहीं. जो अनादि अधिकरणमें और सादिमें एक प्रागभाव रहता होवै तो अनादि कहना भी संभवै सो नाना अधिकरणमें प्रागभाव संभवै नहीं, यातैं कपालमात्रवृत्ति घटप्रागभावकूं अनादिता संभवै नहीं.

और जो ऐसैं कहै कपालकी उत्पत्तिसैं पूर्व कपालके अवयवनमें घटका

प्रागभाव रहै है, तिसतैं पूर्व अवयवके अवयनमें रहै है; इस रीतिसैं अनादि परमाणुमें घटका प्रागभाव अनादि है.

सो संभवै नहीं:—काहेतैं ? अपने प्रतियोगीके उपादानकारणमें प्राग-भाव रहै है अन्यमें नहीं; यह नैयायिकनका नियम है. कपालके अवयव कपालके उपादानकारण हैं घटके नहीं, यातैं कपालावयवमें कपालकाही प्रागभाव संभवै है घटका प्रागभाव कपालमेंही है, कपालावयवमें संभवै नहीं. इस रीतिसैं परमाणु केवल द्व्यणुकका उपादानकारण है, यातैं द्व्यणुकका प्रागभावही परमाणुमें रहै हैं. द्व्यणुकसैं आगे त्र्यणुकादिक घटपर्यंतके प्रागभाव परमाणुमें संभवै नहीं और परमाणुमें द्व्यणुक भिन्न पदार्थनकाभी प्रागभाव मानै तो परमाणुसैंभी घटकी उत्पत्ति हुई चाहिये.

और परिणामवादमें तो कार्यकारणका अभेद है; यातैं द्व्यणुकसैं लेके अंत्यावयवी घटपर्यंत कार्यकारणधाराका भेद नहीं. तिस मतमें तो परमा-णुमें द्व्यणुकका प्रागभावही घटपर्यंत कार्यधाराका प्रागभाव है; यातैं परमा-णुमे घटादिकनके प्रागभाव कहना संभवै, सो आरंभवादमें कार्यकारणका अभेद तो है नहीं; किंतु कार्यकारणका परस्पर अत्यंतभेद है, यातैं कपा-लावयवमें घटका प्रागभाव नहीं. तैसैं परमाणुमें द्व्यणुकके कार्यका प्रागभाव संभवै नहीं; इस रीतिसैं सादिकपालादिकनमें घटादिकनके प्रागभावकूं अना-दिताकथन असंगत है.

८१ अनंतप्रध्वंसाभावका खंडन.

तैसैं नैयायिकमतमें प्रध्वंसाभावभी अपने प्रतियोगीके उपादानमेंही रहै है यातैं घटका ध्वंस कपालमात्रवृत्ति है सो अनंत है यह कथन असंगत है. घट ध्वंसका अधिकरण जो कपाल ताके नाशतैं घटध्वंसका नाश होवै है. और घटध्वंसका नाश माननेमें नैयायिक यह दोष कहै हैं:—घटध्वंसका ध्वंस होवै तो घटका उज्जीवन हुया चाहिये. काहेतैं ? प्रागभावप्रध्वंसाभाव-का अनाधारकाल प्रतियोगीका आधार होवै है यह नियम है. जा कालमें घटध्वं-सका ध्वंस होवै सो काल घटध्वंसका अनाधार होवैगा और प्रागभावका अ-

नाधार होवैगा; यातैं घटका आधार होवैगा. इस रीतिसैं ध्वंसका ध्वंस मानै तो घटादिकप्रतियोगीका उज्जीवन होवेगा, यह दोषभी नहीं. काहेतैं? प्रागभावकूं अनादिता और ध्वंसकूं अनंतता मानै तो उक्त नियमकी सिद्धि होवै और उक्त नियम मानै तो प्रागभावकूं अनादिताकी और ध्वंसकूं अनंतताकी सिद्धि होवै. और सिद्धांतपक्षमें प्रागभाव सादि है, यातैं प्रागभावकी उत्पत्तिसैं पूर्वकाल घटके प्रागभावका और घटके ध्वंसका अनाधार है, घटका आधार नहीं. अथवा मुख्यसिद्धांतमें सर्वथा प्रागभावका अंगीकार नहीं यातैं घटकी उत्पत्तिसैं पूर्वकाल घटके प्रागभावका अनाधार है और घटके ध्वंसका अनाधार है, घटरूप प्रतियोगीका अनाधार है, घटरूप प्रतियोगीका आधार नहीं; यातैं प्रागभाव ध्वंसका अनाधारकाल प्रतियोगीका आधार होवै है यह नियम संभवै नहीं; यातैं घटध्वंसकाभी ध्वंस होवै है और उक्त नियमकी असिद्धिसैं घटका उज्जीवन होवै नहीं.

८२ अन्योन्याभावकी सादि सातता और अनादिताका अंगीकार.

तैसैं अन्योन्याभावभी सादि सांत अधिकरणमें सादि सांत है; जैसैं घटमें पटका अन्योन्याभाव है, ताका अधिकरण घट हैं सो सादि है और सांत है, यातैं घटवृत्ति पटान्योन्याभावभी सादि सांत है. अनादि अधिकरणमें अन्योन्याभाव अनादि है, परंतु अनादिभी सांत है अनंत नहीं. जैसैं ब्रह्ममें जीवका भेद है सो जीवका अन्योन्याभाव है; ताका अधिकरण ब्रह्म है सो अनादि है, यातैं ब्रह्ममें जीवका भेदरूप अन्योन्याभाव अनादि है; और ब्रह्मज्ञानसैं अज्ञाननिवृत्तिद्वारा भेदका अंत होवै है यातैं सांत है.

अनादिपदार्थकीभी ज्ञानसें निवृत्ति अद्वैतवादमें इष्ट है इसीवासतैं शुद्ध चेतन १ जीव २ ईश्वर ३ अविद्या ४ अविद्याचेतनका संबंध ५ अनादिका परस्पर भेद ६ ये षट्पदार्थ अद्वैतमतमें स्वरूपसैं अनादि कहे हैं; और शुद्धचेतन विना पांचकी ज्ञानसैं निवृत्ति मानै है.

यामें यह शंका होवै है:— जीवईश्वरकूं अद्वैतवादमें मायिक कहै हैं, मायाका कार्य मायिक कहिये है, जीवईश मायाके कार्य हैं और अनादि हैं यह कहना विरुद्ध है.

ता शंकाका यह समाधान हैः—जीव ईश मायाके कार्य हैं यह मायिक-पदका अर्थ नहीं है; किंतु मायाकी स्थितिके अधीन जीवईशकी स्थिति है. मायाकी स्थिति विना जीवईशकी स्थिति होवै नहीं, यातैं मायिक है. और मायाकी नाई अनादि है; इस रीतिसैं अनादि अन्योन्याभावभी सांत है अन्योन्याभाव अनंत नहीं. तैसैं अत्यंताभावभी आकाशादिकनकी नाई अविद्याका कार्य है और विनाशी है इस रीतिसैं अद्वैतवादमें सारे अभाव विनाशी हैं, कोई अभाव नित्य नहीं. और अद्वैतवादमें अनात्म पदार्थ सारे मायाका कार्य हैं यातैं आत्मभिन्नकूं नित्यता संभवै नहीं. जैसैं घटादिक भावपदार्थ मायाके कार्य हैं तैसैं अभावभी मायाके कार्य हैं.

यद्यपि अद्वैतवादमें मायाकूं भावरूप कहै हैं, यातैं अभाव पदार्थकी उपादानता मायाकूं संभवै नहीं. कार्यके सजातीय उपादान होवै है, अभावके सजातीय माया नहीं; किंतु माया और अभाव भावत्व अभावत्वसे विजातीय है मायामें भावत्व है और अभावमें अभावत्व है, तथापि सकल अभावनका उपादान मायाही है. काहेतैं ? अनिर्वचनीयत्व मिथ्यात्व ज्ञाननिवर्त्यत्व अनात्मत्वादिक धर्मनतैं माया और अभाव सजातीय हैं. और सकल धर्मनसैं उपादान और कार्यकी सजातीयता कहै तो घटकपालमेंभी घटत्व कपालत्व विजातीय धर्म होनेतैं घटका उपादान कपाल नहीं होवेगा जैसैं मृन्मयत्वादिक धर्मनसैं घट कपाल सजातीय हैं तैसैं अनिर्वचनीयत्वादिक धर्मनसैं अभाव मायाभी सजातीय हैं. यातैं सकल अभाव मायाके कार्य हैं यातैं मिथ्या हैं.

और कोई ग्रंथकार अद्वैतवादी एक अत्यंताभावकूं मानै हैं और अभावनकूं अलीक कहै हैंः—जैसैं घटका प्रागभाव कपालमें कहै हैं सो अलीक है. काहेतैं ? घटकी उत्पत्तिसैं पूर्वकालसंबंधी कपालही "घटो भविष्यति" या प्रतीतिका विषय है. घटका प्रागभाव अप्रसिद्ध है तैसैं मुद्गरादिकनसैं चूर्णीकृत कपाल अथवा विभक्त कपालसैं पृथक् घटध्वंसभी अप्रसिद्ध है. तैसैं घटासंबंधी भूतलही घटका सामयिकाभाव है. घट होवै तब घटका संबंधी भूतल है; यातैं घटासंबंधी भूतल नहीं. इसरीतिसैं सामयिकाभाव अधिकर-

णसैं पृथक् नहीं तैसैं घटमें पटके भेदकूं घटवृत्ति पटान्योन्याभाव कहै हैं सो दोनोंके अभेदका अत्यंताभावरूप है. दो पदार्थनके अभेदात्यंताभावसैं पृथक् अन्योन्याभाव अप्रसिद्ध है. इस रीतिसैं एक अत्यंताभावही है, और कोई अभाव नहीं. इस रीतिसैं अभावके निरूपणमें बहुत विचार है. ग्रंथवृद्धिके भयतैं रीतिमात्र जनाई है.

८३ अभावकी प्रमाके हेतुप्रमाणका निरूपण और अभावज्ञानके भेदपूर्वक न्यायमतमें भ्रमप्रत्यक्षमें विषयानपेक्षा.

अभावका स्वरूपनिरूपण किया तामें **प्रमाणनिरूपण** करिये हैः—**अभावका ज्ञान दोप्रकारका है**. एक भ्रमरूप है दूसरा प्रमारूप है. **भ्रमज्ञानभी प्रमाकी नांई प्रत्यक्षपरोक्षभेदसैं दो प्रकारका है.** घटवाले भूतलमें इंद्रियका संयोग हुयेंभी किस प्रकारतैं घटकी उपलब्धि न होवै, तहां घटाभावका **प्रत्यक्षभ्रम** होवै है. परंतु विषय विना प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं. **अन्यथाख्यातिवादीके मतमें** तौ भ्रमप्रत्यक्षमें विषयकी अपेक्षा नहीं; किंतु अन्यपदार्थका अन्यरूपतैं ज्ञानकूं **अन्यताख्याति** कहै हैं; यातैं जा पदार्थका अन्यरूपतैं ज्ञान होवै तिसकी तो अपेक्षा है. जैसैं रज्जुका सर्पत्वरूपतैं ज्ञान होवै है तामें रज्जुकी अपेक्षा है, तथापि जिस विषयका ज्ञानमें आकार प्रतीत होवै तिसकी अपेक्षा अन्यथाख्यातिवादीके मतमें नहीं. जैसैं सर्पका आकार भ्रममें भासै है ताकी अपेक्षा नहीं.

८४ सिद्धांतमें परोक्षभ्रममें विषयकी अनपेक्षा और अपरोक्षभ्रममें अपेक्षा.

तथापि सिद्धांतमें अनिर्वचनीय ख्याति है. जहां प्रत्यक्षभ्रम होवै तहां भ्रमज्ञानकी नांई अनिर्वचनीय विषयकीभी उत्पत्ति होवै है. यातैं व्यावहारिक घटवाले भूतलमें प्रातिभासिक घटाभाव अनिर्वचनीय उपजै है. व्यावहारिक घटका व्यावहारिक घटाभावतैं विरोध है, प्रातिभासिक घटाभावतैं व्यावहारिक घटका विरोध नहीं, यातैं व्यावहारिक घटवाले भूतलमें अनिर्वचनीय घटाभाव और ताका अनिर्वचनीय ज्ञान दोनों उपजै हैं,

तहां घटाभावका प्रत्यक्षभ्रम कहिये है. जहां अंधकूं विप्रलंभक वचनतैं घटवाले भूतलमें घटाभावका ज्ञान होवै सो अभावका परोक्षभ्रम है, परोक्षज्ञानमें विषयकी अपेक्षा नहीं: काहेतैं ? अतीतका और अनागतकाभी परोक्षज्ञान होवै है, यातैं अभावका जहां परोक्षभ्रम होवै तहां प्रातिभासिक अभावकी उत्पत्ति होवै नहीं, केवल अभावाकारवृत्तिरूप ज्ञानकीही उत्पत्ति होवै है.

८५ सिद्धांतमें अभावभ्रमआदि स्थानमें अन्यथाख्यातिका अंगीकार.

अथवा परोक्षभ्रमकी नांई जहां अभावका प्रत्यक्ष भ्रम होवै तहांभी प्रातिभासिक अभावकी उत्पत्ति होवै नहीं; किंतु अभावका भ्रम अन्यथाख्यातिरूप है. काहेतैं ? रज्जु आदिकनमें सर्पादिभ्रमकूं अन्यथाख्यातिरूप मानैं तो यह दोष है:—रज्जुमें सर्पत्वधर्मकी प्रतीतिकूं अन्यथाख्याति कहै हैं सो संभवै नहीं. काहेतैं ? इंद्रियका संबंध रज्जुसैं और रज्जुत्वसैं है, सर्पत्वसै इंद्रियका संबंध नहीं. और विषयतैं संबंधविना इंद्रियजन्यज्ञान होवै नहीं. यातैं रज्जुका सर्पत्वधर्मसैं प्रतीतिरूप अन्यथाख्याति संभवै नहीं. इस रीतिसैं प्रत्यक्षभ्रमस्थलमें अन्यथाख्यातिका निषेध करके अनिर्वचनीयख्याति मानी है, ताकी रीति पूर्व कही है.

परंतु जहां अधिष्ठान और आरोप्य दोनों इंद्रियसंबंधी होवें तहां उक्त दोष संभवै नहीं; यातैं **सिद्धांतग्रंथनमें भी तहां अन्यथाख्यातिही लिखी** है. जैसैं पुष्पके उपरि धरे स्फाटिकमें रक्तताका प्रत्यक्षभ्रम होवै है तहां पुष्पकी रक्ततासैं भी नेत्रका संयुक्तसमवाय अथवा संयुक्ततादात्म्यसंबंध है. और स्फटिकसैं नेत्रका संयोगसंबंध है तहां रक्तता आरोप्य है. और स्फटिक अधिष्ठान है. तहां पुष्पकी व्यावहारिक रक्तता स्फटिकमें प्रतीत होवै है, स्फटिकमें अनिर्वचनीय रक्तताकी उत्पत्ति होवै नहीं. काहेतैं ? जो रक्ततासैं सर्पत्वकी नाई नेत्रका संबंध नहीं होता तो विषयतैं संबंधविना इंद्रियजन्य ज्ञान होवै नहीं; यह दोष होता. नेत्रसैं रक्तताका संबंध होनेतैं उक्त दोष संभवै नहीं; यातैं आरोप्यके सन्निधानस्थलमें अन्यथाख्यातिही संभवै है.

तैसैं घटवाले भूतलमें घटाभावभ्रम होवै तहां आरोप्यअधिष्ठानका सन्निधान होनेतैं आरोप्यसैं भी अधिष्ठानकी नाई इंद्रियका संबंध है. काहेतैं? अधिष्ठान भूतल है और आरोप्य घटाभाव भूतलमें तो नहीं है, परंतु भूतलवृत्ति भूतलत्वमें घटाभाव है. और भूतलवृत्ति जो रूपस्पर्शादि गुण हैं तिनमें घटाभाव है. भूतलत्वमें और भूतलके रूपादिक गुणनसैं घटका संयोग कभीभी होवै नहीं. काहेतैं ? दो द्रव्यनका संयोग होवै है. घट तो द्रव्य है भूतलत्व द्रव्य नहीं किंतु जाति है, तासैं घटका संयोग संभवै नहीं. भूतलके रूपस्पर्शादिकभी द्रव्य नहीं किंतु गुण हैं, तिनमेंभी घटका संयोग संभवै नहीं, और जामें जाका संयोगसंबंध नहीं होवै तो तिसमें तिसपदार्थका संयोगसंबंधावच्छिन्न अत्यंताभाव होवैहै; इस रीतसैं भूतलमें संयोगसंबंधतैं घट होतेभी भूतलत्वमें और भूतलके गुणनमें संयोगसंबंधतैं घट नहीं होनेतैं संयोगसंबंधावच्छिन्न घटात्यंताभाव है; तहां अधिष्ठान भूतल है और आरोप्य घटात्यंताभाव है, ताका भूतलसें स्वाधिकरण समवायसंबंध है स्वकहिये घटात्यंताभाव ताका अधिकरण भूतलत्व और भूतलके रूपादि गुण तिनका समवाय भूतलमें है और भूतलका घटात्यंताभावसैं स्वसमवेतवृत्तित्वसंबन्ध है. स्वकहिये भूतल तामें समवेत कहिये समवायसंबन्धसैं रहनेवाले भूतलत्व और गुण तिनमें वृत्तित्व कहिये आधेयता अत्यन्ताभावकी है. इस रीतिसैं आरोप्य अधिष्ठानके परस्पसंबंध होनेतैं सन्निधान है. यातैं भूतलत्ववृत्ति और रूपस्पर्शादिवृत्ति जो व्यावहारिक घटात्यंताभाव ताकी भूतलमें प्रतीति होनेतैं अभावका भ्रम अन्यथाख्यातिरूप है. प्रातिभासिक अभावकी उत्पत्ति निष्प्रयोजन है. इस रीतिसैं प्रत्यक्षपरोक्षभेदसैं अभावभ्रम दोप्रकारका है.

८६ प्रत्यक्षपरोक्षयथार्थभ्रमरूपअभावप्रमाकी इंद्रिय और अनुपलंभादिसामग्रीका कथन.

तैसैं अभावकी प्रमाभी प्रत्यक्षपरोक्षभेदसैं दोप्रकारकी हैः—नैयायिकमतमें तो इंद्रियजन्यज्ञानकूं अपरोक्षज्ञान कहै हैं तासैं भिन्न ज्ञानकूं परोक्षज्ञान कहै हैं, और अभावसैंभी इंद्रियका विशेषणता अथवा स्वसंबद्ध-

विशेषणतासंबंध जहां होवै तहां अभावकी प्रत्यक्षप्रमा और परोक्षप्रमा कहिये है. जैसैं श्रोत्रसैं शब्दाभावका विशेषणतासंबंध है तहां शब्दभावकी श्रोत्रजन्य प्रत्यक्षप्रमा है, तैसैं भूतलमें घटाभाव होवै तहां नेत्रसंबद्ध भूतलमें विशेषणतासंबंध अभावका होनेतैं नेत्रजन्यप्रत्यक्षप्रमा घटाभावकी होवै है, परंतु पुरुषशून्य भूतलमें जहां स्थाणुमें पुरुषभ्रम होवै है तहां पुरुषाभाव है और पुरुषाभावतैं नेत्रका स्वसंबंद्धविशेषणतासंबंधभी है तथापि पुरुषाभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं; यातैं अभावके प्रत्यक्षमें इंद्रिय करण है प्रतियोगीका अनुपलंभ सहकारी है. जहां स्थाणुमें पुरुषभ्रम होवै तहां प्रतियोगीका अनुपलंभ नहीं है; किंतु पुरुषरूप प्रतियोगीका उपलंभ कहिये ज्ञान है. जैसैं घटादिक द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षमें नेत्र करण है और अंधकारमें घटका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं, यातैं नेत्रजन्य चाक्षुषप्रत्यक्षमें आलोकसंयोग सहकारी है; यातैं अंधकारस्थ घट होवै तहां नेत्र इंद्रिय है और नेत्रइंद्रियका घटसे संयोगभी है, तथापि घटका आलोकसैं संयोगरूप सहकारी नहीं, यातैं अंधकारस्थ घटका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं. चाक्षुषप्रत्यक्षमें आलोकसंयोग सहकारी है, तहां इंद्रियसैं आलोकका संयोग हेतु नहीं; किंतु विषयसैं आलोकसंयोग हेतु है, यातैं प्रकाशमें स्थित पुरुषकूं अंधकारस्थ घटका प्रत्यक्ष होवै नहीं; तहां इंद्रियसैं तो आलोकसंयोग है विषय जो घट तासैं आलोकसंयोग नहीं और अंधकारस्थ पुरुषकूं प्रकाशस्थ घटका प्रत्यक्ष होवै है. तहां इंद्रियसैं तो आलोकका संयोग नहीं है; विषयतैं आलोकका संयोग है, यातैं विषय और आलोकसंयोग नेत्रजन्यज्ञानमें सहकारी है. तथापि घटके पूर्वदेशमें आलोकका संयोग होवै, पश्चिमदेशमें नेत्रका संयोग होवै, तहां घटका चाक्षुष प्रत्यक्ष होवै नहीं, और हुया चाहिये, काहेतैं ? विषयतैं आलोकका संयोगरूप सहकारी है और संयोगरूप व्यापारवाला नेत्र इंद्रिय करणभी है यातैं जिस घटके देशमें नेत्रका संयोग होवै तिसी देशमें आलोकसंयोग सहकारी है यह मानना चाहिये. दीपसूर्यादिकनकी प्रभाकूं आलोक कहै हैं. जैसैं द्रव्यके चाक्षुषप्रत्यक्षमें आलोकसंयोग सहकारी है, तैसैं अभावके प्रत्यक्षमें इं-

द्रिय करण है और प्रतियोगीका अनुपलंभ सहकारी है; यातैं स्थाणुमें पुरुषभ्रम होवै है तहां पुरुषाभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं; तैसैं जहां, भूतलमें घट नहीं होवै और घटके सदृश अन्यपदार्थ धऱ्या होवै तामें घटभ्रम हो जावै ता भूतलमें घटाभाव है और घटाभावसैं इंद्रियका स्वसंबद्ध विशेषणता संबंधभी है. काहेतैं ? घटका तो भ्रम हुया है और घट है नहीं किंतु घटाभाव है, ताका भूतलमें विशेषणतासंबंध है, तिस भूतलसैं इंद्रियका संयोग है यातैं इंद्रियसंबद्ध कहिये इंद्रियसैं संबद्धवाले भूतलमें अभावका विशेषणतासंबंध है, यातैं संबंधरूपव्यापारवाला इंद्रिय करण तो है, प्रतियोगीका अनुपलंभ सहकारी नहीं. काहेतैं ? ज्ञानकूं उपलंभ कहै हैं, सो ज्ञान भ्रम होवै अथवा प्रमा होवै; यामें विशेष नहीं, जहां घटका भ्रम होवै तहां घटाभावका प्रतियोगी जो घट ताका अनुपलंभ नहीं; किंतु भ्रमरूप उपलंभ कहिये ज्ञान है. इस रीतिसैं अभावके प्रत्यक्षमें इंद्रिय करण है और प्रतियोगीका अनुपलंभ सहकारी है. केवल प्रतियोगीके अनुपलंभकूं सहकारी कहैं तोभी निर्वाह होवै नहीं. काहेतैं ? स्तंभमें पिशाचका भेद तो प्रत्यक्ष है और स्तंभमें पिशाचका अत्यंताभाव प्रत्यक्ष नहीं. यह स्तंभ पिशाच नहीं ऐसा अनुभव सर्व लोकनकूं होवै है,और स्तंभमें पिशाच नहीं ऐसा निश्चय होवै नहीं; तहां प्रथम अनुभवका विषय स्तंभवृत्ति पिशाचान्योन्याभाव है, और द्वितीय अनुभवका विषय पिशाचात्यंताभाव है. दोनों अभावनका प्रतियोगी पिशाच है ताका अनुपलंभ है, और इंद्रियसंबद्ध स्तंभ है, तामें पिशाचान्योन्याभाव और पिशाचात्यंताभाव दोनों विशेषणतासंबंधसैं रहै हैं; यातैं पिशाचान्योन्याभावकी नाई पिशाचात्यंताभावका प्रत्यक्ष हुया चाहिये. तैसैं आत्मामें सुखाभावदुःखाभवका प्रत्यक्ष होवै है और धर्माभाव अधर्माभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं. यह वार्ता सर्वके अनुभवसिद्ध है "इदानीं मयि सुखं नास्ति इदानीं मयि दुःखं नास्ति" इसरीतिका अनुभव सर्वकूं होवै है. सो अनुभव न्यायमतमें मानसप्रत्यक्षरूप है. मनका सुखाभावतैं और दुःखाभावतैं स्वसंयुक्त विशेषणतासंबंध है. काहेतैं ? स्व कहिये मन तासैं संयुक्त कहिये संयोगवाला आत्मा

तामें विशेषणतासंबंधसैं सुखाभाव दुःखाभाव रहै हैं, तैसैं धर्माभावअधर्माभावसैं भी मनका स्वसंयुक्त विशेषणतासंबंध है, तथापि प्रत्यक्ष होवै नहीं. "मयि धर्मो नास्ति, मयि अधर्मो नास्ति" ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव किसीकूं होवै नहीं और सुखाभावदुःखाभावके प्रतियोगी सुख दुःख हैं तिनका जैसैं अनुपलंभ अभावकालमें होवै है, तैसैं धर्माभावअधर्माभावके प्रतियोगी जो धर्मअधर्म मनसैं तिनकाभी अनुपलंभ होवै है; यातैं प्रतियोगीका अनुपलंभरूप सहकारीसहित सुखाभावदुःखाभावका प्रत्यक्ष होवै है, तैसैं धर्माधर्मरूप प्रतियोगीका अनुपलंभ-रूप मनसैं धर्माधर्मके अभावकाभी प्रत्यक्ष हुया चाहिये. तैसैं वायुमें रूपाभाव प्र-त्यक्ष है और गुरुत्वाभाव प्रत्यक्ष नहीं है. रूपाभावका प्रतियोगी रूप है, गु-रुत्वाभावका प्रतियोगी गुरुत्व है, तिन दोनोंका वायुमें अनुपलंभ है. और ने-त्रका वायुसैं संयोगसंबंध होवै है, नेत्रसंयुक्त वायुमें रूपाभाव गुरुत्वाभाव वि-शेषणतासंबंधसैं रहैहै, यातैं स्वसंबद्धविशेषणतासंबंधसैं जैसैं वायुमें रूपाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है, तैसैं स्वसंबद्ध विशेषणत्वसंबंध गुरुत्वाभावसैं भी नेत्र-का हैं; यातैं "वायौ रूपं नास्ति" इस चाक्षुषप्रतीतिकी नांई "वायौ गुरुत्वं नास्ति" ऐसी चाक्षुषप्रतीति भी हुई चाहिये. यातैं इंद्रियजन्य अभावके प्रत्य-क्षमें केवल अनुपलंभ सहकारी नहीं है; किंतु योग्यानुपलंभ सहकारी है, वायुमें अनुपलंभ जैसैं रूपका है तैसैं गुरुत्वकाभी अनुपलंभ है; परंतु योग्या-नुपलंभ रूपका है गुरुत्वका योग्यानुपलंभ नहीं. काहेतैं? प्रत्यक्षयोग्यकी अ-प्रतीतिकूं **योग्यानुपलंभ** कहैहैं. रूप तो प्रत्यक्षयोग्य है और गुरुत्व प्रत्यक्ष-योग्य नहीं. काहेतैं? तराजूके उर्द्ध्वादिभावसैं गुरुत्वकी अनुमिति होवै है, किसी इंद्रियसैं गुरुत्वका ज्ञान होवै नहीं; यातैं प्रत्यक्षयोग्य गुरुत्व नहीं होनेतैं ताका अनुपलंभ योग्यानुपलंभ नहीं. तैसैं आत्मामें सुखाभाव दुःखा-भावका मानसप्रत्यक्ष होवै है; तहांभी प्रत्यक्षयोग्य सुखका अनुपलंभ और प्रत्यक्षयोग्य दुःखका अनुपलंभ होनेतैं योग्यानुपलंभ सहकारीका संभवै है; और धर्माभाव अधर्माभावका आत्मामें मानसप्रत्यक्ष होवै नहीं तहांभी धर्माधर्मरूप प्रतियोगीका अनुपलंभ तो है, परंतु धर्माधर्म केवल शास्त्रवेद्य

है प्रत्यक्षयोग्य नहीं; यातैं धर्माधर्मका योग्यानुपलंभ नहीं, ताके अभावतैं धर्माभाव अधर्माभावका मानसप्रत्यक्ष होवै नहीं.

८७ स्तंभमें पिशाचके दृष्टांतसैं शंकासमाधानपूर्वक अनुपलंभका निर्णय.

तैसैं स्तंभमें पिशाचात्यंताभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं, तहांभी पिशाचरूप प्रतियोगीका अनुपलंभ तो है परंतु प्रत्यक्षयोग्य पिशाच नहीं, यातैं योग्यानुपलंभ नहीं. प्रत्यक्षयोग्य प्रतियोगीके अनुपलंभकूं **योग्यानुपलंभ** कहै हैं, पिशाचात्यंताभावका प्रतियोगी जो पिशाच सो प्रत्यक्षयोग्य नहीं, यातैं पिशाचका अनुपलंभ योग्यानुपलंभ नहीं.

यामें यह शंका रहै हैः—स्तंभमें पिशाचका भेदभी प्रत्यक्ष नहीं चाहिये. काहेतैं ? पिशाचान्योन्याभावकूं पिशाच भेद कहै हैं. ताका प्रतियोगीभी पिशाच है, सो प्रत्यक्षयोग्य नहीं; यातैं योग्यानुपलंभके अभावतैं पिशाचात्यंताभावकी नई पिशाचान्योन्याभावभी अप्रत्यक्ष हुया चाहिये, जो सिद्धांती ऐसैं कहैः—उक्तरूप योग्यानुपलंभ नहीं है किंतु प्रत्यक्षयोग्य अधिकरणमें प्रतियोगीके अनुपलंभकूं **योग्यानुपलंभ** कहै हैं प्रतियोगी चाहै प्रत्यक्षयोग्य होवै अथवा अप्रत्यक्ष होवै, अभावका अधिकरण प्रत्यक्षयोग्य चाहिये; तामें प्रतियोगीका अनुपलंभ चाहिये. स्तंभमें जो पिशाचान्योन्याभाव ताका प्रतियोगी पिशाच है सो तो प्रत्यक्षयोग्य नहीं है और तामें प्रत्यक्षयोग्यताकी अपेक्षाभी नहीं, तथापि पिशाचान्योन्याभावका अधिकरण स्तंभ है सो प्रत्यक्षयोग्य होनेतैं योग्यानुपलंभका सद्भाव है; यातैं पिशाचका अन्योन्याभाव स्तंभमें प्रत्यक्ष संभवै है. सिद्धांतीका यह समाधान संभवै नहीं. काहेतैं ? उक्त रीतिसैं यह सिद्ध होवै हैः—अभावका प्रतियोगी प्रत्यक्षयोग्य होवै अथवा प्रत्यक्षके अयोग्य होवै, जहां अभावका अधिकरण प्रत्यक्षयोग्य होवै तामें प्रतियोगीका अनुपलंभ होवै और सो **योग्यानुपलंभ** अभावके प्रत्यक्षमें सहकारी है ऐसा अर्थ मानैं तो स्तंभमें पिशाचात्यंताभावभी प्रत्यक्ष हुया चाहिये. तैसैं आत्मामें धर्माभाव अधर्माभावभी प्रत्यक्ष हुया चाहिये. का-

हेतैं ? स्तंभवृत्ति पिशाचात्यंताभावका अधिकरण स्तंभ है, सो प्रत्यक्षयोग्य है. आत्मवृत्ति धर्माभावअधर्माभावका अधिकरण आत्मा प्रत्यक्षयोग्य है; परंतु इतना भेद है स्तंभ तो बाह्यइंद्रियजन्य प्रत्यक्षयोग्य है, याते स्तंभमें पिशाचात्यंताभावका बाह्य इंद्रियजन्य प्रत्यक्ष हुया चाहिये, और आत्मा मानसप्रत्यक्ष योग्य है, यातैं आत्मामें धर्माभाव अधर्माभावका मानसप्रत्यक्ष हुया चाहिये. जो वायुको प्रत्यक्षयोग्यता मानै तो वायुवृत्ति गुरुत्वभावका प्रत्यक्ष हुया चाहिये. जो वायुको प्रत्यक्षयोग्यता नहीं मानै तो वायुवृत्तिरूपाभावका प्रत्यक्ष नहीं हुया चाहिये और वायुमें रूपाभाव प्रत्यक्ष है यह सिद्धांत है, और अनुभवसिद्ध है. यह अर्थ आगे स्पष्ट होवैगा. और सिद्धांती इसरीतिसैं समाधान करै हैः—योग्यानुपलंभ दो प्रकारका है. एक तो प्रत्यक्षयोग्य प्रतियोगीका अनुपलंभ योग्यानुपलंभ है और दूसरा प्रत्यक्षयोग्य अधिकरणमें प्रतियोगीका अनुपलंभ योग्यानुपलंभ है. अत्यंताभावके प्रत्यक्षमें प्रथम योग्यानुपलंभ सहकारी है, यातैं अधिकरण तो प्रत्यक्षयोग्य होवै अथवा अयोग्य होवै. जिस अत्यंताभावका प्रतियोगी प्रत्यक्षयोग्य होवै ताका अनुपलंभ अत्यंताभावके प्रत्यक्षमें सहकारी है. और अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमें द्वितीय योग्यानुपलंभ सहकारी है; यातैं अन्योन्याभावका प्रतियोगी प्रत्यक्षयोग्य होवै अथवा अयोग्य होवै. प्रत्यक्षयोग्य अधिकरणमें प्रतियोगीका अनुपलंभ अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमें सहकारी है; यातैं कहूंभी दोष नहीं. स्तंभमें पिशाचात्यंताभावका प्रतियोगी पिशाचप्रत्यक्ष योग्य नहीं, यातैं स्तंभवृत्ति पिशाचात्यंताभाव अप्रत्यक्ष है; और स्तंभवृत्ति पिशाचान्योन्याभावका अधिकरण स्तंभ है सो प्रत्यक्ष है. यातैं स्तंभमें पिशाचान्योन्याभाव प्रत्यक्ष है. आत्मवृत्ति सुखात्यंताभाव दुःखात्यंताभावके प्रतियोगी सुखदुःख मानसप्रत्यक्षयोग्य हैं. तिनके अत्यंताभावनका मानसप्रत्यक्ष होवै है. धर्म अधर्म प्रत्यक्षयोग्य नहीं, यातैं तिनके अत्यंताभावनका प्रत्यक्ष होवै नहीं. रूपगुण तो प्रत्यक्षयोग्य है यातैं वायुमें रूपात्यंताभावका प्रत्यक्ष होवै है. गुरुत्व गुण प्रत्यक्षयोग्य नहीं, यातैं वायुमें गुरुत्वात्यंताभा-

व-प्रत्यक्ष नहीं; इस रीतिसैं यह अर्थ सिद्ध हुयाः—अधिकरणमें प्रत्यक्षयोग्यता और प्रतियोगीका अनुपलंभ अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमें सहकारी है. और प्रतियोगीमें प्रत्यक्षयोग्यता और प्रतियोगीका अनुपलंभ अत्यंताभावके प्रत्यक्षमें सहकारी है. ऐसा नियम सिद्धांती कहै सोभी संभवै नहीं. काहेतैं ? अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमें अधिकरणकी योग्यता हेतु होवै तो वायुमें रूपवद्भेदका प्रत्यक्ष होवै है, सो नहीं हुया चाहिये. "वायू रूपवान्न" ऐसा प्रत्यक्ष सर्वको होवै है और वक्ष्यमाण रीतिसैं ऐसा प्रत्यक्ष संभवै है. तहां अन्योन्याभावका अधिकरण वायु है सो प्रत्यक्षयोग्य नहीं और वायुको आग्रहसैं प्रत्यक्षयोग्यता मानै तो वायुमें गुरुत्ववद्भेदकाभी प्रत्यक्ष हुया चाहिये और "वायुर्गुरुत्ववान्न" ऐसा प्रत्यक्ष किसीको होवै नहीं, वक्ष्यमाण रीतिसैं संभवै नहीं, और स्तंभमें पिशाचवद्भेद अप्रत्यक्ष है. अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमें अधिकरणकी योग्यता हेतु होवै तो पिशाचवद्भेदका अधिकरण स्तंभ है, ताको प्रत्यक्षयोग्य होनेसे पिशाचवदन्योन्याभावरूप पिशाचवद्भेद प्रत्यक्ष हुया चाहिये और "स्तंभः पिशाचवान्न" ऐसा प्रत्यक्ष होवै नहीं; यातैं प्रत्यक्षयोग्य अधिकरणमें प्रतियोगीका अनुपलंभरूप **योग्यानुपलंभ** अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमें सहकारी है, यह नियम संभवै नहीं. तैसैं अत्यंताभावके प्रत्यक्षमें प्रतियोगीकी योग्यताको सहकारी मानै तो जलपरमाणुमें पृथिवीत्वात्यंताभावका प्रत्यक्ष हुया चाहिये. काहेतैं ? जलपरमाणुवृत्ति पृथिवीत्वके अत्यंताभावका प्रतियोगी पृथिवीत्व है, ताका घटादिकनमें चाक्षुप्रत्यक्ष होवै है; यातैं प्रत्यक्षयोग्य प्रतियोगी है और ताका जलपरमाणुमें उपलंभ कहिये प्रतीति होवै नहीं. यातैं अनुपलंभ है. और जलपरमाणुसैं नेत्रका संयोग होवै है यातैं जलपरमाणुवृत्ति पृथिवीत्वात्यन्ताभावसैं नेत्रका स्वसंयुक्त विशेषणतासंबंधभी है और जो ऐसैं कहै परमाणु निरवयव है तासैं नेत्रका संयोग संभवै नहीं. काहेतैं ? पदार्थके एकदेशमें संयोग होवै है, अवयवको देश कहै हैं, परमाणुके अवयवरूप देश संभवै नहीं. सकल परमाणुमें संयोग कहै तो **अव्याप्यवृत्ति** संयोगका स्वभाव नहीं होवैगा. एकदेशमें होवै,

एक देशमें नहीं होवै सो अव्याप्यवृत्ति कहिये है. यातैं परमाणुसैं नेत्रका संयोग होवै नहीं सो संभवै नहीं:—काहेतैं? परमाणुका संयोग नहीं होवै तो व्यणुक नहीं होवै और परमाणुमें महत्वात्यंताभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है सो नहीं होवैगा. परमाणुमें महत्वाभावका प्रत्यक्ष होवै है यह आगे स्पष्ट होवैगा यातैं नेत्रसंयुक्त विशेषणतासंबंधसैं जैसैं परमाणूमें महत्वाभावका प्रत्यक्ष होवै है, तैसैं नेत्रसंयुक्तविशेषणतासंबंधसैं पृथ्वीत्वाभावकाभी प्रत्यक्ष हुया चाहिये. नेत्रसंयुक्त परमाणुमें महत्वाभावकी नांई पृथिवीत्वभावका विशेषणतासंबंध है. परमाणुका संयोग व्याप्यवृत्ति होवै है, यह मंजूषाकी टीकामें लिखा है:—यातैं जलपरमाणुमें पृथिवीत्वात्यंताभावके प्रत्यक्षकी सामग्री होनेतैं ताकाभी प्रत्यक्ष हुया चाहिये; और वक्ष्यमाण रीतिसैं जलपरमाणुमें पृथिवीत्वात्यंताभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं. इस रीतिसैं सकल अभावनके प्रत्यक्षमें एकरूप योग्यानुपलंभ संभवै नहीं, और अन्योन्याभाव अत्यंताभावके प्रत्यक्षमें भिन्न भिन्न रूपवाला योग्यानुपलंभ सहकारी कहनाभी संभवै नहीं.

या शंकाका यह **समाधान** है:—" योग्ये अनुपलंभः योग्यानुपलंभः" ऐसा सप्तमीसमास करैं तो अधिकरणमें प्रत्यक्षयोग्यता होवै तहां योग्यानुपलंभ सिद्ध होवै है, और " योग्यस्य अनुपलंभः योग्यानुपलंभः" ऐसा षष्ठीसमास करैं तो प्रतियोगीमें प्रत्यक्षयोग्यता होवै तहां योग्यानुपलंभ सिद्ध होवै है, तहां एक एक प्रकारके योग्यानुपलंभ माननेमें दोष कह्या; तैसैं अन्योन्याभावके प्रत्यक्षमें अधिकरणयोग्यताका साधक सप्तमीसमासवाला योग्यानुपलंभ मानै और अत्यंताभावके प्रत्यक्षमें प्रतियोगीकी योग्यतासाधक षष्ठीसमासवाला योग्यानुपलंभ सहकारी मानै तो अभावभेदसैं दोनोंका अंगीकार होवै तामेंभी दोष कह्या; यातैं अन्य प्रकारका योग्यानुपलंभ सहकारी है। और योग्यानुपलंभ शब्दमें सप्तमीसमास और षष्ठीसमास नहीं किंतु ' नीलो घटः" या शब्दकी नांई प्रथमासमास है सो इस रीतिसैं है:—जैसैं "नीलश्चासौ घटो नीलघटः" या शब्दमें प्रथमासमास है, ताकूं व्याकरणमें **कर्मधारय** कहै

हैं. जहां कर्मधारयसमास होवै तहां पूर्व पदार्थका उत्तरपदार्थसैं अभेद प्रतीत होवै है. जैसैं "नीलघटः" या शब्दमें कर्मधारयसमास करैं तब नीलपदार्थका घटपदार्थसैं अभेद प्रतीत होवै है, तैसैं "योग्यश्चासौ अनुपलंभः योग्यानुपलंभः" इस रीतिसैं कर्मधारय समास करैं तो योग्यानुपलंभशब्दसै योग्यपदार्थका अनुपलंभ पदार्थसैं अभेद प्रतीत होवै है, यातैं अभावके प्रतियोगी और अधिकरण चाहै जैसैं होवै तिनकी योग्यतासैं प्रयोजन नहीं. अनुपलंभमें योग्यता चाहिये. जहां प्रतियोगीका अनुपलंभ योग्य होवै तहां अभावका प्रत्यक्ष होवैहै; जहां प्रतियोगीका अनुपलंभ अयोग्य होवै तहां अभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं. अनुपलंभमें योग्यता अयोग्यता इस प्रकारकी है:—उपलंभाभावको अनुपलंभ कहैहैं. प्रतीति ज्ञान उपलंभ ये पर्याय शब्द हैं. प्रतियोगीकी प्रतीतिका अभाव अनुपलंभशब्दका अर्थ है, यातैं इंद्रियसैं घटाभावके प्रत्यक्षमें घटकी प्रतीतिका अभाव सहकारी है; तहां घटाभावका ज्ञान प्रमारूप फल है और घटज्ञानका अभाव घटाभावप्रमाका सहकारी कारण है. सो घटज्ञानका अभाव योग्य चाहिये; घटज्ञानाभावकोही घटानुपलंभ कहै हैं, तिस अभावरूप अनुपलंभमें अन्यप्रकारकी तो योग्यता संभवै नहीं किंतु जा अनुपलंभका उपलंभरूप प्रतियोगी योग्य होवै सो अनुपलंभ योग्य कहिये है. जा अनुपलंभका प्रतियोगी उपलंभअयोग्य होवै सो अनुपलंभ अयोग्य कहिये है; यातैं यह सिद्ध हुआ:—योग्य उपलंभका अभावरूप योग्यानुपलंभ सहकारी है; इस रीतिसैं अनुपलंभकी योग्यता कहनेका उपलंभकी योग्यतामें पर्यवसान होवै है, यातैं उपलंभमें योग्यता चाहिये. योग्यउपलंभका अभाव योग्यानुपलंभ कहिये है. उपलंभकी योग्यताका अनुपलंभमें व्यवहार होवै है. यद्यपि प्रथमही योग्य उपलंभके अभावको योग्यानुपलंभ कहै तो लाघव है; उपलंभरूप प्रतियोगीद्वारा अनुपलंभकूं योग्य कहना निष्फल है, तथापि व्याकरणकी मर्यादासैं योग्यानुपलंभ शब्दका अर्थ करैं तब अनुपलंभमें योग्यता प्रतीत होवै है; यातैं उपलंभवृत्ति मुख्य योग्यताका अनुपलंभसैं आरोप कह्या है; यातैं यह सिद्ध अर्थ है जहां प्रतियोगीके योग्य उपलं-

भका अभाव होवै तहां अभावका प्रत्यक्ष होवै है. जहां प्रतियोगीकी सत्तासैं नियम करिके प्रतियोगीके उपलंभकी सत्ता होवै सो उपलंभयोग्य है, ताका अभाव अनुपलंभभी योग्य कहिये है. जहां प्रतियोगी हुए भी नियम करिके प्रतियोगीका उपलंभ न होवै सो उपलंभ अयोग्य है. ताका अभाव अनुपलंभ भी अयोग्य कहिये है. जैसैं आलोकमें घटकी सत्ता होवै तब नियमकरिके घटका उपलंभ होवै है, तहां घटका उपलंभ योग्य है: ताका अनुपलंभभी योग्य कहिये है, तैसैं संयोग संबंधसैं जहां पिशाच होवै तहां पिशाचसत्तासैं नियमकरिके पिशाचका उपलंभ होवै नहीं, यातैं पिशाचका उपलंभ अयोग्य है; ताका अभाव पिशाचानुपलंभभी अयोग्य कहिये है. इस रीतिसैं घटानुपलंभ यो य है सो घटाभावके प्रत्यक्षमें हेतु है और पिशाचानुपलंभ योग्य नहीं, यातैं पिशाचानुपलंभतैं पिशाचात्यंताभावका प्रत्यक्ष होवै नहीं. यद्यपि घटाभावाधिकरणमें घटकी सत्ता और घटोपलंभकी सत्ता संभवै नहीं तथापि घटका और घटोपलंभका ऐसा आरोप होवै है. "यदि भूतले घटः स्यात्। तदा घटोपलंभः स्यात्" यातैं घटाभावाधिकरणमेंभी आरोपित घटकी सत्ता और घटानुपलंभ होतेभी आरोपित घटोपलंभकी सत्ता संभवै है. यातैं यह निष्कृष्ट अर्थ है:— जिस अभावके अधिकरणमें प्रतियोगीका आरोप करे प्रतियोगीके उपलंभका नियमतैं आरोप होवै सो उपलम्भ योग्य है. तिसका अनुपलंभभी योग्य कहिये और तिस अधिकरणमें सो अभावप्रत्यक्ष है. जिस अभावके अधिकरणमें जिस अभावके प्रतियोगीका आरोप करै तिस प्रतियोगीके उपलंभका आरोप होवै नहीं. सो अभाव अप्रत्यक्ष है, जैसैं अंधकारमें घटाभाव प्रत्यक्ष नहीं. काहेतैं ? अंधकारमें " यदि अत्र घटः स्यात् तदा तस्योपलंभः स्यात्" इस रीतिसैं घटके आरोपतैं घटके उपलंभका नियमतैं आरोप संभवै नहीं; यातैं अंधकारमें घटका प्रत्यक्ष होवै नहीं. स्तंभमें पिशाचका भेद प्रत्यक्ष है. काहेतैं ? "यदि तादात्म्येन पिशाचः स्तंभे स्यात्तदा उपलभ्येत" इस रीतिसैं स्तंभवृत्ति तादात्म्यसंबन्धसैं पिशाचके आरोपतैं पिशाचके उपलंभका आरोप निय-

मसैं होवै है: काहेतैं? स्तंभमें तादात्म्यसंबंधसैं स्तंभ है, ताका नियमतैं उपलंभ होवै है; तैसैं पिशाचभी तादात्म्यसंबंधसैं स्तंभमें होवै तो स्तंभकी नाई ताकाभी नियमतैं उपलंभ होवै. ता उपलंभके अभावतैं स्तंभमें तादात्म्यसंबंधसैं पिशाच नहीं; यातैं पिशाचका स्तंभमें तादात्म्यसंबंधावच्छिन्नाभाव है. तादात्म्यसंबंधावच्छिन्नाभावको ही अन्योन्याभाव कहे हैं. औ स्तंभमें संयोगसंबंधावच्छिन्न पिशाचात्यंताभाव तथा समवायसंबंधावच्छिन्न पिशाचात्यंताभाव प्रत्यक्ष नहीं. काहेतैं? "स्तंभे यदि संयोगेन पिशाचः स्यात् समवायेन वा पिशाचः स्यात् तदा तस्योपलंभः स्यात्" इस रीतिसैं संयोगसंबंधतैं अथवा समवायसंबंधतैं पिशाचका स्तंभमें आरोप करैं, पिशाचका उपलंभका आरोप होवै नहीं काहेतैं? जहां श्मशानके वृक्षादिकनमें संयोगसंबन्धसें पिशाच रहै है और अपने अवयवनमें समवायसंबंधसैं पिशाच रहै है, तहांभी पिशाचका उपलंभ होवै नहीं, और जो स्तंभमें संयोगसंबंधसैं अथवा समवायसंबंधसैं होवै तिन सर्वका उपलंभ होवै तो स्तंभमें संयोगसंबंधतैं वा समवायसंबंधतैं पिशाचके आरोपतैं पिशाचके उपलंभका आरोप होवै और स्तंभमें ही द्व्यणुकादिकनका संयोग है. और वायुका संयोग है, यातैं द्व्यणुक वायु संयोगसंबंधसैं स्तंभवृत्ति है. तिनका उपलंभ होवै नहीं, और समवाय संबंधसैं गुरुत्वादिक अप्रत्यक्ष गुण रहै है, तिनका स्तंभमें उपलंभ होवै नहीं, यातैं स्तंभमें संयोगसंबंधतैं वा समवायसंबंधतैं पिशाचके आरोपतैं ताके उपलंभका आरोप होवै नहीं; यातैं स्तंभमें संयोगसंबंधावच्छिन्न पिशाचात्यंताभाव और समवायसंबंधावच्छिन्न पिशाचात्यंताभाव अप्रत्यक्ष है. यद्यपि जहां तादात्म्यसंबंधसैं पिशाच होवै तहां पिशाचका नियमतैं उपलंभ होवै नहीं, काहेतैं? तादात्म्यसंबंधसैं पिशाचमें पिशाच है और उपलंभ होवै नहीं; यातैं तादात्म्यसंबंधसैं पिशाचके आरोपतैंभी नियमतैं पिशाचोपलंभका आरोप संभवै नहीं; अत्यंताभावकी रीतिही अन्योन्याभावमें है; तथापि अन्य प्रकारसैं भेद है. स्तंभमें जो तादात्म्यसंबंधसैं होवै ताका नियमतैं उपलंभ होवै है. स्तंभमें तादात्म्य संबंधसैं स्तंभ है अन्य नहीं. और स्तंभका नियमतैं उपलंभ होवै है.

जो और कोई पदार्थ स्तंभमें तादात्म्यसंबंधसैं रहै तो स्तंभकी नाईं ताकाभी उपलंभ चाहिये, यातैं तादात्म्यसंबंधसैं स्तंभमें पिशाचके आरोपतैं ताके उपलंभका नियमतैं आरोप होवै है. "यदि तादात्म्येन पिशाचः स्तंभः स्यात्तदा तस्य स्तंभस्यैव उपलंभः स्यात्" इस रीतिसैं स्तंभमें तादात्म्यसैं पिशाचके आरोपतैं पिशाचोपलंभका आरोप होवै है, यातैं स्तंभमें पिशाचभेद प्रत्यक्ष होवै है. तिसी स्तंभमें पिशाचवत्का भेद अप्रत्यक्ष है. काहेतैं ? " यदि तादात्म्येन स्तंभः पिशाचवत् स्यात्तदा पिशाचवत्त्वेन स्तंभस्योपलंभः स्यात्" इस रीतिसैं स्तंभमें तादात्म्यसैं पिशाचवत्के आरोपतैं पिशाचवत्के उपलंभका आरोप संभवै नहीं. काहेतैं ? पिशाचवत् वृक्षादिकनमें पिशाचवत्ताका उपलंभ होवै नहीं, यातैं स्तंभमें पिशाचवत्ताका भेद अप्रत्यक्ष है. पिशाचके भेदकी नांईं प्रत्यक्ष नहीं. इस प्रकारसैं बुद्धिमान् अनुभवसैं देखिलेवै. प्रतियोगीके उपलंभका आरोप जहां संभवै सो अभावप्रत्यक्ष होवै है.

८८ उपलंभके आरोप और अनारोप करिके अभावकी प्रत्यक्षता और अप्रत्यक्षतामें उदाहरण.

तैसैं "आत्मनि यदि सुखं दुःखं वा स्यात्तदा सुखस्य च दुःखस्य च उपलंभः स्यात्" इस रीतिसैं आत्मामें सुखदुःखके आरोपतैं तिनके उपलंभका नियमतैं आरोप होवै है. काहेतैं ? कदीभी अज्ञात सुखदुःख होवै नहीं ज्ञातही होवै है; यातैं सुखदुःखका आरोप हुए तिनका उपलंभका नियमतैं आरोप होवै है, यातैं आत्मवृत्ति सुखाभाव दुःखाभाव प्रत्यक्ष है. और "आत्मनो धर्मो यदि स्यात् अधर्मो वा स्यात्तदा तस्य उपलंभः स्यात्" इस रीतिसैं धर्माधर्मके आरोपतैं तिनके उपलंभका आरोप होवै नहीं. काहेतैं? प्रत्यक्ष ज्ञानको उपलंभ कहै हैं. यद्यपि ज्ञान प्रतीति उपलंभ ये शब्द पर्याय हैं, यातैं ज्ञानमात्रका नाम उपलंभ है; तथापि इस प्रसंगमें जा इंद्रियतैं अभावका प्रत्यक्ष होवै ता इंद्रियजन्य ज्ञानका उपलंभशब्दसैं ग्रहण जानना. जैसैं सुखाभावका मनसैं प्रत्यक्ष होवै तहां सुखके आरोपतैं सुखके उपलंभका आरोप कहिये मानसप्रत्यक्षका आरोप होवै है, तैसैं वायुमें रूपाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है. तहां रूपके

आरोपतैं ताके उपलंभका आरोप कहिये चाक्षुषप्रत्यक्षका आरोप होवै है. इस रीतिसैं अन्य इंद्रियतैं जहां अभावका प्रत्यक्ष होवै तहां अन्यइंद्रियजन्य प्रत्यक्षही उपलंभ शब्दका अर्थ जानना, और धर्म अधर्म केवल शास्त्रवेद्य हैं, तिनका उपलंभ इंद्रियजन्य ज्ञान कदीभी होवै नहीं, यातैं धर्म अधर्मके आरोपतैं तिनके उपलंभका आरोप होवै नहीं. यातैं धर्माभाव अधर्माभाव प्रत्यक्ष नहीं. तैसैं वायुमें गुरुत्वात्यंताभाव प्रत्यक्ष नहीं, और वायुमें रूपात्यंताभाव प्रत्यक्ष है: काहेतैं ? वायुमें जो गुरुत्व होता तो ताका उपलंभ होता. इसरीतिसैं गुरुत्वके आरोपतैं गुरुत्वके उपलंभका आरोप होवै नहीं. काहेतैं, जहां पृथिवी जलमें गुरुत्व है तहांभी गुरुत्वका प्रत्यक्षरूप उपलंभ होवै नहीं; किंतु अनुमितिज्ञान गुरुत्वका होवै है, यातैं गुरुत्वके आरोपतैं उपलंभका आरोप होवै नहीं; इस कारणतैं वायुमें गुरुत्वाभाव प्रत्यक्ष नहीं और जो वायुमें रूप होता तो घटरूपकी नांई वायुरूपका उपलंभ होता; केवल रूपकाही उपलंभ नहीं होता वायुकाभी उपलंभ होता. काहेतैं ? जा द्रव्यमें महत्व गुण होवै और उद्भूतरूप होवै सो द्रव्य प्रत्यक्ष होवै है. और जा द्रव्यमें महत्व होवै ताका रूप प्रत्यक्ष होवै है. परमाणु व्द्यणुकमें महत्व नहीं तिनका रूप प्रत्यक्ष नहीं, यातैं अणुकादिरूप वायुमें महत्व है तामें रूप होता तो त्र्यणुकादिरूप वायुका प्रत्यक्ष होता और ताके रूपकाभी प्रत्यक्ष होता. इस रीतिसैं परमाणु व्द्यणुकरूप वायुकूं त्यागिके त्र्यणुकादि वायुमें रूपके आरोपतैं रूपके उपलंभका आरोप होवै है, यातैं त्र्यणुकादिरूप वायुमें रूपाभाव प्रत्यक्ष है, परमाणु व्द्यणुकरूप वायुमें रूपका आरोप हुएभी महत्वके नहीं होनेतैं रूपके उपलंभके आरोपके नहीं होनेतैं परमाणुव्द्यणुक वायुमें रूपाभाव प्रत्यक्ष नहीं, तैसैं जलपरमाणुमें पृथिवीत्वाभाव प्रत्यक्ष नहीं. काहेतैं ? जलपरमाणुमें पृथिवीत्व होवै तो ताका उपलंभ होवै; इस रीतिसैं पृथिवीत्वके आरोपते पृथिवीत्वके उपलंभका आरोप होवैं नहीं. काहेतैं ? आश्रय प्रत्यक्ष होवै तो जातिका प्रत्यक्ष होवै; यातैं जलपरमाणुमें जलत्व है. जैसैं जलत्वका प्रत्यक्ष नहीं तैसैं आरोपितपृथिवीत्वके उपलंभका आरोप संभवै नहीं; यातैं जलपरमाणुमें पृथिवी-

त्वका अभाव प्रत्यक्ष नहीं, और परमाणुमें महत्वका अभाव प्रत्यक्ष है: काहेतैं? परमाणुमें चाक्षुषप्रत्यक्षकी सामग्री उद्भूतरूप है और त्वाचप्रत्यक्षकी सामग्री उद्भूत स्पर्शभी है, परंतु महत्व नहीं है; यातैं परमाणुका प्रत्यक्ष होवै नहीं और परमाणुके प्रत्यक्षयोग्य रूपादिक गुणनकाभी महत्वाभावतैं प्रत्यक्ष होवै नहीं. महत्ववाले द्रव्यके रूपादिक गुण प्रत्यक्ष होवै हैं जो परमाणुमें महत्व होता तो परमाणुका प्रत्यक्ष होता और परमाणुके प्रत्यक्षयोग्य गुणनकाभी प्रत्यक्ष होता: घटादिकनका महत्व प्रत्यक्ष है, यातैं रूपादिकनकी नांई महत्वगुणभी प्रत्यक्षयोग्य है, आकाशादिकनमें महत्व तो है परंतु उद्भूतरूप समानाधिकरण महत्वका प्रत्यक्ष होवै है. आकाशादिकनमें उद्भूतरूप हैं नहीं, यातैं तिनके महत्वका प्रत्यक्ष होवै नहीं, तथापि महत्वगुण प्रत्यक्षयोग्य है. इस रीतिसैं परमाणुमें महत्व विना अन्यसामग्री प्रत्यक्षकी है. जो महत्व होता तो परमाणु और ताके गुणनका प्रत्यक्ष होता, यातैं परमाणुमें महत्वके आरोपतैं ताके उपलंभका आरोप संभवै है. महत्वके आरोपतैं केवल महत्वके उपलंभका आरोप नहीं होवै है, किंतु परमाणुके उपलंभका और परमाणुमें समवेत प्रत्यक्षयोग्य गुणादिकनके उपलंभका आरोप होवै है. जो परमाणुमें महत्व होवै तो परमाणुका उपलंभ होवै और परमाणुमें समवेत प्रत्यक्षयोग्य गुणनकाभी उपलंभ होवै और प्रत्यक्षयोग्य जातिका तथा क्रियाकाभी उपलंभ होवै सो परमाणु आदिकनका उपलंभ नहीं, यातैं परमाणुमें महत्व नहीं. इस रीतिसैं परमाणुमें महत्वाभाव प्रत्यक्ष है, इस रीतिसैं जिस अधिकरणमें जा अभावके प्रतियोगीके आरोपतैं उपलंभका आरोप होवै तिस अधिकरणमें सो अभाव प्रत्यक्ष है.

८९ जिस इंद्रियतैं उपलंभका आरोप तिस इंद्रियतैं उपलंभके आरोपतैं अभावका प्रत्यक्ष.

परंतु जिस इंद्रियजन्य उपलंभका आरोप होवै तिस इंद्रियतैं अभावका प्रत्यक्ष होवै है. जैसैं भूतलमें घट होवै तो नेत्रसैं घटका उपलंभ हुया चाहिये उपलंभ होवै नहीं; यातैं घट नहीं. इस रीतिसैं जहां नेत्रजन्य उपलं-

भका आरोप होवै तहां घटाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है, और भूतलमें घट होवै तो त्वक् इंद्रियतैं घटका उपलंभ हुया चाहिये. इस रीतिसैं अंधकूं अथवा अंधकारमें त्वक् इंद्रिकजन्य उपलंभका आरोप होवै तहां घटाभावका त्वाचप्रत्यक्ष होवै है. इस रीतिसैं जिस इंद्रियके उपलंभका आरोप होवै तिसी इंद्रियतैं अभावका प्रत्यक्ष होवै है. वायुमें रूपाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है, त्वाच प्रत्यक्ष होवै नहीं. काहेतैं ? वायुमें रूप होता तो रूपका नेत्र इंद्रिय जन्य उपलंभ होता और उपलंभ होवै नहीं, यातैं वायुमें रूप नहीं. इस रीतिसैं नेत्र इंद्रिय जन्य रूपोपलंभका आरोप होवै है और वायुमें रूप होता तो त्वक्सैं ताका उपलंभ होता. इस रीतिसैं त्वक्इंद्रियजन्य रूपोपलंभका आरोप होवै नहीं. काहेतैं ? रूपसाक्षात्कारका हेतु केवल नेत्र है त्वक् नहीं, तैसैं रसनादि इंद्रियजन्य रूपोपलंभका आरोपभी होवै नहीं; यातैं रूपाभावका चाक्षुष प्रत्यक्षही होवै है, तैसैं मधुरद्रव्यमें तिक्त रसाभावका रासनप्रत्यक्षही होवै है. काहेतैं ? सितामें तिक्त रस होता तो ताका रसन इंद्रियतैं उपलंभ होता और उपलंभ होवै नहीं, यातैं सितामें तिक्त रस नहीं. इस रीतिसैं सितामें तिक्त रसके आरोपतैं रसनजन्य तिक्तरसोपलंभका आरोप होवै है, अन्य इंद्रियजन्य उपलंभका आरोप होवै नहीं; यातैं रसनेंद्रियजन्यही रसाभावका प्रत्यक्ष होवै है, तैसैं स्पर्शाभावका प्रत्यक्ष त्वक्जन्यही होवै है. काहेतैं ? अग्निमें शीतस्पर्श होता तो ताका त्वक् इंद्रियतैं उपलंभ होता, और अग्निमें शीतस्पर्शका त्वक्सैं उपलंभ होवै नहीं, इस रीतिसैं अग्निमें शीतस्पर्शके आरोपतैं त्वक्जन्य उपलंभका आरोप होवै है, यातैं स्पर्शाभावका प्रत्यक्ष केवल त्वक्जन्य होवै है तैसैं परमाणुमें महत्वाभावका चाक्षुष प्रत्यक्षही होवै है. काहेतैं ? परमाणुका भेद महत्व है और परिमाणगुणका ज्ञान चक्षु और त्वचा दोनोंसैं होवै है यह अनुभवसिद्ध है. घटका छोटापना बड़ापना नेत्रसैं और त्वचासैं जानिये है; यातैं दोनों इंद्रियका विषय महत्व है, तथापि अपकृष्टतममहत्वका त्वचासैं ज्ञान होवै तो त्र्यणुकके महत्वका त्वचासैं ज्ञान हुया चाहिये. यातैं

अपकृष्टतममहत्वका केवल नेत्रसैं ज्ञान होवै है और परमाणुमेंभी अपकृष्टतममहत्वका ही आरोप होवैगा. ता अपकृष्टतममहत्वका त्वाचप्रत्यक्ष तो होवै नहीं चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है, यातैं परमाणुमें महत्वके आरोपणतैं नेत्रजन्य उपलंभकाही आरोप होनेतैं परमाणुमें महत्वाभावका चाक्षुष प्रत्यक्ष होवै है. त्वाचप्रत्यक्ष होवै नहीं. जो परमाणुमें महत्व होता तो त्र्यणुकके महत्वकी नाई नेत्रसैं ताका उपलंभ होता. इस रीतिसैं चाक्षुष उपलंभका आरोप होवै है. त्वाच उपलंभका नहीं. आत्मामें सुखाभावादिकनका मानस प्रत्यक्षही होवै है. काहेतैं? आत्मामें सुख होता तो मनसैं सुखका उपलंभ होता. इसकालमें सुखका उपलंभ होवै नहीं यातैं इसकालमें मेरे विषै सुख नहीं. इस रीतिसैं आत्मामें सुखके आरोपतैं ताके मानस उपलंभका आरोप होवैहै यातैं सुखाभावका मानसप्रत्यक्ष होवै है; तैसैं दुःखाभाव इच्छाभाव द्वेषाभावकाभी मानसप्रत्यक्ष होवै है; परंतु अपने सुखादिकनके अभाव प्रत्यक्ष हैं परसुखादिकनके अभाव प्रत्यक्ष नहीं; किंतु शब्दादिकनसैं तिनका परोक्षज्ञान होवै है. काहेतैं ? अन्यकूं सुखादिक हुएभी तिनका उपलंभ दूसरेकूं होवै नहीं यातैं अन्यमें सुख होता तो मेरेकूं उपलंभ होता. इस रीतिसैं अन्यवृत्ति सुखादिकनका आपकूं उपलंभका आरोप होवै नहीं, यातैं अन्यवृत्ति सुखादिकनका अभाव प्रत्यक्ष नहीं. इस रीतिसैं प्रतियोगीके आरोपतैं जहां उपलंभका आरोप होवै सो अभाव प्रत्यक्ष है. ऐसैं उपलंभका अभावरूप अनुपलंभकूं योग्यानुपलंभ कहै हैं, यातैं प्रतियोगीके आरोपतैं जिस उपलंभका आरोप होवै सो उपलंभ जाका प्रतियोगी होवै, ताकूं योग्यानुपलंभ कहै हैं. या अर्थमें कोई दोष नहीं. इस रीतिसैं जा अधिकरणमें जिस पदार्थका इंद्रियजन्य आरोपित उपलंभ संभवै तिस अधिकरणमें ताका अभाव प्रत्यक्ष है, एकही पिशाचका भेद स्तंभमें प्रत्यक्ष है और परमाणुमें अप्रत्यक्ष है. यातैं जिस अधिकरणमें कह्या जिस पदार्थका इंद्रियजन्य आरोपित उपलंभ संभवै तिसके अभावकूं प्रत्यक्ष कहते तो पिशाचका इंद्रियजन्य आरोपित उपलंभभी स्तंभमें होवै है; परमाणुमें भी पिशाचका भेद प्रत्यक्ष होवेगा; यातैं अधिकरण-

का नाम लेके कह्या है. स्तंभाधिकरणमें उपलंभका आरोप तो होवै है स्तंभमेंही पिशाचभेद प्रत्यक्ष है और परमाणुमें तादात्म्यसंबंधसैं पिशाच हुयाभी परमाणुकी नांई ताका उपलंभ संभवै नहीं, यातैं परमाणुमें पिशाचभेद प्रत्यक्ष नहीं और जिस पदार्थका ऐसा कहनेतैं वायुमें रूपात्यंताभावकी नांई गुरुत्वात्यंताभाव प्रत्यक्ष होवै नहीं. जो जिस अधिकरणमें इंद्रियजन्य आरोपित उपलंभ संभवै तिस अधिकरणमें अभावप्रत्यक्ष है इतनाही कहैं तो वायुअधिकरणमें रूपका इंद्रियजन्य आरोपित उपलंभ संभवै है. गुरुत्वाभावभी प्रत्यक्ष होवैगा, यातैं जिस पदार्थका उपलंभ संभवै ताका अभाव प्रत्यक्ष कह्या. यातैं रूपके आरोपित उपलंभसैं वायुमें गुरुत्वका अभाव प्रत्यक्ष होवै नहीं. इस रीतिसैं जहां प्रतियोगीका जा इंद्रिय जन्य आरोपित उपलंभ होवै, तिस इंद्रियतैं अभावका प्रत्यक्ष होवै है. और जहां उक्त रीतिसैं उपलंभ नहीं संभवै तहां अभावका परोक्षज्ञान होवै है यह नैयायिकमत है.

उक्तरीतिसैं न्यायमतमें अभावके प्रत्यक्षमें इंद्रिय करण है, इंद्रियमें विशेषणता और इंद्रियसंबद्धमें विशेषणता अभावमें इंद्रियका संबंध है सो व्यापार है, अभावकी प्रत्यक्षप्रमा फल है, और योग्यानुपलंभ इंद्रियका सहकारी कारण है करण नहीं.

९० न्यायमतमें सामग्रीसहित अभावप्रमाका कथन.

जैसैं घटादिकनके चाक्षुषप्रत्यक्षमें आलोकसंयोग सहकारी कारण है और नेत्र इंद्रिय करण है तैसैं अभावके प्रत्यक्षमें भी योग्यानुपलंभ सहकारी है और अभावके चाक्षुष प्रत्यक्षमें कभी आलोकसंयोग सहकारी नहीं; यद्यपि अंधकारमें घटाभावका त्वाच प्रत्यक्ष होवै है चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै नहीं; आलोकमें घटाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है; यातैं अभावके चाक्षुषप्रत्यक्षमैं अन्वयव्यतिरेकतैं आलोकसंयोग सहकारी कह्या चाहिये, तथापि घटमें कुलालपिताकी नांई अभावके चाक्षुषप्रत्यक्षमें आलोकसंयोग अन्यथासिद्ध है, जैसैं घटके कारण कुलालकी सिद्धि करिके कुलालका पिता कारणसामग्रीतै बाह्य रहै है घटका कारण नहीं कहिये है, किंतु घटके कारणका कारण है,

तैसैं अभावके प्रत्यक्षका सहकारी कारण योग्यानुपलंभ है, ताकी सिद्धि करिके अभाव प्रत्यक्षकी कारणसामग्रीतैं आलोकसंयोग बाह्य रहै है. काहेतैं ? अनुपलंभका प्रतियोगी जो उपलंभ ताका जहां आरोप संभवै सो अनुपलंभयोग्य कहिये है. घटके चाक्षुष उपलंभका आरोप आलोकमें होवै है अंधकारमें चाक्षुषउपलंभका आरोप होवै नहीं, यातैं घटाभावके चाक्षुष प्रत्यक्षका सहकारी कारण जो योग्यानुपलंभ ताका साधक आलोक है. घटाभावके चाक्षुष प्रत्यक्षका साक्षात्कारण नहीं होनेतैं कारणसामग्रीतैं बाह्य है; यातैं कुलालपिताकी नांई अन्यथासिद्ध है. जैसैं कुलालपिता घटका कारण नहीं तैसैं आलोकसंयोगभी अभावके चाक्षुषप्रत्यक्षका कारण नहीं; किंतु चाक्षुष प्रत्यक्षका कारण जो योग्यानुपलंभ ताका उक्त रीतिसैं साधक है.

और प्राचीनग्रंथनमें तो योग्यानुपलंभ इस रीतिसैं कह्या है:—जहां प्रतियोगी विना प्रतियोगीके उपलंभकी सकल सामग्री होवै और उपलंभ होवे नहीं तहां योग्यानुपलंभ है. जैसैं आलोकमें घट नहीं तहां योग्यानुपलंभ है. काहेतैं ? घटाभावका प्रतियोगी घट नहीं है ता विना आलोकसंयोग द्रष्टाके नेत्ररूप घटके चाक्षुष उपलंभकी सामग्री होनेतैं योग्यनुपलंभ है. और अंधकारमें जहां घट नहीं तहां योग्यानुपलंभ नहीं. काहेतैं ? प्रतियोगीके चाक्षुष उपलंभकी सामग्रीमें आलोकसंयोग है ताका अभाव है; तैसैं स्तंभमें तादात्म्य संबंधसैं जो रहै ताके उपलंभकी सामग्री स्तंभवृत्ति उद्भूतरूप महत्व है; यातैं स्तंभमें तादात्म्यसंबंधसैं पिशाचका अनुपलंभ योग्य है, और संयोगसंबंधसैं जो स्तंभवृत्ति होवै ताके उपलंभकी सामग्री स्तंभके उद्भूतरूप और महत्व नहीं हैं; किंतु संयोगसंबंधसैं रहनेवालेमें उद्भूतरूप महत्व चाहिये सो पिशाचमें है नहीं, यातैं संयोगसंबंधावच्छिन्न पिशाचात्यंताभावका प्रतियोगी जो पिशाच ताके उपलंभकी सामग्री पिशाचवृत्ति उद्भूतरूपके अभावतैं संयोगसंबंधसैं पिशाचका अनुपलंभ योग्य नहीं, इस रीतिसैं प्रतियोगी विना प्रतियोगीके उपलंभकी सकल सामग्री हुयां उपलंभ नहीं होवै सो योग्यानुपलंभ अभावके प्रत्यक्षका सहकारी कारण है,

इस रीतिसैं जहां योग्यानुपलंभ होवै और इंद्रियका अभावतैं संबंध होवै तहां इंद्रियजन्य प्रत्यक्षप्रमा अभावकी होवै है. जहां योग्यानुपलंभ नहीं होवै तहां अभावका प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं, किंतु अनुमानादिकनतैं परोक्षज्ञान होवै है. नैयायिक रीतिसैं अभावप्रत्यक्षमें योग्यानुपलंभ सहकारी है, इंद्रिय करण है.

९१ भट्ट और वेदांतमतमेंन्यायमततैं अभावप्रमाकी सामग्रीविषे विलक्षणता.

और भट्टमतमें तथा अद्वैतमतमें योग्यानुपलंभही करण है. अभावज्ञानमें इंद्रियकूं करणता नहीं; इसवासतैं अनुपलब्धि नाम भिन्न प्रमाण भट्टने मान्या है, तिसके अनुसारही अद्वैतग्रंथनमेंभी अभावप्रत्यक्षका हेतु अनुपलब्धि नाम भिन्न प्रमाणही लिख्या है. अनुपलंभको ही अनुपलब्धि कहै हैं जैसा योग्यानुपलंभ नैयायिकने सहकारी मान्या है तैसाही योग्यानुंपलभ भट्टमत अद्वैतमतमें प्रमाण है. नैयायिकमतमें अभावप्रत्यक्षके कारण इंद्रिय और योग्यानुपलंभ दोनों हैं; तिनमें इंद्रिय तो करण है, यातैं अभाव प्रमामें प्रमाण है और अनुपलंभकूं अभावप्रमाकी सहकारीकारणता मानै है. करणता नहीं मानै हैं, यातैं अनुपलंभ प्रमाण नहीं. और भट्टादिमतमें अनुपलब्धिही प्रमाण है.

यद्यपि अभावप्रमाकी उत्पत्तिमें अनुपलब्धिका व्यापार कोई संभवै नहीं और व्यापारवाला जो प्रमाका कारण सो प्रमाण कहिये है; यातैं अनुपलब्धिकूं प्रमाणता संभवै नहीं. तथापि व्यापारवाले प्रमाके कारणकूंही प्रमाणता होवै है; यह नियमभी नैयायिक मतमें है. और भट्टादिकनके मतमें तो सकल प्रमाणोंके भिन्न भिन्न लक्षण हैं. किसीके लक्षणमें व्यापारका प्रवेश है किसी प्रमाणके लक्षणमें व्यापारका प्रवेश नहीं है. जैसैं प्रत्यक्षप्रमाका व्यापारवाला असाधारण कारण प्रत्यक्षप्रमाण कहिये है, अनुमिति प्रमाका व्यापारवाला असाधारणकारण अनुमान कहिये है, शाब्दी प्रमाका व्यापारवाला असाधारण कारण शब्दप्रमाण कहिये है; इस रीतिसैं तीनि प्रमा-

णोंके लक्षणमें तो व्यापारका प्रवेश है और तिन्ह प्रमाणोंके निरूपणमें तीनों स्थानमें व्यापारका संभव कहि आये. और उपमान अर्थापत्ति उपलब्धि इनके लक्षणमें व्यापारका प्रवेश नहीं. उपमितिके असाधारणकारणको उपमानप्रमाण कहे हैं; उपपादक कल्पनाका असाधारण हेतु उपपाद्यकी अनुपपत्तिका ज्ञान **अर्थापत्ति प्रमाण** कहिये है, अभावकी प्रमाका असाधारण कारण **अनुपलब्धिप्रमाण** कहिये है. यद्यपि अभावका परोक्षज्ञानभी अनुमानादिकनतैं होवै है; यह पूर्व कही है, यातैं अनुपलब्धिके लक्षणकी अभावज्ञानके जनक अनुमानादिकनमें अतिव्याप्ति होवै है, तथापि अनुमानादिक प्रमाण भावकी प्रमाके और अभावकी प्रमाके साधारण कारण हैं, अभावकी प्रमाके असाधारण कारण नहीं. और अनुपलब्धिसैं केवल अभावकाही ज्ञान होवै है यातैं अभावप्रमाका असाधारण अनुपलब्धि प्रमाण है अन्य नहीं. इस रीतिसैं तीनि प्रमाणोंके लक्षणमें व्यापारका प्रवेश नहीं यातैं व्यापारकी अपेक्षा तीनि प्रमाणोंमें नहीं; अनुपलब्धिप्रमाणसैं अभावका ज्ञान होवै सो तो प्रत्यक्ष होवै है. और अनुमानसैं तथा शब्दसैं जो अभावका ज्ञान सो परोक्ष होवै है. जितने स्थानोंमें नैयायिक इंद्रियजन्य अभावका ज्ञान कहै हैं उतनै ज्ञानही अनुपलब्धिप्रमाणजन्य है. काहेतैं ? नैयायिकमतमें भी अभावज्ञानका सहकारीकारण अनुपलब्धि है. जैसी योग्यानुपलब्धिकूं नैयायिक इंद्रियका सहकारी मानै हैं सोई योग्यानुपलब्धि भट्टादिमतमें स्वतंत्रप्रमाणतैं विनाही भेद है. नैयायिकमतमें तो अभावप्रमाका प्रमाण इंद्रिय है. **वेदांतमतमें प्रमाण** अनुपलब्धि है और वेदांतमतमें अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावका ज्ञानभी नैयायिकमतकी नांई प्रत्यक्ष है परोक्ष नहीं.

९२ वेदांतरीतिसैं इंद्रियअजन्यप्रत्यक्षके लक्षणका निर्णय.

इहां **ऐसी शंका** होवै है:—इंद्रियजन्यज्ञानही प्रत्यक्ष होवै है अभावज्ञानकूं इंद्रियजंन्यताका निषेध करिके प्रत्यक्षता कहना बनै नहीं ? ताका यह **समाधान** है:—इंद्रियजन्यज्ञानही प्रत्यक्ष होवै तो ईश्वरका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं चाहिये. काहेतैं ? **न्यायमतमें** तो ईश्वरका ज्ञान नित्य है यातैं इंद्रि-

यजन्य नहीं और वेदांतमतमें ईश्वरका ज्ञान मायाकी वृत्तिरूप है इंद्रियजन्य नहीं. और ग्रंथनमें इंद्रियजन्यज्ञानकूं प्रत्यक्षता कहनेमें अनेक दूषण लिखे हैं, यातैं इंद्रियजन्यज्ञानही प्रत्यक्ष होवै यह नियम नहीं है; किंतु प्रमाणचेतनसैं विषयचेतनका अभेद होवै सो ज्ञान प्रत्यक्ष होवै है जहां विषय सन्मुख होवै तहां कहूं तो इंद्रियविषयके संबंधतैं इंद्रियद्वारा अंतःकरणकी वृत्ति घटदेशमें जावै हैं जायके घटके समानाकार होयके घटके वृत्ति मिलेहै तहां वृत्त्यवच्छिन्नचेतन प्रमाणचेतन कहिये है, विषयमें आया चेतन विषयचेतन कहिये है, प्रमाणचेतन और विषयचेतन स्वरूपसैं तो सदा एकही है, उपाधिभेदसैं चेतनका भेद होवै है. उपाधिभी भिन्नदेशमें होवैं तो उपहितका भेद होवै है, एक देशमें होय तो उपहितका भेद होवै नहीं. जैसैं घटका रूप और घट एकदेशमें होवै है तहां घटरूपोपहित आकाश और घटोपहित आकाश एकही है; और मठके अंतर घट होवै तहां घटोपहित आकाश मठाकाशतैं भिन्न नहीं. यद्यपि मठाकाश तो घटाकाशतैं भिन्नभी है. काहेतैं ? घटशून्य देशमें भी मठ है, तथापि मठशून्य देशमें घट नहीं, यातैं मठाकाशतैं घटाकाश भिन्न नहीं. इस रीतिसैं वृत्ति और विषय भिन्न देशमें रहै इतने तो वृत्त्युपहित चेतन और विषयोपाहित चेतन भिन्न होवै है. और वृत्ति विषय देशमें होवै तब विषयचेतनभी वृत्तिचेतन होवै है, यातैं विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं भेद रहै नहीं; किंतु अभेद होवै है. यद्यपि विषयदेशमें वृत्ति जावै तब द्रष्टाके शरीरके अंतर अंतःकरणसैं लेके विषयपर्यंत वृत्तिका आकार होवै है; यातैं विषयदेशतें बाह्यभी वृत्तिका स्वरूप होनेतैं विषयचेतनसैं भिन्नभी वृत्तिचेतन है, तथापि तिसकालमें वृत्तिसैं भिन्नदेशमें विषय नहीं; यातैं विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं अभेद कहै हैं. और जो दोनोंका परस्पर अभेद कहूं लिख्या होवै तो ताका अभिप्राय यह है:—जितना वृत्तिभाग घटदेशमें है उतना वृत्तिभागसैं उपहित चेतन घटचेतनसैं पृथक् नहीं; इस रीतिसैं जहां विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं अभेद होवै सो ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है.

९३ प्रत्यभिज्ञा और अभिज्ञाप्रत्यक्षज्ञान और स्मृतिआदि परोक्षज्ञानोंका सामग्रीसहित निर्णय.

जहा विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं अभेद नहीं होवै सो ज्ञान परोक्ष कहिये है. संस्कारजन्य स्मरणरूप अंतःकरणकी वृत्ति शरीरके अंतरही होवै है; ताका विषय देशांतरमें होवै है. अथवा नष्ट हो जावै है. यातैं विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं अभेद नहीं होनेतैं स्मृतिज्ञान परोक्ष है और जिस पदार्थके पूर्व अनुभवके संस्कार होवै और इंद्रियका संयोग होवै तहां "सोऽयम्" ऐसा ज्ञान होवै है; ताकूं अभिज्ञाज्ञान कहै हैं. तहांभी इंद्रिजयन्य वृत्ति विषयदेशमें जावै है; यातैं विषयचेतनका वृत्तिचेतनसैं अभेद होनेतैं प्रत्यभिज्ञा ज्ञानभी प्रत्यक्षहीं होवै है. केवल इंद्रियजन्यवृत्ति होवै तहां "अयम्" ऐसा प्रत्यक्ष होवै है; ताकूं अभिज्ञाप्रत्यक्ष कहै हैं. और मुख्य सिद्धांतमें तो पूर्व अनुभूतका "सोऽयम्" यह ज्ञानभी "तत्ता" अंशमें स्मृतिरूप होनेतैं परोक्ष है "अयम्" अंशमें प्रत्यक्ष है, यातैं "सोयम्" इस ज्ञानमें केवल प्रत्यक्षत्व नहीं किंतु अंशभेदसैं परोक्षत्व और प्रत्यक्षत्व दो धर्म हैं.

केवल संस्कारजन्यवृत्ति होवै ताका "सः" ऐसा आकार होवै है, ताकूं स्मृति कहै हैं. जा पदार्थका पूर्व इंद्रियतैं अथवा अनुमानादिकनतैं ज्ञान हुया होवै ताकी होवै है, यातैं स्मृतिज्ञानमें पूर्व अनुभव करण है और अनुभवजन्य संस्कार व्यापार है, काहेतैं ? जिस पदार्थका पूर्व ज्ञान होवै ताकी वर्षके अंतरायसैंभी स्मृति होवै है; तहां स्मृतिके अव्यवहित पूर्वकालमें अनुभव तो है नहीं और अव्यवहित पूर्वकालमें होवै सो हेतु होवै है यातैं पूर्व अनुभव स्मृतिका साक्षात् कारण संभवै नहीं, किसीद्वारा कारण कह्या चाहिये, यातैं ऐसा मानना योग्य है. जापदार्थका पूर्व अनुभव नहीं हुया ताकी तो स्मृति होवै नहीं; जो पूर्व अनुभव स्मृतिका कारण नहीं होवै तो जाका अनुभव नहीं हुया ताकी भी स्मृति हुई चाहिये और होवै नहीं. इस रीतिसैं पूर्व अनुभवसैं स्मृतिका अन्वयव्यतिरेक है. पूर्व अनुभव हुए स्मृति होवै है यह

अन्वय है, पूर्व अनुभव नहीं होवै तो स्मृति होवै नहीं यह व्यतिरेक है, एकके होनेसैं अपरका होना अन्वय कहिये है, एकके नहीं होनेतैं अपरका नहीं होना व्यतिरेक कहिये है. अन्वयव्यतिरेकसैं कारण कार्यभाव जानिये है, पूर्व अनुभव स्मृतिके अन्ययव्यतिरेक देखनेतैं तिनका कारण कार्यभाव तो अवश्य है, परंतु अव्यवहित पूर्वकालमें पूर्व अनुभवमिलै नहीं, यातैं स्मृतिकी उत्पत्तिसैं पूर्व अनुभवका कोई व्यापार मानना चाहिये. जहां प्रमाणबलतैं कारणताका निश्चय होवै और अव्यवहित पूर्व कालमें कारणकी सत्ता संभवै नहीं तहां व्यापारकी कल्पना होवै है. जैसैं शास्त्ररूपी प्रमाणतैं स्वर्गकी साधनताका यागमें निश्चय होवैहै और अंत्य आहुतिकूं याग कहैहैं तिस यागके नाश हुए बहुत कालके अंतरायतैं स्वर्ग होवै है. सुखविशेषकूं स्वर्ग कहै हैं. स्वर्गके अव्यवहित पूर्वकालमें यागके अभावतैं कारणता यागकूं संभवै नहीं; यातैं शास्त्रसैं निर्णीत कारणताके निर्वाहवासतें यागका व्यापार अपूर्व मानै हैं. जब अपूर्व अंगीकार किया तब दोष नहीं. काहेतैं? कार्यके अव्यवहित पूर्वकालमें कारण अथवा व्यापार एक चाहिये, कहूं दोनोंभी होवै हैं; परन्तु एक अवश्य चाहिये. जिसकूं धर्म कहै हैं सो यागजन्य अपूर्व है. यागसैं अपूर्व उत्पन्न होवै है और यागजन्य जो स्वर्ग ताका जनक है यातैं व्यापार है. जैसैं यागकूं स्वर्गसाधनताके निर्वाहवासतें अपूर्व व्यापार मानिये है सो अपूर्व सदा परोक्ष है तैसैं अन्ययव्यतिरेकबलतैं सिद्ध जो पूर्व अनुभवकूं स्मृतिकी करणता ताके निर्वाहवासतें संस्कार मानिये है. सो संस्कार सदा परोक्ष है; जा अंतःकरणमें पूर्व अनुभव होवै है और स्मृति होवैगी ता अंतःकरणका धर्म संस्कार है. नैयायिक मतमें अनुभव संस्कार स्मृति आत्माके धर्म हैं. अनुभवजन्य संस्कारकूं नैयायिक भावना कहै है. सो संस्कार पूर्व अनुभवजन्य है और पूर्व अनुभवजन्य जो स्मृति ताका जनक है, यातैं व्यापार कहिये है. इस रीतिसैं पूर्व अनुभव स्मृतिका करण है, संस्कार व्यापार है, स्मृतिकी उत्पत्तिसैं अव्यवहित पूर्वकालमें पूर्व अनुभवका तो नाश होनेतैं अभाव है, तथापि ताका व्यापार संस्कार है; यातैं पूर्व अनुभवके नाश हुयां भी स्मृति उपजै है. सो संस्कार

प्रत्यक्ष तो है नहीं. अनुमान अथवा अर्थापत्तिसैं संस्कारकी सिद्धि होवै है, यातैं जितने पूर्व अनुभूतकी स्मृति होवै उतनेकाल संस्कार रहै है. जा स्मृतिसैं उत्तर स्मृति न होवै सो चरमस्मृति कहिये है. चरमस्मृतिसैं संस्कारका नाश होवै है, यातैं फेरि तिस पदार्थकी स्मृति होवै नहीं. इस रीतिसैं पूर्व अनुभवजन्य संस्कारसैं अनेक स्मृति होवै हैं. जितने चरमस्मृति होवै इतने एक ही संस्कार रहै है. स्मृतिमें चरमता कार्यसैं जानी जावै है; जा स्मृतिके हुयां फेरि सजातीय स्मृति न होवै ता स्मृतिमें चरमताका अनुमानसैं ज्ञान होवैहै. अंत्यकूं चरम कहै हैं और कोई ऐसैं कहै हैः—पूर्वअनुभवजन्य संस्कारसैं प्रथम स्मृति होवै है और प्रथम स्मृतिकी उत्पत्तिसैं पहले संस्कारका नाश होवै है, स्मृतिसैं और संस्कार उपजै है. तासैं फेरि सजातीय स्मृति उपजै है. ता स्मृतिसैं स्वजनक संस्कारका नाश होवै है, अन्य संस्कार उपजै है, तासैं तृतीय स्मृति होवै है. इस रीतिसैं स्मृतिसैं भी संस्कारकी उत्पत्ति होवै है. जा स्मृतिसैं उत्तर सजातीय स्मृति न होवै सो स्मृति संस्कारकी हेतु नहीं. या मतमें संस्कारद्वारा स्मृतिज्ञानभी उत्तरस्मृतिका करण है. और प्रथम स्मृतिका करण अनुभव है, दोनों स्थानोंमें संस्कार व्यापार है; और पहले मतमें स्मृतिज्ञानका करण स्मृति नहीं किंतु पूर्वानुभवसैं संस्कार होवै है सो एकही संस्कार चरमस्मृतिपर्यंत रहै है.यातैं पूर्वानुभवही स्मृतिका करण है; और पूर्वानुभवजन्य संस्कारही सकल सजातीय स्मृतिमें व्यापार है. दोनों पक्षनमें स्मृतिज्ञान प्रमा नहीं. काहेतैं ? प्रथम पक्षमें तो स्मृतिज्ञानका करण पूर्वानुभव है सो षट्प्रमाणसैं न्यारा है. प्रमाणजन्य ज्ञानकूं प्रमा कहै हैं. पूर्वानु भव प्रमाण नहीं. द्वितीयपक्षमें प्रथमस्मृतिका करण तो पूर्वानुभव है और द्वितीयादि स्मृतिका करण स्मृति है सो स्मृतिभी षट्प्रमाणमें नहीं यातैं स्मृतिकूं प्रमा नहीं कहै हैं, तथापि यथार्थ अयथार्थ भेदसैं स्मृति दो प्रकारकी है. भ्रमरूप अनुभवके संस्कारनसैं उपजै सो अयथार्थ है; प्रमारूप अनुभवके संस्कारनसैं उपजै सो यथार्थ है. इस रीतिसैं दोपक्ष ग्रंथनमें लिखे हैं. तिनमें दूषण भूषण अनेक हैं. ग्रंथविस्तारभयतैं उपराम होयके प्रसंग लिखे हैं. जैसैं

पूर्व अनुभव जन्य स्मृतिज्ञान परोक्ष है, तैसैं अनुमानादि प्रमाणजन्य ज्ञानभी परोक्ष है. काहेतैं ? जैसैं स्मृतिका विषय वृत्तिसैं व्यवहित होवै है तैसैं अनुमानादिजन्य ज्ञानका विषयभी वृत्तिदेशमें होवै नहीं; किंतु व्यवहित पर्वतादि देशमें होवै है और अतीत अनागत पदार्थकाभी अनुमानादिकनतैं अनुमितिसैं आदि लेके वर्तमान ज्ञान होवै है. यातैं अनुमानादिजन्य ज्ञानके देशमें और कालमें विषय होवै नहीं किंतु अनुमितिआदि ज्ञानके देश और कालतैं भिन्न देश और भिन्न कालमें तिनके विषय होवै है.

९४ इंद्रियजन्यताके नियमसैं रहित प्रत्यक्षज्ञानका अनुसंधान.

इंद्रियजन्य ज्ञानके विषय ज्ञानके देशकालतैं भिन्न देश भिन्न कालमें होवै नहीं; किंतु ज्ञानके देशकालमेंही होवै हैं, यातैं इंद्रियजन्य ज्ञान सारे प्रत्यक्षही होवै हैं. अद्वैतमतमें अंतःकरणका परिणाम जो वृत्ति ताकूं ज्ञान कहै हैं, यातैं ज्ञानविषय एक देशमें होवै अथवा वृत्तिविषय एकदेशमें होवै या कहनेमें एकही अर्थ है. इंद्रियजन्य ज्ञानही प्रत्यक्ष होवै यह नियम नहीं. जहां अन्यप्रमाणजन्य वृत्तिदेशमेंभी विषय होवै तहां प्रत्यक्षज्ञानही होवै है. जैसैं "दशमस्त्वमसि" या शब्दसैं उत्पन्न हुई वृत्तिके देशमें विषय है यातैं शब्दप्रमाणजन्य ज्ञानभी कहूं प्रत्यक्ष होवै है. महावाक्यजन्य ब्रह्माकारवृत्ति और ब्रह्मात्मा दोनों एकदेशमें होवै हैं; यातैं महावाक्यजन्य ब्रह्मात्मज्ञान प्रत्यक्ष है. तैसैं ईश्वरज्ञानका उपादान कारण मायाके देशमें सर्व पदार्थ हैं, यातैं इंद्रियजन्य नहीं तोभी ईश्वरका ज्ञान प्रत्यक्ष है. तैसैं अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावका ज्ञानभी प्रत्यक्ष है. काहेतैं ? जहां भूतलमें घटाभावका ज्ञान होवैं तहां भूतलसैं नेत्रका संबंध होयके भूतलदेशमें अतःकरणकी वृत्ति जावै है. "भूतले घटो नास्ति" ऐसा वृत्तिका आकार है. तहां भूतलअंशमें तो वृत्ति नेत्रजन्य है और घटाभाव अंशमें अनुपलब्धिजन्य है. जैसैं "पर्वतो वह्निमान्" यह वृत्ति पर्वतअंशमें नेत्रजन्य है वन्हि अंशमें अनुमानजन्य है; तैसैं एकही वृत्ति अंशभेदसैं इंद्रिय और अनुपलब्धि दो प्रमाणसैं उपजै है; तहां भूतलाव-

च्छिन्न चेतनका वृत्त्यवच्छिन्न चेतनसैं अभेद होवै है और भूतलावच्छिन्न चेतनही घटाभावावच्छिन्न चेतन है. यातैं घटाभावावच्छिन्न चेतनकाभी वृत्त्यवच्छिन्न चेतनसैं अभेद होवै है; यातैं अनुपलब्धिप्रमाणजन्यभी घटाभावका ज्ञान प्रत्यक्ष है, परंतु जहां अभावका अधिकरण प्रत्यक्षयोग्य है, अधिकरणके प्रत्यक्षमें इंद्रियका व्यापार होवै है तहां उक्त रीतिका संभव है.

और जहां अधिकरणके प्रत्यक्षमें इंद्रियका व्यापार नहीं होवै तहां अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं; किंतु परोक्ष है. जैसैं वायुमें रूपाभावका योग्यानुपलब्धिसैं निमीलित नयनकूंभी ज्ञान होवै है और परमाणुमें योग्यानुपलब्धिसैं नेत्रका उन्मीलनव्यापार विनाही महत्वाभावका ज्ञान होवै है, तहां विषयदेशमें वृत्ति जावै नहीं; यातैं अनुपलब्धिप्रमाणजन्य वायुमें रूपाभावका ज्ञान तैसैं परमाणुमें महत्वाभावका ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं परोक्ष है. इस रीतिसैं अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावका ज्ञान कहूं प्रत्यक्ष है, कहूं परोक्ष है; और वेदांतपरिभाषादिक ग्रन्थनमें अनुपलब्धि प्रमाणजन्य अभावका प्रत्यक्ष लिख्या है, अनुपलब्धिजन्य परोक्षज्ञानका उदाहरण नहीं लिख्या, सो तिनमें न्यूनता है; लिख्या चाहिये. जो परोक्षका उदाहरण लिखे विना अनुपलब्धिजन्य ज्ञान परोक्ष होवै नहीं ऐसा भ्रम होवै है.

९५ अभावके ज्ञानकी सर्वत्र परोक्षताका निर्णय.

और सूक्ष्मदृष्टिसैं विचार करै तो अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावका ज्ञान सर्वत्र परोक्ष है, कहूंभी प्रत्यक्ष नहीं. काहेतैं ? प्रमाणचेतनसैं विषयचेतनका अभेद हुय भी जो प्रत्यक्षयोग्य विषय नहीं; ताका परोक्षही ज्ञान होवै है. जैसैं शब्दादिक प्रमाणतैं धर्माधर्मका ज्ञान होवै तब प्रमाणचेतनसैं विषयचेतनका भेद नहीं. काहेतैं ? अंतःकरणदेशमें धर्माधर्म रहै है यातैं अंतःकरण और धर्माधर्मरूप उपाधि भिन्नदेशमें नहीं होनेतैं धर्माधर्मावच्छिन्न चेतन प्रमाण चेतनसैं भिन्न नहीं, तथापि धर्माधर्म प्रत्यक्षयोग्य नहीं यातैं शब्दादिजन्य धर्माधर्मका ज्ञान कदीभी प्रत्यक्ष नहीं. अनुभवके अनुसार विषयमें योग्यता अयोग्यता जाननी. जैसैं धर्माधर्म प्रत्यक्षयोग्य नहीं तैसैं

अभावपदार्थभी प्रत्यक्षयोग्य नहीं. जो अभावपदार्थ प्रत्यक्ष होवै तो वादियोंका विवाद नहीं हुआ चाहिये. मीमांसक अभावकूं अधिकरणरूप मानै हैं, नैयायिकादिक अधिकरणसैं भिन्न मानै हैं, तैसैं नास्तिक अभावकूं तुच्छ और अलीक मानै हैं, आस्तिक अभावकूं पदार्थ मानै हैं, इस रीतिसैं अभावके स्वरूमम विवाद है. और प्रत्यक्षयोग्य जो घटादिक तिनके स्वरूपमें अधिकरणसैं भिन्न वा नहीं इत्यादिक विवाद होवै नहीं; यातैं अभाव पदार्थ प्रत्यक्षयोग्य नहीं इस कारणतैं जहां भूतलमें घटाभावका ज्ञान होवै तहां प्रमाणचेतनसैं घटाभावावच्छिन्न चेतनका अभेद है तो भी अभावांशमें यह ज्ञान परोक्ष है, भूतलांशमें अपरोक्ष है. जैसैं "पर्वतो वह्निमान्" यह ज्ञान पर्वतअंशमें अपरोक्ष है और वह्निअंशमें परोक्ष है; इस रीतिसैं अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावके ज्ञानकूं सर्वत्र परोक्ष मानै तो भट्टसैंभी विरोध नहीं. भट्टमतमें अनुपलब्धिजन्य अभावका ज्ञान परोक्षही है.

और अभावके ज्ञानको जो नैयायिक इंद्रियजन्य मानिके प्रत्यक्ष कहै हैं सो सर्वथा असंगत है:—काहेतैं? वायुमें रूपाभावका चाक्षुष प्रत्यक्ष होवै है और परमाणुमें महत्वाभावका चाक्षुष प्रत्यक्ष होवै है यह नैयायिकनका सिद्धांत है सो बनै नहीं. काहेतैं ? वायुमें रूपाभावके ज्ञानवास्ते कोईभी नेत्रका उन्मीलनव्यापार करै नहीं; किंतु निमीलितनेत्रकूंभी वायुमें रूपाभावका योग्यानुपलब्धिसैं ज्ञान होवै है, तैसैं परमाणुमें महत्वाभावका ज्ञानभी उन्मीलित नेत्रकी नांई निमीलितनेत्रकूंभी होवै है और निमीलितनेत्रकों घटादिकनका चाक्षुषज्ञान कदीभी होवै नहीं; यातैं वायुमें रूपाभावका और परमाणुमें महत्वाभावका चाक्षुषप्रत्यक्ष बनै नहीं; किंतु योग्यानुपलब्धिसैं तिनका परोक्ष ज्ञान होवै है.

और जो नैयायिक कहै हैं अभावज्ञानमें इंद्रियके अन्वयव्यतिरेक देखनेतैं अभावज्ञानमें इंद्रिय हेतु है और याका जो भेदधिक्कारादिक ग्रंथनमें समाधान लिख्या है:—इंद्रियका अन्वयव्यतिरेक अधिकरणके ज्ञानमें चरितार्थ है. जैसैं भूतलमें घटाभावका ज्ञान होवै तहां नेत्रइंद्रियसैं अभावके

अधिकरण भूतलका ज्ञान होवै है; ता नेत्रसैं ज्ञात भूतलमें घटाभावका योग्या-नुपलब्धिसैं ज्ञान होवै है; इस रीतिसैं घटाभावका अधिकरण जो भूतल ताके ज्ञानमें इंद्रिय चरितार्थ कहिये सफल है. सो शंका और समाधान दोनों असंगत हैं:—काहेतैं? वायुमें रूपाभावका और परमाणुमें महत्वाभावका नेत्र-व्यापारसैं विनाभी ज्ञान होवै है; यातैं किसी अभावज्ञानमें इंद्रियके अन्वय व्यतिरेक हुए इंद्रियकूं कारणता सिद्ध होवै नहीं; सकल अभावके ज्ञानमें इंद्रियका अन्यवय व्यतिरेक असिद्ध है. इस रीतिसैं शिथिलमूल शंकाका समाधानकथनभी असंगत है.

और जो नैयायिक इसरीतिसैं शंका करै:—"घटानुपलब्ध्या इंद्रियेणा-भावं निश्चिनोमि" ऐसी प्रतीति होवै है, यातैं अनुपलब्धि और इंद्रिय दोनों घटादिकनके अभावज्ञानके हेतु हैं. या शंकाका उक्त समाधान करैं "घटाभा-वके अधिकरणका ज्ञान इंद्रियतैं होवै है और घटाभावका ज्ञान अनुपलब्धिसैं होवै है" सोभी समाधान संभवै नहीं:—काहेतैं? जहां इंद्रिययोग्य अधिकरण है तहां तो उक्त समाधान संभवै है, और जहां अधिकरण इंद्रिययोग्य नहीं तहां उक्त समाधान संभवै नहीं. जैसैं "वायौ रूपानुपलब्ध्या नेत्रेण रूपाभावं निश्चिनोमि" इस रीतिसैं वायुमें रूपाभावकी अनुपलब्धिजन्य और नेत्रजन्य प्रतीति भासै है तहां वायुकी प्रतीति नेत्रजन्य है और रूपाभावकी प्रतीति अनुपलब्धिजन्य है यह कहना संभवै नहीं. काहेतैं? वायुमें रूपके अभावतैं नेत्रकी योग्यता नहीं.

यातैं अभावज्ञानकूं केवल अनुपलब्धिजन्य मानै उभयजन्यताकी प्रती-तिसैं विरोधका **अद्वैतवादीका यह सामाधान** है:—"भूतले अनुपलब्ध्या नेत्रेण घटाभावं निश्चिनोमि" या कहनेका अनुपलब्धिसहित नेत्रतैं भूतलमें घटाभावके निश्चयवाला मैं हूं यह अभिप्राय नहीं है, किंतु भूतलमें इंद्रियजन्य घटकी उपलब्धिके अभावतैं घटाभावके निश्चयवाला मैं हूं यह तात्पर्य है, अ-भावके निश्चयका हेतु अनुपलब्धि है और अनुपलब्धिका प्रतियोगी जो उप-लब्धि तामें इंद्रियजन्यता भासै है, यातैं निषेधनीय उपलब्धिमें इंद्रियजन्यता

प्रतीत होनेतैं इंद्रियजन्य उपलब्धिके अभावतैं घटाभावका निश्चय उपजै है यह सिद्ध हुआ. तैसैं "वायौ रूपारूपानुपलब्ध्या नेत्रेण रूपाभावं निश्चिनोमि" या कहनेकाभी रूपकी अनुपलब्धिसहित नेत्रतैं रूपाभावके निश्चयवाला मैं हूं यह तात्पर्य नहीं है. काहेतैं? नेत्रके व्यापार विना भी रूपाभावका निश्चय होवै है किंतु नेत्रजन्य रूपकी उपलब्धिके अभावतैं वायुमें रूपाभावके निश्चयवाला मैं हूं यह तात्पर्य है; यातैं जिस उपलब्धिका अभाव रूपाभावके निश्चयका हेतु ता उपलब्धिमें नेत्रजन्यता प्रतीत होवै है. इस रीतिसैं सारे अभावनिश्चयका हेतु जो अनुपलब्धि ताके प्रतियोगी उपलब्धिमें इंद्रियजन्यता कहिये है और विवेक विना अभावनिश्चयमें इंद्रियजन्यता प्रतीत होवै है, नैयायिककी शंकाका यह समाधान सर्वत्र व्यापक है, और अधिकरणज्ञानकी इंद्रियजन्यता अभावज्ञानमें भासै है, यह भेदधिक्कार वेदांतपरिभाषादिकनका समाधान सर्वत्र व्यापक नहीं; किंतु जहां प्रत्यक्षयोग्य भूतलादिक अभावके अधिकरण हैं तहां तो यह समाधान संभवै है; और जहां प्रत्यक्षयोग्य वायु आदिक अभावके अधिकरण हैं, तहां उक्त समाधान संभवै नहीं, और "अनुपलब्ध्या रसनेंद्रियेणाम्लरसाभावमाम्रे जानामि" या स्थानमें भी अधिकरणका ज्ञान रसनेंद्रियजन्य संभवै नहीं. काहेतैं ? अम्लरसके अभावका अधिकरण आम्रफल है ताके ज्ञानका सामर्थ्य रसनेंद्रियमें नहीं, रसनेंद्रियमें केवल रसज्ञानका सामर्थ्य है, द्रव्यज्ञानका सामर्थ्य नहीं, यातैं रसनेंद्रियजन्याम्लरसोपलब्धिके अभावतैं आम्रफलमें रसके अभावका निश्चयवाला मैं हूं यह तात्पर्यसैं उक्त व्यवहार होवै है. यद्यपि उक्त वाक्यके अक्षर मर्यादासैं उक्त अर्थ क्लिष्ट है, तथापि अन्यगतिके असंभवतैं उक्त अर्थ ही मानना चाहिये, यातैं नैयायिककी शंकाका अस्मदुक्त ही समाधान है. इस रीतिसैं अनुपलब्धिप्रमाणतैं अभावका निश्चय होवै है यह पक्ष निर्दोष है.

और जो नैयायिक शंका करैः—अभावप्रमाका पृथक् प्रमाण माननेमें गौरव है और घटादिकनकी प्रत्यक्ष प्रमामें इंद्रियकी प्रमाणता निर्णीत है, ता निर्णीत प्रमाणसैं अभावप्रमाकी उत्पत्ति मानै तो लाघव है.

९६ अनुपलब्धिप्रमाणके अंगीकारमें नैयायिककी शंका और सिद्धांतीका समाधान.

ता शंकाका यह समाधान है:—इंद्रियकूं प्रमाणता कहनेवाला नैयायिकभी अनुपलब्धिकूं करणता तो मानै है अनुपलब्धिकूं करणता नहीं कहैं है. अद्वैतवादी इंद्रियकूं अभावकी कारणता नहीं मानैं है, यातैं इंद्रियका अभावतैं स्वसंबद्ध विशेषणता और शुद्ध विशेषणतासंबंध नहीं मानना होवै है. नैयायिककूं अप्रसिद्ध संबंधकी कल्पना गौरव है और अनुपलब्धिमें सहकारी कारणता तो नैयायिक भी मानै है, तिसकूं अद्वैतवादी कारणतानाम धरिकै प्रमाणता कहै हैं; यातैं नैयायिकमतमें ही गौरव है अद्वैतमतमें नहीं.

और वेदांतपरिभाषाका टीकाकार मूलकारका पुत्र हुआ है तिसकूं अद्वैतशास्त्रके संस्कार न्यून हुए हैं और न्यायशास्त्रके संस्कार अधिक रहे हैं; यातैं मूलका व्याख्यान करिके नैयायिकमतका तिसनैं इस रीतिसैं उज्जीवन लिख्या है:—अनुपलब्धि पृथक् प्रमाण नहीं, अभावका ज्ञान इंद्रियतैं ही होवै है और जो कहैं अभावके साथ इंद्रियका संबंध नहीं है, विषयतैं संबंध विना इंद्रियजन्य ज्ञान होवै नहीं; विशेषणता और स्वसंबद्ध विशेषणता जो नैयायिक संबंध मानै हैं सो अप्रसिद्ध हैं, यातैं अप्रसिद्धकी कल्पना गौरव है सो असंगत है:—काहेतैं? "घटाभाववत् भूतलम्" यह प्रतीति सर्वकूं संमत है. या प्रतीतिसैं घटाभावमें आधेयता भासै है और भूतलमें अधिकरणता भासै है. परस्पर संबंध विना आधाराधेयभाव होवै नहीं, यातैं भूतलादिक अधिकरणमें अभावका संबंध सर्वकूं इष्ट है. जो अभावकूं प्रत्यक्ष नहीं मानैं तो तिनकूं भी अभावका अंगीकार है, यातैं अधिकरणसैं अभावका संबंध सर्वकूं इष्ट है. ता संबंधका व्यवहारवासतें कोई नाम कह्या चाहिये यातैं अधिकरणमें अभावके संबंधको विशेषणता कहै हैं. इस रीतिसैं विशेषणतासंबंध अप्रसिद्ध नहीं; यातैं अप्रसिद्ध कल्पनारूप गौरव नैयायिक मतमें नहीं. अभावका अधिकरणसैं संबंध सर्वमतसिद्ध होनेतैं स्वसंबंध विशेषणता दोनों संबंध अप्रसिद्ध नहीं और "निर्घटं भूतलं पश्यामि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै है; यातैं भूतलादि-

कनमें अभावका ज्ञान नेत्रादिजन्य है. जहां नेत्रजन्य ज्ञान होवै तहां ही 'पश्यामि' ऐसा अनुव्यवसाय होवै है; यातैं भूतलादिकनमें अभावका ज्ञान नेत्रादिजन्य है. जहां नेत्रजन्य ज्ञान होवै तहां ही 'पश्यामि' ऐसा अनुव्यवसाय होवै है और अद्वैतमतमें भूतलका ज्ञान नेत्रजन्य है, घटाभावका ज्ञान अनुपलब्धिजन्य है, नेत्रजन्य नहीं यातैं अनुव्यवसाय ज्ञानमें अपने विषय व्यवसायकी विलक्षणता भासी चाहिये. जैसैं "पर्वतो वह्निमान्" यह ज्ञान पर्वत अंशमें प्रत्यक्ष है, वह्नि अंशमें अनुमिति है, ताका "पर्वतं पश्यामि, वह्निमनुमिनोमि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै है. तामें व्यवसायकी विलक्षणता भासै है सो विलक्षणता इहां नेत्रजन्यत्व और अनुमानजन्यत्व है; तैसैं अभावज्ञानमें नेत्रजन्यत्व और अनुपलब्धिजन्यत्वरूप विलक्षणता होवै तो अनुव्यवसायमें भासी चाहिये. और केवल नेत्रजन्यत्वही अनुव्यवसायमें भासै है, यातैं अभावका ज्ञानभी इंद्रियजन्य है पृथक् प्रमाणजन्य नहीं. और अभावज्ञानकूं इंद्रियजन्य नहीं मानै तोभी अद्वैतवादी अनुपलब्धिजन्य मानिके प्रत्यक्षरूप कहै हैं, सोभी असंगत है:—काहेतैं? जो प्रत्यक्षज्ञान होवै सो इंद्रियजन्य होवै है या नियमका बाध होवेगा; यातैं अभावका ज्ञान इंद्रियजन्य है. इस रीतिसैं वेदांतपरिभाषाकी टीकामें नैयायिकमतका उज्जीवन सकल अद्वैतग्रंथनसैं विरुद्ध लिख्या है:—सो युक्तिसैं विरुद्ध है. काहेतैं ?

प्रथम जो कह्या अभावका अधिकरणसैं संबंध सर्वकूं इष्ट है, यातैं अप्रसिद्ध कल्पना नहीं सो असंगत है. काहेतैं? अभाव और अधिकरणका संबंध तो इष्ट है परंतु विशेषणतासंबंधमें प्रत्यक्षज्ञानकी कारणता अप्रसिद्ध है. काहेतैं ? जो अभावज्ञानकूं इंद्रियजन्यता मानै तिसीके मतमें विशेषणतासंबंध इंद्रियजन्य ज्ञानका कारण मानना होवै है, अन्यमतमें विशेषणतासंबंधमें इंद्रियजन्य ज्ञानकी कारणता माननी होवै नहीं; यातैं अप्रसिद्ध कल्पनाका परिहार नैयायिकमतमें होवै नहीं. और जो अभावज्ञानकूं पृथक् प्रमाणजन्यता माननेमें दोष कह्या "निर्घटं भूतलं पश्यामि" ऐसा अनुव्यवसाय नहीं हुआ चाहिये सोभी संभवै नहीं:—काहेतैं ? घटाभावविशिष्ट भूतलके चाक्षुष

ज्ञानवाला मैं हूं ऐसा अनुव्यवसाय होवै. उक्त वाक्यकाभी यही अर्थ है. या अनुव्यवसायमें घटाभाव विशेषण है भूतल विशेष्य है; ता विशेष्य भूतलमें चाक्षुषज्ञानकी विषयता है घटाभाव विशेषणमें नहीं है तोभी घटाभावविशिष्ट भूतलमें प्रतीत होवै है: कहूं विशेषणमात्रका धर्म, कहूं विशेष्यमात्रका धर्म, कहूं विशेषणविशेष्य दोनोंका धर्म, विशिष्टमें प्रतीत होवै है, जैसें दंडी पुरुष या ज्ञानमें दंड विशेषण है और पुरुष विशेष्य है. जहां दंड नहीं है पुरुष है तहां "दण्डी पुरुषो नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै है; यातैं दंडरूप विशेषणका अभाव है, पुरुष रूप विशेष्यका अभाव नहीं; तथापि विशेषणमात्रवृत्ति अभाव दंडविशिष्ट पुरुषमें प्रतीत होवै हैं. जहां दंड है पुरुष नहीं है तहां विशेष्यमात्रका अभाव है; और "दण्डी पुरुषो नास्ति" इस रीतिसैं दंडविशिष्ट पुरुषमें प्रतीत होवै है. जहां दंड नहीं और पुरुषभी नहीं है. तहां विशेषण विशेष्य दोनोंका अभाव विशिष्टमें प्रतीत होवै है; तैसैं विशेष्य भूतलमें चाक्षुषज्ञानकी विषयता है और विशेषण जो घटाभाव तामें नहीं है तो भी घटाभावविशिष्ट भूतलमें प्रतीत होवै है. जैसैं "वह्निमन्तं पर्वतं पश्यामि" इस रीतिसैं पर्वतके प्रत्यक्षका अनुव्यवसाय होवै है, तहां चाक्षुषज्ञानकी विषयता विशेष्य पर्वतमें है और विशेषण जो वह्नि तामें नहीं है, तथापि वह्निविशिष्ट पर्वतमें चाक्षुषज्ञानकी विषयता प्रतीत होवै है और जो दोष कह्या घटाभाव और भूतल विजातीयज्ञानके विषय होवें तो "पर्वतं पश्यामि वह्निमनुमिनोमि" इस रीतिसैं विलक्षण व्यवसायज्ञानकूं विषय करनेवाला अनुव्यवसाय हुआ चाहिये. यह कथनभी अद्वैत ग्रंथनके शिथिलसंस्कारवालेका है:—काहेतैं? अभावका ज्ञान अनुपलब्धिप्रमाणजन्य है इस अर्थकूं जो मानै ताकूं "घटानुपलब्ध्या घटाभावं निश्चिनोमि। नेत्रेण भूतलं पश्यामि" ऐसा अनुव्यवसाय अबाधित होवै है; तासैं व्यवसायज्ञानकी विषयता घटाभावमें और भूतलमें विलक्षण मानै हैं; और जो दोष कह्या है:—अनुपलब्धिजन्यता मानिके अद्वैतवादी अभावज्ञानकूं प्रत्यक्ष मानै है और जो प्रत्यक्षज्ञान होवै सो इंद्रियजन्य होवै है; यातैं उक्त नियमका अनुपलब्धिवादीके मतमें बाध होवैगा;

सोभी सिद्धांतके अज्ञानतैं है, यातैं असंगत है. काहेतैं ? अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावज्ञान सारै प्रत्यक्ष नहीं है; किंतु कोई ज्ञान प्रत्यक्ष है और वायुमें रूपाभावका ज्ञान परमाणुमें महत्वाभावका ज्ञान इत्यादि अनुपलब्धिजन्य हैं तथापि परोक्ष हैं, अथवा अनुपलब्धिप्रमाणजन्यभी अभावका ज्ञान सारै परोक्ष है, यह पूर्व प्रतिपादन करि आये हैं, यातैं अनुपलब्धिवादी अभावज्ञानकूं प्रत्यक्ष मानैं यह धर्मराजके पुत्रका कथन सिद्धांतके अज्ञानसैं है. और वेदांतपरिभाषादिक ग्रंथनमें जो कहूं अभावज्ञानकूं प्रत्यक्षता कही है सो प्रौढिवादसैं कही है. जो अनुपलब्धि प्रमाणजन्य अभावज्ञानकूं प्रत्यक्षता मानि लेवै तोभी वक्ष्यमाण रीतिसैं अभावज्ञानमें इंद्रियजन्यता सिद्ध होवै नहीं, यह ग्रंथकारनका प्रौढिवाद है. प्रतिवादीकी उक्ति मानिके भी स्वमतमें दोषका परिहार करै ताकूं प्रौढिवाद कहै हैं. और अभावज्ञानकूं प्रत्यक्षता मानिके इंद्रियजन्यता नहीं मानै तो प्रत्यक्षज्ञान इंद्रियजन्य होवै है, या नियमका बाध होवैगा; यह कथनभी असंगत हैः—काहेतैं ! ताकूं यह पूछै हैं:—जो प्रत्यक्षज्ञान होवै सो इंद्रियजन्य होवै है इंद्रियजन्यसैं भिन्न प्रत्यक्ष होवै नहीं; ऐसा नियम है. अथवा जो इंद्रियजन्य ज्ञान होवै सो प्रत्यक्ष होवै है. प्रत्यक्षसैं भिन्न इंद्रियजन्य होवै नहीं यह नियम है. तिनमें प्रथमपक्ष कहै तो असंगत है; ईश्वरका ज्ञान प्रत्यक्ष है इंद्रियजन्य नहीं है. न्यायमतमें नित्य है और सिद्धांतमतमें मायाजन्य है. ईश्वरके इंद्रियनका अभाव है यातैं ताका ज्ञान इंद्रियजन्य नहीं. और "दशमस्त्वमसि" या वाक्यतैं उत्पन्न हुआ ज्ञान प्रत्यक्ष है इंद्रियजन्य नहीं, जो ऐसैं कहै दशमपुरुषकूं अपने शरीरमें दशमताका ज्ञान होवै है सो शरीर नेत्रके योग्य है, यातैं दशमका ज्ञानभी नेत्रइंद्रियजन्य है, सो संभवै नहीं:—काहेतैं ? निमीलितनयनकूं भी वाक्य सुनिके दशमका ज्ञान होवै है. जो नेत्रजन्य होवै तो नेत्रव्यापार विना नहीं हुआ चाहिये; यातैं दशमका ज्ञान नेत्रजन्य नहीं और जो ऐसैं कहै दशमका ज्ञान मनोजन्य है यातैं इंद्रियजन्य हैं, सोभी संभवै नहीं:—काहेतैं ? देवदत्त यज्ञदत्तादिक नाम आत्माके नहीं; किंतु न्यायमतमें शरीरविशिष्ट आत्माके और वेदांतमतमें सूक्ष्मविशिष्ट

स्थूल शरीरके हैं; तैसैं त्वम् अहम् यह व्यवहारभी सूक्ष्मविशिष्ट स्थूल शरीरमें होवै है. ता स्थूलशरीरका ज्ञान मनसैं संभवै नहीं. बाह्यपदार्थके ज्ञानका मनमें सामर्थ्य नहीं. जो ऐसैं कहैं:—मनका अवधान होवै तो वाक्यसैं दशमका ज्ञान होवै, विक्षिप्तमनवालेकूं होवै नहीं; यातैं अन्वयव्यतिरेकतैं दशमज्ञानका हेतु मन होनेतैं दशमका ज्ञान मानस है यातैं इंद्रियजन्य है; सोभी संभवै नहीं:— इस रीतिके अन्वयव्यतिरेकतैं सकल ज्ञानोंका हेतु मन है. विक्षिप्तमनवालेकूं किसी प्रामाणतैं ज्ञान होवै नहीं. सावधानमनवालेकूं सकल ज्ञान होवै हैं, यातैं सारे ज्ञान मानस कहे चाहिये. यातैं सर्व ज्ञानका साधारणकारण मन है, इंद्रिय अनुमानादिक सकल प्रमाणका सहकारी है. मनसहित नेत्रतैं जो ज्ञान होवै सो चाक्षुषज्ञान कहिये है, मनसहित अनुमानप्रमाणतैं होवै सो अनुमितिज्ञान कहिये है, मनसाहित शब्दप्रमाणतैं होवै सो शाब्दज्ञान कहिये है, अन्य प्रमाण विना केवल मनतैं जो ज्ञान होवै सो मानसज्ञान कहिये है, सो केवल मनतैं आंतर पदार्थ सुखादिकनका ज्ञान होवै; यातैं आंतर पदार्थका ज्ञानही मानस होवै है. बाह्यपदार्थका इंद्रियानुमानादिक विना केवल मनतैं ज्ञान होवै नहीं यातैं दशमका ज्ञान मानस है यह कहना संभवै नहीं. आंतर पदार्थका ज्ञान मानस होवै है यहभी नैयायिकरीतिसैं कह्या है, सिद्धांतमें तो कोई ज्ञान मानस नहीं. काहेतैं ? शुद्ध आत्मा तो स्वयंप्रकाश है, ताके प्रकाशमें किसी प्रमाणकी अपेक्षा नहीं; यातैं आत्माका ज्ञान मानस नहीं और सुखादिक साक्षीभास्य है. जिस कालमें इष्ट पदार्थके संबन्धतैं सुखाकार अंतःकरणका परिणाम होवै अनिष्टपदार्थके संबंधतैं दुःखाकार अंतःकरणका परिणाम होवै तिसी समय सुखदुःखकूं विषय करनेवाला अंतःकरणके सत्वगुणका परिणाम वृत्ति होवै है, ता वृत्तिमें आरूढ साक्षी सुखदुःखकूं प्रकाशे है; सुखदुःखकी उत्पत्तिमें इष्टसंबंध और अनिष्टसंबंध निमित्त है, तिसी निमित्तसैं सुख और दुःखकूं विषय करनेवाली अंतःकरणकी वृत्ति होवै है, ताकी उत्पत्तिमें किसी प्रमाणकी अपेक्षा नहीं; यातैं सुख दुःख साक्षीभास्य हैं; यद्यपि घटादिकनका प्रकाशभी केवल वृत्तिसैं होवै नहीं

किंतु वृत्तिमें आरूढ चेतनसैंही सर्वका प्रकाश होवै है यातैं सारे पदार्थ साक्षीभास्य कहे चाहिये, तथापि घटादिकनका ज्ञानरूप अंतःकरणकी वृत्ति उपजै तामें इंद्रिय अनुमानादिक प्रमाणकी अपेक्षा है. और सुखादिकनके ज्ञानरूप वृत्तिकी उत्पत्तिमें किसी प्रमाणकी अपेक्षा नहीं इतना भेद है. जा वृत्तिमें आरूढ साक्षी विषयकूं प्रकाशै सो वृत्ति जहां इंद्रिय अनुमानादिक प्रमाणसैं होवै तहां विषयकूं साक्षीभास्य नहीं कहै हैं, किंतु प्रमाणजन्य ज्ञानका विषय कहै हैं. जहां प्रमाणके व्यापार विना वृत्तिकी उत्पत्ति होवै ता वृत्तिमें आरूढ साक्षी जिसकूं प्रकाशै सो **साक्षीभास्य** कहिये है. घटादिगोचर अंतःकरणकी वृत्ति इंद्रिय अनुमानादिक प्रमाणतैं होवै है; ता वृत्तिमें आरूढ साक्षी प्रकाशै है, तथापि घटादिक **प्रमाणगोचर** कहिये है, साक्षीभास्य नहीं. और सुखादिगोचरवृत्ति प्रमाणजन्य नहीं किंतु सुखादिजनक धर्मादिजन्य हैं; यातैं सुखादिक **साक्षीभास्य** हैं. इस रीतिसैं सुखादिक और तिनके ज्ञान समान सामग्रीसैं होवै हैं, यातैं अज्ञात सुखादिक होवै नहीं किंतु ज्ञातही होवै है और सुखादिकनके प्रत्यक्षके सुखादिक हेतु नहीं जो पूर्व कालमें सुखादिक होवैं तो स्वज्ञानके हेतु होवैं. सुखादिक और तिनका ज्ञान समानकालमें समान सामग्रीतैं होवै हैं, यातैं परस्पर कार्यकारणभाव तो नहीं और घटादिकनके प्रत्यक्षज्ञानमें घटादिक हेतु हैं. काहेतैं ? प्रत्यक्ष ज्ञानतैं प्रथम घटादिक उपजै हैं; यातैं स्वगोचर प्रत्यक्षके घटादिक हेतु हैं. घटादिकनके जहां अनुमिति आदि ज्ञान होवैं तिनके हेतु घटादिक नहीं. अनुमिति ज्ञानमें तैसैं शाब्दज्ञानमें जो विषयभी कारण होवै तो अतीत अनागत पदार्थके अनुमिति आदिक ज्ञान नहीं हुए चाहिये; यातैं अनुमिति ज्ञान शाब्दज्ञानादिकनमें विषय कारण नहीं. तैसैं सुखादिकभी स्वगोचरज्ञानके कारण नहीं. पूर्व प्रसंग यह है:—सुखादिकनका ज्ञान मानस नहीं किंतु सुखादिक साक्षीभास्य हैं. यातैं मनका असाधारण विषय मिलै नहीं. इस कारणतैं सर्व ज्ञानोंका उपादानरूप अंतःकरण तो है और ज्ञानका स्वतंत्र करणरूप इंद्रिय जो मनकूं नैयायिक कहै हैं सो असंगत है; यातैं दशमका ज्ञान मानस नहीं किंतु वाक्यजन्य

है और प्रत्यक्ष है, इस रीतिसैं जो प्रत्यक्षज्ञान होवै सो इंद्रियजन्य होवै यह नियम संभवै नहीं. और जो ऐसैं कहैः—जो इंद्रियजन्य ज्ञान होवै सो प्रत्यक्ष होवै: इंद्रियजन्य ज्ञान कोई अप्रत्यक्ष नहीं होवै है या नियमसैं सिद्धांतकी हानि नहीं. काहेतैं ? इंद्रियजन्य ज्ञानकूं अप्रत्यक्षता हमभी नहीं कहै हैं, इंद्रियजन्यज्ञान तो सारे प्रत्यक्ष है, कहूं शब्दादिकनतैंभी प्रत्यक्ष होवै है यह सिद्धांत है; यातैं उक्त नियमका विरोध नहीं. इस रीतिसैं नैयायिकानुसारी धर्मराजके पुत्रकी उक्ति असंगत है.

यातैं अभावज्ञान इंद्रियजन्य नहीं; किंतु योग्यानुपलब्धि नाम पृथक् प्रमाणजन्य है. जहां "प्रतियोगी होता तो ताका उपलंभ होता" इस रीतिसैं प्रतियोगीके आरोपतैं उपलंभका आरोप होवै तहां तो अभावका ज्ञान योग्यानुपलब्धिप्रमाणजन्य है और अंधकारमें घटाभावका ज्ञान अनुमानादिजन्य है. काहेतैं ? "अंधकारमें घट होता तो ताका उपलंभ होता" इस रीतिसैं घटरूप प्रतियोगीके आरोपतैं घटके उपलंभका आरोप संभवै नहीं. इस रीतिसैं अन्यमतमें जितने अभावनके ज्ञान इंद्रियजन्य हैं उतनेही ज्ञान वेदांतमतमें केवल अनुपलब्धिजन्य हैं. नैयायिकमतमें इंद्रिय करण है, अनुपलब्धि सहकारी कारण है, यातैं इंद्रियमें प्रमाणता है अनुपलब्धिमें प्रमाणता नहीं है. वेदांतमतमें अनुपलब्धिमें प्रमाणता अधिक माननी होवै है. अनुपलब्धि स्वरूपसैं दोनों मतमें सिद्ध है, तैसैं न्यायमतमें विशेषणतासंबंधकूं ज्ञानकी कारणता अधिक माननी होवै है और विशेषणता संबंध स्वरूपसैं अधिकरण अभावका दोनों मतमें सिद्ध है इस रीतिसैं वेदांतीकूं अनुपलब्धिमें प्रमाणता अधिक माननी और नैयायिककूं विशेषणतासंबंधमें ज्ञानकी कारणता अधिक माननी; यातैं लाघव गौरव किसीकूं नहीं, दोनोंकी समान कल्पना है, तथापि अभावज्ञानकी करणता इंद्रियमें नैयायिक अधिक कहै हैं; यह तिनके मतमें गौरव है और वायुमें रूपाभावका ज्ञान नेत्रव्यापारसैं विना होवै है, और ताकूं नैयायिक चाक्षुषज्ञान कहै हैं. तैसैं परमाणुमें महत्त्वाभावका ज्ञानभी नेत्रव्यापारसैं विना होवै है, ताकूं भी नैयायिक चाक्षुषज्ञान कहै हैं, इस रीतिसैं अनेक स्थानमें जिस

इंद्रियके व्यापार विना जो अभावका ज्ञान होवै ताकूं तिस इंद्रियजन्य कहै है, सो अनुभवविरुद्ध है. जिस इंद्रियव्यापारतैं जो ज्ञान होवै तिस इंद्रियजन्य सो ज्ञान होवै है. जिस इंद्रियके व्यापार विना जो ज्ञान होवै तिस इंद्रियजन्यता ज्ञानकूं मानै तो सकल ज्ञान सकल इंद्रियजन्य हुए चाहिये; यातैं अभावका ज्ञान इंद्रियजन्य है यह नैयायिकमत समीचीन नहीं. इस रीतिसैं अभावका ज्ञान अनुपलब्धिप्रमाणजन्य है, परंतु अभावज्ञानकी उत्पत्तिमें व्यापारहीन असाधारण कारण अनुपलब्धि है; यातैं अभावज्ञानकी असाधारण कारणता अनुपलब्धि प्रमाणका लक्षण है.

९७ अनुपलब्धिप्रमाणके निरूपणका जिज्ञासुकूं उपयोग.

अनुपलब्धिनिरूपणका जिज्ञासुकूं यह उपयोग है:—"नेह नानास्ति किंचन" इत्यादिक श्रुति प्रपंचका त्रैकालिक अभाव कहै है. अनुभवसिद्ध प्रपंचका त्रैकालिक निषेध बनै नहीं; यातैं प्रपंचका स्वरूपसैं निषेध नहीं करै है किंतु प्रपंच पारमार्थिक नहीं; यातैं पारमार्थिकत्वविशिष्ट प्रपंचका त्रैकालिक अभाव श्रुति कहै है. इस रीतिसैं पारमार्थिकत्वविशिष्ट प्रपंचका अभाव श्रुतिसिद्ध है और अनुपलब्धिप्रमाणसैंभी सिद्ध है. जो पारमार्थिकत्वविशिष्ट प्रपंच होता तो जैसैं प्रपंचकी स्वरूपसैं उपलब्धि होवै है तैसैं परमार्थिक प्रपंचकीभी उपलब्धि होती और स्वरूपसैं तो प्रपंचकी उपलब्धि होवै है परमार्थिकरूपतैं प्रपंचकी उपलब्धि होवै नहीं; यातैं पारमार्थिकत्वविशिष्ट प्रपंचका अभाव है. इस रीतिसैं प्रपंचाभावका ज्ञान अनुपलब्धिसैं होवै है, और भी अनेक अभावनका ज्ञान जिज्ञासुकूं इष्ट है ताका हेतु अनुपलब्धिप्रमाण है.

इति श्रीमन्निश्चलदासाहसाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरे अनुपलब्धिप्रमाणनिरूपणं नाम षष्ठः प्रकाशः समाप्तः ॥ ६ ॥

वृत्तिभेदअनिर्वचीयख्यातिमंडन ख्यातिखंडन और स्वतःप्रमात्वप्रमाणनिरूपणं नाम सप्तमप्रकाशप्रारंभः ।

९८ उपादान (समवायि), असमवायि, निमित्तकरण अरु संयोगका लक्षण.

ग्रंथके आरंभमें वृत्ति किसकूं कहै हैं या वचनतैं वृत्तिके लक्षण और भेदका प्रश्न है. वृत्तिका कारण कौन है यह वृत्तिकी सामग्रीका प्रश्न है. तीसरा प्रश्न वृत्तिके प्रयोजनका है; तिनमें वृत्तिके प्रयोजनका निरूपण अष्टम प्रकाशमें करेंगे. और कारणसमुदायकूं **सामग्री** कहै हैं. **कारण दो प्रकारका** होवै है. एक उपादान कारण होवै है और द्वितीय निमित्तकारण होवै है. जाके स्वरूपमें कार्यकी स्थिति होवै तिस कारणकूं **उपादानकारण** कहै हैं. उपादानकारणकूंही **समवायिकारण** कहै हैं. जैसैं घटका उपादानकारण कपाल है. और कार्यसैं तटस्थ हुआ कार्यका जनक होवै सो **निमित्तकारण** कहिये है. जैसैं घटके निमित्तकारण कुलाल चक्र दंडादिक हैं और **न्यायवैशेषिकमतमें** समवायी असमवायी निमित्तभेदसैं **कारण तीन प्रकारका** कहै हैं. कार्यके समवायिकारणसैं संबंधी जो कार्यका जनक ताकूं **असमवायिकारण** कहै हैं. जैसैं घटका असमवायिकारण कपालसंयोग है, पटका असमवायिकारण तंतुसंयोग है, घटके समवायिकारण कपालसैं संबंधी और घटका जनक कपालसंयोग है, तैसैं पटके समवायिकारण तंतुसैं संबंधी और पटका जनक तंतुसंयोग है. जो समवायिकारणके संयोगकूं कार्यका जनक नहीं मानै तो वियुक्त कपालनतैं घटकी और वियुक्त तंतुओंतैं पटकी उत्पत्ति हुई चाहिये. इस रीतिसैं द्रव्यकी उत्पत्तिमें अवयवनका संयोग कारण है; सो अवयवसंयोगमें कार्यकी स्थिति नहीं किंतु अवयवनमें कार्यद्रव्यकी स्थिति होवै है, यातैं अवयवसंयोगमें

समवायिकारणता संभवै नहीं और कार्यसैं तटस्थ रहै नहीं; किंतु अवयवसंयोग और कार्यद्रव्य अवयवमें समानाधिकरण होवै है यातैं निमित्तकारणताभी अवयवसंयोगमें संभवै नहीं, यातैं समवायिकारण और निमित्तकारणसैं विलक्षण असमवायिकारण होनेतैं कारण तीनि प्रकारका होवै है. जैसैं द्रव्यकी उत्पत्तिमें अवयवसंयोग असमवायिकारण है तैसैं गुणकी उत्पत्तिमें कहूं तो गुण असमवायिकरण है, कहूं क्रिया असमवायिकारण है. तथाहि; नीलतंतुसैं नीलपटकी उत्पत्ति होवै है पीतकी नहीं, यातैं पटके नीलरूपमें तंतुका नील रूप कारण है. तिस पटके नीलरूपका समवायिकारण पट है तंतुका नीलरूप ताका समवायिकारण नहीं. तैसैं तंतुका नीलरूप पटके नीलरूपसैं तटस्थ नहीं किंतु तंतुका नीलरूप तंतुमें रहैहै, और पटका नीलरूपभी तंतुमें रहैहैं; यातैं दोनों समानाधिकरण होनेतैं संबंधी हैं. और असंबंधीकूं तटस्थ कहै हैं. यद्यपि पटका नीलरूप समवायसंबंधसैं पटमें रहैहै, तथापि स्वसमवायि समवायसंबंधसैं पटका नील रूप तंतुमेंही रहै है. स्व कहिये पटका नीलरूप ताका समवायी जो पट ताका समवाय तंतुमें है; इस रीतिसैं पटके नीलरूपसैं तंतुका नीलरूप समानाधिकरण है. तंतुका नीलरूप साक्षात्संबंधसैं तंतुमें है तिनमें ही पटद्वारा परंपरासंबंधसैं पटका नीलरूप है; यातैं पटके नीलरूपतैं तंतुका नीलरूप तटस्थ नहीं होनेतैं निमित्तकारण संभवै नहीं; किंतु पटके नीलरूपका समवायिकारण जो पट ताका संबंधी तंतुका नीलरूप है और पटके नीलरूपका जनक होनेतैं ताका असमवायिकारण तंतुका नीलरूप है; तंतुका नीलरूप और पट दोनों तंतुमें समवायसंबंधसैं रहै हैं; यातैं समानाधिकरणसंबंधसैं तंतुका नीलरूप पटका संबंधी है. जैसैं कार्यके रूपका असवायिकारण उपादानका रूप है, तैसैं रस गंध स्पर्शमें भी जानना और सकल गुणनकी उत्पत्तिमें जिस रीतिसैं गुणका क्रिया असमवायिकारण है सो न्यायवैशेषिकग्रंथनमें स्पष्ट है, अनुपयोगी जानिके विस्तारभयतैं लिखा नहीं.

संयोगका प्रसंग अनेक स्थानमें आवै है, यातैं गुणकी उत्पत्तिमें क्रिया असमवायिकारणका उदाहरण कहनेकूं संयोगकी उत्पत्ति कहै हैं:—संयोग

दो प्रकारका होवै है; एक कर्मज संयोग है द्वितीय संयोगज संयोग है. जाकी उत्पत्तिमें क्रिया असमवायिकारण होवै सो कर्मजसंयोग कहिये है. संयोगरूप असमवायिकारणतैं होवै सो संयोगज संयोग कहिये है. कर्मजसंयोगभी अन्यतरकर्मज और उभयकर्मजभेदतैं दोप्रकारका है. संयोगके आश्रय दो होवै हैं. तिनमें एककी क्रियासैं जो संयोग होवै सो अन्यतरकर्मजसंयोग कहिये है. जैसैं पक्षीकी क्रियातैं वृक्षपक्षीका संयोग होवै सो अन्यतरकर्मजसंयोग कहिये है. तहां वृक्ष और पक्षी समवायकारण है और संयोगके समवायिकारण पक्षीमें ताकी क्रियाका समवायसंबंध होनेतैं पक्षीरूप समवायिकारणकी संबंधिनी और पक्षी वृक्षके संयोगकी जनक पक्षीकी क्रिया है. यातैं पक्षिवृक्षके संयोगकी असमवायिकारण पक्षीकी क्रिया है. यह अन्यतरकर्मजसंयोगका उदाहरण है. मेषद्वयकी क्रियातैं जो मेषद्वयका संयोग होवै सो उभयकर्मजसंयोग है. मेषद्वयके संयोगमें दोनों मेष समवायिकारण हैं और तिनकी क्रिया असमवायिकारण है. जहां हस्तकी क्रियातैं हस्ततरुका संयोग होवै, तहां हस्त तरु परस्पर संयुक्त हैं; इस व्यवहारकी नांई काय तरु संयुक्त हैं; ऐसा व्यवहारभी होवै है. संयुक्त कहिये संयोगवाले हैं; तिस स्थानमें हस्ततरुके संयोगमें तो हस्तकी क्रिया असमवायिकारण है और काय वा तरुमें क्रिया होवै तो काय तरुका संयोगभी क्रियाजन्य संभवै. और तरुकी नांई कायमेंभी क्रिया है नहीं. काहेतैं ? सकल अवयवनमें क्रिया होवै जहां अवयवीकी क्रिया होवै है. हस्तसैं इतर सकल अवयव निश्चल होनेतैं कायमें क्रियाकथन संभवै नहीं; यातैं कायतरुके संयोगमें क्रिया असमवायिकारण है यह कथन संभवै नहीं; किंतु अन्यतरकर्मज हस्ततरुसंयोगही कायतरुसंयोगका असमवायिकारण है. काहेतैं ? कायतरुसंयोगका समवायिकारण जो काय तामें स्वसमवायिसमवेतत्वसंबंधसैं संबंधी हस्ततरुसंयोग है और कायतरुसंयोगका जनक है. यातैं असमवायिकारण है. स्व कहिये हस्ततरुसंयोग ताका समवायी हस्त है तामें समवेत जो काय तिसके समवेतत्वधर्मही संबंध है. इस री-

तिके परंपरासंबंधका समानाधिकरण्य संबंधमें पर्यवसान होवै है. एक अधिकरणमें वर्तनेकूं **सामानाधिकरण्य** कहै हैं. जिनकी एक अधिकरणमें वृत्ति होवै तिनकूं **समानाधिकरण** कहै हैं. इहां हस्ततरुसंयोग समवायसंबंधसैं हस्तमें रहै है, और कायभी समवायसंबंधसैं हस्तमें रहै हैं यातैं दोनों समानाधिकरण हैं. तिनका **सामानाधिकरणसंबंध** है; इहां काय और संयोग हस्तमें साक्षात् संबंधसैं रहै है; यातैं समानाधिकरण है. तैसैं एक साक्षात् संबंधसैं रहै और दूजा परंपरासंबंधसैं रहै सोभी **समानाधिकरण** कहिये है. और तिनका **सामानाधिकरण्य संबंध** कहिये है. यह प्रत्यक्ष प्रमाणमें कह्या है. हस्ततरु संयोगकी प्रतीति होनेसेही कायतरुसंयोगकी प्रतीति होवै है और हस्ततरुके संयोगकूं नहीं देखै तिसकूं कायतरुसंयोगकी प्रतीति होवै नहीं; यातैं कायतरुसंयोगका हस्ततरुसंयोग कारण है यह **संयोगजसंयोगका** उदाहरण है. इसी संयोगकूं **कारणाकारणसंयोगजन्य कार्याकार्य संयोग** कहै हैं. इहां दो संयोग हैं. एक हस्ततरुका संयोग है सो **हेतुसंयोग** है और कायतरुका संयोग **फलसंयोग** है या स्थानमें कारणशब्दसैं फलसंयोगके आश्रयके समवायिकारणका ग्रहण है; यातैं फलसंयोगके आश्रय काय तरु दो हैं तिनमें कायका समवायिकारण हस्त है, यातैं कारणशब्दसैं हस्तका ग्रहण है, अकारण शब्दसैं तरुका ग्रहण है. काहेतैं ? कायका वा तरुका समवायिकारण तरु नहीं होनेतैं अकारण है. तैसैं हेतुसंयोगके आश्रयतैं जन्यका कार्यशब्दसैं ग्रहण है, हेतुसंयोगके आश्रयतैं अजन्यका अकार्यशब्दसैं ग्रहण है. हेतुसंयोगके आश्रय हस्त और तरु हैं तिनमें हस्तजन्य जो काय सो **कार्य** है. और हस्तसैं तथा तरुसैं अजन्य जो तरु सो **अकार्य** है. इस रीतिसैं कारण जो हस्त और अकारण तरु तिनके संयोगतैं कार्य जो काय और अकार्य तरु तिनका संयोग उपजै है; यातैं इस संयोगकूं **कारणाकारणसंयोगजन्य कार्याकार्यसंयोग** कहै हैं. **संयोगजसंयोग** इसी प्रकारका होवै है. अन्यथा कर्मजसंयोगही है. जहां कपालके कर्मतैं कपालद्वयका संयोग होवै और कपालसंयोगतैं कपालाकाशका संयोग होवै

तहांभी कर्मजही संयोग है, संयोगजसंयोग नहीं. काहेतैं ? जिस कपालके कर्मतैं कपालद्वयका संयोग होवै तिस कपालकर्मतैं ही कपालआकाशका संयोग उपजै है, कपालद्वयका संयोग और कपाल आकाशका संयोग दोनों एक क्षणमें होवै है. तिनका परस्पर कार्यकारणभाव संभवै नहीं; यातैं कपालद्वयके संयोगकी नांई कपालआकाशसंयोगभी कपालकी क्रियातैंही उपजनेतैं कर्मजही संयोग है. उक्त प्रकारसैं **कारणाकारणसंयोगजन्य कार्याकार्यसंयोग** और **अन्यतरकर्मजसंयोग** तैसैं **उभयकर्मजसंयोग** भेदतैं तीनही प्रकारका **संयोग** है और कोई ग्रंथकार **सहजसंयोग** भी माने हैं. जैसैं सुवर्णमें पीतरूप और गुरुत्वके आश्रय पार्थिवभागका और अग्निसंयोगसैं जाका नाश होवै नहीं ऐसैं द्रव्यत्वके आश्रयतैं तैजसभागका **सहजसंयोग** है. संयोगीके जन्मके साथ उपजै ताकूं **सहजसंयोग** कहै हैं. सुवर्णकूं केवल पार्थिव कहैं तो जंतु आदिक पार्थिवके द्रव्यत्वका अग्निसंयोगतैं नाश होनेतैं सुवर्णके द्रव्यत्वका अग्निसंयोगतैं नाश हुआ चाहिये. और केवल तैजस मानै तो पीतरूप और गुरुत्वका अभाव चाहिये. यातैं सुवर्णमें तैजस पार्थिवभाग संयुक्त है और **मीमांसक** नित्यसंयोगभी मानै हैं.

इस रीतिसैं द्रव्यकी उत्पत्तिमें **असमवायिकारण** अवयवसंयोग है, और गुणकी उत्पत्तिमें कहूं गुण कहूं क्रिया **असमवायिकारण** हैं: समवायिकारण और निमित्तकारणके लक्षण तामें संभवै नहीं; किंतु समवायिकारणमें संबंधी जो कार्यका जनक सो तीसरा असमवायिकारण होनेतैं समवायी असमवायी निमित्त भेदसैं **कारण तीन प्रकारका** है; यह नैयायिक वैशेषिकके अनुसारी ग्रंथनमें लिख्या है.

९९ उभयकारणके अंगीकारपूर्वक तीसरे असमवायिकारणका खंडन.

तथापि न्याय वैशेषिक भिन्न मतमें उपादानकारण और निमित्तकारणभेदसैं दो प्रकारकाही कारण मानै हैं. जाकूं नैयायिक असमवायिकारण कहै हैं

ताकूं निमित्तकारणही कहै हैं. और जो पूर्व कह्या निमित्तकारणका लक्षण असमवायिकारणमें नहीं है ताका यह समाधान है:—कार्यसैं तटस्थ होवै और कार्यका जनक होवै यह निमित्तकारणका लक्षण त्रिविधकारणवादीकी रीतिसैं कह्या है. द्विविध कारणवादीकी रीतिसैं तो उपादानकारणतैं भिन्न जो कारण सो निमित्तकारण कहिये है, सो निमित्तकारण अनेकविध है. कोई तो कार्यके उपादानमें समवेत है, जैसैं घटका निमित्तकारण कपालसंयोग है सो घटके उपादानकारण कपालमें समवेत है; और कोई निमित्तकारणही कार्यके उपादानके उपादानमें समवेत है; जैसैं पटके रूपका निमित्तकारण तंतुका रूप है सो पटरूपका उपादान जो पट ताके उपादान तंतुमें समवेत है; तैसैं कोई निमित्तकारण कर्तारूप चेतन है सो स्वतंत्र है. जैसैं घटका निमित्तकारण कुलाल है और कोई निमित्तकारण जड है सो कर्ताके व्यापारके अधीन है; जैसैं घटके कारण दंडादिक हैं. इस रीतिसैं निमित्तकारणके अनेक भेद हैं. किंचित् विलक्षणतासैं असमवायिकारणता पृथक् मानैं तो घटके कारण कपालसंयोगमें और घटरूपके कारण कपालरूपमेंभी कारणताका भेद मानना चाहिये. काहेतैं ? घटका कारण कपालसंयोग तो कार्यके उपादानमें समवेत है और घटरूपका कारण कपालरूप कार्यके उपादानके उपादानमें समवेत है, इस रीतिसैं विलक्षण कारण है, तो भी इन दोनोंकूं असमवायिकारण ही नैयायिक कहै हैं; तिनमें परस्पर विलक्षण कारणता मानै नहीं. तैसैं चेतन जड भेदसैं विलक्षणता हुएभी निमित्तकारणही तिनकूं कहै है; परस्पर विलक्षणकारणता तिनमेंभी मानै नहीं और भी निमित्तकारणमें अनेक विलक्षणता हैं. कोई तो कार्यकालवृत्ति होवै है और कोई कार्यकालसैं पूर्वकालवृत्ति होवै है. जैसैं जलपात्रके सन्निधानसैं भित्तिमें सूर्यकी प्रभाका प्रतिबिंब होवै है; तामें सान्निहित जलपात्र निमित्तकारण है; ताके अपसारणतैं प्रतिबिंबका अभाव होनेतैं सन्निहित जलपात्र कार्यकालवृत्ति निमित्तकारण है और प्रत्यक्षज्ञानमें विषय निमित्तकारण होवै है, सोभी कार्यकालवृत्ति होवै है, और दंडादिक घटके

निमित्तकारण हैं सो कार्यकालसैं पूर्वकालमें वृत्ति निमित्तकारण हैं; इस रीतिसैं निमित्तकारणमें और असमवायिकारणमें अवांतर अनेक भेद होनेतैं भी समवायिकारणसैं भिन्नमें द्विविधकारणताही मानी है. कहूं असमवायिकारणता है, कहूं निमित्तकारणता है, तैसैं समवायिकारणसैं भिन्न सकल कारणमें एकविध कारणताही माननी चाहिये, ता समवायिकारणसैं भिन्न कारणकूं असमवायिकारण कहो अथवा निमित्तकारण कहो, समवायिकारण संबंधित्व असंबंधित्व अवांतरभेदसैं पृथक् संज्ञाकरण निष्प्रयोजन है; यातैं समवायिकारण निमित्तकारण भेदसैं कारण दो प्रकारका है.

और जो ऐसैं कहैं:—जैसैं असमवायिकारण निमित्तकारणकी पृथक् संज्ञा निष्प्रयोजन है तैसैं समवायिकारण और निमित्तकारणकी परस्पर विलक्षणता ज्ञानसैंभी पुरुषार्थ प्राप्ति होवै नहीं और लोकमेंभी कारणतामात्रही प्रसिद्ध है. समवायिकारणता निमित्तकारणता प्रसिद्ध नहीं, यातैं लोकव्यवहारका ज्ञानभी द्विविध कारणता निरूपणका प्रयोजन नहीं; किंतु कार्य कारणभावका व्यवहार लोकमें होवै है; यातैं जिसके होनेतैं कार्यकी उत्पत्ति होवै और जिसके नहीं होनेतैं कार्यकी उत्पत्ति नहीं होवै ऐसा जो कार्यके अव्यवहित पूर्वकालवृत्ति सो कारण कहिये है; इस रीतिसैं कारणका साधारण लक्षणही कह्या चाहिये. ताके भेदद्वयका निरूपणभी निष्प्रयोजन है. या शंकाका यह समाधान है:—यद्यपि कारणके भेदद्वयनिरूपणसैं पुरुषार्थसिद्धि वा लोकव्यवहारसिद्धि प्रयोजन नहीं है, तथापि पुरुषार्थका हेतु अद्वैतज्ञान है ताका उपयोगी द्विविधकारण निरूपण है, तथाहि:—सर्वजगतका कारण ब्रह्म है और कारणसैं अभिन्न कार्य होवै है; यातैं सकल जगत ब्रह्म है, तासैं पृथक् नहीं. इसकूं सुनिके जिज्ञासुको ऐसी शंका होवै है:—कारणसैं पृथक् कार्य नहीं होवै तो दंडकुलालादिकनतैंभी घट पृथक् नहीं चाहिये ? ताका यह समाधान है:—उपादान और निमित्तभेदसैं कारण दो प्रकारका होवै है, तिनमें उपादानकारणसैं अभिन्न कार्य होवै है जैसैं मृत्पिंडसैं अभिन्न घट है और सुवर्णसैं अभिन्न कटककुंडलादिक है, लोहसैं अभिन्न नखनिकृंतन

क्षुरादिक हैं; और निमित्तकारणसैं अभिन्न कार्य होवै नहीं; किंतु भिन्न होवै है. तैसैं ब्रह्मभी जगत्‌का उपादानकारण है यातैं सकल जगत् ब्रह्मही है तासैं भिन्न नहीं; इस रीतिसैं कारणके भेदद्वयका निरूपण अद्वैतज्ञानका उपयोगी है. अन्यविध कारणकी परस्पर विलक्षणता निरूपण अफल है, यातैं तत्वज्ञानोपयोगी पदार्थ निरूपणके ग्रंथनमें कारणका तृतीयभेदनिरूपण असंगत है.

न्यायवैशेषिक अनुसारी ग्रंथनमें तत्वज्ञानोपयोगी पदार्थ निरूपणकी प्रतिज्ञा करिके तत्वज्ञानमें अत्यंत अनुपयोगी पदार्थनका विस्तारसैं निरूपणतैं प्रतिज्ञाभंग होवै है जो इस रीतिसैं तार्किक कहै:—तत्त्वज्ञानका हेतु मनन है, "आत्मा इतरपदार्थभिन्नः । आत्मत्वात् । यो न इतरभिन्नः किंतु इतरः स नात्मा यथा घटः" इस व्यतिरेकी अनुमानतैं आत्मामें इतर भेदका अनुमिति ज्ञान होवै सो मनन कहिये है. और इतर पदार्थनके ज्ञान विना आत्मामें इतर भेदका ज्ञान संभवै नहीं. काहेतैं ? प्रतियोगीज्ञान विना भेदज्ञान होवै नहीं, यातैं आत्मामें इतर भेदकी अनुमितिरूप मननका उपयोगी इतर पदार्थनका निरूपणभी तत्त्वज्ञानका उपयोगी है, सो संभवै नहीं. काहेतैं ? श्रुत अर्थके निश्चयके अनुकूल प्रमेयसंदेहनिवर्तक युक्तिचिंतनकूं मनन कहे हैं और भेदज्ञानसैं अनर्थ होवै है "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इत्यादि वाक्यनतैं अभेदसैं सकल वेदका तात्पर्य है. "द्वितीयाद्वै भयं भवति । मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति" इत्यादि वाक्यनतैं भेदज्ञानकी निंदा करी है. यातैं भेदज्ञानकूं साक्षात् वा तत्त्वज्ञानद्वारा पुरुषार्थजनकता संभवै और मननपदसैंभी आत्मासैं इतर भेदकी प्रतीति होवै नहीं. मननपदका चिंतनमात्र अर्थ है, वाक्यांतरके अनुरोधसैं अभेदचिंतनमें मनन शब्दका पर्यवसान होवै है; किसी प्रकारसैं आत्मासैं इतर भेद मननशब्दका अर्थ संभवै नहीं. किंचः—इतर पदार्थनके ज्ञानसैं ही जो पुरुषार्थसाधन तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होवै तो सकल पुरुषनकूं तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हुई चाहिये, अथवा किसीकूं तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति नहीं होवैगी. तथाहिः—जो इतरपदार्थनका सामान्यज्ञान अपेक्षित

होवै तो सामान्यज्ञान सर्व पुरुषनकूं है, यातैं इतर ज्ञानपूर्वक इतरभेदज्ञानतैं सर्वकूं तत्त्वज्ञान हुया चाहिये. और सर्व पदार्थनका असाधारण धर्मस्वरूप विशेषरूपतैं इतर ज्ञान अपेक्षित होवै तो सर्वज्ञ ईश्वर विना असाधारण धर्मतैं सकल इतरका किसीकूं ज्ञान संभवै नहीं; यातैं इतरज्ञानके असंभवतैं इतरभेदज्ञानके अभावतैं तत्त्वज्ञान किसीकूं नही होवैगा; यातैं प्रमाणादिक निरूपण विना बहुत पदार्थनका निरूपण निष्प्रयोजन होनेतैं कारणमें तृतीयभेद निरूपण अनपेक्षित है.

और जो तार्किक कहैहैं:—भावकार्यकी उत्पत्ति त्रिविध कारणसैं होवै है. पंचविध अभाव है, तिनमें **प्रागभाव** तो अनादि सांत है, यातैं ताका नाश तो होवै है उत्पत्ति होवै नहीं. **अन्योन्याभाव अत्यंताभाव** अनादि अनंत हैं, यातैं तिनकी भी उत्पत्ति होवै नहीं. **सामयिकाभाव** सादि सांत है, ताके उत्पत्ति नाश दोनों होवै हैं, **प्रध्वंसाभाव** अनन्त सादि है, यातैं ताका नाश तो होवै नहीं उत्पत्ति होवै है. इस रीतिसैं दो अभावकी उत्पत्ति होवै है, यातैं दोनों कार्य हैं; तिनके समवायिकारण असमवायिकारण तो संभवै नहीं. काहेतैं ? जामें समवायसंबंधसैं कार्य उपजै सो **समवायिकारण** कहिये है; किसीमें समवायसंबंधसैं अभाव रहै नहीं, यातैं ताका समवायिकारण संभवै नहीं. और असमवायिकारणमें संबंधी जो कार्यका जनक सो **असमवायिकारण** कहिये है, समवायिकारणके अभावतैं तामें संबंधी जनकके असंभवतैं असमवायिकारणभी अभावका संभवै नहीं; यातैं केवल निमित्तकारणसैं सामयिकाभाव और प्रध्वंसाभाव उपजै हैं. भूतलादि देशमें घटके सामयिकाभावका भूतलादिदेशतैं घटका अपसारण निमित्त कारण है. घटके प्रध्वंसाभावका निमित्तकारण घट है. तैसैं घटसैं मुद्गरादिकनका संयोगभी घटध्वंसका निमित्तकारण है, इस रीतिसैं अभावकार्य तो निमित्तकारणमात्रजन्य है, तथापि यावत् भावकार्य त्रिविधकारणजन्य है यह नियम है. इस तार्किकवचनका सर्गके आदिकालमें जो ईश्वरकी चिकीर्षासैं परमाणुमें क्रिया होवै तामें व्यभिचार है. काहेतैं ? तिस परमाणुकी क्रियाका पर-

माणु समवायिकारण है और ईश्वरेच्छादिक निमित्तकारण हैं. परमाणुमें संबंधी कोई क्रियाका जनक होवै, तो असमवायिकारण होवै, सो परमाणुमें संबंधी तिस क्रियाका जनक कोई है नहीं; यातैं सर्गारंभमें परमाणुकी क्रिया कारणद्वयजन्य है कारणत्रयजन्य नहीं; यातैं तार्किकका उक्त नियम संभवै नहीं; और सिद्धांतमतमें तो यावत् भावकार्य उपादान निमित्तकारणजन्य है, यह नियम है. ताका कहूंभी व्यभिचार नहीं. जहां कारणत्रयजन्य कार्य कहै हैं तहांभी तार्किक अभिमत असमवायिकारणभी निमित्तकारणही है; यातैं सकल भावकार्यकूं द्विविधकारणजन्यता है; इस रीतिसैं उपादान और निमित्तभेदतैं कारण दोप्रकारका होवै है. साधारण असाधारण भेदसैं भी कारणके दो भेद कहैं हैं. ईश्वरादिक नव साधारणकारण हैं, तिनसैं भिन्न घटादिकनके कपालादिक असाधारणकारण हैं, तिनमें भी कोई निमित्तकारण है कोई उपादानकारण है. उपादानकारण निमित्तकारणसैं भिन्न कारण अलीक है.

१०० वृत्तिज्ञानका उपादान निमित्तकारण और सामान्यलक्षण.

अंतःकरणकी ज्ञानरूप वृत्तिका उपादानकारण अंतःकरण है और प्रत्यक्षादिक प्रमाण तथा इंद्रियसंयोगादिक व्यापार निमित्तकारण हैं; और ईश्वरके ज्ञानरूप वृत्तिका उपादानकारण माया है, अदृष्टादिक निमित्तकारण है; भ्रमवृत्तिका उपादानकारण अविद्या है, निमित्तकारण दोष है; यह वार्ता ख्यातिनिरूपणमें स्पष्ट होवैगी; इस रीतिसैं वृत्तिके कारण जानने.

वृत्तिका लक्षण ग्रंथके आरंभमें कह्या है. विषयप्रकाशका हेतु अंतःकरण और अविद्याका परिणाम वृत्ति कहिये है; यह वृत्तिका लक्षण कह्या है और कितने ग्रंथनमें अज्ञाननाशक परिणाम वृत्ति कहै हैं. और परोक्ष ज्ञानसैंभी असत्वापादक अज्ञानांशका नाश होवै है, अथवा विषयचेतनस्थ अज्ञानका नाश तो अपरोक्ष ज्ञान विना होवै नहीं. प्रमातृचेतनस्थ अज्ञानका नाश परोक्ष ज्ञानसैं भी होवै है, यातैं परोक्षवृत्तिमें उक्त लक्षणकी व्याप्ति नहीं, तथापि सुखदुःखके ज्ञानरूप वृत्तिमें और माया वृत्तिरूप ईश्वरके ज्ञानमें तथा

शुक्तिरजतादिगोचर भ्रमरूप अविद्यावृत्तिमें उक्त लक्षणकी व्याप्ति है, काहेतैं ? प्रथम अज्ञात सुखादिक उपजैं पाछै तिनका ज्ञान होवै तो सुखादि ज्ञानतैं तिनके अज्ञानका नाश संभवै. सो अज्ञात सुखादिक है नहीं; किंतु सुखादिक और तिनका ज्ञान एक कालमें उपजै हैं, यातैं अज्ञात सुखादिकनके अभावतैं सुखादिगोचरवृत्तिसैं अज्ञानका नाश संभवै नहीं; तैसैं ईश्वरकूं असाधारण रूपतैं सकल पदार्थ सदा प्रत्यक्ष प्रतीत होवै हैं, यातैं अज्ञानके अभावतैं मायाकी वृत्तिरूप ज्ञानतैंभी अज्ञानका नाश संभवै नहीं. शुक्ति रजतादिक मिथ्या पदार्थनकी और तिनके ज्ञानकीभी एक कालमें उत्पत्ति होवै है, यातैं भ्रमवृत्तिसैंभी अज्ञानका नाश होवै नहीं. तैसैं धारावाहिक वृत्ति होवै तहांभी उक्त लक्षणकी द्वितीयादिवृत्तिमें अव्याप्ति है. काहेतैं ? ज्ञानधारा होवै तहां प्रथम ज्ञानसैं अज्ञानका नाश हुए द्वितीयादिक ज्ञानकूं अज्ञानकी नाशकता संभवै नहीं. यातैं प्रकाशक परिणामकूं वृत्ति कहे हैं. याका भाव यह है:—अस्ति व्यवहारका हेतु जो अविद्या और अंतःकरणका परिणाम सो वृत्ति कहिये है. प्रकाशक परिणामकूं वृत्ति कहे भी अज्ञातपदार्थगोचरवृत्तिमें ही प्रकाशकता है और अनावृत्तगोचर वृत्तिमें प्रकाशकता है नहीं. काहेतैं ? अनावृत्तचेतनके संबंधसैं ही विषयप्रकाशके संभवतैं वृत्तिमें प्रकाशकताकल्पना अयोग्य है; यातैं वृत्तिमें अज्ञाननाशकतासैं विना अन्यविध प्रकाशकताके असंभवतैं द्वितीय लक्षणकी भी प्रथम लक्षणकी नांई सुखादिगोचर वृत्तिमें अव्याप्ति होवैगी, यातैं अस्तिव्यवहारका हेतु अविद्या अंतःकरणका परिणाम वृत्ति कहिये हैं, परोक्षवृत्तिमेंभी अस्तिव्यवहारकी हेतुता स्पष्ट है. घटादिगोचर अंतःकरणकी वृत्तिकूं घटादिज्ञान कहै हैं, यद्यपि अद्वैत सिद्धांतमें वृत्त्यवच्छिन्नचेतनकूं ज्ञान कहै हैं, अबाधितवृत्त्यवच्छिन्नचेतनकूं प्रमाज्ञान कहै हैं, बाधित जो रज्जु सर्पादिक तद्गोचरवृत्त्यवच्छिन्नचेतनकूं अप्रमाज्ञान कहै हैं; तथापि चेतनमें ज्ञानशब्दका प्रयोग तथा प्रमाशब्दका और अप्रमाशब्दका प्रयोग वृत्तिसंबंधतैं होवै है; यातैं वृत्तिकूंभी बहुत स्थानमें ज्ञान कहै हैं; इस रीतिसैं प्रमा अप्रमा भेदसैं दोप्रकारकी वृत्ति कही.

१०१ प्रत्यक्षके लक्षणसहित प्रमाअप्रमारूप वृत्तिज्ञानका भेद.

अप्रमाभी यथार्थ अयथार्थ भेदसैं दो प्रकारकी कही. ईश्वरका ज्ञान सुखादिगोचर ज्ञान यथार्थअप्रमा है, शुक्तिरजतादिक भ्रम अयथार्थ अप्रमा है, जो प्रमाणजन्य यथार्थज्ञान होवै सो प्रमा होवै है, ईश्वर ज्ञानादिक प्रमाणजन्य नहीं, यातैं प्रमा नहीं; दोषजन्य नहीं, यातैं भ्रमभी नहीं; और बहुत ग्रंथनमें तो प्रमाका अन्यही लक्षण कह्या है, ताके अनुसार तो ईश्वर ज्ञानादिकभी यथार्थज्ञान प्रमा है, परंतु यथार्थ अयथार्थ भेदसैं स्मृति दो प्रकारकी है, सो दोनों प्रकारकी प्रमा नहीं है; तिनके मतमें प्रमाका यह लक्षण है. अबाधित अर्थकूं विषय करनेवाला जो स्मृतिसैं भिन्न ज्ञान सो प्रमा कहिये है; शुक्तिरजतादिज्ञान स्मृतिसैं भिन्न हैं, अबाधित अर्थकूं विषय करै नहीं; किंतु बाधित अर्थकूं विषय करे हैं, यातैं प्रमा नहीं. अबाधित अर्थकूं विषय करनेवाला स्मृतिज्ञानभी है. और स्मृतिज्ञानमें प्रमाव्यवहार है नहीं; यातैं स्मृतिभिन्न जो अबाधित अर्थगोचरज्ञान सो प्रमा कहिये है. यद्यपि अन्य यथार्थ ज्ञानकी नांई यथार्थ स्मृति भी संवादिप्रवृत्तिकी जनक होनेतैं स्मृति साधारणही प्रमाका लक्षण चाहिये; तथापि संवादि प्रवृत्तिका उपयोगी प्रमात्व स्मृतिमें भी है, सो प्रवृत्तिका उपयोगी प्रमात्व तो अबाधित अर्थ गोचरत्वरूप है. प्रमाव्यवहारकी उपयोगी प्रमात्व स्मृतिमें नहीं है; काहेतैं ? लौकिक शास्त्रीय भेदसैं व्यवहारके दो भेद हैं. शास्त्रसैं बाह्य जो लोक शब्द प्रयोग करै सो लौकिक व्यवहार कहिये है; शास्त्रकी परिभाषासैं जो शब्दप्रयोग सो शास्त्रीयव्यवहार कहिये है; शास्त्रसैं बाह्य तो कोई प्रमाव्यवहार करै नहीं, और कोई पंडित तथा शब्दप्रयोग करै हैं तो शास्त्रकी परिभाषाके संस्कारतैं करै हैं, यातैं केवल शास्त्रीय प्रमाव्यवहार है; और प्राचीनग्रंथकारोंने स्मृतिसैं भिन्न यथार्थ ज्ञानमेंही प्रमाव्यवहार किया है, यातैं स्मृतिसैं व्यावृत्तही प्रमाका लक्षण कह्या चाहिये "यथार्थानुभवः प्रमा" यह प्रमाका लक्षण प्राचीन आचार्योंने लिख्या है, स्मृति भिन्न ज्ञानकूं अनुभव कहै हैं, यातैं स्मृतिमें प्रमाव्यवहार इष्ट नहीं, और प्रत्यक्षादि

ज्ञानोंसैं विलक्षण स्मृति ज्ञान है. प्रत्यक्षादि सकल ज्ञानोंमें अनुभवत्व है स्मृतिमें नहीं है; यातैं अनुभवत्वके सत्वासत्वतैं प्रत्यक्षादिक और स्मृति परस्पर विजातीय हैं; जैसैं प्रत्यक्ष अनुमिति शाब्दादि ज्ञानोंमें प्रत्यक्षत्व अनुमितित्व शाब्दत्वादिक विलक्षण धर्म होनेतैं प्रत्यक्षादिज्ञान परस्पर विजातीय हैं, विजातीय प्रमाके करणरूप प्रमाणभी प्रत्यक्ष अनुमान शब्दादिक भिन्न हैं, तैसै सकल अनुभवसैं विजातीय स्मृति है, ताका कारण अनुभव है, सो किसी प्रमाका करण नहीं, यातैं प्रमाण नहीं. यद्यपि व्याप्तिका प्रत्यक्ष अनुमितिका करण होनेतैं अनुमान प्रमाण है तैसैं पदका प्रत्यक्ष शब्दप्रमाण, गवयमें गोसादृश्यका प्रत्यक्ष उपमान प्रमाण है, और प्रत्यक्ष ज्ञानभी अनुभवकाही विशेष है, यातैं अनुभव प्रमाण नहीं यह कथन असंगत है, तथापि व्याप्तिज्ञानत्वरूपतैं व्याप्तिज्ञान अनुमितिका हेतु है, अनुभवत्वरूपतैं व्याप्तिज्ञान अनुमितिका हेतु नहीं; तैसैं पद प्रत्यक्ष और सादृश्य ज्ञानभी अनुभवत्वरूपतैं शाब्दी प्रमा और उपमिति प्रमाके हेतु नहीं स्मृतिज्ञानमें अनुभवत्वरूपतैं पूर्वानुभव स्मृतिका हेतु है, यातैं प्रमाण नहीं. जो स्मृतिज्ञानकूंभी प्रमा कहै तो विजातीयप्रमाका करण पृथक् प्रमाण होवै है, यातैं न्यायशास्त्रमें तो अनुभव नाम पंच प्रमाण कह्या चाहिये. भट्ट और वेदांतमतमें सप्तम प्रमाण कह्या चाहिये; यातैं सकलग्रंथकारनकूं स्मृतिमें प्रमाव्यवहार इष्ट नहीं और जो कोई यथार्थज्ञानमात्रमें प्रमाव्यवहार मानै तो तिसके अनुसार प्रमाके लक्षणमें स्मृतिभिन्न ऐसा निवेश नहीं करना. अबाधित अर्थकूं विषय करनेवाला ज्ञान **प्रमा** कहिये है. भ्रम अनुभवजन्य अयथार्थस्मृति तो बाधित अर्थकूं विषय करै है, यातैं तामें अतिव्याप्ति नहीं; और यथार्थ अनुभवजन्य स्मृतिमें लक्षण जावै तहां प्रमाव्यवहार इष्ट है, यातैं अतिव्याप्ति नहीं. अलक्ष्यमें लक्षणका गमन होवै तो **अतिव्याप्ति** होवै. यथार्थस्मृतिभी लक्ष्य है, यातैं अतिव्याप्ति नहीं; या मतके अनुसार यथार्थ अयथार्थ भेदसैं **वृत्ति दो प्रकारकी** है. यथार्थकूं **प्रमा** कहे हैं, अयथार्थकूं **अप्रमा** कहै हैं; या मतमें **प्रमाके सप्तभेद** हैंः—प्रत्यक्ष १ अनुमिति २ शाब्दी ३ उपमिति ४ अर्थापत्ति ५ अनुपलब्धि ६ ये षट् भेद

हैं. तैसैं यथार्थस्मृतिभी प्रमाका सप्तम भेद है, परंतु सकल ग्रंथनकी तो यह मर्यादा है, स्मृतिमें प्रमाव्यवहार नहीं; यातैं प्रत्यक्षादि भेदतैं प्रमारूप वृत्ति षट्र प्रकारकी है. बाह्य आंतरभेदसैं प्रत्यक्षप्रमा दो प्रकारकी है. अबाधित बाह्यपदार्थगोचरवृत्ति बाह्यप्रत्यक्षप्रमा कहिये है; और श्रोत्रादि पंचइंद्रियते पंचविध बाह्यप्रत्यक्षप्रमा होवै है. कहूं शब्दसैं भी बाह्यगोचर अपरोक्ष वृत्ति होवै है; जैसैं " दशमस्त्वमसि " या शब्दसैं स्थूल शरीरका अपरोक्ष ज्ञान है; इस रीतिसैं कारणभेदतैं बाह्य प्रत्यक्ष प्रमाके षट्र भेद हैं. और कितने ग्रंथकार अनुपलब्धि प्रमाणजन्य अभावगोचर वृत्तिकूंभी अपरोक्षवृत्ति कहै हैं, तिनके मतमें श्रोत्रादि पंच इंद्रिय और शब्द तथा अनुपलब्धि ये सप्त बाह्य प्रत्यक्षप्रमाके करण हैं; यातैं बाह्य प्रत्यक्षप्रमा सप्तविध हैं, परंतु यह अर्थ पूर्व लिख्या है. धर्माधर्मकी नांई प्रत्यक्षयोग्यता अभावमें नहीं, यातैं वृत्त्यवच्छिन्न चेतनसैं अभावावच्छिन्न चेतनका अभेद हुएभी अभावगोचरवृत्ति अपरोक्ष नहीं है, किंतु अनुमित्यादिकनकी नाईं अनुपलब्धिप्रमाणजन्य अभावगोचरवृत्ति प्रत्यक्ष वृत्तिसैं विलक्षण है, यातैं बाह्य प्रत्यक्ष प्रमाके षट् भेद हैं सप्त नहीं. आंतरप्रत्यक्षप्रमाभी दो प्रकारकी है एक आत्मगोचर है दूसरी अनात्मगोचर है. आत्मगोचरभी दो प्रकारकी है एक शुद्धात्मगोचर है दूसरी विशिष्टात्मगोचर है. शुद्धात्मगोचरभी दो प्रकारकी है. एक तो ब्रह्मागोचर है दूसरी ब्रह्मगोचर है. त्वंपदार्थबोधक वेदांतवाक्यसैं "शुद्धः प्रकाशोऽहम्" ऐसी अन्तःकरणकी वृत्ति होवै है, ता वृत्तिदेशमें ही अन्तःकरण उपहित शुद्धचेतन है; यातैं वृत्त्यवच्छिन्न चेतन और विषयावच्छिन्नचेतनका अभेद होनेतैं वह वृत्ति अपरोक्ष है; और ता वृत्तिके विषय शुद्धचेतनमें ब्रह्मताभी है परंतु ब्रह्माकार वृत्ति हुई नहीं. काहेतैं ? अवांतरवाक्यसैं वृत्ति हुई है; महावाक्यसैं होती तो ब्रह्माकारभी होती. काहेतैं ? शब्दजन्य ज्ञानका यह स्वभाव है:—सन्निहित पदार्थकूं जिसरूपतैं शब्दबोध न करै तिसरूपकूंही विषय करै है और जिसरूपतैं शब्द कहै नहीं तिसरूपतैं शब्दजन्यज्ञान विषय करै नहीं. जैसैं

दशमपुरुषकूं "दशमोऽस्ति" इस रीतिसैं कहै तब "दशमोऽहम्" इस रीतिसैं श्रोताकूं ज्ञान होवै नहीं. जैसैं दशममें आत्मता है तथापि आत्मताबोधक शब्दाभावतैं आत्मताका ज्ञान होवै नहीं, तैसैं आत्मामें ब्रह्मता सदा है तोभी ब्रह्मताबोधक शब्दाभावतैं ज्ञान होवै नहीं, यातैं उक्त वृत्ति ब्रह्मागोचरशुद्धात्मगोचर आंतरप्रत्यक्षप्रमा है.

प्रत्यक्षके संगतैं यह शंका होवै हैः—सिद्धांतमें इंद्रियजन्य ज्ञान प्रत्यक्ष होवै है इसका तो अंगीकार नहीं; किंतु वृत्त्यवच्छिन्न चेतनसैं विषयावच्छिन्न चेतनका अभेदही ज्ञानकी प्रत्यक्षताका हेतु है. जहां इंद्रियसंबंध घटादिक होवै तहां इंद्रियद्वारा अंतःकरणकी वृत्ति बाह्य जायके विषयके आकारके समानाकार होयके विषयतैं संबंधवती होवै है; यातैं वृत्तिचेतनकी और विषयचेतनकी उपाधि एक देशमें होनेतैं उपहित चेतनकाभी अभेद होवै है तैसैं सुखादिकनका ज्ञान यद्यपि इंद्रियजन्य नहीं और शुद्धात्मज्ञानभी शब्दजन्य है इंद्रियजन्य नहीं, तथापि विषयचेतन और वृत्तिचेतनका भेद नहीं. काहेतैं ? सुखाकार वृत्ति अंतःकरणदेशमें है और सुखभी अंतःकरणमें है, यातैं वृत्त्युपहित चेतन विषयोपहित चेतनका अभेद है. तैसैं आत्माकार वृत्तिका उपादानकारण अंतःकरण है और अंतःकरण उपहित चेतनके अभिमुख हुई है यातैं आत्माकार वृत्तिभी अंतःकरण देशमें होवै है, सो अंतःकरणही शुद्ध आत्माकी उपाधि है, इस रीतिसैं दोनों उपाधि एक देशमें होनेतैं वृत्तिचेतन विषयचेतनका अभेद होवै है, यातैं सुखादिज्ञान शुद्धात्मज्ञान प्रत्यक्षरूप है. इहां यह निष्कर्ष हैः—जहां विषयका प्रमातासैं वृत्तिद्वारा अथवा साक्षात्संबंध होवै तिस विषयका ज्ञान प्रत्यक्ष है, सो विषयभी प्रत्यक्ष कहिये है, जैसैं घटका प्रत्यक्ष ज्ञान होवै तब "घट प्रत्यक्ष है" ऐसा व्यवहार होवै है. बाह्यपदार्थनका वृत्तिद्वारा प्रमातासैं संबंध होवै है. सुखादिकनका प्रमातासैं साक्षात्संबंध है. अतीत सुखादिकनका प्रमातासैं वर्तमानसंबंध नहीं, यातैं अतीत सुखादिकनका ज्ञान स्मृतिरूप है प्रत्यक्षरूप नहीं. अतीत सुखादिकनकाभी प्रमातासैं संबंध तो हुआ है, तथापि प्रत्यक्षलक्षणमें वर्तमानका निवेश है,

प्रमातासैं वर्तमानसंबंधी योग्य विषय प्रत्यक्ष कहिये है, प्रमातासैं वर्तमानसंबंधी योग्यविषयका ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान कहिये है, योग्य नहीं कहै तो धर्मादिक सदा प्रमाताके संबंधी हैं,यातैं सदाही प्रत्यक्ष कहे चाहिये और तिनका शब्दादिकनसैं ज्ञान होवै सो प्रत्यक्ष ज्ञान कह्या चाहिये. धर्मादिक प्रत्यक्षयोग्य नहीं, यातैं लक्षणमें योग्यपदके निवेशतैं दोष नहीं, योग्यता अयोग्यता अनुभवके अनुसार अनुमेय है. जा वस्तुमें प्रत्यक्षताका अनुभव होवै तामें योग्यता और जामें प्रत्यक्षताका अनुभव नहीं होवै तामें अयोग्यता यह अनुमान अथवा अर्थापत्तिसैं ज्ञान होवै हैं; योग्यता अयोग्यता इस रीतिसैं नैयायिककूंभी माननी चाहिये; तिनके मतमें सुखादिक और धर्मादिक आत्माके धर्म हैं, तिनमें मनःसंयुक्त समवायसंबंध सर्वसैं मनका है तथापि योग्यता होनेतैं सुखादिकनका मानस साक्षात्कार होवै है; और योग्यताके अभावतैं धर्मादिकनका साक्षात्कार होवै नहीं, यातैं योग्यता अयोग्यता सर्वमतमें अंगीकरणीय है; इस रीतिसैं प्रत्यक्षयोग्य वस्तुका प्रमातासैं वर्तमानसंबंध होवै तहां प्रत्यक्ष ज्ञान होवै है.

या अर्थमें यह शंका है:–ब्रह्मगोचर ज्ञान परोक्ष नहीं हुआ चाहिये. काहेते ? ब्रह्मका प्रमातासैं असंबंध होवैं तो बाह्यादि ज्ञानकी नांई ब्रह्मज्ञानभी परोक्ष होवै. जब अवांतर वाक्यसैं सत्यस्वरूप ज्ञानस्वरूप अनंतस्वरूप ब्रह्म है ऐसी वृत्ति होवै तिस कालमेंभी ब्रह्मका प्रमातासैं संबंध है, यातैं अवांतर वाक्यजन्य ब्रह्मज्ञानभी प्रत्यक्षही हुआ चाहिये और सिद्धांतमें अवांतर वाक्यजन्य ब्रह्मज्ञान प्रत्यक्ष नहीं किंतु परोक्ष है सो उक्त रीतिसैं संभवै नहीं.

या शंकाका यह समाधान है:–प्रत्यक्ष लक्षणमें योग्यता विशेषण कह्या है तैसैं योग्यप्रमाणजन्यता ज्ञानका विशेषण है यातैं उक्त दोष नहीं. काहेतैं? प्रमातासैं वर्तमानसंबंधवाला जो योग्य विषय ताका योग्यप्रमाणजन्यज्ञान प्रत्यक्षज्ञान कहिये है. या लक्षणमें उक्त दोष नहीं. काहेतैं ? वाक्यका यह स्वभाव है. श्रोताके स्वरूपबोधक पदघटित वाक्यतैं अपरोक्षज्ञान होवै है,

श्रोताके स्वरूपबोधक पदरहितवाक्यतैं परोक्षज्ञान होवै है, विषय सन्निहित होवै और प्रत्यक्षयोग्य होवै तोभी स्वरूपबोधक पदरहित वाक्यतैं अपरोक्ष ज्ञान होवै नहीं, जैसैं दशमबोधक द्विविध वाक्य है. एक तो "दशमोऽस्ति" ऐसा वाक्य है और दूसरा "दशमस्त्वमासि" ऐसा वाक्य है. तिनमें प्रथम वाक्य तो श्रोताके स्वरूपबोधक पदरहित है, और दूसरा वाक्य श्रोताके स्वरूपका बोधक जो त्वंपद तासैं घटित कहिये युक्त है; तिनमें प्रथमवाक्यसैं श्रोताकूं दशमका परोक्षज्ञान ही होवै है, वाक्यजन्य ज्ञानका विषय दशम पुरुष है सो दोनों स्थानमें अतिसन्निहित है. जो स्वरूपसैं भिन्न होवै और संबंधी होवै सो **सन्निहित** होवै है. दशम पुरुष श्रोताके स्वरूपसैं भिन्न नहीं, किंतु श्रोताका स्वरूप है, यातैं **अतिसन्निहित** है और प्रत्यक्षयोग्य है. जो प्रत्यक्षयोग्य नहीं होवै तो द्वितीयवाक्यसैं भी दशमका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं चाहिये और द्वितीयवाक्यसैं प्रत्यक्ष ज्ञान होवै है यातैं **प्रत्यक्षयोग्य** है. इस रीतिसैं अतिसन्निहित और वाक्यजन्य प्रत्यक्ष योग्य दशमका जो वाक्यसैं प्रत्यक्ष ज्ञान होवै नहीं वह **वाक्य अयोग्य** है. द्वितीय वाक्यसैं तिसी दशमका अपरोक्ष ज्ञान होवै है, यातैं द्वितीय **वाक्य योग्य** है. वाक्यनकी योग्यताअयोग्यतामें और तो कोई हेतु है नहीं; स्वरूपबोधक पदघटितत्व और स्वरूपबोधक पदरहितत्वही योग्यताके और अयोग्यताके संपादक हैं. इस रीतिसैं "दशमस्त्वमसि" यह वाक्य तो योग्य प्रमाण है तिसतैं जन्य "दशमोऽहम्" यह प्रत्यक्ष ज्ञान है तैसैं "दशमोऽस्ति" यह वाक्य अयोग्यप्रमाण है. तिसतैं जन्य कहिये उत्पन्न जो "दशमः कुत्रचिदस्ति" ऐसा दशमका ज्ञान सो **परोक्ष** है. तैसैं ब्रह्मबोधक **वाक्यभी दो प्रकारके** हैं ("सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म") इस रीतिके **अवांतरवाक्य** हैं. ("तत्त्वमसि") इसरीतिके **महावाक्य** हैं. अवांतरवाक्यनमें श्रोताका स्वरूपबोधक पद नहीं है यातैं प्रत्यक्षज्ञानके जननमें योग्य अवांतरवाक्य नहीं और महावाक्यनमें श्रोताके स्वरूपके बोधक त्वमादि पद हैं यातैं प्रत्यक्षज्ञानजननमें योग्य महावाक्य हैं; इस रीतिसैं योग्यप्रमाण महावाक्य हैं तिनसैं उत्पन्न हुआ **ज्ञान प्रत्यक्ष** है. और अयोग्यप्र-

माण "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म" इत्यादि वाक्य हैं, तिनसैं उपज्या ब्रह्मका ज्ञान परोक्ष होवै है. अवांतर वाक्यभी दो प्रकारके हैं; तत्पदार्थके बोधक हैं और त्वंपदार्थके बोधक हैं. तिनमें तत्पदार्थबोधक वाक्य तो अयोग्य हैं, और "य एष हृद्यंतर्ज्योतिः पुरुषः" इत्यादिक त्वंपदार्थबोधक अवांतरवाक्यभी महावाक्यनकी नांई योग्य हैं अयोग्य नहीं. काहेतैं ? श्रोताके स्वरूपके बोधक तिनमें पद हैं, यातैं त्वंपदार्थबोधक अवांतर वाक्यनतैं अपरोक्ष ज्ञान होवै है, परंतु वह अपरोक्ष ज्ञान ब्रह्माभेदगोचर नहीं, यातैं परमपुरुषार्थका साधक नहीं; किंतु परम पुरुषार्थका साधक जो अभेदज्ञान तामें पदार्थशोधनद्वारा उपयोगी है. इसरीतिसैं प्रमातासैं संबंधीभी ब्रह्म है और योग्य है, तथापि अयोग्य जो अवांतर वाक्य तिनसैं ब्रह्मका परोक्षज्ञान संभवै है.

या कहनेमें अन्यशंका होवै हैः—प्रमातासैं वर्तमान संबंधवाला जो योग्यविषय ताका योग्य प्रमाणजन्य ज्ञान प्रत्यक्षज्ञान कहिये है. या कहनेमें सुखादिकनके प्रत्यक्षमें उक्त लक्षणका अभाव है. काहेतैं ? सुखादि प्रत्यक्षमें प्रमाणजन्यताके अभावतैं योग्य प्रमाणजन्यता सर्वथा संभवै नहीं, यातैं उक्त लक्षणमें अव्याप्ति दोष है.

या शंकाका यह समाधान हैः—योग्यप्रमाणजन्यताका लक्षणमें प्रवेश नहीं; किंतु अयोग्यप्रमाणाजन्यताका प्रवेश है, यातैं अव्याप्ति नहीं; काहेतैं ? प्रमातासैं वर्तमानसंबंधवाला जो योग्य विषय ताका जो अयोग्य प्रमाणसैं अजन्य ज्ञान सो प्रत्यक्ष ज्ञान कहिये है; इस रीतिसैं कहे अवांतर वाक्यजन्य ब्रह्मज्ञानकी व्यावृत्ति होवै है. उक्तरीतिसैं ब्रह्ममात्रके बोधक अवांतरवाक्य अयोग्य प्रमाण हैं. "ब्रह्मास्ति" यह परोक्ष ज्ञान तिनसैं जन्य है अजन्य नहीं, यातैं परोक्ष ज्ञानमें लक्षण जावै नहीं. और सुखादिगोचर ज्ञानका संग्रह होवै है. काहेतैं ? सुखादिगोचर ज्ञान किसी प्रमाणतैं जन्य नहीं, यातैं अयोग्यप्रमाणतैं अजन्य है. और इंद्रियजन्य घटादिज्ञान तैसैं महा-

वाक्यजन्य ब्रह्मज्ञान योग्य प्रमाणजन्य होनेतैं अयोग्य प्रमाणसैं अजन्य है, यातैं प्रत्यक्ष ज्ञानका उक्त लक्षण दोषरहित है.

पूर्व प्रसंग यह है:—शुद्धात्मगोचर प्रमा दो प्रकारकी है. एक ब्रह्मा-गोचर है दूसरी ब्रह्मगोचर है. ब्रह्मगोचर कहि आये महावाक्यजन्य "अहं ब्रह्मास्मि" इस रीतिसैं ब्रह्मसैं अभिन्न आत्माकूं जो विषय करै सो ब्रह्मगोचर शुद्धात्मगोचर प्रत्यक्ष प्रमा है.

"अहं ब्रह्मास्मि" या ज्ञानकूं वाचस्पति मनोजन्य कहै हैं. औरनके मतमें यह ज्ञान वाक्यजन्य है, तामैंभी इतना भेद है. संक्षेपशारीरकका यह सिद्धांत है:—महावाक्यतैं ब्रह्मका प्रत्यक्ष ज्ञानही होवै है कदीभी परोक्ष ज्ञान महावाक्यतैं होवै नहीं. अन्य ग्रंथकारोंका यह मत है:—विचार-सहित महावाक्यतैं अपरोक्ष ज्ञान होवै है, विचाररहित केवल वाक्यतैं परो-क्षज्ञान होवै है, सर्वके मतमें "अहं ब्रह्मास्मि" यह ज्ञान शुद्धात्मगोचर है और ब्रह्मगोचर है तैसैं प्रत्यक्ष है, या अर्थमें किसीका विवाद नहीं. शुद्धात्मगोचरप्रमाके दो भेद कहे और विशिष्टात्मगोचरप्रत्यक्षप्रमाके अनंत भेद हैं. "अहम् अज्ञः, अहं कर्ता, अहं सुखी, अहं दुःखी, अहं मनुष्यः" इसतैं आदि अनंत भेद हैं. यद्यपि अबाधित अर्थकूं विषय करै सो ज्ञान प्रमा कहिये है. "अहं कर्ता" इत्यादिक ज्ञानका "अहं न कर्ता" इत्यादिक ज्ञानसैं बाध होवै है. ताकूं प्रमा कहना संभवै नहीं. तथापि संसारदशामें अबाधित अर्थकूं विषय करै सो प्रमा कहिये है. संसारदशामें उक्त ज्ञानोंका बाध होवै नहीं यातैं प्रमा है, इस रीतिसैं आत्मगोचर आंत-रप्रत्यक्षप्रमाके भेद कहे, और "मयि सुखं मयि दुःखम्" इत्यादिक सुखादिगोचर ज्ञानभी आत्मगोचरप्रत्यक्ष प्रमा है परंतु "अहं सुखी अहं दुःखी" इत्यादिक प्रमामें तो अहंपदका अर्थ आत्मा विशेष्य है और सुख-दुःखादिक विशेषण है. "मयि सुखं मयि दुःखं" इत्यादिक प्रमामें सुखदुः-खादिक विशेष्य है आत्मा विशेषण है; यातैं "मयि सुखं" इत्या-दिक ज्ञानकूं आत्मगोचर प्रत्यक्षप्रमा नहीं कहै हैं; किंतु सुखादिक विशेष्य

होनेतैं अनात्मगोचर आंतरप्रत्यक्ष प्रमा कहै हैं. वाचस्पतिके मतमें विशिष्टात्मज्ञान और सुखादिज्ञान मनोजन्य है. और सिद्धांतमें अंतःकरणविशिष्ट आत्मामें अन्तःकरणभाग साक्षीभास्य है और चेतनभाग स्वयंप्रकाश है; तैसैं सुखादिकभी साक्षीभास्य हैं: कोई ज्ञान मनोजन्य नहीं, यातैं मन इंद्रिय नहीं; इस रीतिसैं स्मृतिसैं भिन्न यथार्थ वृत्तिकूं प्रमा कहे हैं; ताके भेद कहे; स्मृतिरूप अंतःकरणकी वृत्तिभी यथार्थ अयथार्थ भेदसैं दो प्रकारकी हैं; तिनमें यथार्थ स्मृति दो प्रकारकी है; आत्मस्मृति और अनात्मस्मृति, तत्त्वमस्यादिवाक्यजन्य अनुभवतैं आत्मतत्त्वकी स्मृति यथार्थ आत्मस्मृति है, व्यावहारिक प्रपंचका मिथ्यात्वअनुभव हुयां ताके संस्कारतैं मिथ्यात्वरूपतैं प्रपंचकी स्मृति यथार्थ अनात्मस्मृति है; तैसैं अयथाथ स्मृतिभी दो प्रकारकी है; एक आत्मगोचर अयथार्थ स्मृति है और अनात्मगोचर अयथार्थ स्मृति है. अहंकारादिकनमें आत्मत्वभ्रमरूप अनुभवके संस्कारतैं अहंकारादिकनमें आत्मत्वकी स्मृति आत्मगोचर अयथार्थ स्मृति है. तैसैं आत्मामें कर्तृत्व अनुभवके संस्कारतैं "आत्मा कर्ता है" यह स्मृतिभी आत्मगोचर अयथार्थ स्मृति है. और प्रपंचमें सत्यत्व भ्रमके संस्कारतैं "प्रपंच सत्य है" यह स्मृति अनात्मगोचर अयथार्थ स्मृति है. यथार्थअयथार्थभेदसैं वृत्ति दो प्रकारकी कही, स्मृतिभिन्न यथार्थवृत्ति प्रमा कही, यथार्थअनुभवजन्य स्मृति यथार्थ कही और अयथार्थअनुभवजन्य स्मृति यथार्थ कही. अनुभवमें यथार्थता अबाधित अर्थकृत है; अबाधित अर्थविषयक अनुभव यथार्थ कहिये है, प्रमा कहिये है; यातैं अबाधित अर्थके अधीन अनुभवमें यथार्थता है और स्मृतिमें यथार्थता और अयथार्थता अनुभवके अधीन है; स्मृतिसैं भिन्न जो ज्ञान ताकूं अनुभव कहे हैं, सोभी यथार्थ अयथार्थ भेदसैं दो प्रकारका है. यथार्थानुभव तो कह्या, अब अयथार्थानुभवका निरूपण करै हैं, अयथार्थस्मृतिका निरूपण तो पूर्व कह्या है सोभी अनुभवके अयथार्थता अधीन है; यातैं अयथर्थानुभवका निरूपण कह्या चाहिये.

१०२ संशयरूप भ्रमका लक्षण और भेद.

अयथार्थानुभव दो प्रकारका हैः—एक संशयरूप है और दूसरा निश्चयरूप है. अयथार्थकूंही भ्रम कहे हैं, संशय ज्ञानभी भ्रम है. काहेतैं ? स्वभावाधिकरणमें अवभासकूं भ्रम कहे हैं और संशय ज्ञानभी परस्पर विरुद्ध उभयविषयक होवै है. तिनमें एकका अभाव होवै है यातैं संशयमें भ्रमका लक्षण है. एक विशेष्यमें विरुद्ध दो विशेषणोंका ज्ञान संशय कहिये है. जैसैं स्थाणुका " स्थाणुर्न वा" ऐसा ज्ञान होवै अथवा " स्थाणुर्वा पुरुषो वा" ऐसा ज्ञान होवै दोनोंकूं संशय कहै हैं. तहां स्थाणु विशेष्य है स्थाणुत्व और स्थाणुत्वाभाव विशेषण हैं. दोनों विरुद्ध है. एक अधिकरणमें साथ रहें नहीं, यातैं स्थाणुरूप एक विशेष्यमें स्थाणुत्व और स्थाणुत्वाभावरूप विरुद्ध उभयविशेषणका ज्ञान होनेतैं प्रथम संशयमें लक्षण संभवै है, तैसैं द्वितीय संशयमेंभी लक्षण संभवै है. काहेतैं ? स्थणुरूप एक विशेष्यमें स्थाणुत्व पुरुषत्वरूप विरुद्ध उभय विशेषणका ज्ञान है. जैसैं स्थाणुत्व और स्थाणुत्वाभावका परस्पर विरोध है तैसैं स्थाणुत्व पुरुषत्वकाभी विरोध अनुभवसिद्ध है. यातैं प्रथम संशय तो विरुद्ध भावाभाव उभयगोचर है तैसैं द्वितीय संशय विरुद्ध उभयभावगोचर है. और न्यायके ग्रंथनमें तो यह लिख्या हैः—भावाभावगोचरही संशयज्ञान होवै है, केवल भावगोचर संशय होवै नहीं. जहां " स्थाणुर्वा पुरुषो वा " ऐसा संशय होवै तहांभी स्थाणुत्व और स्थाणुत्वाभाव पुरुषत्व और पुरुषत्वाभाव ये चार कोटी हैं, यातैं द्विकोटिक और चतुष्कोटिक दो प्रकारका संशय होवै है. " स्थाणुर्न वा " यह द्विकोटिक संशय है "स्थाणुर्वा पुरुषो वा" यह चतुष्कोटिक संशय है. एक धर्मीमें प्रतीत धर्मकूं कोटि कहै हैं, यातैं केवल भावगोचरसंशय न्यायमतमें अप्रसिद्ध है; सर्व प्रकारसैं संशयज्ञान भ्रमरूप है. दो विरुद्ध विशेषण एकमें होवें नहीं एकका अभावही होवेगा. जैसैं स्थाणुमें स्थाणुत्व है, और स्थाणुत्वका अभाव नहीं है, यातैं स्थाणुत्वाभावरहित स्थाणुमें स्थाणुत्वका अभाव ज्ञान भ्रमरूप है, परंतु एक अंशमें संशयज्ञान भ्रम होवै है, सकल अंशमें

भ्रम होवै नहीं. जहां स्थाणुमें "स्थाणुर्न वा" यह संशय होवै तहां अभाव अंशमें भ्रम है, और जहां पुरुषमें "स्थाणुर्न वा" ऐसा संशय होवै तहां अभाव अंश तो पुरुषमें है स्थाणुत्व अंश नहीं है यातैं भाव अंशमें भ्रम है;इस रीतिसैं भावाभावगोचर संशय होवै है,तिनमें एक अवश्य रहेगा, यातैं संशयज्ञान एक अंशमें भ्रम होवै. और विरोधी उभयभावगोचरभी संशय मानै तो सकल अंशमेंभी संशयकूं भ्रमत्व संभवै है.जैसैं "स्थाणुर्वा पुरुषो वा" या संशयकूं चतुष्कोटिक नहीं मानैं उभयकोटिकही मानैं और स्थाणु और पुरुषतैं भिन्न किसी पदार्थमें "स्थाणुर्वा पुरुषो वा" ऐसा संशय होवै तहां संशयके धर्मीमें स्थाणुत्व पुरुषत्व दोनों नहीं हैं. यातैं दोनोंका ज्ञान भ्रम है.संशयमें जो विशेष्य होवै सो संशयमें धर्मी कहिये है और विशेषणकूं धर्म कहे हैं, यातैं एक धर्मीमें विरुद्ध नाना धर्मका ज्ञान संशय कहिये है, या लक्षणतैं उक्त लक्षणका भेद नहीं; परंतु इतना भेद हैः—उक्त लक्षणमें उभयपद है, यातैं चतुष्कोटिक संशयमें उक्तलक्षणकी अव्याप्ति है. काहेतैं? चतुष्कोटिक संशयमें एक विशेष्यमें च्यारि विशेषण प्रतीत होवै हैं उभय विशेषण नहीं. यद्यपि जहां च्यारि होवैं तहां तीनि और दो तथा एकभी होवै है; तथापि अधिक संख्यासैं न्यूनसंख्याका बाध होवै है. इसीवास्ते जहां पंच ब्राह्मण होनेतैं कोई च्यारि ब्राह्मण कहै तो उसकूं मिथ्यावादी कहै हैं, न्यूनसंख्या यद्यपि अधिक संख्याके अंतर्भूत है तथापि न्यूनसंख्याका व्यवहार होवै नहीं; यातैं उभयपदघटित लक्षणकी चतुष्कोटिक संशयमें अव्याप्ति होनेतैं नाना पद कह्या है एकसैं भिन्नकूं नाना कहै हैं. द्विकोटिक संशयकी नांई चतुष्कोटिक संशयभी च्यारि धर्मगोचर होनेतैं नानाधर्म गोचर है, यातैं अव्याप्ति नहीं. इसरीतिसैं संशयभी भ्रम है.

भ्रमके भेदनिरूपणतैं उत्तर निश्चयभ्रमका विस्तारसैं लक्षण कहैंगे. संशय निश्चयरूप भ्रम अनर्थका हेतु है, यातैं निवर्तनीय है. जिज्ञासुकूं निवर्तनीय जो भ्रम ताके भेद कहै हैंः—संशयरूप भ्रम दो प्रकारका है. एक प्रमाणसंशय है और दूसरा प्रमेय संशय है. प्रमाणगोचर संदेह प्रमाणसंशय कहिये है

ताहीकूं **प्रमाणगत असंभावना** कहैहैं, वेदांतवाक्य अद्वितीय ब्रह्मविषे प्रमाण है वा नहीं है यह **प्रमाणसंशय** है; ताकी निवृत्ति शारीरकके प्रथमाध्यायके पठनसैं वा श्रवणतैं होवै है. **प्रमेयसंशयभी आत्मसंशय और अनात्मसंशयभेदतैं दो प्रकारका है. अनात्मसंशय अनंतविध** है ताके कहनेसैं उपयोग नहीं. **आत्मसंशयभी अनेक प्रकारका है.**

आत्मा ब्रह्मसैं अभिन्न है अथवा भिन्न है ? अभिन्न होवै तोभी सर्वदा अभिन्न है अथवा मोक्षकालमेंही अभिन्न होवै है ? सर्वदा अथवा अभिन्न नहीं. सर्वदा भिन्न होवै तोभी आनंदादिक ऐश्वर्यवान् है आनंदादिक रहित है ? आनंदादिक ऐश्वर्यवान् होवै तो भी आनंदादिक गुण है अथवा ब्रह्मात्माका स्वरूप है इसतैं आदि लेके तत्पदार्थाभिन्न त्वंपदार्थविषे अनेक प्रकारका संशय है.

तैसैं केवल त्वंपदार्थगोचर संशयभी **आत्मगोचर संशय** है. आत्मा देहादिनतैं भिन्न है वा नहीं ? भिन्न कहै तोभी अणुरूप है वा मध्यमपरिमाण है वा विभुपरिमाण है ? जो विभु कहै तोभी कर्ता है अथवा अकर्ता है ? अकर्ता कहैं तोभी परस्पर भिन्न अनेक है अथवा एक है ? इस रीतिके **अनेक संशय केवल त्वंपदार्थगोचर** हैं.

तैसैं केवल तत्पदार्थगोचरभी अनेक प्रकारके संशय है. वैकुंठादिलोकविशेषवासी ईश्वरपरिच्छिन्न हस्तपादादिक अवयवसहित शरीर हैं अथवा शरीरसहित विभु है ? जो शरीररहित विभु कहैं तोभी परमाणु आदिक सापेक्ष जगत्का कर्ता है अथवा निरपेक्ष कर्ता है ? परमाणु आदिक निरपेक्ष कर्ता कहै तोभी केवल कर्ता है अथवा अभिन्न निमित्तोपादानरूप कर्ता है ? जो अभिन्न निमित्तोपादान कहैं तोभी प्राणिकर्मनिरपेक्ष कर्ता होनेतैं विषमकारितादिक दोषवाला है अथवा प्राणिकर्म सापेक्ष कर्ता होनेतैं विषमकारितादिक दोषरहित है ? इसतैं आदि **अनेक प्रकारके तत्पदार्थगोचर संशय** हैं, सो सकल संशय **प्रमेयसंशय** कहिये है, तिनकी निवृत्ति मननसैं होवै है.

शारीरकके द्वितीयाध्यायके अध्ययनसैं वा श्रवणतैं मनन सिद्ध होवै है, तासैं प्रमेयसंशयकी निवृत्ति होवै है.

ज्ञानसाधनका संशय और मोक्षसाधनका संशयभी प्रमेय संशय है. काहेतैं ? प्रमाके विषयकूं **प्रमेय** कहै हैं, ज्ञानसाधन मोक्षसाधनभी प्रमाके विषय होनेतैं प्रमेय हैं, यातैं ज्ञानसाधनका संशय और मोक्षसाधनका संशयभी प्रमेय संशय है; ताकी निवृत्ति शारीरकके तृतीय अध्यायसैं होवै है.

तैसैं मोक्षके स्वरूपका संशयभी प्रमेयसंशय है, ताकी निवृत्तिं शारीरकके चतुर्थाध्यायसैं होवै है. यद्यपि शारीरकके चतुर्थाध्यायमें प्रथम साधनविचारही है उत्तर फलविचार है, मोक्षकूं फल कहे हैं, तथापि चतुर्थाध्यायमें साधनविचार जितनेमें है उतने चतुर्थाध्यायसहित तृतीयाध्यायसैं साधनसंशयकी निवृत्ति होवै है. शिष्टचतुर्थाध्यायसैं फल संशयकी निवृत्ति होवै है.

१०२ निश्चयरूपभ्रमज्ञानका लक्षण.

संशयनिश्चयभेदसैं भ्रमज्ञान दो प्रकारका है. संशयभ्रमका निरूपण किया अब **निश्चयभ्रम** कहे हैं:—संशयसैं भिन्न ज्ञानकूं **निश्चय** कहे हैं. शुक्तिका शुक्तित्वरूपसैं यथार्थज्ञान और शुक्तिका रजतत्वरूपतैं भ्रमज्ञान दोनों संशयतैं भिन्न ज्ञान होनेतैं निश्चयरूप हैं. बाधित अर्थ विषयक जो संशयसैं भिन्न ज्ञान सो निश्चय है, शुक्तिमें रजतविनिश्चयका विषय रजत है सो बाधित है. काहेतैं? संसारदशामेंही शुक्तिके ज्ञानतैं रजतका बाध होवै है. ब्रह्मज्ञान विना जाका बाध न होवै सो **अबाधित** कहिये है. और ब्रह्मज्ञान विना ही शुक्ति आदिकनके ज्ञानतैं जाका बाध होवै सो **बाधित** कहिये है, अथवा प्रमाताके बाध विना जाका बाध नहीं होवै सो **अबाधित** कहिये है, प्रमाताके होनेतैं जाका बाध होवै सो **बाधित** कहिये है, **अबाधित दो प्रकारका** होवै है. एक तो सर्वदा अबाधित होवै है दूसरा व्यावहारिक अबाधित होवै है. जिसका सर्वदा बाध नहीं होवै, ऐसा चेतन है; व्यवहार दशामें बाध नहीं होवै ऐसा अज्ञान और महाभूत तथा भौतिक प्रपंच है. सुखादिक प्रातिभासिक हैं, तोभी ब्रह्मज्ञान विना सुखादिकनका बाध होवै नहीं; यातैं अबाधित हैं,

तिनका ज्ञान भ्रम नहीं. तैसैं बाधित अर्थभी दो प्रकारका होवै है, एक तो व्यावहारिक पदार्थावच्छिन्न चेतनका विवर्त है, दूसरा प्रातिभासिक पदार्थावच्छिन्न चेतनका विवर्त है; शुक्तिमें रजतव्यावहारिक पदार्थावच्छिन्न चेतनका विवर्त है. काहेतैं ? शुक्ति रजतका अधिष्ठान शुक्त्यवच्छिन्न चेतन है शुक्ति व्यावहारिक है, और स्वप्नमें शुक्ति प्रतीत होयके तामें रजतभ्रम होवै तिस रजतका स्वप्नमेंही शुक्तिज्ञानसैं बाध होवै, ता रजतका अधिष्ठान स्वप्नशुक्त्यवच्छिन्न चेतन है; स्वप्नकी शुक्ति प्रातिभासिक है, इस रीतिसैं बाधित पदार्थ दो प्रकारके हैं तिनका निश्चय कहिये भ्रमनिश्चय कहिये हैं.

१०४ अध्यासका लक्षण और भेद.

भ्रमज्ञानमें शास्त्रकारनका अनेकधा वाद है. तिनके मतसैं विलक्षण भाष्यकारने भ्रमका असाधारण लक्षण कह्या है:—जैसा भ्रमका स्वरूप अन्यशास्त्रवाले मानै हैं, तिसमें यह वक्ष्यमाण लक्षण संभवै नहीं, यातैं असाधारण है. अन्यसैं असाधारणलक्षण कथनतैं भाष्यकारका अन्याभित भ्रमके स्वरूपसैं अस्वरस है. अधिष्ठानसैं विषमसत्तावाला अवभास अध्यास कहिये है, जहां शुक्तिमें रजतभ्रम होवै तहां शुक्तिदेशमें रजत उपजै है, ताका ज्ञान और तात्कालिक रजत इन दोनोंकूं सिद्धांतमें अवभास और अध्यास कहे हैं. अन्यशास्त्रनमैं रजतकी उत्पत्ति मानै नहीं यह सर्वसैं विलक्षणता है. एक सत्ख्यातिवादमें रजतकी उत्पत्तिं मानी है, ताके मतसैं भी विलक्षणता आगे कहेंगे. व्याकरणकी रीतिसैं अध्यासपदके और अवभास पदके विषय और ज्ञान दोनों वाच्य हैं.

यातैं अर्थाध्यास और ज्ञानाध्यासके भेदतैं अध्यास दो प्रकारका है, अर्थाध्यास अनेक प्रकारका है, कहूं केवल संबंधमात्रका अध्यास है, कहूं संबंधविशिष्ट संबंधीका अध्यास है, कहूं केवल धर्मका अध्यास है, कहूं धर्मविशिष्ट धर्मीका अध्यास है, कहूं अन्योन्याध्यास है, कहूं अन्यतराध्यास

है; अन्यतराध्यासभी दो प्रकारका है, एक आत्मामें अनात्माध्यास है दूसरा अनात्ममें आत्माध्यास है; इस रीतिसैं अर्थाध्यास अनेक प्रकारका है. उक्त लक्षणका सर्वत्र समन्वय है. तथाहिः—मुख्यसिद्धांतमें तो सकल अध्यासका अधिष्ठान चेतन है. रज्जुमें सर्प प्रतीत होनेतैं तहांभी इदमाकार वृत्त्यवच्छिन्न चेतनसैं अभिन्न रज्जुअवच्छिन्न चेतनही सर्पका अधिष्ठान है, रज्जु अधिष्ठान नहीं; यह अर्थ विचारसागरमें स्पष्ट है. तहां चेतनकी परमार्थ सत्ता है, अथवा ताकी उपाधि रज्जु व्यावहारिक होनेतैं रज्जुअवच्छिन्न चेतनकी व्यावहारिक सत्ता है. दोनों प्रकारसैं सर्प और ताके ज्ञानकी प्रातिभासिक सत्ता होनेतैं अधिष्ठानकी सत्तासैं विषम सत्तावाला अवभास सर्प और ताका ज्ञान है, यातैं दोनोंकूं अध्यास और अवभास कहै हैं. ज्ञान और ज्ञानके विषयकूं अवभास कहै हैं. इस रीतिसैं सर्वत्र अध्यासका अधिष्ठान चेतन कहें तब तो अधिष्ठानकी परमार्थसत्ता और अध्यस्तकी प्रातिभासिक सत्ता होनेतैं अधिष्ठानतैं विषम सत्तावाला अवभास कहिये ज्ञान और ताका विषय स्पष्टही है; और रजतका अधिष्ठान शुक्ति है, यह व्यवहार लोकमें होवै है, यातैं अवच्छेदकतासंबंधसैं शुक्तिभी रजतका आश्रय है; काहेतैं ? चेतनमें रजतकी अधिष्ठानताका अवच्छेदक शुक्ति होनेतैं तामें रजतका अवच्छेदकता संबंध है, अवच्छेदकता संबंधसैं शुक्तिकूं रजतका अधिष्ठान कहैं तो शुक्तिकी व्यावहारिक सत्ता है, रजतकी प्रातिभासिक सत्ता है, यातैंभी अधिष्ठानसैं विषमसत्ता है,इस रीतिसैं सर्व अध्यासोंमें आरोपितसैं अधिष्ठानकी विषमसत्ता है. जा पदार्थमें आधारता प्रतीत होवै सो अधिष्ठान कहिये है; यह आधारता परमार्थसैं होवै अथवा आरोपित होवै; और परमार्थसैं आधार होवै सो अधिष्ठान कहिये है, ऐसा आग्रह या प्रसंगमें नहीं है. काहेतैं? जैसैं आत्मामें अनात्माका अध्यास है, तैसैं अनात्मामें आत्माका अध्यास है, और अनात्मामें परमार्थसैं आत्माकी आधारता है नहीं किंतु आरोपित आधारता है; यातैं आधारमात्रकूं या प्रसंगमें अधिष्ठान कहेहैं. जहां अनात्मामें आत्माका अध्यास है तहां अधिष्ठान

अनात्मा है, ताकी व्यावहारिक सत्ता है और आत्माकी पारमार्थिक सत्ता है; यातैं अधिष्ठानसैं विषमसत्तावाला अवभास है.

१०५ अन्योन्याध्यासमें शंकासमाधान.

यद्यपि आत्माका अधिष्ठान अनात्मा है या कहनेसैं आत्मा आरोपित है यह सिद्ध होवै है. जो आरोपित होवै सो कल्पित होवै है, यातैं आत्माभी कल्पित होवैगा, यातैं अनात्मामें आत्माका अध्यास है यह कहना संभवै नहीं; तथापि भाष्यकारने शारीरकके आरंभमें आत्मा अनात्माका अन्योन्याध्यास कह्या है; यातैं अनात्मामें आत्माके अध्यासका निषेध तो बनै नहीं, परस्पर अध्यासकूं अन्योन्याध्यास कहे हैं, यातैं अनात्मामें आत्माध्यास मानिके उक्त शंकाका समाधान कह्या चाहिये.

सो समाधान इस रीतिसैं है:—अध्यास दो प्रकारका होवै है, एक तो स्वरूपाध्यास होवै है दूसरा संसर्गाध्यास होवै है. जा पदार्थका स्वरूप अनिर्वचनीय उपजै ताकूं स्वरूपाध्यास कहै हैं, जैसैं शुक्तिमें रजतका स्वरूपाध्यास है और आत्मामैं अहंकारादिक अनात्माका स्वरूपाध्यास है; तैसैं जा पदार्थका स्वरूप तो प्रथम सिद्ध होवै व्यावहारिक होवै अथवा पारमार्थिक होवै, और अनिर्वचनीयसंबंध उपजै सो संसर्गाध्यास कहिये है. जैसैं मुखसैं दर्पणका उक्तरीतिसैं कोई संबंध है नहीं. और दोनों पदार्थ व्यावहारिक हैं, तहां दर्पणमें मुखका संबंध प्रतीत होवै है; यातैं अनिर्वचनीय संबंध उपजै है. तैसैं रक्त वस्त्रमें " रक्तः पटः " यह प्रतीति होवै है; रक्तरूपवाला पट है. या प्रतीतिसैं रक्तरूपवाले पदार्थका पटमें तादात्म्यसंबंध भासे है और रक्तरूपवाला कुसुंभ द्रव्य है, यातैं रक्तरूपवत्‌का तादात्म्य कुसुंभद्रव्यमें हैं पटमें नहीं. इस रीतिसैं रक्तरूपवत् कुसुंभद्रव्य और पट तो व्यावहारिक है, तिनका तादात्म्यसंबंध अनिर्वचनीय उपजै है. तैसैं "लोहितः स्फटिकः" या प्रतीतिसैं लोहितका तादात्म्यसंबंध स्फटिकमें भासै है; और लोहितका तादात्म्य पुष्पमें है. स्फटिकमें नहीं. रक्तरूपवालेकूं लोहित कहैहैं. रक्तरूपवाला पुष्प है स्फटिक नहीं, यातैं स्फटिकमें अनिर्वचनीयतादात्म्यसंबंध लोहितका

उपजै है; इस रीतिसैं अनेक स्थानोंमें संबंधी तो व्यावहारिक है. तिनके संबंधनके ज्ञान अनिर्वचनीय उपजै है. तिनकूं संसर्गाध्यास कहेहैं, तैसैं चेतनका अहंकारमें अध्यास नहीं; किंतु चेतन तो पारमार्थिक है, ताके संबंधका अहंकारमें अध्यास है, आत्मता चेतनमें है और अहंकारमें प्रतीत होवै है यातैं आत्माका तादात्म्य चेतनमें है और अहंकारमें प्रतीत होवै है; यातैं आत्मचेतनका तादात्म्यसंबंध अहंकारमें अनिर्वचनीय है अथवा आत्मवृत्ति तादात्म्यका अहंकारमें अनिर्वचनीय संबंध है. यातैं चेतन कल्पित नहीं किंतु चेतनका अहंकारमें तादात्म्यसंबंध कल्पित है अथवा आत्मचेतनके तादात्म्यका संबंध कल्पित है. यद्यपि अद्वैतग्रंथनमें उक्त उदाहरणोंमें अन्यथाख्याति कही है, तथापि ब्रह्मविद्याभरणमें उक्तरीतिसैं सारे अनिर्वचनीयख्याति मानिके निर्वाह कऱ्या है, अन्यथाख्याति प्रसिद्ध नहीं; और विचारसागरमें तथा या ग्रंथमेंभी पूर्व यह लिखा है; जहां अधिष्ठानसैं आरोप्यका संबंध होवै तहां अन्यथाख्याति है; सो ग्रंथांतरकी रीतिसैं लिख्या है. और अधिष्ठानसैं आरोप्यका संबंध होवै तहां अन्यथाख्यातिकाही आग्रह होवै तो अहंकारमेंभी चेतनका तादात्म्य अन्यथाख्यातिसैं प्रतीत होवै है या कहनेमें कोई बाधक नहीं; इस रीतिसैं जहां पारमार्थिक पदार्थका अभाव हुयां तिसकी जहां प्रतीति होवै तहां परमार्थिक पदार्थका तो व्यावहारिक पदार्थमें अनिर्वचनीय संबंध उपजै है; और ताका अनिर्वचनीयही ज्ञान उपजै है. और व्यावहारिक पदार्थका अभाव हुयां जहां प्रतीति होवै तहां अनिर्वचनीयही और संबंधी उपजै है; और संबंधीका अनिर्वचनीय ज्ञान उपजै है, और कहूं संबंधमात्र और संबंधका अनिर्वचनीय ज्ञान उपजै है, सारैही अधिष्ठानसैं अध्यस्तकी विषमसत्ता अनिर्वचनीयसत्ता है, आत्माका अनात्मामें अध्यास होवै तहांभी अधिष्ठान अनात्मा व्यावहारिक है और अध्यस्त आत्मा नहीं किंतु आत्माका संबंध अनात्मामें अध्यस्त है, यातैं अनिर्वचनीय है.

१०६ अनात्मामें अध्यस्त आत्माकी परमार्थसत्ताविषे तात्पर्य.

और पूर्व यह कह्या है, अनात्मामें आत्माध्यास होवै तहां अध्यस्तकी

परमार्थ सत्ता होनेतैं विषमसत्ता है, और ब्रह्मविद्याभरणमें उक्त स्थलमें अध्यस्तकी परमार्थ सत्ताही कही है; ताका यह तात्पर्य है:—शुद्धपदार्थसैं विशिष्ट भिन्न होवै है, यातैं अनात्मामें आत्माके संबंधका अध्यास कह्या तहां संबंधविशिष्ट आत्माकाही अध्यास है, और स्वरूपसैं आत्मा सत्य है, यातैं अध्यस्तकी परमार्थसत्ता स्वरूपदृष्टिसैं कहै हैं और अध्यस्त कल्पित होवै है, यातैं अनात्मसंबंधविशिष्ट कल्पित होवै तोभी शुद्ध कल्पित होवै नहीं. काहेतैं ? शुद्धसैं विशिष्टकूं भिन्न होनेतैं विशिष्टकी कल्पितता शुद्धमें होवै नहीं. और केवल आत्मसंबंधके अध्यास कहनेतैं संबंधविशिष्ट आत्माका अध्यास कहना और अध्यस्तकी परमार्थसत्ता कहनाहीं श्रेष्ठ है. काहेतैं ? केवलसंबंधका अध्यास कहै तो अधिष्ठानकी आरोपितसैं विषमसत्ता संभवै नहीं. काहेतैं ? आत्माका संबंध अंतःकरणमें अध्यस्त है और स्फुरणरूपचेतनका तादात्म्यसंबंध घटादिकनमें अध्यस्त है. काहेतैं ? "घटः स्फुरति" यह व्यवहार घटमें स्फुरणसंबंधसैं प्रतीत होवै है. चेतनके अधिष्ठान अंतःकरण और घटादिक व्यावहारिक हैं; तिनमें चेतनका संबंधभी व्यावहारिक है. प्रातिभासिक नहीं; चेतनका संबंध प्रातिभासिक होवै तो ब्रह्मज्ञानसे विना बाध हुया चाहिये और बाध होवै नहीं; यातैं आत्मसंबंधकी और अधिष्ठान अनात्माकी व्यावहारिक सत्ता होनेतैं विषम सत्ता नहीं होनेतैं अध्यासका लक्षण संभवै नहीं, यातैं संबंधविशिष्ट आत्माका अनात्मामें अध्यास है और विशेष्य भागकी परमार्थ सत्ता होनेतैं विशिष्टकी परमार्थ सत्ता है. अधिष्ठानकी व्यावहारिक सत्ता है; यातैं दोनोंकी विषमसत्ता होनेतैं अध्यासका लक्षण संभवै है, और स्वप्नका अधिष्ठान साक्षी है ताकी स्वरूपसैं पारमार्थिक सत्ता है, और पदार्थनकी प्रतिभासिक सत्ता है यातैं अधिष्ठानतैं विषमसत्ता होनेतैं अध्यासका लक्षण संभवै है.

यद्यपि सत्तास्वरूप चेतन है, ताका भेद कहना संभवे नहीं, तथापि चेतनस्वरूपसत्तासैं सत्ता नाम भिन्न पदार्थ है, तामें उत्कर्ष अपकर्ष हैं ताके पारमार्थिक व्यावहारिक प्रातिभासिक तीनि भेद हैं. प्रातिभासिकमेंभी उत्कर्षापकर्ष

है. स्वप्नमें कितने पदार्थ प्रतीत होवैं हैं, तिनका स्वप्नमें ही बाध होवै है. जिनका जाग्रत्में बाध होवै तिनमें स्वप्नमें बाधितपदार्थनकी अपकृष्टसत्ता है; इस रीतिसैं चेतनस्वरूपसत्तासैं भिन्नसत्ताका स्वरूप श्रुतिमें लिख्या है "सत्यस्य सत्यं प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यमिति" और रजतकी सत्तासैं शुक्तिकी सत्ता उत्कृष्ट है यह सर्वकूं अनुभव होवै है, यातैं उत्कर्षापकर्षवाली सत्ता चेतनसैं भिन्न है, इस रीतिसैं अध्यासका लक्षण कह्या.

१०७ अध्यासका अन्य लक्षण.

और अध्यासका अन्यलक्षण यह है:—अपने अभावके अधिकरणमें अवभासकूं अध्यास कहे हैं. शुक्तिमें रजतका पारमार्थिक और व्यावहारिक अभाव है और रजत अनिर्वचनीय है, यातैं रजताभावका अधिकरण जो शुक्ति तामें रजतकी प्रतीति और ताका विषय होनेतैं रजातावभास है, यातैं अध्यास है. इस रीतिसैं कल्पितके अधिकरणमें कल्पितका अभाव होनेतैं सौरे अध्यासमें यह लक्षण संभवै है.

१०८ एक अधिकरणमें भावाभावके विरोधका शंका और समाधान.

यद्यपि एक अधिकरणमें भावाभावका विरोध होवै है. संयोग और ताका अभावभी एक अधिकरणमें मूलादिक देशके भेदसैं रहे हैं, एक देशमें रहै नहीं; यातैं एक अधिकरणमें भावाभाव संभवै नहीं, तथापि पदार्थनका विरोध अनुभवके अनुसार कहिये है. केवल भावाभावका विरोध नहीं है, किंतु घटत्व पटत्व दोनों भाव हैं, एक अधिकरणमें रहै नहीं तिनका विरोध है, और द्रव्यत्वघटत्वका विरोध नहीं, तैसैं घटके अधिकरण भूतलमें अतीत कालविशिष्ट घटका अभाव है, यातैं शुद्ध घटाभावतैं घटका विरोध है, विशिष्टघटाभावतैं घटका विरोध नहीं; तैसैं संयोगसंबंधतैं घटवाले भूतलमें समवायसंबंधावच्छिन्न घटाभाव है, तासैं घटका विरोध नहीं. तैसैं समान सत्तावाले प्रतियोगी अभाव एक अधिकरणमें रहै नहीं, विषमसत्तावाले प्रतियोगीका अभावसैं विरोध नहीं, कल्पितके अभावकी पारमार्थिक सत्ता है अथवा व्यावहारिक सत्ता हैं. कल्पितकी प्रातिभासिक सत्ता है यातैं विरोध नहीं.

जहां शुक्तिमें रजतभ्रम होवै तहां व्यावहारिक रजत है नहीं यातैं रजतका व्यावहारिक अभाव है. और पारमार्थिक रजत तो कहूं भी नहीं होनेतैं रजतका पारमार्थिक अभाव केवलान्वयि है, यातैं शुक्तिमें रजतका पारमार्थिक अभावही है और अनिर्वचनीय रजत और ताका ज्ञान एक कालमें उपजै हैं, और एक कालमें दोनोंका नाश होवै है; यातैं रजत प्रातिभासिक है. प्रतीतिकालमें जाकी सत्ता होवै प्रतीतिशून्यकालमें होवै नहीं ताकूं प्रातिभासिक कहे हैं. इस रीतिसैं भ्रमज्ञान और ताके विषय अनिर्वचनीय उपजै हैं. सत् असत्सैं विलक्षणकूं अनिर्वचनीय कहे हैं और ताका अभाव व्यावहारिक कहे है यातैं प्रतियोगी अभावका परस्पर विरोध नहीं; व्यावहारिक अभावका व्यावहारिक प्रतियोगीतैं विरोध है.

१०९ अध्यासके प्रसंगमें चारि शंका॰

या प्रसगमें च्यारि शंका होवै हैं. स्वप्नप्रपंचका अधिष्ठान साक्षी है यह पूर्व कह्या सो संभवै नहीं. काहेतैं ? जिस अधिष्ठानमें जो आरोपित होवै तिस अधिष्ठानसैं संबद्ध प्रतीत होवै है जैसैं शक्तिमें आरोपित रजत है सो " इदं रजतम्" इस रीतिसैं शुक्तिकी इदंतासैं संबद्ध प्रतीत होवै हैं, आत्मामें कर्तृत्वादिक आरोपित है सो "अहं कर्ता" इस रीतिसैं संबद्ध प्रतीत होवै है, तैसैं स्वप्नके गजादिक साक्षीमें आरोपित होवें तो "अहं गजः मयि गजः" इस रीतिसैं साक्षीसैं संबद्ध गजादिक प्रतीत हुए चाहिये.

और दूसरी शंका यहः—शुक्तिमें रजताभाव व्यावहारिक है और पारमार्थिक है, यह पूर्व कह्या सो संभवै नहीं. काहेतैं ? अद्वैतवादमें एक चेतनही पारमार्थिक है, तासैं भिन्नकूं पारमार्थिक माने तो अद्वैतवादकी हानि होवेगी. पारमार्थिक रजत है नहीं, यातैं पारमार्थिक रजतका अभाव है यह कहना तो संभवै है, और पारमार्थिक अभाव है यह कहना संभवै नहीं.

तृतीय शंका यह है:—शुक्तिमें अनिर्वचनीय रजतकी उत्पत्ति नाश होवै है, यह पूर्व कह्या सो संभवै नहीं. काहेतैं ? जो रजतके उत्पत्ति नाश

होवै तो घटके उत्पत्तिनाशकी नांई रजतकी उत्पत्तिनाश प्रतीत हुए चाहिये. जैसैं घटकी उत्पत्ति होवै तब घट उपजै है. इस रीतिसैं घटकी उत्पत्ति प्रतीत होवै है और घटका नाश होवै है,तब घटका नाश नाश हुआ इस रीतिसैं घटका नाश प्रतीत होवैहै; तैसैं शुक्तिमें रजतकी उत्पत्ति होवै तब रजतकी उत्पत्ति हुई इस रीतिसैं उत्पत्ति प्रतीत हुई चाहिये और रजतका ज्ञानसैं नाश होवै तब रजतका शुक्तिदेशमें नाश हुआ. इस रीतिसैं नाश प्रतीत हुआ चाहिये, और शुक्तिमें केवल रजत प्रतीत होवै है ताके उत्पत्तिनाश प्रतीत होवै नहीं यातैं शास्त्रांतरकी रीतिसैं अन्यथाख्याति आदिक ही समीचीन हैं अनिर्वचनीयख्याति संभवै नहीं.

चतुर्थ शंका यह हैः—सत् असत्सैं विलक्षण अनिर्वचनीय रजतादिक उपजे हैं यह पूर्व कह्या सो सर्वथा असंगत है. सत्सैं विलक्षण असत् होवै है और असत्सैं विलक्षण सत् होवै हैं. सत्सैं विलक्षणता है और असत् नहीं यह कथन विरुद्ध है, तैंसैं असत्सैं विलक्षण है और सत् नहीं यह कथनभी विरुद्ध है ये चारि शंका हैं.

११० उक्त च्यारि शंकाके समाधान.

तिनके क्रमतैं यह समाधान है—साक्षीमें स्वप्नअध्यास होवै तो "अहं गजः, मयि गजः" ऐसी प्रतीति हुई चाहिये. **या शंकाका यह समाधान है** पूर्व अनुभवजनित संस्कारसैं अध्यास होवै है; जैसा पूर्व अनुभव होवै तैसाही संस्कार होवै है, और संस्कारके समान अध्यास होवै हैं. सर्व अध्यासोंका उपादानकारण तो अविद्या समान है; परंतु निमित्तकारण पूर्वानुभवसंस्कार है, सो विलक्षण है. जैसा अनुभवजन्य संस्कार होवै तैसाही अविद्याका परिणाम होवै है. जिस पदार्थका अहमाकारज्ञानजन्य संस्कारसहित अविद्या होवै तिस पदार्थका अहमाकार अविद्याका परिणामरूप अध्यास होवै है. जिसका ममताकार अनुभवजन्यसंस्कारसहित अविद्या होवैं तिस पदार्थका ममताकार अविद्याका परिणामरूप अध्यास होवै है. जिस पदार्थका इदमाकार अनुभवजन्य संस्कारसहित अविद्या होवै तिस पदार्थका इदमाकार अवि-

याका परिणामरूप अध्यास होवै है. स्वप्नके गजादिकनका पूर्व अनुभव इदमाकारही हुआ है; अहमाकारादिक अनुभव हुआ नहीं; यातैं अनुभवजन्यसंस्कारभी गजादिगोचर इदमाकारही होवै है, यातैं "अयं गजः" ऐसी प्रतीति होवै है, "मयि गजः अहं गजः" ऐसी प्रतीति होवै नहीं. संस्कार अनुमेय है, कार्यके अनुकूल संस्कारकी अनुमिति होवै है, संस्कारजनक पूर्व अनुभवभी अध्यासरूप है, ताका जनक संस्कारभी इदमाकारही होवै है, और अध्यास प्रवाह अनादि है यातैं प्रथम अनुभवके इदमाकारतामें कोई हेतु नहीं यह शंका संभवै नहीं, काहेतैं ? अनादिपक्षमें कोई अनुभव प्रथम नहीं, पूर्वपूर्वसैं उत्तर सारे अनुभव हैं.

और अभावकूं पारमार्थिक मानैं तो अद्वैतकी हानि होवैगी; या द्वितीयशंकाका **यह समाधान** हैः—सकल पदार्थ सिद्धातमें कल्पित हैं; तिनका अभाव पारमार्थिक है, सो ब्रह्मरूप है, यह भाष्यकारकूं संमत है; यामैं युक्ति आगे कहेंगे, इसकारणतैं अद्वैतकी हानि नहीं.

और शुक्तिमें रजतकी उत्पत्ति मानै तो उत्पत्तिकी प्रतीति हुई चाहिये. **याका यह समाधान** हैः—शुक्तिमें तादात्म्यसंबंधसैं रजत अध्यस्त है और शुक्तिकी इदंताका संबंध रजतमें अध्यस्त है; यातैं "इदं रजतम्" इस रीतिसैं रजत प्रतीत होवै है. जैसैं शुक्तिकी इदंताका संबंध रजतमें अध्यस्त है, तैसैं शुक्तिमें प्राक्सिद्धत्व धर्म है, रजतप्रतीतिकालतैं प्रथम सिद्धकूं प्राक्सिद्ध कहे हैं. रजतप्रतीतिकालतैं प्रथम सिद्ध शुक्ति है, इस रीतिसैं शुक्तिमें प्राक्सिद्धत्व धर्म है, ताके संबंधका अध्यासभी रजतमें होवै है; इसीवास्ते "इदानीं रजतम्" यह प्रतीति नहीं होवै है, "प्रागूजातं रजत पश्यामि" यह प्रतीति होवै है, या प्रतीतिका विषय प्रागूजातत्व है सो रजतमें है नहीं; किंतु रजतमें इदानींजातत्व है और प्रागूजातत्व रजतमें प्रतीत होवै है. तहां रजतमें अनिर्वचनीय प्रागूजातत्वकी उत्पत्ति मानै तो गौरव होवै है, शुक्तिके प्रागूजातत्वकी रजतमें प्रतीति मानै तो अन्यथाख्याति माननी होवै

है और ऐसे स्थानमें अन्यथाख्यातिकूं मानै भी हैं, तथापि शुक्तिके प्राक्सिद्धत्वधर्मका अनिर्वचनीय संबंध रजतमें उपजै है, यह पक्ष समीचीन है. इस रीतिसैं शुक्तिके प्राक्सिद्धत्वके संबंधकी प्रतीतिसैं उत्पत्ति प्रतीतिका प्रतिबंध होवै है. काहेतैं? प्राक्सिद्धता और वर्तमान उत्पत्ति दोनों परस्पर विरोधि हैं. जहां प्राक्सिद्धता होवै तहां अतीत उत्पत्ति होवै है, वर्तमान उत्पत्ति होवै तहां प्राक्सिद्धता होवै नहीं; इस रीतिसैं शुक्तिवृत्ति प्राक्सिद्धत्वके संबंधकी प्रतीतिसैं उत्पत्ति प्रतीतिका प्रतिबंध होनेतैं रजतकी उत्पत्ति हुएभी उत्पत्तिकी प्रतीति होवै नहीं. और जो कह्या रजतका नाश होवै तो ताकी प्रतीति हुई चाहिये, **ताका यह समाधान है**:—अधिष्ठानका ज्ञान होवै तब रजतका नाश होवै है सो अधिष्ठानज्ञानतैं रजतका बाध निश्चय होवै है, शुक्तिमें कालत्रयमें रजत नहीं इस निश्चयकूं बाध कहे हैं, ऐसा निश्चय नाश प्रतीतिका विरोधी है. काहेतैं? नाशमें प्रतियोगी कारण होवै है और बाधसैं प्रतियोगीका सर्वदा अभाव भासैहै, जाका सर्वदा अभाव है ऐसा ज्ञान होवै ताकी नाशबुद्धि संभवै नहीं किंवा जैसा घटादिकनका मुद्गरादिकनसैं चूर्णीभावरूप नाश होवै है तैसा कल्पितका नाश होवै नहीं; किंतु अधिष्ठानके ज्ञानतैं अज्ञानरूप उपादानसहित कल्पितकी निवृत्ति होवै है. अधिष्ठानमात्रका अवशेषही अज्ञानसहित कल्पितकी निवृत्ति होवै है सो अधिष्ठान शुक्ति है, ताका अवशेषरूप रजतका नाश अनुभवसिद्ध है; यातैं रजतके नाशकी प्रतीति होवै नहीं यह कथन साहसतैं है.

और सत् असत्सैं विलक्षण कथन विरुद्ध है. **या चतुर्थ शंकाका यह समाधान है**:—जो स्वरूपराहितकूं सद्विलक्षण कहैं और विद्यमानस्वरूपकूं असद्विलक्षण कहैं तो विरोध होवै. काहेतैं? एकही पदार्थमें स्वरूपराहित्य और स्वरूपसाहित्य संभवै नहीं, यातैं सदसद्विलक्षणका उक्त अर्थ नहीं; किंतु कालत्रयमें जाका बाध नहीं होवै ताकूं सत् कहे हैं; जाका बाध होवै सो सद्विलक्षण कहिये है. शशशृंग वंध्यापुत्रकी नांई स्वरूपहीनकूं असत् कहे हैं तासैं विलक्षण स्वरूपवान् होवै है; इस रीतिसैं बाधके योग्य स्वरूपवाला सदसद्वि-

लक्षण शब्दका अर्थ है. सद्विलक्षण शब्दका बाध योग्य अर्थ है; स्वरूपवाला इतना अर्थ असद्विलक्षण शब्दका है.

१११ पूर्व उक्त अध्यासके भेदका अनुवाद और तामें उदाहरण.

इस रीतिसैं जहां भ्रमज्ञान है तहां सारे अनिर्वचनीय पदार्थकी उत्पत्ति होवै है, कहूं संबंधीकी उत्पत्ति होवै है. जैसैं शुक्तिमें रजतकी उत्पत्ति है, और रजतमें शुक्तिवृत्ति तादात्म्यके संबंधकी उत्पत्ति होवै है, शुक्तिवृत्ति स्वतादात्म्यकी रजतमें अन्यथाख्याति नहीं; तैसैं शुक्तिमें प्राक्सिद्धत्व धर्म है, ताके अनिर्वचनीय संबंधकी रजतमें उत्पत्ति होवै है ताकीभी अन्यथाख्याति नहीं, इस रीतिसैं अन्योन्याध्यासकाभी यह उदाहरण है. और संबंधाध्यासका यह उदाहरण है, संबंधीअध्यासकाभी यह उदाहरण है; और अनिर्वचनीय वस्तुकी प्रतीतिकूं ज्ञानाध्यास कहे हैं; और ज्ञानके अनिर्वचनीयविषयकूं अर्थाध्यास कहे हैं; यातैं ज्ञानाध्यास अर्थाध्यासका भी यह उदाहरण है; और रजतत्वधर्मविशिष्ट रजतका शुक्तिमें अध्यास है, यातैं धर्मी अध्यासकाभी यह उदाहरण है, जहां अन्योन्याध्यास होवै तहां दोनोंका परस्पर स्वरूपसैं अध्यास नहीं होवै है, किंतु आरोपितका स्वरूपसैं अध्यास होवै है और सत्यवस्तुका धर्म अथवा संबंध अध्यस्त होवै है, संबंधाध्यासभी दो प्रकारका होवै है, कहूं धर्मके संबंधका अध्यास होवै है. जैसैं उक्त उदाहरणमें शुक्तिवृत्ति इदंतारूप धर्मके संबंधका रजतमें अध्यास है और "रक्तः पटः" या स्थानमें कुसुंभवृत्ति रक्तरूप धर्मके संबंधका पटमें अध्यास है, और दर्पणमें मुखके संबंधका अध्यास होवै है, अंतःकरणका आत्मामें स्वरूपसैं अध्यास है, और अंतःकरणमें आत्माका स्वरूपसैं अध्यास नहीं; किंतु आत्मसंबंधका अध्यास होनेतैं आत्माका संसर्गाध्यास है, ज्ञानस्वरूप आत्मा है अंतःकरण नहीं; और ज्ञानका संबंध अंतःकरणमें प्रतीत होवै है, यातैं आत्माके संबंधका अंतःकरणमें अध्यास है, तैसैं "घटः स्फुरति, पटः स्फुरति" इस रीतिसैं स्फुरणसंबंध सर्व पदार्थनमें प्रतीत होवै है, यातैं आत्मसंबंधका निखिलपदार्थनमें अध्यास है, आत्मामें काणत्वादिक इंद्रियधर्म प्रतीत होवै हैं, यातैं काण-

त्वादिक धर्मनका आत्मामें अध्यास है और इंद्रियनका आत्मामें तादात्म्य अध्यास नहीं है; काहेतैं ? "अहं काणः" ऐसी प्रतीति होवै है. "और अहं नेत्रम्" ऐसी प्रतीति होवै नहीं; यातैं नेत्रधर्म काणत्वका आत्मामें अध्यास है; नेत्रका अध्यास नहीं: यह धर्माध्यासका उदाहरण है. यद्यपि नेत्रादिक निखिल प्रपंचका अध्यास आत्मामें है, तथापि ब्रह्मचेतनमें समग्र प्रपंचका अध्यास है, त्वंपदार्थमें निखिल प्रपंचका अध्यास नहीं, अविद्याका ऐसा अद्भुत महिमा है, एकही पदार्थका एक धर्मविशिष्टका अध्यास होवै है, अपर धर्मविशिष्टका अध्यास होवै नहीं. जैसैं ब्राह्मणत्वादि धर्मविशिष्ट शरीरका आत्मामें तादात्म्याध्यास होवै है, शरीरत्वविशिष्ट शरीरका अध्यास होवै नहीं. इसीवास्ते विवेकीभी "ब्राह्मणोहं मनुष्योऽहं" ऐसा व्यवहार करै है. और "शरीरमहम्" ऐसा व्यवहार विवेकीका होवै नहीं; यातैं अविद्याका अद्भुत महिमा होनेतैं इंद्रियके अध्यास विना आत्मामें काणत्वादिक धर्मनका अध्यास संभवै है; यह धर्माध्यासका उदाहरण है. अन्याश्रित होवै स्वतंत्र होवै नहीं; ताकूं धर्म कहे हैं यातैं संबंधभी धर्मही है; ताका अध्यासभी धर्माध्यास ही है, परंतु धर्म दो प्रकारका होवै है:—एक तो प्रतियोगी अनुयोगीकी प्रतीतिके अधीन प्रतीतिका विषय होवै है, और कोई धर्म अनुयोगी मात्र प्रतीतिके अधीन प्रतीतिका विषय होवै है, और कदाचित् अनुयोगीकी प्रतीति विना केवल धर्मकीभी प्रतीति होवै है; जैसैं घटत्वादिकनकी प्रतीतिमें अनुयोगी मात्रकी प्रतीतिकी अपेक्षा है, और घटत्व नित्य है इत्यादिवाक्यजन्य प्रतीतिमें अनुयोगी प्रतीतिकीभी अपेक्षा नहीं; इस रीतिसैं दो प्रकारका धर्म होवै है, अनुयोगी प्रतियोगीकी प्रतीति विना जाकी प्रतीति होवै नहीं, ऐसे धर्मकूं संबंध कहेहैं और घटत्वादिकनकूं केवल धर्म कहेहैं, संबंध कहैं नहीं; इस रीतिसैं संबंधाध्यासभी धर्माध्यासही है, उक्तरीतिसैं सकलभ्रममें दोनों लक्षण संभवै हैं. अधिष्ठानसैं विषमसत्तावाला अवभास अध्यास कहिये है. अथवा स्वाभावाधिकरणमें अवभास अध्यास कहिये है, भ्रमकालमें अनिर्वचनीय विषय और ताका ज्ञान उपजै है, यातैं दोनों लक्षण अध्यासके संभवै हैं,

परंतु परोक्ष अपरोक्ष भेदसैं भ्रम दोप्रकारका हैः—अपरोक्ष भ्रमके उदाहरण तो कहे और जहां वह्निशून्य देशमें वह्निका अनुमितिज्ञान होवै सो परोक्ष भ्रम है, सो इस रीतिसैं होवै हैः—महानसत्व वह्निका व्याप्य नहीं है और महानसमें वारंवार वह्निदेशके महानसत्वका व्याप्यताभ्रम होय जावै, तहां वह्निशून्यकालमें ऐसा अनुमान होवै "इदं महानसं वह्निमत् महानसत्वात् पूर्वदृष्टमहानसवत्" इस रीतिसैं महानसमें वह्निका अनुमितिरूप भ्रम ज्ञान होवै हैं और विप्रलंभकवाक्यसैं वह्निका शब्दभ्रम होवै है सो दोनों परोक्ष ज्ञान हैं. जहां परोक्षभ्रम होवै तहां अनिर्वचनीय विषयकी उत्पत्ति मानी नहीं; किंतु तिस देशमें असत् वह्निकी प्रतीति होवै है, यातैं अध्यासलक्षणका लक्ष्य तो परोक्षभ्रम नहीं है. और वह्निके अभावाधिकरणमें वह्निकी प्रतीति होनेतैं स्वाभावाधिकरणमें अवभास है, विषय और ज्ञानकूं अवभास कहैहैं, वह्निके अभावाधिकरणमें वह्निका परोक्ष ज्ञानरूप अवभास होनेतैं उक्त लक्षणकी यद्यपि अतिव्याप्ति होवै है तथापि लक्षणमें अवभासपदसैं अपरोक्ष ज्ञानका ग्रहण है, यातैं परोक्षभ्रमविषे अध्यासलक्षणकी अतिव्याप्ति नहीं. जहां परोक्षभ्रम होवै, तिस स्थानमें तो जिस रीतिसे नैयायिकादिक अन्यथाख्यात्यादिकनसैं निर्वाह करैहै, तासैं विलक्षण कहनेमें अद्वैतवादीका आग्रह नहीं है, अपरोक्ष भ्रमविषे ही पारिभाषिक अध्यास विलक्षण मानै हैं. काहेतैं ? कर्तृत्वादिक अनर्थभ्रम अपरोक्ष है, ताके स्वरूपमें ज्ञाननिवर्त्यताके अर्थ अध्यासका निरूपण है, यातैं अपरोक्ष भ्रमकूं ही दृष्टांतताके अर्थ अध्यासताप्रतिपादनमें आग्रह है. परोक्ष भ्रमविषे शास्त्रांतरसैं विलक्षणता कहनेमें प्रयोजन नहीं और अपरोक्षभ्रमविषे उक्तरीतिसैं लक्षणका समन्वय होवै है.

११२–१३६ सिद्धांतसंमत अनिर्वचनीयख्यातिकी रीति.

११२ सांप्रदायिकमत.

सिद्धांतमें अनिर्वचनीय ख्याति है ताकी यह रीति हैः—जहां रज्जु आदिकनमें सर्पादिक भ्रम होवै तहां अधिष्ठानका सामान्यज्ञान अध्यासका हेतु है; यातैं रज्जुका इदमाकार सामान्यज्ञान होवै है, सो सामान्यज्ञान

दोषसहित नेत्ररूपप्रमाणसैं उपजै है यातैं प्रमा है. तिस दोषसहित नेत्रजन्य इदमाकार वृत्त्यवच्छिन्न चेतनस्थ अविद्याका परिणाम सर्पज्ञान होवै है, ताकूं ज्ञानाभास कहे हैं, दोषसहित नेत्रका रज्जुसैं संबंध हुए अन्तःकरणकी इदमाकार वृत्ति तो रज्जुदेशमें गई, यातैं प्रमातृचेतन और इदमवच्छिन्न चेतनकी उपाधि एक देशमें होनेतैं प्रमातृचेतनसैं इदमवच्छिन्नचेतनका भेद रहै नहीं; यातैं रज्जुका सामान्य इदंरूप प्रत्यक्ष है और प्रत्यक्ष विषयका इदमाकार ज्ञानभी प्रत्यक्ष है. जिस विषयका प्रमातृचेतनसैं अभेद होवै सो विषय प्रत्यक्ष कहिये है. और प्रत्यक्ष विषयका ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है, अथवा प्रमाण चेतनसैं विषयचेतनका अभेदही ज्ञानके प्रत्यक्षत्वका प्रयोजन कहै. उक्तस्थलमें प्रमातृचेतनका अभेदभी वृत्तिद्वारा हुआ है; यातैं वृत्तिरूप प्रमाणचेतनका विषयचेतनसैं अभेदभी अबाधित है, जैसैं तडागजलका कुलीद्वारा केदारजलसैं अभेद होवै, तहां कुलीजलकाभी केदारजलसैं अभेद होवै है. इहां तडाग जल समान प्रमातृचेतन है, कुली समान वृत्ति और कुलीजल समान वृत्तिचेतन है, केदार समान विषय और केदारस्थजल समान विषय चेतन है. यद्यपि उक्त दृष्टांतसैं विषयचेतनका तो प्रमातृचेतनसैं अभेद संभवै है,परंतु प्रमातृचेतनसैं घटादिक विषयका अभेद संभवै नहीं. जैसैं तडागजलसैं कुलीद्वारा केदारजलका अभेद होवै है और पार्थिवकेदारका तडागजलसैं अभेद होवै नहीं, यातैं घटादिक विषयके प्रत्यक्षमें प्रमातृचेतनसैं अभेद हेतु कह्या सो संभवै नहीं, तथापि प्रमातृचेतनसैं अभेद विषयके प्रत्यक्षत्वका हेतु है; या कहनेतैं प्रमातृचेतनकी और विषयकी एकता विवक्षित नहीं है; किंतु प्रमातृचेतनकी सत्तासैं विषयकी पृथक् सत्ता नहीं होवै, किंतु प्रमातृचेतनकी सत्ताही जा विषयकी सत्ता होवै सो विषय प्रत्यक्ष होवै है, यह अर्थ विवक्षित है. घटका अधिष्ठान घटावच्छिन्न चेतन है, रज्जुका अधिष्ठान रज्ज्ववच्छिन्न चेतन है; इस रीतिसैं सकल विषयनका अधिष्ठान विषयावच्छिन्नचेतन है और अधिष्ठानकी सत्तासैं पृथक् अध्यस्तकी सत्ता होवै नहीं, किंतु अधिष्ठानकी सत्ताही अध्यस्तकी होवै है. यातैं विषयावच्छिन्न चेतनकी

सत्तासैं विषयकी पृथक् सत्ता नही हैं. और अंतःकरणकी वृत्तिद्वारा प्रमातृचेतनका विषयचेतनसैं अभेद होवै तब प्रमातृचेतन भी विषयचेतनसैं अभिन्न हुआ विषयका अधिष्ठान होवै है; यातैं अपरोक्षवृत्तिके विषयका अधिष्ठान जो प्रमातृचेतन ताकी सत्तासैं विषयकी भिन्न सत्ताका अभाव ही प्रमातृचेतनसैं विषयका अभेद कहिये है. सो उक्तरीतिसैं संभवै है, इसीवास्ते अपरोक्ष स्थलमें विषय देशमें वृत्तिका निर्गमन मान्या है; जैसैं कुलीके संबंध विना तडागजलकी और केदारजलकी एकता होवै नहीं, तैसैं वृत्ति संबंध विना प्रमातृचेतन और विषयचेतनकी एकता होवै नहीं; यातैं जैसैं परोक्षज्ञानकालमें प्रमातृचेतन और विषयचेतनके भेदतैं प्रमातृचेतनसैं भिन्न सत्तावाला विषय होनेतैं प्रमातृचेतनसैं अभिन्नसत्तावाला विषय नहीं होवै है तैसैं वृत्तिके निर्गमन विना अपरोक्षज्ञानकालमेंभी भिन्नसत्तावाला विषय होवेगा यातैं विषयदेशमें वृत्तिका निर्गमन मान्या है; इस रीतिसैं " अयं सर्पः, इदं रजतम् " इत्यादिक अपरोक्षभ्रमज्ञानकी उत्पत्ति होवै तहां भ्रमसैं अव्यवहित पूर्व कालमें भ्रमका हेतु अधिष्ठानका सामान्यज्ञान होवै सो प्रत्यक्षरूप प्रमा होवै है, तिसतैं सर्पादिक विषय और तिनका ज्ञान उपजै है यह सांप्रदायिक मत है.

११३ उक्त अनिर्वचनीयख्यातिरूप अर्थमें शंका और संक्षेप शारीरकका समाधान.

परंतु अपरोक्ष प्रमासैं अज्ञानकी निवृत्ति नियमतैं होवै है यह वार्ता अष्टमप्रकाशमें प्रतिपादन करेंगे; यातैं रज्जुशुक्ति आदिकनकी इदमाकार अपरोक्ष प्रमासैंभी विषयचेतनके अज्ञानकी निवृत्ति हुएतैं उपादानके अभावतैं सर्पादिक और तिनके ज्ञानकी उत्पत्ति संभवै नहीं.

याका समाधान संक्षेपशारीरकानुसारी इस रीतिसैं कहै हैं:—इदमाकार वृत्तिसैं विषयके इदम् अंशके अज्ञानकी निवृत्ति होवै है; और रज्जुत्व शुक्तित्वादिक विशेष अंशके अज्ञानकी निवृत्ति होवै नहीं; और रज्जुत्वशु-

क्तित्वादिक विशेष अंशके ज्ञानतैंही अध्यासकी निवृत्ति होनेतैं विशेष अंशका अज्ञानही अध्यासका हेतु है, सामान्यअंशका अज्ञान अध्यासका हेतु नहीं जो सामान्यअंशका अज्ञानभी अध्यासका हेतु होवै तो इदमाकार सामान्य ज्ञानसैंभी अध्यासकी निवृत्ति हुई चाहिये. काहेतैं ? जिसके अज्ञानसैं भ्रम होवै तिसके ज्ञानसैं नष्ट होवै है यह नियम है, यातैं इदम् अंशके अज्ञानकी अध्यासमें अपेक्षा नहीं, प्रत्युत इदमाकार नेत्रप्रमाकी अपरोक्ष अध्यासमें अपेक्षा है. काहेतैं ? रज्जुआदिकनतैं नेत्रका संयोग होवै तो सर्पादिकनका अपरोक्षभ्रम होवै है, नेत्रके संयोग विना होवै नहीं; यातैं नेत्रजन्य अपरोक्ष प्रमारूप अधिष्ठानका सामान्यज्ञानही अध्यासका हेतु है, तहां अन्य प्रकारसैं तो सामान्यज्ञानका अध्यासमें उपयोग संभवै नहीं. अध्यासके उपादान अज्ञानका क्षोभ सामान्यज्ञानसैं होवै है यह मानना चाहिये. इस रीतिसैं अधिष्ठानके सामान्य ज्ञानकूं अध्यासमें कारणता होनेतैं इदंताअंशका अज्ञान अध्यासका हेतु नहीं.

११४ कवितार्किकचक्रवर्त्तिनृहिंभट्टोपाध्यायके मतका अनुवाद और अनादर.

और कवितार्किकचक्रवर्ति नृसिंहभट्टोपाध्यायने अधिष्ठानके सामान्य-ज्ञानकूं अध्यासमें हेतुताका निषेध कह्या है; और अधिष्ठानसैं नेत्रसंयोग होवै तो सर्पादिक अध्यास होवै, नेत्रसंयोग नहीं होवै तो सर्पादिक अध्यास होवै नहीं. इस रीतिसैं इंद्रिय अधिष्ठानके अन्वयव्यतिरेकतैं जो सामान्य ज्ञानकूं अध्यासकी कारणता पूर्व कही है तिस अन्वयव्यतिरेकसैंभी इंद्रिय अधिष्ठानके संयोगकूंही अध्यासकी कारणता सिद्ध होवै है. इंद्रियसंयोग-जन्य सामान्य ज्ञानकूं अध्यासकी कारणता सिद्ध होवै नहीं. काहेतैं ? अन्वय व्यतिरेकसैं कारणताका निश्चय होवै है, साक्षात्कारणता संभवै; जहां परंपरातैं कल्पन अयोग्य है, यातैं इंद्रिय संयोगके अन्वयव्यतिरेकसैं अध्यासमें इंद्रिय अधिष्ठानके संयोगकूंही साक्षात्कारणता उचित है. अधिष्ठानके सामान्यज्ञानद्वारा इंद्रियसंयोगकूं कारणता कहना उचित नहीं, जैसैं अधि-

ष्ठानके सामान्य ज्ञानसैं अविद्यामें क्षोभ माना है तैसैं अधिष्ठान इंद्रियके संयोगतैंही क्षोभ मानना चाहिये. और अधिष्ठानके सामान्यज्ञानकूं अध्यासमें हेतु नहीं मानै तो अध्यासतैं पूर्व इदमाकार अपरोक्षप्रमा होनेतैं जो अज्ञाननिवृत्तिकी शंका है और समाधान है सोभी निर्मूल होवै है. यहभी अनुकूल लाघव है. इस रीतिसैं अधिष्ठानके सामान्यज्ञानकी अध्यासमें कारणताका निषेध कवि तार्किक चक्रवर्त्ति नृसिंहभट्टोपाध्यायने कह्या है सोभी अद्वैतवादी है, तथापि सांप्रदायिक वचनतैं ताकी उक्ति विरुद्ध है; यातैं ताकी उक्तिका खंडन इसी प्रसंगमें विस्तारसैं कहेंगे.

यातैं अधिष्ठानका सामान्यज्ञान अध्यासका हेतु होनेतैं इदंताअंशके अज्ञानकी अध्यासमें अपेक्षा नहीं; इसीवास्ते संक्षेपशारीरकमें अधिष्ठान आधारका भेद कहा है, सविलास अज्ञानका विषय **अधिष्ठान** कहिये है, कार्यकूं **विलास** कहे हैं, सर्पादिक विलाससहित अज्ञानका विषय रज्जु आदिक विशेषरूप होनेतैं सर्पादिकनका अधिष्ठान रज्जु आदिक विशेषरूप है; अध्यस्तमें अभिन्न होके जाका स्फुरण होवै सो **आधार** कहिये है, "अयं सर्पः इदं रजतम्" इत्यादिक भ्रमप्रतीतिमें अध्यस्त सर्परजतादिकनतैं अभिन्न होयके सामान्य इदम् अंशका स्फुरण होनेतैं सामान्य अंश आधार है या मतमें अधिष्ठान अध्यस्तकूं एक ज्ञानकी विषयता होवै हैं, या नियमके स्थानमें आधार अध्यस्तकूं एक ज्ञानकी विषयता होवै है, यह नियम है; जो अधिष्ठान अध्यस्तकूं एक ज्ञानकी विषयता मानै तो रज्जुशुक्ति आदिक विशेषरूपकूं अधिष्ठानता होनेतैं "रज्जुः सर्पः शुक्तीरूप्यम्" ऐसा भ्रम हुआ चाहिये, और सामान्य इदम् अंशकूं आधारता है अधिष्ठानता नहीं, यातैं "अयं सर्पः इदं रजतम्" ऐसा भ्रम नहीं चाहिये, यातैं विशेष अंशका अज्ञानही अध्यासका हेतु है, या मतमें आधार अध्यस्तकूं ही एक ज्ञानकी विषयता माननी चाहिये.

११५ अध्यासकी कारणतामें पंचपादिका और विवरणका मत.

और **पंचपादिका विवरणकारके** मतमें अनुसारी तो यह कहे हैं:—आव-

रणविक्षेपभेदसैं अज्ञानकी दो शक्ति हैं, आवरणशक्तिविशिष्ट अज्ञानांशका ज्ञानसैं विरोध होनेतैं नाश होवै है, विक्षेपशक्तिविशिष्ट अज्ञानांशका ज्ञानसैं विरोध नहीं; यातैं ज्ञानसैं ताका नाश होवै नहीं यह वार्ता अवश्य अंगीकरणीय है. अन्यथा जलप्रतिबिंबित वृक्षके ऊर्ध्व भागमें अधोदेशस्थत्व भ्रम होवै तहां वृक्षका विशेषरूपतैं ज्ञानहुएभी ऊर्ध्वभागमें अधोदेशस्थत्व अध्यासका निवृत्ति होवै नहीं, तैसैं जीवन्मुक्त विद्वान्कूं ब्रह्मात्मका विशेषरूपतैं ज्ञानहुएभी अंतःकरणादिरूप विक्षेपकी निवृत्ति होवै नहीं, तहां उक्त स्थलकी नाईं सामान्यरूपसैं ज्ञान और विशेषरूपसैं अज्ञान तो कहना संभवै नहीं. विक्षेपशक्तिविशिष्ट अज्ञान अंशकी ज्ञानसैं निवृत्ति होवै नहीं. आवरणशक्ति विशिष्ट अज्ञानांशकीही ज्ञानसैं निवृत्ति होवै है, यही समाधान है: तैसैं रज्जुशुक्ति आदिकनके सामान्यज्ञानतैं इदम् अंशके आवरणका हेतु अज्ञानांशका नाश होवै है, और सर्परजतादिक विक्षेप हेतु अज्ञानांशका नाश होवै नहीं; यातैं इदमाकार सामान्यज्ञान हुएभी सर्पादिक विक्षेपका इदम् अंशका अज्ञानभी संभवै है. इस रीतिसैं इदमाकार सामान्यज्ञान हुएभी सविलास अज्ञानका विषय रज्जुआदिक सामान्य अंश संभवै है, यातैं अधिष्ठानताका इदम् अंशमें संभव होनेतैं अधिष्ठान अध्यस्तकूं एक ज्ञानकी विषयता संप्रदायसैं प्राप्त है ताकाभी विरोध नहीं.

११६ पंचपादिका और संक्षेपशारीरकके मतकी विलक्षणता और तामें रहस्य.

संक्षेप शारीरककी रीतिसैं विशेष अंशमें अधिष्ठानता है सामान्यअंशमें अधिष्ठानता नहीं. और विशेष अंशमें आधारता नहीं, या मतमें सामान्य अंशमें अधिष्ठानता है; इतना भेद है. और विशेष अंशमें आधारताका अभाव इस मतमेंभी समान है. काहेतैं ? अध्यस्तसैं अभिन्न होयके प्रतीत होवै सो आधार कहिये है. " रज्जुः सर्पः " इस रीतिसैं जो प्रतीति होवै तो अध्यस्तसैं अभिन्न होयके विशेष अंश प्रतीत होवै. उक्त रीतिसैं प्रतीत होवै नहीं, विशेषरूपतैं रज्जु आधार नहीं इस रीतिसैं प्रथमपक्षमें इदंत्वरूपतैं रज्जुमें और

शुक्तिमैं प्रमाणजन्यज्ञानकी प्रमेयता है और रज्जुत्वरूपतैं तथा शुक्तित्वरूपतैं प्रमेयताके अभावतैं अज्ञातत्व होनेतैं सर्प और रजतकी अधिष्ठानता है. और द्वितीय पक्षमें आवरणशक्ति विरोधिप्रमाकी विषयतारूप प्रमेयता इदंत्वरूपतैं है तथापि विक्षेपशक्ति सदज्ञानकी विषयता ज्ञातमेंभी संभवै है, यातैं इदंत्वरूपतैं ही रजतादिकनकी अधिष्ठानता है.

या स्थानमें यह रहस्य है:—अज्ञानकृत आवरण चेतनमें होवै है और स्वभावसैं आवृतरूप जन्मांधके समान जडपदार्थनमें अज्ञानकृत आवरणका अंगीकार नहीं, तैसैं प्रमाणजन्य ज्ञानकी विषयतारूप प्रमेयताभी चेतनमें है घटादिक जडपदार्थनमें आवरण होवै तो ताकी निवृत्तिके अर्थ प्रमेयताका अंगीकार होवै, चेतनमें अज्ञानकी विषयतारूप अज्ञातता होनेतैं चेतनमेंही ज्ञातता और प्रमेयता है, तैसैं सकल अध्यासका अधिष्ठानभी चेतन है. जड पदार्थ आप अध्यस्त है, अन्यके अधिष्ठान संभवै नहीं; यातैं रज्जुशुक्ति आदिकनमें अज्ञातता तथा ज्ञातता और अधिष्ठानता किसी प्रकारसैं संभवै नहीं, तथापि मूलाज्ञानकी विषयतारूप अज्ञातता तो निरवयवावच्छिन्न विभुचेतनमें है, परंतु मूलाज्ञानकी विषयतारूप अज्ञातता तिसतिस विषयावच्छिन्न चेतनमें हैं; यह अर्थ अष्टम प्रकाशमें कहेंगे तैसैं ब्रह्मज्ञानकी विषयतारूप ज्ञातता तो निरवयवावच्छिन्न चेतनमें और घटादिज्ञानकी विषयतारूप ज्ञातता घटाद्यवच्छिन्न चेतनमें है.तैसै अविद्याकी अधिष्ठानता निरवयवावच्छिन्न चेतनमें है. और भूतभौतिक प्रपंचकी अधिष्ठानता अज्ञानावच्छिन्नमें है. और प्रातिभासिक सर्परजतादिकनकी अधिष्ठानता रज्जुअवच्छिन्न शुक्तिअवच्छिन्नादिक चेतनमें है. इस रीतिसैं चेतनमें अज्ञातता ज्ञातता अधिष्ठानतादिकनके अवच्छेदक जडपदार्थ हैं; यातैं अवच्छेदकता संबंधसैं जडपदार्थनमेंभी अज्ञाततादिकनका संभव होनेतैं रज्जु अज्ञात है, ज्ञात है, सर्पका अधिष्ठान है, इस रीतिसैंभी व्यवहार संभवै है. इस रीतिसैं सर्पादि भ्रमका हेतु रज्जुआदिकनतैं इंद्रियके संयोगतैं इदमाकार सामान्यज्ञान प्रमारूप अंतःकरणकी वृत्ति होवै है, तिस सामान्यज्ञानतैं क्षोभवती अविद्याका सर्पादिरूप परिणाम और

सर्पादिकनका ज्ञानरूप परिणाम होवै है. रज्जुआदिक विषय उपहित चेतनस्थ अविद्यांशका सर्पादिक विषयाकार परिणाम होवै है, इदमाकार वृत्त्युपहितचेतनस्थ अविद्यांशका ज्ञानाकार परिणाम होवै है, रज्जुअवच्छिन्न चेतन सर्पका अधिष्ठान है और इदमाकारवृत्त्यवच्छिन्नचेतन सर्पज्ञानका अधिष्ठान है.

११७ विषयोपहित और वृत्त्युपहितचेतनके अभेदमें शंकासमाधान.

यद्यपि इदमाकार प्रत्यक्षवृत्ति होवै तहां विषयोपहितचेतन और वृत्त्युपहितचेतनका अभेद होवै है,यातैं उक्त रीतिसैं विषय और ज्ञानके उपादानका भेदकथन और अधिष्ठानका भेदकथन संभवै नहीं, और सर्पादिक विषयके अधिष्ठानतैं ज्ञानके अधिष्ठानकूं भिन्न मानोगे तो सर्पादिकनके अधिष्ठान ज्ञानतैं सर्पादिकनके ज्ञानकी निवृत्ति नहीं होवेगी. काहेतैं ? अपने अधिष्ठानके ज्ञानतैं अध्यस्तकी निवृत्ति होवै है, अन्यके अधिष्ठानज्ञानतें अध्यस्तकी निवृत्ति होवै तो सर्पके अधिष्ठान रज्जुके ज्ञानतैं अध्यस्त संसारकी निवृत्ति हुई चाहिये; यातैं एकके ज्ञानतैं सर्पादिक विषय और तिनके ज्ञानकी निवृत्तिके अर्थ दोनोंका अधिष्ठान एकही मानना योग्य है.

या शंकाका यह समाधान है:—जहां एक वस्तुका उपाधिकृत भेद होवै तो उपाधिकी निवृत्तिसैं अभेद होवै है और दोनों उपाधि एकदेशमें होवै तहांभी उपहितका अभेद होवै है, परंतु उपाधिके एक देशस्थत्वसैं जहां उपहितका अभेद होवै है तहां एकही धर्मीमें तत्त्व उपहितत्व दो धर्म रहेहैं. जैसैं एक आकाशका घटमठ उपाधिभेदसैं भेद होवै तहां घटमठके नाशतैं अभेद होवै है और मठदेशमें घटके स्थापनतैंभी घटाकाशमठाकाशतैं भेद रहै नहीं, तौभी घटाकाशमें घटोपहितत्त्व और मठोपहितत्व दो धर्म रहै हैं और धर्मी एक है तथापि जितने घटमठ दोनों रहें उतनेकाल घटाकाश मठाकाश यह दोनों व्यवहार होवै हैं; तैसैं रज्जुआदि विषय देशमें वृत्तिके निर्गमनकालमें वृत्त्युपहितचेतनसैं विषयचेतनका यद्यपि अभेद होवै है तथापि दोनों उपाधिके सद्भावतैं वृत्त्युपहितत्व रज्जूपहितत्व दो धर्म रहै हैं; तिनमें सर्पा-

दिकविषयकी अनिष्ठानताका अवच्छेदक धर्म रज्जूपहितत्व है और सर्पादिकनके ज्ञानकी अधिष्ठानताका अवच्छेदक धर्म वृत्त्युपहितत्व है. इस रीतिसैं सर्पादिक विषयोपादान अज्ञानांशकी चेतनमें अधिकरणताका अवच्छेदक रज्जूपहितत्व है, और भ्रांतिज्ञानोपादान अज्ञानांशकी चेतनमें अधिकरणताका अवच्छेदक वृत्त्युपहितत्व है. इस रीतिसैं एकदेशमें उपाधिके होनेतैं उपहितका अभेद हुएभी धर्मनका भेद रहै हैं; यातैं वृत्त्युपहितत्वावच्छिन्न चेतननिष्ठ अज्ञानांशमें भ्रमज्ञानकी उपादानता है, और रज्जुआदिक विषयोपाहितत्वावच्छिन्न तिसी चेतननिष्ठ अज्ञानांशमें भ्रमके विषयकी उपादानता है. तैसैं वृत्त्युपहितत्वावच्छिन्न चेतनमें भ्रमज्ञानकी अधिष्ठानता है; और रज्जु आदिक विषयोपहितत्वावच्छिन्न तिसी चेतनमें सर्पादिक विषयकी अधिष्ठानता है. याप्रकारतैं उपाधिके सद्भावकालमें एकदेशस्थ उपाधिके होनेतैं उपहितका अभेद हुएभी उपाधिपुरस्कारतैं भेदव्यवहारभी होवै है; और भिन्नदेशमें उपाधि होवै तब केवल भेदव्यवहार होवै है; उपाधिकी निवृत्ति होवै तब भेदव्यवहार होवै नहीं. केवल अभेदव्यवहार होवै है. याप्रकारतैं वृत्ति और विषय दोनों एक देशस्थ होवें तब चेतनका अभेद हुएभी उपाधिपुरस्कारतैं पूर्व उक्त उपादान और अधिष्ठानका भेदकथन असंगत नहीं. और स्वरूपसैं उपहितका अभेद है, यातैं एक अधिष्ठानके ज्ञानतैं सर्पादिक विषय और तिनके ज्ञानकी निवृत्तिभी संभवै है.

११८ रज्जुआदिकनकी इदमाकार प्रमातैं सर्पादिकनका भ्रमज्ञान होवै तामें दो पक्ष.

रज्जु आदिकनकी इदमाकार प्रमातैं सर्पादिकनका भ्रमज्ञान होवै तहां दोपक्ष हैं:—कोई तौ कहै हैं "अयं सर्पः इदं रजतम्" इस रीतिसैं अधिष्ठान इदंताकूं और ताके सर्प रजतादिकनमें संबंधकूं विषय करता हुआ सर्प रजतादि गोचरभ्रम होवै है. अधिष्ठानकी इदंताकूं और इदंताके संबंधकूं त्यागके केवल सर्परजतादिगोचर अपरोक्ष भ्रम होवै नहीं; जो केवल अध्यस्त

गोचरही भ्रम होवै तो "सर्पः रजतम्" ऐसा आकार भ्रमका हुआ चाहिये. और "इमं सर्पं जानामि, इदं रजतं जानामि" ऐसा भ्रमका अनुव्यवसायभी इदं पदार्थसैं तादात्म्यापन्न सर्परजतादि गोचरव्यवसायकूं विषय करै है, और कल्पित सर्पादिकनमें इदंता है नहीं. काहेतैं ? वर्तमानकाल और पुरोदेशका संबन्ध इदंता होवै है. व्यावहारिक देशकालका प्रातिभासिकसैं व्यावहारिक संबंध संभवै नहीं, और अधिष्ठानकी इदंताकी कल्पितमें प्रतीतिसैं व्यवहारका निर्वाह होनेतैं कल्पितमें इदंताका अंगीकार निष्फल है; और अन्यथाख्यातिसैं विद्वेष होवै तो अधिष्ठानकी इदंताका कल्पितमें अनिर्वचनीय संबंध उपजै है कल्पितमें इदंताका अंगीकार नहीं, तथापि संबंधीकूं त्यागिके केवल संबंधका ज्ञान होवै नहीं; यातैं अधिष्ठानकी इदंताकूं त्यागिके केवल अध्यस्तगोचर अपरोक्ष भ्रम होवै नहीं. इस रीतिसैं इदं पदार्थकी द्विधा प्रतीति होवै है, एक तो इंद्रिय अधिष्ठानके संयोगतैं इदमाकार प्रमा अंतःकरणकी वृत्तिरूप प्रतीति होवै है, और दूसरी वृत्त्युपहितचेतनस्थ अविद्याका परिणाम सर्प रजतादि गोचर भ्रम प्रतीति होवै है. सोभी अध्यस्तमें इदं पदार्थके तादात्म्यकूं विषय करती हुई इदंगोचर होवै है; इस रीतिसैं सारे अपरोक्ष भ्रम इदमाकार हुए अध्यस्ताकार होवै है कोई आचार्य ऐसैं मानें हैं.

और बहुत ग्रंथकार यह कहे हैंः—अधिष्ठान इंद्रियके संयोगतैं इदमाकार अंतःकरणकी वृत्तिरूप प्रमातैं क्षोभवाली अविद्याका केवल अध्यस्ताकार परिणाम होवै है; अविद्याका इदमाकार परिणाम होवै नहीं. काहेतैं ? व्यावहारिक पदार्थाकार अविद्याका परिणाम संभवै नहीं, साक्षात् अविद्याजन्य प्रातिभासिक पदार्थाकारही अविद्याका परिणाम भ्रमज्ञान होवै है, यातैं अधिष्ठानकी इदंतामें भ्रमज्ञानकी विषयता नहीं, केवल अध्यस्तमेंहीं भ्रमकी विषयता है.

औ जो पूर्वमतमें कह्या है "अयं सर्पः इदं रजतम्" ऐसा भ्रमका आकार होवै है, तैसैं "इदं रजतं जानामि" यह भ्रमका अनुव्यवसाय होवै है.

जो अध्यस्तमात्रगोचर भ्रम होवै तो "सर्पः रजतम्" ऐसा भ्रमका आकार हुआ चाहिये. और "रजतं जानामि" ऐसाही अनुव्यवसाय हुआ चाहियेः

ताका यह समाधान हैः—जैसैं सर्प रजतादिकनके अधिष्ठानगत इदंताका अध्यस्तमें भान होवै अथवा अधिष्ठानगत इदंताका अध्यस्त सर्पादिकनमें अनिर्वचनीय संबंध उपजै है, तैसैं सर्पादि ज्ञानाभासका अधिष्ठान इदमाकार प्रमावृत्ति है, ता प्रमावृत्तिमें इदंपदार्थ विषयकत्व है, ताकी प्रतीति सर्पादिभ्रममें होवै है, अथवा प्रमावृत्तिरूप अधिष्ठानमें जो इदंपदार्थ विषयकत्व ताका अनिर्वचनीय संबंध सर्पादि ज्ञाननमें उपजै है; यातैं इदमाकारत्व शून्य भ्रम ज्ञानमें इदमाकारत्वकी प्रतीति होवै है; यद्वा इदमाकारवृत्ति उपहित चेतनही सर्पादि ज्ञानाभासका अधिष्ठान है, उक्त वृत्त्युपलक्षित जो अधिष्ठान होवै तो उक्त वृत्तिसैं दो चारि घटिकाके व्यवधान हुएभी सर्पादिक भ्रम हुआ चाहियेः काहेतैं ? उपलक्षणवालेकूं उपलक्षित कहे हैं. और उपलक्षणमें वर्तमानत्वकी अपेक्षा नहीं यह अर्थ आगे कहेंगे. और वक्ष्यमाण रीतिसैं उपाधिमें वर्तमानत्वकी अपेक्षा है. इदमाकार वृत्ति जाकी उपाधि होवै सो इदमाकारवृत्त्युपहित कहिये है; यातैं सर्परजतादिकनका भ्रमज्ञान होवै तिसकालमें अंतःकरणकी इदमाकार वृत्ति भी रहै है यह अवश्य मानना चाहिये. काहेतैं ? अधिष्ठानकी सत्ता कालसैं अतिरिक्तकालमें अध्यस्त होवै नहीं, यातैं भ्रमज्ञानमें समयमें वृत्त्युपहितचेतनकी अधिष्ठानताकी उपयोगिनी इदमाकार अंतःकरणकी वृत्ति रहै है, और रजताकार अविद्यावृत्ति होवै है. इस रीतिसैं "अयं सर्पः, इदं रजतम्" यह दो ज्ञान हैं, इदमाकार प्रमावृत्ति है; और सर्प रजतादिक आकारवाली भ्रमवृत्ति है, अवच्छेदकता संबंधसैं भ्रमवृत्तिका इदमाकारप्रमावृत्ति अधिष्ठान है, अध्यस्तका अभेद संबंध होवै है. जैसैं ब्रह्म और प्रपंचका "सर्वमिदं ब्रह्म" इस प्रतीतिका विषय अभेद है, यातैं "अयं सर्पः, इदं रजतम्" इस रीतिसैं उभयवृत्तिका अभेद प्रतीत होवै है. यद्यपि उक्तरीतिसैं वृत्तिद्वय होवै तो अधिष्ठान अध्यस्त दोनों एक ज्ञानके विषय होवै हैं, यह प्राचीनवचन असंगत

होवैगा, तथापि एक ज्ञानके विषय होवै हैं; याका यह अर्थ नहीं. एक वृत्तिके विषय होवै हैं; किंतु अधिष्ठान और अध्यस्त एक साक्षीके विषय होवै हैं यह प्राचीनवचनका अर्थ है, रज्जुशुक्ति आदिकनके देशमेंही सर्प रजतादिक होवै हैं; और इदमाकारवृत्ति उपहित साक्षीके अधिष्ठान और अध्यस्तविषय है. इस रीतिसैं अधिष्ठान और अध्यस्त एक ज्ञानके विषय होवै हैं. इस प्राचीन वचनमें ज्ञानपदका साक्षी अर्थ है वृत्ति नहीं, यातैं भ्रमवृत्तिकूं अध्यस्तमात्र गोचरता माननेमें बहुत आचार्योंकी संमति है.

११९ कवितार्किकचक्रवर्ति नृसिंहभट्टोपाध्यायका मत.

और कवितार्किकचक्रवर्ति नृसिंहभट्टोपाध्याय तो यह कहे हैंः- भ्रांतिज्ञानसैं विना प्रमारूप इदमाकार ज्ञान भ्रमका हेतु होवै नहीं, किंतु " अयं सर्पः. इदं रजतम् " इस रीतिसैं भ्रमरूप एकही ज्ञान होवै है. काहेतैं? भ्रमसैं पूर्व इदं पदार्थाकार प्रमारूप समान्य ज्ञान रज्जुशुक्ति आदिकनका मानै ताकूं यह पूछै हैंः—अनुभवके अनुसारतैं ज्ञानद्वयका अंगीकार है अथवा भ्रमरूप कार्यकी अनुपपत्तिसैं भ्रमभिन्न सामान्यज्ञानका अंगीकार है? जो अनुभवके अनुसारतैं ज्ञानद्वय कहैं तो संभवै नहीं, काहेतैं ? प्रथम मतमें तो इदंपदार्थगोचर दो वृत्ति कही हैं. एक तो प्रमारूप अंतःकरणकी इदमाकार वृत्ति और दूसरी अविद्याका भ्रमरूप वृत्ति इदंपदार्थकूं विषय करती हुई रजतगोचर " इदं रजतम् " इस रीतिसैं कही. यामतमें इदंपदार्थकी द्विधा प्रतीति कही, सो किसीके अनुभवमें आरूढ होवै नहीं. सर्प रजतादि ज्ञानकी नाई इदंगोचर ज्ञानभी एकही अनुभवसिद्ध है, यातैं प्रथम मत अनुभवानुसारी नहीं. और द्वितीय मतमें इदं पदार्थके दो ज्ञान तो नहीं माने परंतु "अयं सर्पः, इदं रजतम्" इत्यादिक दो ज्ञान माने हैं. इदमाकार तो प्रमा मानी है और सर्परजतादिगोचर भ्रम माना है; सोभी अनुभवसैं विरुद्ध है. काहेतैं ? रज्जु शुक्तिके ज्ञानतैं सर्परजतके बाधसैं उत्तर कोई पूछैः—तेरेकूं कैसा भ्रम हुआ था ताका यह उत्तर कहै हैंः—"अयं

सर्पः, इदं रजतम्" ऐसा भ्रम मेरेकूं होता भया. और इदमाकार प्रमा हुई. सर्पाकार रजताकार भ्रम हुआ ऐसा उत्तर कोई कहै नहीं, यातैं द्वितीयमतकी रीतिसैंभी ज्ञानद्वयका अंगीकार अनुभवविरुद्ध है, यातैं इंद्रियजन्य अंतःकरणकी वृत्तिरूप इदमाकारज्ञान प्रमा है; और इदमाकारज्ञानजन्य सर्परजतादिगोचर इदंपदार्थविषयक अथवा इदंपदार्थविषयक अविद्याकी वृत्ति रूप ज्ञानाभास है. इस रीतिसैं ज्ञानद्वयका अंगीकार अनुभवानुसारी नहीं.

१२० उपाध्यायके मतमें सामान्यज्ञान (धर्मिज्ञान) वादीकी शंका और समाधान.

और जो सामान्यज्ञानवादी यह कहैः—रज्जु आदिकनतैं इंद्रियसंयोग होवै तो सर्पादिक अध्यास होवै हैं, इंद्रियसंयोग नहीं होवै तो अध्यास होवै नहीं; इस रीतिके अन्वयव्यतिरेकतैं इंद्रियका अधिष्ठानसैं संयोगकूं अध्यासकी कारणता सिद्ध होवै है, और अधिष्ठान इंद्रियके संयोगकूं अधिष्ठानके ज्ञानद्वाराही कारणता संभवै है, अन्य प्रकारसैं अधिष्ठान इंद्रियसंयोगका अध्यासमें उपयोग संभवै नहीं. जो अध्यासकी कारणता कहै तो संभवै नहीं. काहेतैं ? अधिष्ठान इंद्रियके संयोग विना भी अहंकारादिक अध्यास होवै है; यातैं अध्यासमात्रमें अधिष्ठानज्ञानका सामान्यज्ञान हेतु है. अहंकारादिक अध्यासका अधिष्ठान प्रत्यक्स्वरूप आत्मा है सो स्वयंप्रकाश है सर्पादिक अध्यासके अधिष्ठानका सामान्यज्ञान इंद्रियसंयोगतैं होवै है, इस रीतिसैं निजप्रकाशशून्य अधिष्ठानके सामान्यज्ञानद्वाराही इंद्रिय संयोगका अध्यासमें उपयोग है, साक्षात् उपयोग नहीं; यातैं अधिष्ठानका सामान्यज्ञानही अध्यासका कारण है, अध्यास कार्य है. जहां कार्य प्रतीत होवै और कारण प्रतीत होवै नहीं तहां कार्यकी अन्यथा अनुपपत्तिसैं कारणकी कल्पना होवै है. भ्रमस्थलमें इदमाकार प्रमा यद्यपि अनुभवसिद्ध नहीं है; तथापि भ्रमरूप कार्यकी सामान्यज्ञानरूप कारण विना अनुपपत्ति होनेतैं सामान्य ज्ञानकी कल्पना होवै है.

इस रीतिसैं धर्मिज्ञानवादी कहै तो संभवै नहीं. अध्यासके हेतु सामान्यज्ञानकूं धर्मिज्ञान कहे हैं; या प्रसंगमें सामान्यज्ञानकूं अध्यास कारण मानैं सो पूर्वपक्षी है. और सामान्यज्ञानका अपलापी उपाध्याय सिद्धांती है, ताकी उक्ति कहै हैंः—सामान्यज्ञान विना कोईभी अध्यास नहीं होवै तो अध्यासकी कारणता सामान्य ज्ञानमें संभवै अधिष्ठानके सामान्यज्ञान विना घटादिक अध्यास होवै है, यातैं अध्यासमात्रमें अधिष्ठानके सामान्यज्ञानकूं कारणता नहीं. धर्मिज्ञानवादी जो घटादिक अध्यासतैं पूर्व सामान्यज्ञान कहै ताकूं यह पूछया चाहिये, घटादिक अध्यासका हेतु अधिष्ठानतैं नेत्रसंयोगजन्य अंतःकरणकी वृत्तिरूप सामान्यज्ञान है अथवा चेतनस्वरूप प्रकाशही सामान्यज्ञान है ? सो प्रथमपक्ष कहै तो संभवै नहीं. काहेतैं ? घटादिक अध्यासका अधिष्ठान अज्ञानावच्छिन्न ब्रह्म नीरूप है, यातैं ब्रह्मगोचर अंतःकरणकी चाक्षुषवृत्ति संभवै नहीं और द्वितीय पक्ष कहै तो स्वरूपप्रकाश आवृत है, तिस आवृत प्रकाशरूप सामान्यज्ञानकूं भी अध्यासका हेतु मानै तो रज्जु आदिकनतैं इंद्रियसंयोग विना भी सर्पादिक अध्यास हुआ चाहिये, यातैं आवृतप्रकाशरूप सामान्यज्ञान अध्यासका हेतु नहीं. इस रीतिसैं घटादिक अध्यासतैं पूर्व सामान्य ज्ञानके अभावतैं अध्यासमात्रमें सामान्य ज्ञानकी कारणताके अभावतैं अध्यासरूप कार्यकी अनुपपत्तिसैं सामान्य ज्ञानरूप इदमाकार वृत्तिका कल्पन होवै नहीं.

और जो धर्मिज्ञानवादी यह कहैः—सकल अध्यासमें अनावृतप्रकाशरूप सामान्यज्ञानकूं हेतु कहै तो घटादिक अध्यासमें व्यभिचारकथन संभवै. अध्यासमात्रमें तो आवृत वा अनावृत साधारण प्रकाश हेतु है, और प्रातिभासिक अध्यासमें अनावृत प्रकाश हेतु है, जैसैं उपाध्यायके मतमें सर्पादिक अध्यासके हेतु इंद्रियसंयोग मान्या है और घटादिक अध्यासका हेतु इंद्रियसंयोग मान्या नहीं और संभवै नहीं; यातैं इंद्रियसंयोगके अभावकालके सर्पादिक अध्यास होवै नहीं, और घटादिक अध्यास इंद्रियसंयोग विनाभी होवै है; यह व्यवस्था संभवै है. तैसैं हमारे मतमें प्रातिभासिक सर्पा-

दिक अध्यासका हेतु अनावृत प्रकाश है; यातैं आवरणभंगके अर्थ सर्पादिक अध्यासतैं पूर्व इदमाकार सामान्यज्ञानरूप प्रमाकी अपेक्षा है, और घटादिक अध्यासका हेतु साधारण प्रकाश है; यातैं अनावृतप्रकाशके सद्भावतैं घटादिक अध्यासमें वृत्तिकी अपेक्षा नहीं; यातैं सामान्यज्ञानरूप वृत्तिके अभावकालमें सर्पादिक अध्यास होवै नहीं और घटादिक अध्यास वृत्तिविना होवै है, यह व्यवस्था संभवै है, धर्मिज्ञानवादीका यह कथनभी असंगत है; काहेतैं ? प्रातिभासिक अध्यासतैं पूर्वइंद्रियजन्यप्रमारूप अंतःकरणकी वृत्ति नियमतैं होवै है, याकाभी शंखके पीतताध्यासमें और कूपजलके नीलताध्यासमें व्यभिचार है. काहेतैं ? ब्रह्मज्ञान विना जाका बाध होवै सो **प्रातिभासिक अध्यास** कहिये है; शंखमें पीतताका और कूपजलमें नीलताका बाधभी ब्रह्मज्ञानसैं प्रथमही शंखश्वेतताज्ञान और जलश्वेतता ज्ञानसैं होवै है, यातैं यहभी **प्रातिभासिक अध्यास** है, या स्थानमें धर्मिज्ञानवादीकी यह प्रक्रिया है :—प्रातिभासिक अध्यासमें अनावृतप्रकाशकूं कारणताके नियमतैं शंख और जलसैं नेत्रके संयोगतैं इदमाकार अंतःकरणकी वृत्तिसैं अभिव्यक्त शंखावच्छिन्न चेतनमें और जलावच्छिन्न चेतनमें पीतरूपका अध्यास होवै है और उपाध्यायके मतमें तो शंखसैं और जलसैं नेत्रका संयोग हुए पीतरूपका और नीलरूपका अध्यास होवै है, इदमाकार वृत्तिकी अपेक्षा नहीं; यातैं धर्मिज्ञानवादीकूं यह प्रष्टव्य है:—इदमाकार वृत्तिका विषयरूप विना केवल शंखादिक द्रव्य है अथवा रूपविशिष्ट शंख और रूपविशिष्ट जल इदमाकार वृत्तिका विषय है. जो रूपकूं त्यागिके केवल द्रव्यकूं वृत्ति विषय करे है यह कहै तो संभवै नहीं. काहेतैं ? नेत्रजन्य वृत्तिका यह स्वभाव है रूपकूं विषय करै है, और रूपविशिष्ट द्रव्यकूं विषय करै है, केवल द्रव्यकूं नेत्रजन्यवृत्ति विषय करै नहीं. और रूपकूं त्यागिके केवल द्रव्यकूं विषय करै तो घटके चाक्षुषज्ञानवालेकूं घटके नीलतादिकनमें संदेह हुआ चाहिये. और रूपरहित पवनादि द्रव्यकाभी चाक्षुषज्ञान हुआ चाहिये. यातैं केवल द्रव्यगोचर इदमाकार चाक्षुषवृत्ति शंखादिकनका सामान्य ज्ञानरूप संभवै नहीं;

और रूपविशिष्ट शंखगोचर तथा रूपविशिष्ट जलगोचर वृत्ति कहै तो यह प्रष्टव्य है:—शुक्लरूपविशिष्ट शंखकूं और शुक्लरूपविशिष्ट जलकूं वह वृत्ति विषय करै है अथवा अध्यस्तरूप विशिष्टकूं विषय करै है. जो प्रथमपक्ष कहै तो शुक्लरूपकूं विषय करती हुई इदमाकारवृत्तिसैं उत्तरकालमें पूर्व वृत्तिका विरोधी पीतभ्रम और नीलभ्रम नहीं होवेगा; यातैं पीतभ्रमतैं और नीलभ्रमतैं पूर्व शुक्लरूप विशिष्ट शंखजलका इदमाकार ज्ञान संभवै नहीं, तैसैं अध्यस्तरूपविशिष्ट गोचर इदमाकार वृत्तिकूं मानै तो शंखमें अध्यस्त पीतरूप है और जलमें अध्यस्त नीलरूप है, तद्विशिष्ट ज्ञानही भ्रम है; ताकूं भ्रमकी हेतुता कथनमें आत्माश्रय होनेतैं संभवै नहीं. किंच धर्मिज्ञानवादी इदमाकार ज्ञान प्रमारूप ही अध्यासका हेतु है यह मानै हैं; और अध्यस्तरूप विशिष्टके ज्ञानकूं भ्रमत्व होनेतैं प्रमारूप धर्मिज्ञान अध्यासका हेतु है यह धर्मिज्ञानवादीका भंग होवेगा; इस रीतिसैं शंखमें पीतता भ्रमके और जलमें नीलताभ्रमके पूर्व अधिष्ठानका सामान्य ज्ञान संभवै नहीं; और अधिष्ठान इंद्रियके संयोगका संभव है, यातैं सामान्यज्ञानका व्यभिचार और इंद्रियसंयोगका अव्यभिचार होनेतैं अध्यासका हेतु अधिष्ठाननतैं इंद्रियका संयोग है. सामान्यज्ञान हेतु नहीं; यह उपाध्यायका मत है.

१२१ प्राचीनआचार्य धर्मिज्ञानवादीका मत.

और प्राचीन आचार्यधर्मिज्ञानवादी है, धर्मिज्ञानका जो शंख पीतादिक अध्यासमें व्यभिचार कह्या ताका समाधान यह कहैहैं:—अध्यासमात्रमें सामान्यज्ञान हेतु नहीं; किंतु अध्यास विशेषमें सादृश्यज्ञानत्वरूपतैं सामान्यज्ञानकूं कारणता कहनेकूं अध्यासके भेद कहैहैं:—प्रातिभासिक अध्यास दो प्रकारका होवै है, एक तो धर्मीके विशेषज्ञानसैं प्रतिबध्य है और दूसरा विशेषज्ञानसैं अप्रतिबध्य है. नीलपृष्ठता त्रिकोणतादिक विशेष धर्मके ज्ञान हुए रजत अध्यास नहीं होवै, यातैं रजताध्यास तो विशेषज्ञानसैं प्रतिबध्य है. तैसैं सर्पादिक अध्यासभी जानने. श्वेततारूप विशेष धर्मके ज्ञान हुएभी शंखमें पीतताध्यास और जलमें नीलताध्यास होवै है; यातैं उक्त अध्यास विशेष

ज्ञानसैं अप्रतिबध्य है, तैसैं रूपराहित्य विशेष धर्मके ज्ञान हुएभी आकाशमें नीलताध्यासभी विशेष ज्ञानसैं अप्रतिबध्य है, सितामें कटुता अध्यासभी विशेष ज्ञानसैं अप्रतिबध्य है; काहेतैं ? आकाश नीलरूप है इस निश्चयवालेकूं और अनेकवार सितामें मधुरताके निश्चयवालेकूंभी आकाशमें नीलताध्यास और पित्तदोषतैं सितामें कटुताध्यास होवै है, इस रीतिसैं द्विविध अध्यास है. तिसमें अंत्य अध्यास तो अधिष्ठान अध्यस्तके सादृश्यज्ञान विनाही होवै है. अधिष्ठान अध्यस्तमें विरोधी धर्म है, तहां सादृश्यका संभव नहीं; और परस्पर वैधर्म्यज्ञान हुएभी उक्त अध्यास होवै है, यातैं भ्रमरूप सादृश्य ज्ञानभी तिस अध्यासका हेतु नहीं, परंतु विशेषज्ञानसैं जाका प्रतिबंध होवै ऐसैं रजतसर्पादिक अध्यासमें अधिष्ठानका अध्यस्तसैं सादृश्य ज्ञान हेतु है; जो विशेष ज्ञानसैं प्रतिबध्य अध्यासकूंभी सादृश्यज्ञानजन्य नहीं माने और दुष्ट इंद्रियसंयोगजन्यही मानैं तो शुक्तिमें रजताध्यासकी नाईं दुष्ट नेत्रके संयोगतैं इंगालमेंभी रजताध्यास हुआ चाहिये. अग्निदग्ध नीलकाष्ठकूं इंगाल कहे हैं. रज्जुमें सर्पाध्यासकी नाईं दुष्टनेत्रसंयोगतैं घटमेंभी सर्पाध्यास हुआ चाहिये; इस रीतिसैं विशेषज्ञानसैं जाका प्रतिबंध होवै ऐसै प्रातिभासिक अध्यासमें सादृश्यज्ञान हेतु है, सादृश्यज्ञानभी सामान्यज्ञानरूप धर्मिज्ञानही है, शुक्तिमें और रूप्यमें चाकचक्यरूप सादृश्य है, रज्जुमें और सर्पमें भूमिसंबंध दीर्घत्व सादृश्य है, पुरुषमें और स्थाणुमें उच्चैस्त्व सादृश्य है, या प्रकारतैं अधिष्ठान अध्यस्तमें समान धर्मही सादृश्य पदार्थ है. ताके ज्ञानकूं **सामान्य ज्ञान और धर्मिज्ञान** कहना संभवै है. इस रीतिसैं विशेषज्ञानसैं प्रतिबध्य जो प्रातिभासिक अध्यास तामें सादृश्य ज्ञानरूप धर्मिज्ञानही हेतु है, दुष्टइंद्रियसंयोगका सादृश्यज्ञानद्वारा उक्त अध्यासमें उपयोग है.

१२२ धर्मिज्ञानवादीके मतमें उपाध्यायका शंका और समाधान.

और जो उपाध्यायका अनुसारी इस रीतिसैं कहैः— प्रमातृदोष प्रमाणदोष प्रमेयदोषसैं धर्मिज्ञान प्रतिबध्य अध्यास होवै है, सादृश्यज्ञानकूं उक्त अध्यासका हेतु कहै तो प्रमाताका धर्मज्ञान होवै है; यातैं प्रमातृदोषतैं

अध्यासका हेतु होवै है और सादृश्यकूं अध्यासका हेतु कहै तो विषयदोष हुआ अध्यासका हेतु होवै है. जैसैं प्रमातृदोषरूप सादृश्यज्ञानकूं अध्यासहेतु कहैं; इंगालमें रूप अध्यासकी आपत्तिका परिहार होवै तैसैं विषयदोषरूप सादृश्यकूं अध्यासहेतु मानेभी उक्त आपत्तिका परिहार होवै है; यातैं सादृश्यज्ञानरूप धर्मिज्ञानकूं उक्त अध्यासका हेतु मानना निष्फल है.इस रीतिसैं उपाध्यायानुसारी कहै तो धर्मिज्ञानवादीका यह समाधान है:—दूरदेशतैं समुद्रके जलमें नील शिलाका भ्रम होवै सोभी विशेष ज्ञानसैं प्रतिबध्य अध्यास है. काहेतैं ? जलमें शुक्लरूप और जलत्वके ज्ञानसैं नीलशिला भ्रमका प्रतिबंध होवै है, और जलमें नील शिलाका सादृश्य नहीं है किंतु समुद्रजलमें नीलताका भ्रम होवै है, तहां नीलरूपका ज्ञानही भ्रमरूप सादृश्य ज्ञान है, यातैं भ्रमप्रमा साधारण सादृश्यज्ञान ही उक्त अध्यासका हेतु है, स्वरूपतैं सादृश्य हेतु नहीं. और जो उपाध्यायानुसारी इस रीतिसैं कहै'—इंगालादिकनमें रूप्यादिक अध्यासकी आपत्ति परिहारके अर्थ सादृश्यज्ञानकी सामग्रीको उक्त अध्यासकी कारणता माने हैं. अधिष्ठान अध्यस्तमें समान धर्मरूप जो सादृश्य है तासैं इंद्रियका स्वसंयुक्त तादात्म्यरूप संबंधही सादृश्यज्ञानकी सामग्री है. समुद्रजलमें नीलशिलाके अध्यासका हेतु भ्रमस्वरूप सादृश्यज्ञान है, ताकी सामग्री दोषवत् इंद्रियका जलमें संयोग है. इस रीतिसैं जो सादृश्यज्ञानकी सामग्री सोई उक्त अध्यासकी हेतु है. सादृश्यज्ञानकूं जो अध्यासका हेतु मानैं तोभी सादृश्य ज्ञानमें इंद्रियसंबंधकूं कारणता अवश्य माननी होवै है. यातैं सादृश्यज्ञानके कारणकूं ही अध्यासमें कारणता उचित है. तिन दोनोंके मध्य सादृश्यज्ञानका अंगीकार निष्फल है और शंखपीतादिक अध्यासमें इंद्रियसंबंधकोही कारणता है, तिस स्थानमें सादृश्यज्ञान संभवै नहीं, यातैं जहां सादृश्यज्ञानकी अपेक्षा है तहांभी सादृश्यज्ञानकी सामग्री अध्यासका कारण है, सादृश्यज्ञानकूं कारणता नहीं. सादृश्यज्ञानकी सामग्रीकूं अध्यासकी कारणता मानै तो सकल अध्यासमें एक इंद्रियसंयोगकूं कारणता सिद्ध होनेतैं लाघव है; और सादृश्यज्ञानकूं कारणता माने तो

विरूप अध्यासमें इंद्रियसंयोगको हेतुता माननी और सादृश्य अध्यासमें सादृश्यज्ञानको हेतुता माननेमें अध्यासके कारणद्वयकल्पनसैं गौरव है, यातैं जहां सादृश्यज्ञानको हेतु कहै तहांभी सादृश्यज्ञानकी सामग्रीरूप इंद्रियसंबंधही अध्यासका हेतु है.

इस रीतिसैं उपाध्यायकी शंकाका **धर्मिज्ञानवादी यह समाधान करे हैं**:—इंद्रियसंबंधसैं ज्ञानकी उत्पत्तिही देखी है. यातैं रजतादिक विषयकी उत्पत्ति इंद्रियसंबंधसैं संभवै नहीं; और सादृश्यज्ञानको अध्यासका हेतु मानें कारणद्वयकल्पन गौरव कह्या सो असंगत है. काहेतैं ? धर्मिज्ञानवादीको कारणद्वयके कल्पनमें जैसैं द्वित्वसंख्याका कल्पन है, तैसैं उपाध्यायके मतमें सादृश्यज्ञानकी सामग्रीकूं अध्यासका कारण कल्पनमें कारणका अधिक शरीरकल्पन है. सादृश्यज्ञान सामग्रीके स्वरूपमें अंतर्भूत सादृश्यज्ञान है, यातैं उपाध्यायके मतमें सादृश्यज्ञानसामग्री अधिक शरीरवती अध्यासकी हेतु माननी होवै है, इस रीतिसैं लाघव गौरव तो दोनों मतमें सम है. और ज्ञानकी सामग्रीतैं विषयकी उत्पत्तिका असंभवरूप युक्तिका विरोध उपाध्यायके मतमें अधिक दोष है, यातैं सादृश्यज्ञानही उक्त अध्यासका हेतु है. सादृश्य ज्ञानकी सामग्री हेतु नहीं.

१२३ उपाध्यायकरि सादृश्यज्ञानको अध्यासकी कारणताका खंडन.

इस रीतिसैं धर्मिज्ञानवादी सादृश्यज्ञानत्वरूपतैं सामान्यज्ञानको विशेषज्ञान प्रतिबध्य अध्यासमें कारणता कहै तो इसरीतिसैं उपाध्यायके मतमें समाधान है:—विरूपमेंभी अध्यास होनेतैं सकल अध्यासमें तो सादृश्यज्ञानको कारणता संभवै नहीं, किंतु इंगालादिकनमें रूप्यादिक अध्यासके परिहारवास्ते विशेषज्ञानसैं प्रतिबध्य अध्यासमेंही सादृश्यज्ञानकूं हेतुता माने हैं; तहांभी रूप्यादिक अध्यासमें जैसैं नीलपृष्ठ त्रिकोणतादिक विशेष धर्मका ज्ञान अध्यासका प्रतिबंधक है, तैसैं विशेष धर्मज्ञानकी सामग्रीभी अध्यासका प्रतिबंधक होनेतैं इंगालादिकनमें रूप्यादिक अध्यासकी आपत्ति होवै नहीं; यातैं

सादृश्यज्ञानकूं अध्यासकी हेतुता माननी निष्फल है; तथाहि:—जिस पदार्थका ज्ञान जामें प्रतिबंधक होवै तिस पदार्थके ज्ञानकी सामग्रीभी तिसका प्रतिबंधक होवै है यह नियम है. जैसें पर्वतमें वह्निकी अनुमितिका प्रतिबंधक वह्न्यभावका ज्ञान है ताकी सामग्री वह्न्यभाव व्याप्यका ज्ञान है. काहेतैं? व्याप्यके ज्ञानसैं व्यापकका ज्ञान होवै है. जैसें वह्निव्याप्य धूम है, ताके ज्ञानसैं व्यापक वह्निका ज्ञान होवै है. तैसें वह्न्यभावके व्याप्य जलादिक हैं, तिनके ज्ञानतैं वह्निके अभावका ज्ञान होवै है; यातैं वह्न्यभावके ज्ञानकी सामग्री वह्न्यभावके व्याप्यका ज्ञान है. वह्निकी अनुमितिका प्रतिबंधक वह्न्यभावका ज्ञान है, तिस वह्न्यभावज्ञानकी सामग्री वह्न्यभावके व्याप्यका ज्ञानभी वह्न्यनुमितिका प्रतिबंधक है; इस रीतिसैं प्रतिबंधक ज्ञानकी सामग्रीभी प्रतिबंधक होवै है: यद्यपि प्रतिबंधककी सामग्रीकूं प्रतिबंधक कहै तो दाहका प्रतिबंधक जो मणि ताकी सामग्रीकूं दाहकी प्रतिबंधकताका व्यभिचार है. तथाहि:—प्रतिबंधक ज्ञानकी सामग्रीकूं प्रतिबंधकता माननेमें व्यभिचार नहीं. इस रीतिसैं अध्यासका प्रतिबंधक जो विशेष ज्ञान ताकी सामग्रीभी अध्यासका प्रतिबंधक है, शुक्तिमैं रूप्य अध्यासका प्रतिबंधक नीलतारूप विशेष धर्मका ज्ञान है, ताकी सामग्री नीलभागव्यापी नेत्रसंयोग सोभी रूप्य अध्यासका प्रतिबंधक है. काहेतैं? नीलभागमें शुक्तिसैं नेत्रसंयोग हुए शुक्तिज्ञान नही होवै है, रूप्यभ्रम होवै नहीं. शुक्तिके नीलतैं भिन्न भाग जो चाकच्क्यदेश तासैं नेत्रका संयोग हुए रूप्यभ्रम होवै है. इस रीतिसैं नीलरूपवत् धर्मीका ज्ञान रूप्य अध्यासका प्रतिबंधक है और नीलरूपके आश्रयतैं नेत्रका संयोगसंबंध तैसें नीलरूपसैं नेत्रका संयुक्त तादात्म्यसंबंध ज्ञानकी सामग्री है, सोभी रूप्य अध्यासका प्रतिबंधक है. इंगालतैं नेत्रका संबंध होवै तब नीलरूप विशिष्टसैंही होवै है; यातैं इंगालतैं नेत्रका संयोग और ताके नीलरूपतैं संयुक्त तादात्म्य संबंध रूप प्रतिबंधक ज्ञानकी सामग्री होनेतैं इंगालमें रूप्य, अध्यासकी प्राप्तिही नहीं, ताके परिहारके अर्थ सादृश्यज्ञानकूं अध्यासकी हेतुता माननी निष्फल है.

१२४ धर्मिज्ञानवादी करि उपाध्यायके मतमें दोष और ताका परिहार.

और जो धर्मिज्ञानवादी उपाध्यायके मतमें यह दोष कहै:—पुंडरीकाकार कर्तितपटमें पुंडरीक भ्रम होवै है. विस्तृत पटमें पुंडरीक भ्रम होवै नहीं, यातैं सादृश्यज्ञान अध्यासका हेतु है.

ताकाभी अध्यास प्रतिबंधक विशेष ज्ञानकी सामग्रीकूं अध्यासका प्रतिबंधक माननेतैं समाधान होवै है. तथाहि:—विस्तारविशिष्ट पटसैं नेत्रका संबंध पटके विशेषज्ञानकी सामग्री है. जहां विस्तृतपटसैं नेत्रका संबंध होवै तहां पुंडरीक अध्यास होवै नहीं, जहां पुंडरीकाकार पटसैं नेत्रका संबंध होवै तहां पटके विशेष ज्ञानकी सामग्रीका अभाव होनेतैं पुंडरीकाध्यास होवै.

यद्यपि जहां समुद्रजलके समुदायमें नील शिलातलका अध्यास होवै तहां विशेष ज्ञानकी सामग्री है. काहेतैं? नेत्रसंयुक्त तादात्म्यसंबंध शुक्ल गुणस्वरूप विशेष ज्ञानका हेतु है और चाक्षुषज्ञानका हेतु जलसैं आलोक संयोगभी है, तैसैं जलराशित्वरूप विशेषका व्यंजक तरंगादिकनका प्रत्यक्षभी होवै है; इस रीतिसें समुद्रके जलसमुदायके विशेषज्ञानकी सामग्रीमें तीनि पदार्थ हैं. शुक्ल रूपसैं नेत्रसंयुक्त तादात्म्य १ आलोकसंयोग २ जलराशित्वका व्यंजक तरंगादि प्रत्यक्ष ३ इन तीनोंके हुए भी समुद्रके जलसमुदायमें नीलशिलातलका भ्रम होवै है, यातैं विशेष दर्शनकी सामग्रीकूं अध्यासकी प्रतिबंधकताका व्यभिचार है.

तथापि प्रतिबंधकरहित विशेष दर्शनकी सामग्री अध्यासका प्रतिबंधक है; प्रतिबंधकसहित विशेष दर्शनकी सामग्री अध्यासका प्रतिबंधक नहीं. जहां समुद्रके जलसमुदायमें नील शिलातलका अध्यास होवै तहां समुद्रजलमें नीलरूपका भ्रम होयके नील शिलाका अध्यास होवै है और नीलरूपका भ्रमज्ञान होनेतैं जलमें शुक्लरूपका ज्ञान होवै नहीं. यातैं जलका विशेष धर्म जो शुक्लरूप ताके ज्ञानका प्रतिबंधक नीलरूपका भ्रम है. तैसैं दूरत्व

दोषसैं जलराशित्वके व्यंजक तरंगादिकका प्रत्यक्ष होवै नहीं; यातैं जलराशित्वरूप विशेषके ज्ञानका प्रतिबंधक दूरत्व दोष है; यातैं प्रतिबंधकसहित विशेष ज्ञानकी सामग्री तो है परंतु प्रतिबंधकरहित विशेष ज्ञानकी सामग्रीही अध्यासकी विरोधिनी होनेतैं समुद्रजलसमुदायमें नीलशिलातलका अध्यास होवै है; ताका प्रतिबंध होवै नहीं. बहुत क्या कहैं! सकलकारणसैं स्वकार्यकी उत्पत्ति प्रतिबंधकरहितसैंही होवै है. प्रतिबंधक होनेतैं किसी कारणतैं कार्य होवै नहीं; यातैं प्रतिबंधकका अभावभी सकलकार्यका साधारणकारण होनेतैं और प्रतिबंधक होनेतैं नेत्रसंयोगादिक सकल असाधारणकारण सद्भावमैंभी विशेष ज्ञानकी सामग्री नहीं है, काहेतैं? सकल कारणसहकारणकूं सामग्री कहेहैं. जहां अनेक कारण होवै एक नहीं होवै तहां सामग्री होवै नहीं. इस रीतिसैं जलमें नीलताभ्रमकूं शुक्लरूपके ज्ञानमें और दूरत्वदोषकूं जलराशित्वज्ञानमें प्रतिबंधकता है, तिस प्रतिबंधके होनेतैं प्रतिबंधकाभावघटित विशेष ज्ञानकी सामग्रीका अभाव होनेतैं नीलशिलातल भ्रम संभवै है. इहां यह अर्थ ज्ञातव्य है:—समीपस्थ पुरुषके आलोकवाले देशमें नेत्रसंयोग हुए भी जलसमुदायमें नीलरूपका भ्रम होवै है. यातैं जलमें नीलरूपके भ्रमका विशेषज्ञानसैं वा ताकी सामग्रीसैं प्रतिबंध होवै नहीं, यातैं विशेषज्ञानसैं अप्रतिबध्य होनेतैं जलके शुक्लरूपतैं नेत्रका संयुक्त तादात्म्य संबंध हुए भी जलमें नीलरूपका भ्रम संभवै है. धर्मिज्ञानवादीके मतमें उक्त भ्रमही सामान्य ज्ञानत्वरूपतैं समुद्रजलमें नीलशिलातल अध्यासका हेतु है. उपाध्यायके मतमें दोषत्वरूपतैं विशेषज्ञानका प्रतिबंधक है वा प्रतिबंधकाभावरहित विशेषज्ञानकी सामग्रीके अभावसंपादनद्वारा शिलातल अध्यासका हेतु है. इस रीतिसैं उपाध्यायके मतमें सामान्यज्ञानरूप धर्मिज्ञानकूं अध्यासकी कारणता नहीं है तथापि इंगालादिकनमें रूप्याध्यासादिकनका अभाव संभवै है; यातैं अध्यासमें धर्मिज्ञानकी कार्यताके अभावतैं कार्यानुपपत्तिसैं धर्मिज्ञानरूप इदमाकार प्रमावृत्तिका कल्पन संभवै नहीं; इस रीतिसैं अनुभवानुसारतैं वा कार्यानुपपत्तिसैं इदमाकार वृत्ति मानै ताका निषेध किया.

१२५ उपाध्यायके मतमें धर्मिज्ञानवादीकी शंका और समाधान.

तथापि धर्मिज्ञानवादी यह कहैः—विषयतैं इंद्रियका संबंध ही अंतःकरणकी विषयाकार वृत्तिका हेतु है, शुक्ति आदिक विषयतैं नेत्रका संयोग हुए इदमाकारवृत्ति किस प्रकारसैं नहीं होवैगी? अन्यत्र व्यासंग होवै तो विषयतैं इंद्रियका संयोग हुएभी तिस विषयका ज्ञानरूप वृत्ति होवै नहीं. अन्यत्र व्यासंगरहितकूं विषयतैं इंद्रियसंयोग हुए तिस विषयाकार वृत्ति अवश्य होवै है. यातैं अन्यत्र व्यासंगरूप प्रतिबंधकके अभावसहित नेत्रसंयोगतैं रज्जुशुक्ति आदिकनकूं विषय करती हुई अंतःकरणकी इदमाकार वृत्ति होवै है; सो वृत्ति नेत्रादि प्रमाणजन्य होनेतैं और शुक्ति आदिकनकी अबाधित इदंतागोचर होनेतैं प्रमारूप होवै है. इस रीतिसैं कारणसद्भावतैं इदमाकार प्रमाका कल्पन मानै हैं.इस रीतिसैं उपाध्यायका समाधान हैः—यद्यपि नेत्रसंयोगादिकनतैं इदमाकार वृत्ति होवै है,परंतु दोषसहित नेत्रजन्य होवै है और "इदं रजतम्"इस रीतिसैं स्वकालमें उत्पन्न हुए मिथ्या रजतकूं विषय करती हुई होवै है, यातैं वह वृत्ति भ्रमरूप होवै है, प्रमा नहीं होवै है. उपाध्यायमतका यह निष्कर्ष हैः— दोषसहित इंद्रियके संबंधतैं विषयचेतननिष्ठ अविद्यामें कार्यकी अभिमुखतारूप क्षोभ होयके सर्प रजतादिरूप अविद्याका परिणाम होवै है. नेत्रसंयोगतैं उत्तर क्षणमें अविद्यामें क्षोभ होवै है, तिसतैं उत्तरक्षणमें अविद्याका सर्प रजतादिक परिणाम होवै है. जिस क्षणमें सर्परजतादिक अविद्याका परिणाम होवै है तिसी क्षणमें तिन सर्परजतादिकनकूं विषय करनेवाला " इदं रजतम् " इस रीतिसैं अंतःकरणकी वृत्तिरूपज्ञान होवै है; जिस दुष्ट नेत्रसंयोगतैं अविद्यामें क्षोभद्वारा सर्परजतादिकनकी उत्पत्ति होवै है तिसी संयोगतैं अंतःकरणके परिणामरूप वृत्तिज्ञानकी उत्पत्ति होवै है.

यद्यपि इंद्रियसंयोगतैं अव्यवहित उत्तरक्षणमें ज्ञानकी उत्पत्ति मानै हैं, और नेत्रसंयोगतैं एक क्षणके व्यवधानसैं सर्प रजतादिकनकी उत्पत्ति कही;

काहेतैं ? नेत्रसंयोगतैं उत्तर क्षणमें अविद्याका क्षोभ कह्या तिसतैं उत्तर क्षणमें सर्प रजतादिकनकी उत्पत्ति कही, यातैं अविद्याके क्षोभकालमें वृत्तिज्ञानकी उत्पत्तिं संभवै है. तिसतैं उत्तर क्षणमें भावि सर्प रजतादिकनकी ज्ञानकालमें उत्पत्ति कथनमें विरोध प्रतीत होवै है.

तथापि विरोध नहीं. काहेतैं ? कार्यके अभिमुख अविद्याकी अवस्थाकूं क्षोभ कहे हैं. जैसैं कार्यके अभिमुख होयके अविद्या स्वकार्य सर्परजतादिकनकूं रचै है, तैसैं अंतःकरणभी नेत्रसंयोगतैं ज्ञानरूप कार्यके अभिमुख होयके ज्ञानकूं रचै है, यातैं अविद्याका और अंतःकरणका स्वकार्याभिमुख अवस्थाका अव्यवहित उत्तर एक क्षण है, तिसतैं द्वितीय क्षणमें अविद्याका सर्परजतादि परिणाम होवै है, और तिसीक्षणमें अंतःकरणका ज्ञानरूप परिणाम होवै है और नेत्रसंयोगतैं अव्यवहित उत्तरक्षणमें जो ज्ञानकी उत्पत्ति कहे हैं सो क्षणकाल अति सूक्ष्म है; यातैं कार्याभिमुख अवस्थाका क्षण और कार्यकी उत्पत्तिका क्षण एकही काल है, इस अभिप्रायतैं कहे हैं. इस रीतिसैं रज्जुशुक्तिआदिकनतें दुष्ट इंद्रियके संयोगतैं अंतःकरणका परिणामरूप ज्ञान और विषयावच्छिन्न चेतनस्थ अविद्याका परिणाम सर्प रजतादिक एक कालमें होवै है. तिनका विषयविषयीभाव है, यातैं अंतःकरणका परिणामरूप वृत्तिज्ञानभी दुष्ट इंद्रिय संयोगजन्य है और मिथ्या पदार्थ गोचर है; यातैं भ्रम है प्रमा नहीं. धर्मिज्ञानवादीके मतमें अविद्या क्षोभका हेतु सामान्य ज्ञान है, यातैं धर्मिज्ञानवादीके मतमें इदमाकार वृत्तिसैं उत्तरकालमें क्षोभवती अविद्याका परिणाम सर्प रजतादिक होवै है और उत्तर काल भावि पदार्थ प्रत्यक्षज्ञानका विषय संभवै नहीं, यातैं इदमाकार वृत्तिका विषय सर्परजतादिक मिथ्या पदार्थ नहीं; किंतु शुक्तिरजतादिक होनेतैं इदमाकार वृत्ति प्रमा है. सर्परजतादिकनकूं विषय करनेवाली अविद्याका परिणामरूप भ्रमवृत्ति होवै है इस कारणतैं धर्मिज्ञानवादीके मतमें भ्रमवृत्ति ऐंद्रियक नहीं होवै है. साक्षात् इंद्रियके संबंधतैं होवै सो ऐंद्रियक कहिये है. भ्रमवृत्तिका अधिष्ठान जो इदमाकार वृत्ति ताकी उत्पत्तिद्वारा परंपरातैं इंद्रियसंबंधका

भ्रमवृत्तिमें उपयोग है साक्षात् नहीं. उपाध्यायके मतमें सर्परजतादिकनका उपादानभूत अविद्यामें क्षोभका निमित्त दोषवत् इंद्रियसंयोग है; यातैं एकही इंद्रियसंयोगतैं अविद्याका परिणाम सर्परजतादिक और तिनकूं विषय करनेवाली अंतःकरणका परिणाम इदमाकारवृत्ति एक कालमें होवै है. इस रीतिसैं उपाध्यायके मतमें इदमाकार वृत्ति भ्रमरूप तो होवै है; और साक्षात् इंद्रियसंबंधतैं उपजै है; यातैं ऐंद्रियक कहिये है. इंद्रिय-संबंधसैं जो इदमाकार वृत्ति होवै सो स्वकालमें उत्पन्न सर्परजतादिकनकूं विषय करती होवै है, यातैं "अयं सर्पः इदं रजतम्" इस रीतिसैं होवै है, केवल इदं पदार्थ गोचर होवै नहीं.

१२६ उपाध्यायके मतमें शंका और समाधान.

उपाध्यायके मतमें यह शंका होवे हैः—जिस पदार्थसैं इंद्रियका संबंध होवै तद्गोचरही वृत्ति होवै है यह नियम है. अन्यसैं इंद्रियके संबंधतैं अन्यगोचर वृत्ति होवै तो घटसैं इंद्रियके संबंधतैं पटगोचरभी वृत्ति हुई चाहिये. बहुत क्या कहैं! एक पदार्थसैं इंद्रियका संबंध हुए सकल पदार्थ गोचर वृत्तिकी आपत्तिसैं सकल पुरुष अनायासतैं सर्वज्ञ हुए चाहिये, यातैं अन्य पदार्थसैं इंद्रियके संबंधतैं अन्यगोचर वृत्ति संभवै नहीं; किंतु जासैं इंद्रियका संबंध होवै तद्गोचरही वृत्ति होवै है. और उपाध्यायमतमें रज्जु शुक्ति आदिकनसैं नेत्रसंयोगतैं उत्पन्न हुई वृत्ति सर्परजतादि गोचर मानी है सो संभवै नहीं.

या शंकाका यह समाधान हैः—स्वसंबंधतैं और स्वतादात्म्यवालेसैं इंद्रियसंबंधतैं स्वगोचरवृत्ति होवै है. वृत्तिका विषय स्वपदका अर्थ है. जिस पदार्थकूं विषय करनेवाली वृत्ति होवै तिस पदार्थसैं इंद्रियका संबंध अथवा तिस पदार्थके तादात्म्यवालेसैं इंद्रियका संबंध चाहिये. भ्रमवृत्तिके विषय सर्परजतादिक हैं. तहां वृत्तिके विषयसैं तो नेत्रका संबंध नहीं हुआ है परंतु सर्प रजतादिकनके तादात्म्यवाले जो रज्जु शुक्ति आदिक तिनसैं नेत्रका संबंध हुआ है. काहेतैं ? अध्यस्तका अधिष्ठानसैं तादात्म्यसंबंध होवै है; और

सर्प रजतादिकनकी अधिष्ठानताके अवच्छेदक होनेतैं रज्जु शुक्ति आदिकभी सर्परजतादिकनके अधिष्ठान कहिये है यातैं सर्परजतादिकनकी तादात्म्यवाले रज्जुशुक्ति आदिकनके संबंधतैं उत्पन्न हुई वृत्तिके सर्परजतादिकभी विषय संभवै हैं और घटमें पटका तादात्म्य नहीं; यातैं घटइंद्रियके संबंधतैं उत्पन्न हुई वृत्ति पटगोचर होवै नहीं; इस रीतिसैं एक पदार्थके संबंधतैं उत्पन्न हुई वृत्ति सकलपदार्थगोचर होवै नहीं; ब्रह्मसैं भिन्न किसी एक पदार्थमें सकलका तादात्म्य नहीं;और ब्रह्ममें सकल पदार्थनका तादात्म्य है, परंतु ब्रह्म असंग है, तासैं इंद्रियका संबंध संभवै नहीं, यातैं एक पदार्थसैं इंद्रियके संबंधतैं वृत्ति हुए सर्वज्ञताकी आपत्ति नहीं. धर्मिज्ञानवादीके मतमें सर्परजतादिक ज्ञेय और तिनके ज्ञान अविद्याके परिणाम हैं; उपाध्यायमतमें सर्परजतादिक तो अविद्याके परिणाम हैं और तिनका ज्ञान उक्त रीतिसैं अंतःकरणका परिणाम है, वह अंतःकरणका परिणाम इंद्रियसंबंधतैं होवै है, यातैं ऐंद्रियक है.इस रीतिसैं सर्परजतादिकनतैं नेत्रसंयोगके अभाव हुए भी रज्जुशुक्ति आदिकनतैं दुष्ट नेत्रसंयोगजन्य चाक्षुषभ्रमवृत्तिके विषय सर्प रजतादिक हैं यह उपाध्यायका मत है. "चक्षुषा सर्पं पश्यामि, चक्षुषा रजतं पश्यामि" या अनुव्यवसायतैंभी सर्प रजतादिक गोचर भ्रमरूप चाक्षुषवृत्तिही सिद्ध होवै है. रज्जुशुक्ति आदिक गोचर इदमाकार प्रमावृत्तिमें अभिव्यक्त साक्षी गोचरता सर्परजतादिकनकूं धर्मिज्ञानवादी माने हैं, ताके मतमें उक्त अनुव्यवसायका विरोध है.

१२७ धर्मिज्ञानवादीकरि अध्यासमें परंपरासैं नेत्रका उपयोग और उपाध्यायकरि शंखपीतताध्यासमें साक्षात् उपयोग.

जो इस रीतिसैं धर्मिज्ञानवादी कहैः—सर्प रजतादिकनका प्रकाश तो साक्षिरूप है, परंतु अभिव्यक्त साक्षीसैंही तिनका प्रकाश होवै है; यातैं साक्षीकी अभिव्यंजक इदमाकार वृत्ति नेत्रजन्य होनेतैं परंपरातैं सर्परजतादिकनके साक्षीरूप प्रकाशमेंभी नेत्रका उपयोग है; यातैं सर्परजतादिकनके ज्ञानमें चाक्षु

षत्व व्यवहार होवै हैं, यातैं धर्मिज्ञानवादीके मतमें सर्परजतादिकनकूं साक्षिभास्यता मानेंभी उक्त अनुव्यवसायका विरोध नहीं.

यह कथनभी असंगत है. काहेतैं ? उक्त स्थलमें तो परंपरासैं नेत्रका उपयोग होनेतैं चाक्षुषत्वव्यवहारका निर्वाह कह्या, तथापि शंखमें पीतभ्रम होवै तहां परंपरासैंभी नेत्रका उपयोग संभवै नहीं. काहेतैं? रूप विना केवल शंखमें तो नेत्रकी योग्यता नहीं, यातैं रूपविशिष्टमें कहै तो शंखके शुक्लरूपका ग्रहण होवै तो पीतताका अध्यास होवै नहीं; इस कारणतैं अध्यस्त पीतरूपविशिष्टमें नेत्रकी योग्यता माननी होवैगी, सो धर्मिज्ञानवादीके मतमें संभवै नहीं. काहेतैं ? अध्यस्त पदार्थमें ऐंद्रियकत्व नहीं यह धर्मिज्ञानवादीका मत है. या प्रकारतैं रूप विना केवल शंखज्ञानमें वा रूपविशिष्ट शंखज्ञानमें नेत्रका उपयोग संभवै नहीं. और उपाध्यायके मतमें शंखसे नेत्रका संबंधही पीतरूप अध्यासका हेतु है सो नेत्रका संबंध रूपरहित केवल शंखसैं वा शुक्लरूपविशिष्टसैं संभवै है.

१२८ धर्मिज्ञानवादीकरि शंखपीतताका अनध्यास और उपाध्यायकरि ताका अनुवाद अरु दोष.

या स्थानमेंभी धर्मिज्ञानवादी यह कहैः—जहां शंखमें पीतरूपका अध्यास होवै तहां सर्परजतादिकनकी नांई पीतिमाका स्वरूपसैं अध्यास नहीं है; किंतु जैसैं स्फटिकमें जपाकुसुमवृत्ति लौहित्यके संसर्गका अध्यास है तैसैं नेत्रवृत्ति पीतसंबंधी पीतिमाके संबंधका शंखमें अध्यास है. पीतपित्तके ज्ञान विना ताके संबंधका अध्यास संभवै नहीं, यातैं पीतपित्तके ज्ञानमें नेत्रका उपयोग होनेतैं शंखपीतके अध्यासमेंभी परंपरासैं नेत्रका उपयोग है; यातैं "पीतशंखं चक्षुषा पश्यामि" यह अनुव्यवसाय संभवै है और शंखमें पीतरूपका संबंध अनिर्वचनीय उपजै है. यातैं अन्यथाख्यातिवादकी आपत्तिभी नहीं.

इस रीतिसैं धर्मिज्ञानवादी कहै तो ताकी उक्तिमें यह पूछया चाहियेः— शंखमें पीतरूपके संसर्गाध्यासका हेतु पित्तपीतताका ज्ञान है सो नयन-

देशस्थही पित्तकी पीतताका प्रत्यक्षज्ञान होवै है अथवा शंखदेशमें पीतद्रव्य प्राप्त होवै है, ताकी पीतताका प्रत्यक्षज्ञान होवै है. जो प्रथम पक्ष कहै तो नयनदेशस्थ पीतद्रव्यसैं नयनस्थ अंजनकी नांई नेत्रसंयोगके असंभवतैं ताका चाक्षुष प्रत्यक्ष तो होवै नहीं; यातैं नयनस्थ पीतपित्तगोचर परोक्षवृत्ति होवैगी, तिस परोक्ष वृत्तिस्थ साक्षीतैं शंखकी पीतताका अपरोक्ष प्रकाश नहीं होवैगा. और किसी प्रकारसैं नयनस्थ पित्तपीतता गोचर चाक्षुषवृत्ति मानै तोभी तिस वृत्तिमें अभिव्यक्त साक्षीसैं नयनदेशस्थ पित्तपीततामात्रका संबंध है, शंखसैं और शंखमें पीतताके संबंधसैं साक्षीका संबंध नहीं, यातैं शंखका और शंखमें पीतिमाके संबंधका साक्षीसैं असंबंध होनेतैं प्रकाश नहीं हुआ चाहिये. तात्पर्य यह है:—जपाकुसुमसंबंधी रक्तताके अनिर्वचनीय संबंधकी स्फटिकमें उत्पत्ति होवै तहां तो रक्तता और स्फटिकता तथा रक्तताका संबंध ये तीनों पदार्थ पुरोदेशमें होनेतैं एक वृत्तिमें अभिव्यक्त साक्षीके विषय होवै हैं; और पीतशंख अध्यासमें पीतिमा नयनदेशमें है. और पीतिमाके संबंधसहित शंख पुरोदेशमें है, यातैं एक वृत्तिमें अभिव्यक्त साक्षीसैं तीनों प्रकाश संभवै नहीं, यातैं नयनदेशस्थ पित्तपीतिमाके ज्ञानमें नेत्रका उपयोग है, यह प्रथम पक्ष संभवै नहीं, यातैं शंखदेशमें प्राप्त हुए पित्तद्रव्यकी पीतताका अपरोक्ष ज्ञान नेत्रसैं होवै है, तिसतैं अनंतर शंखमें पीतताके अनिर्वचनीय संबंधकी उत्पत्ति होवै है, जैसैं कुसुंभमें संबंधी पटमें कुसुंभद्रव्यके रूपकी पटमें प्रतीति होवै है. तहां एक वृत्तिमें अभिव्यक्त साक्षीसैं कुसुंभ और रक्त रूप तथा तत्संबंधी पटका प्रकाश होवै है. और स्फटिकमें लौहित्यभ्रम होवै; तहांभी एक वृत्तिमें अभिव्यक्त साक्षीसैंही निखिलका प्रकाश होवै है; तैसैं शंखपीत भ्रमविषेभी नयनदेशतैं निःसृत पीतपित्तभी शंखदेशमें प्राप्त होवै है; ताके अनिर्वचनीय संबंधकी शंखमें उत्पत्ति होवै यह द्वितीय पक्ष मानै तो उक्त दोष नहीं. काहेतैं ? पीत पित्त और शंख एक देशस्थ होनेतैं पीतपित्तगोचर चाक्षुषवृत्तिमें अभिव्यक्त साक्षीसैं शंख और शंखमें पीतताके संसर्गका प्रकाश माननेमें कोई बाधक नहीं है. इस रीतिसैं शंखदेशमें प्राप्त जो

पीत पित्त ताकी पीतता अनिर्वचनीय संसर्गकी शंखमें उत्पत्ति होवै है. शंख-देशस्थ पीतपित्तका प्रत्यक्ष नेत्रजन्य होवै है, तैसैं शंखमें संसर्गाध्यास होवै है, यातैं परंपरातैं शंख पीत अध्यासमेंभी नेत्रका उपयोग होनेतैं चाक्षुषत्व-प्रतीति संभवै है; यह धर्मिज्ञानवादीकी उक्तिभी संभवै नहीं. काहेतैं ? शंख-देशमें पीतरूपवाले पित्तका निर्गमन होवै तो पीतताकी शंखमें प्रतीति सकल द्रष्टाकूं हुई चाहिये.

१२९ धर्मिज्ञानवादीकरिउक्तदोषका (दोवार) समाधान और उपाध्यायकरि (दोवार) दोष.

जो धर्मिज्ञानवादी इस रीतिसैं कहैः—दोषवाले नेत्रसैं पित्त निकसतेकूं जो पुरुष देखे है तिसीकूं शंखलिप्त पित्तपीतिमाकी प्रतीति होवै है. जिसके नेत्रमें पित्तदोष नहीं होवै तिसकूं नेत्रसैं निकसता पित्त दीखै नहीं; यातै पित्तपीतताकी शंखमें प्रतीति होवै नहीं. जैसैं भूमिमें उद्गमनकर्ता पक्षीकी आदि उद्गमन क्रियाकूं देखै और मध्यक्रियाकूं देखै तिसीकूं अतिऊर्ध्व देश-में पक्षीकी प्रतीति होवै है. अधोदेशमें उद्गमनकर्ताकूं देखै नहीं, ताकूं अति-ऊर्ध्वदेशगत पक्षीकी प्रतीति होवै नहीं; तैसैं जिसके नेत्रसैं पीतपित्त निकसे तिसीकूं निकसतेकी प्रतीति होनेतैं शंखदेशमें ताकी प्रतीति होवै है, अन्यकूं नहीं. इस दृष्टांतसै अन्य पुरुषनकूं पीतिमा प्रतीतिकी आपत्तिका परिहार कहैं तो संभवे नहीं. काहेतैं ? जाकूं उर्द्धदेशगत पक्षी दीखता होवै सो अन्य पुरुषकूं इस रीतिसैं उपदेश करै मेरे नेत्रके समीपकरिके अपने नेत्रसैं देखै और अंगुली निर्देश करै तो अन्यपुरुषकूंभी ऊर्ध्वदेशगत पक्षीकी प्रतीति होवै है. और शंखलिप्त पित्तकी पीतिमाकी प्रतीति किसी प्रका-रसैंभी अन्यकूं नहीं होनेतैं दृष्टांत विषम है, यातैं शंखदेशमें पित्तका निर्ग-मन संभवै नहीं.

धर्मिज्ञानवादी इस रीतिसैं कहैः—दोषवत् नेत्रसैं निकसै पीतपित्तके पीति-माका दोषवत् नेत्रसैंही अपरोक्ष होवै है, यातै अन्य पुरुषकूं शंखमें पीति-माका अध्यास होवै नहीं. इस रीतिसैं शंखदेशस्थ पित्तके पीतिमाका नेत्र-

इंद्रियसैं अपरोक्ष अनुभव होवै है और नेत्रसैं अनुभूत पीतिमाका अनिर्वचनीयसंबंध शंखमें उपजै है, ताकूं साक्षी प्रकाशे है. शंखमें पीतिमासंबंधकी प्रतीतिमें परंपरासैं नेत्रका उपयोग होनेतैं चाक्षुषत्व व्यवहारभी संभवै है.

इसप्रकारसैं धर्मिज्ञानवादीका समाधानभी अनुभूयमानारोपमेंही संभवै है, स्मर्यमाणारोपमें संभवै नहीं. अन्यत्र अनुभूतकी अन्यत्र प्रतीतिकूं अनुभूयमानारोप कहै हैं. जैसैं शंखदेशस्थ नेत्रके पित्तमें अनुभूत जो पीतिमाका संबंध ताकी शंखमें प्रतीति होवै है यह अनुभूयमानका आरोप है. इस रीतिसैं सन्निहित पदार्थके धर्मकी अन्यमें प्रतीति होवै तहां सारे अनुभूयमानारोप है; प्रत्यक्ष अनुभवके विषयका आरोप होवै सो अनुभूयमानारोप कहिये. सन्निहित उपाधिमेंही प्रत्यक्ष अनुभवकी विषयता होवै है. जलमें नीलताका अध्यास होवै सो स्मर्यमाणआरोप है. स्मृतिके विषयकूं स्मर्यमाण कहै हैं. जलाधारभूमि नील होवै, अथवा नीलमृत्तिकामिश्रितजल होवै तहां तो जलमें नीलताअध्यास अनुभूयमानारोप संभवै है, परंतु धवल भूमिस्थ निर्मल जलमें और आकाशमें नीलताका स्मर्यमाणारोप है. तिस स्थानमें नीलरूप संसर्गी अधिष्ठानगोचर चाक्षुषवृत्तिका अंगीकार नहीं होनेतैं परंपरातैंभी नेत्रका उपयोग संभवै नहीं; यातैं उक्त अध्यासमें चाक्षुषत्वप्रतीति धर्मिज्ञानवादीके मतमें संभवै नहीं. काहेतैं ? अध्यस्त पदार्थकूं धर्मिज्ञानवादीके मतमें साक्षीभास्य मानै हैं; और उपाध्यायके मतमें अध्यस्त पदार्थकी ऐंद्रियवृत्ति होवै है; यातैं उक्त अध्यासमेंभी चाक्षुषत्व प्रतीति संभवै है. और स्तनकें मधुरदुग्धमें जहां बालककूं तिक्त रसका भ्रम होवै तिस स्थानमें मधुरदुग्ध अधिष्ठान है. द्रव्य ग्रहणमें रसनइंद्रियकी योग्यताके अभावसैं मधुरदुग्धके ज्ञानमें तो रसनइंद्रियका उपयोग संभवै नहीं. और धर्मिज्ञानवादमें अध्यस्तगोचर ऐंद्रियक वृत्ति होवै नहीं, यातैं मधुरदुग्धमें तिक्तताभ्रमकूं रासनत्व नहीं कह्या चाहिये. और उपाध्यायके मतमें तो तिक्ततागोचर रासन वृत्ति होवै है, यातैं तिक्तताभ्रमविषे रासनत्व व्यवहार संभवै है.

१३० मधुरदुग्धमें तिक्तरसाध्यासकी रसनागोचरतापूर्वक उपाध्यायकें मतका निष्कर्ष.

परंतु इतना भेद है:—सर्परजतादिक अध्यासमें अधिष्ठानसैं नेत्रके संबंधतैं अधिष्ठानगोचर चाक्षुषवृत्ति होवै है. तिस वृत्तिके समकाल उपजे सर्परजतादिकभी ताके विषय होवै हैं. मधुर दुग्धमें तिक्त रसका अध्यास होवै तहां दुग्धाकार रासनवृत्ति संभवै नहीं; किंतु शरीरव्यापि त्वक् है, यातैं त्वाचवृत्ति मधुर दुग्धाकार होवै है. तासैं मधुर दुग्धका प्रकाश होवै है. जिस कालमें मधुरदुग्धसैं संयोग होवै तिसीकालमें दोषदूषित रसनाका दुग्धसें संयोग होवै है. रसनसंयोगतैं दुग्धावच्छिन्न चेतनस्थ अविद्यामें क्षोभ होयके तिक्त रसाकार परिणाम अविद्याका और तिक्त रसगोचर रासनवृत्ति एक कालमें होवै है. इस रीतिसैं मधुरदुग्धमें तिक्तरसाध्यास होवै तहां मधुरद्रव्यका प्रकाश तो त्वाचवृत्त्यवच्छिन्नचेतनसैं होवै है. और तिक्त रसाकार रासनवृत्ति होवै है; यातैं रासनवृत्त्यच्छिन्नचेतनसैं तिक्तरसका प्रकाश होवै है, त्वाचवृत्ति और रासनवृत्ति दुग्धदेशमें जावै है, यातै एकदेशस्थ होनेतैं उभयवृत्त्युपहितचेतनका भेद नहीं; यातैं अधिष्ठान अध्यस्तकूं एक ज्ञानकी विषयताभी संभवै है, तिक्तरसगोचर रासन वृत्ति नहीं मानै, किंतु त्वाचवृत्तिमें अभिव्यक्त चेतनसैंही तिक्त रसका प्रकाश मानै तो तिक्त रसके ज्ञानमें रासनत्वप्रतीति नहीं होवैगी. धर्मिज्ञानवादीके मतमेंसर्परजतादिक अध्यासमें तो अध्यासकारण अधिष्ठानके ज्ञानमें नेत्रका उपयोग होनेतैं परंपरातैं अध्यस्तज्ञानकूंभी नेत्रजन्यता है. और तिक्त रसके अध्यासमें तो अधिष्ठान मधुर दुग्ध है. सो द्रव्यरूप होनेतैं ताके ज्ञानमे भी रसनइंद्रियके उपयोगके अभावतैं परंपरातैं तिक्तरसज्ञानकूं रसनजन्यता संभवैं नहीं, यातैं तिक्तरसाध्यासमें रासनत्वप्रतीतिके निर्वाहवास्ते धर्मिज्ञानवादीकूंभी रासनवृत्ति अवश्य माननी चाहिये; तैसैं सर्परजतादिक अध्यासमेंभी अध्यस्तगोचर ऐंद्रियक वृत्तिही होवै है; तासैं भिन्न अध्यस्तगोचर अविद्याका परिणाम अनिर्वचनीय वृत्तिकल्पना निष्फल है. या मतमें अविद्याका परिणाम केवल विषयाकारही होवै है.

तिस अनिर्वचनीय विषयकी ज्ञानरूप वृत्ति अंतःकरणकी होवै है. दुष्ट इंद्रियके संयोगतैं यह वृत्ति होवै है, यातैं भ्रमरूप होवै है. और अधिष्ठानतैं दुष्ट इंद्रियका संबंधही अविद्यामें क्षोभद्वारा अध्यासका हेतु है, अधिष्ठानका सामान्यज्ञान अध्यासका हेतु नहीं.

१३१ आचार्योक्ति और युक्तिसैं उपाध्यायमतकी विरुद्धता और धर्मिज्ञानवादिके मतमें उक्त दोषका समाधान.

यह कवितार्किकचक्रवर्ति नृसिंहभट्टोपाध्यायका मत है सो सकल प्राचीन आचार्यनकी उक्तिसैं विरुद्ध है. तथाहिः—अधिष्ठानका सामान्यज्ञानदोष पूर्वानुभवजन्य संस्कारसैं अध्यास होवै है यह प्राचीनमत है. और उपाध्यायके मतमें अधिष्ठानसैं इंद्रियका संयोग अध्यासका हेतु मान्या है, अधिष्ठानका सामान्यज्ञान नहीं मान्या; यातैं प्राचीनवचनतैं विरुद्ध है. और अर्थाध्यास ज्ञानाध्यास भेदसैं दो प्रकारका अध्यास है, यह सकल अद्वैतवादी मानै हैं. उपाध्यायके मतमें ज्ञानाध्यास अप्रसिद्ध है. काहेतैं ? अनिर्वचनीय सर्परजतादिगोचर अविद्याके परिणामकूं ज्ञानाध्यास कहे हैं. उपाध्यायके मतमें ऐंद्रियकभ्रमवृत्तिकूं मानिके तिसका लोप है. इस रीतिसैं प्राचीनवचनसैं विरुद्ध है. तैसैं वक्ष्यमाण रीतिसैं युक्तिविरुद्ध हैः—अधिष्ठान इंद्रियके संबंधकूं सकल अध्यासमें कारण मानै तो अहंकारादिक अध्यासकी अनुपपत्ति होवैगी. काहेतैं ? अहंकारादिकनका अधिष्ठान ब्रह्म है अथवा साक्षीचेतन है सो नीरूप है, तासैं ज्ञान हेतु इंद्रियसंबंधका संभव नहीं. और प्रातिभासिक अध्यासमेंही इंद्रिय संबंधकूं कारणता मानै तोभी अहंकारादिकनका अध्यासभी प्रातिभासिक है. या मतमें इंद्रियसंबंधके अभावतैं अहंकारादिक अध्यासकी अनुपपत्तिही होवेगी. अहंकारादिक अध्यास व्यावहारिक होनेतैं प्रातिभासिकसैं विलक्षण है, या मतमेंभी स्वप्नाध्यासकी अनुपपत्ति होवैगी. काहेतैं ? सर्वमतमें स्वप्नाध्यास प्रातिभासिक है; और ताका अधिष्ठान साक्षीचेतन है; इंद्रियसंबंधके असंभवतैं प्रातिभासिक अध्यासमेंभी अधिष्ठानसैं

इंद्रियसंबंधकूं कारणता संभवै नहीं. इस रीतिसैं उपाध्यायमत समीचीन नहीं. और धर्मिज्ञान वादमें जो उपाध्यायने दोष कह्या है:—अधिष्ठानज्ञानमें जो इंद्रियसंबंधका उपयोग मानें तो शंखमें पीतिमाध्यास होवै तहां रूप विना केवल शंखका चाक्षुष मानै तो नीरूप वायुका प्रत्यक्ष हुआ चाहिये. और शुक्लरूपविशिष्ट शंखका चाक्षुष मानै तो पीतरूपज्ञानका विरोधि शुक्लरूपज्ञानके होनेतैं पीतरूपका अध्यास नहीं होवैगा. यह कथनभी उपाध्यायका अविवेकसैं है. काहेतैं ? रूपवाले द्रव्यका चाक्षुषप्रत्यक्ष होवै है यह नियम है, कहूं दोषबलतैं रूपभागकूं त्यागिके केवल आश्रयका चाक्षुष होवै है; और निर्दोषनयनतैं रूपविशिष्टका चाक्षुष होवै है; परंतु नीरूपका चाक्षुष होवै नहीं, यातैं नीरूपवायुके चाक्षुषज्ञानकी आपत्ति नहीं, और रूपवाले शंखका रूपभागकूं त्यागिके दुष्ट नेत्रसैं चाक्षुष होवै है, अथवा शुक्लरूपविशिष्ट शंखका चाक्षुष होवै है; तथापि शुक्लरूपमें शुक्लत्वज्ञानका प्रतिबंधक नयनमें दोष है; यातैं पीतरूपका अध्यासभी संभवै है. काहेतैं ? शुक्लत्वविशिष्ट शुक्लरूपका ज्ञानही पीतरूपके ज्ञानका विरोधी है. केवल शुक्लरूपव्यक्तिका ज्ञान रूपांतर ज्ञानका विरोधी नहीं. यह वार्ता प्रतिबध्यप्रतिबंधकभावनिर्णायक ग्रन्थनमें प्रसिद्ध है. इस रीतिसैं शंखमें पीतता अध्यासका हेतु शंखरूप अधिष्ठानका इदमाकार चाक्षुषज्ञान संभवै है, सो केवल शंखगोचर होवै है, अथवा दोषबलतैं शुक्लत्वकूं त्यागिके शुक्लरूपविशिष्ट शंखगोचर होवै है; और परंपरातैं पीतताज्ञानमें नेत्रका उपयोग होनेतैं पीतता अध्यासमें चाक्षुषत्वप्रतीतिका निर्वाहभी धर्मिज्ञानवादमें होवै है. और मधुर दुग्धमें तिक्त रस अध्यास होवै; तहां धर्मिज्ञानवादमेंभी रासनवृत्तिकू आवश्यकता कही. काहेतैं ? तिक्त रसका अधिष्ठान जो मधुरदुग्ध तिसका सामान्य ज्ञानरूप वृत्ति रासन तो संभवै नहीं. किंतु त्वाच वृत्तिही अधिष्ठानगोचर होवै है, तिस त्वाच वृत्तिमें अभिव्यक्त साक्षीसैं तिक्तरसका प्रकाश मानै तो तिक्तरसकी प्रतीतिमें रासनत्व व्यवहार संभवै नहीं, यातैं धर्मिज्ञानवादीकूं तिक्तरसकी भ्रमरूपभी प्रतीति रासनजन्यही माननी होवै है, तैसैं

रजतादिक भ्रमज्ञानभी इंद्रियजन्य है. इस रीतिसैं उपाध्यायका वचन मधुरदुग्धकूं अधिष्ठानता मानें तौ संगत होवै; सो मधुररसवाला दुग्धरूप द्रव्य अधिष्ठान नहीं है; किंतु तिक्तरस अध्यासका अधिष्ठान दुग्धका मधुर रस है, ताके ज्ञानमें रसनका उपयोग होनेतैं तिक्तरसकी प्रतीतिमें रासनत्वकी प्रतीति और व्यवहार है, यद्यपि मधुररसका ज्ञान हुए तिसतैं विरोधी तिक्त रसका अध्यास संभवै नहीं, तथापि मधुरत्वधर्मविशिष्ट मधुररसका ज्ञानही तिक्तरसज्ञानका विरोधी है. मधुरत्व धर्मकूं छोड़िके केवल मधुररस व्यक्तिका सामान्यज्ञान तिक्तरस अध्यासका विरोधी नहीं. जैसें शुक्तित्वरूपतैं शुक्तिका ज्ञान रजतअध्यासका विरोधी हैं; तोभी शुक्तिका सामान्यज्ञान रजतअध्यासका विरोधी नहीं; उलटा शुक्तिका सामान्यज्ञान रजत अध्यासका हेतु है. तैसैं मधुररसका सामान्यज्ञानभी तिक्तरस अध्यासका हेतु है. इस रीतिसैं धर्मिज्ञानवादमेंभी तिक्त रसका अधिष्ठान जो मधुररस ताका रसनतैं सामान्यज्ञान हुए तिक्तरसका अध्यास होनेतैं परंपरातैं रसनइंद्रियका तिक्तरसाध्यासमें उपयोग है, यातैं तिक्त रसकी प्रतीतिमें रासनत्व व्यवहार संभवै है.

१३२ तिक्तरसाध्यासमें किसीकी अन्य उक्ति और खंडन.

और मधुरदुग्धकूं ही तिक्तरसका अधिष्ठान मानै तोभी तिक्त रसाध्यासमें रसनकी अपेक्षा नहीं; किंतु दुग्धगोचर त्वाचवृत्ति होवै है. सो त्वाचवृत्ति तिक्तरसाकार यद्यपि नहीं है, तथापि त्वाचवृत्तिमें अभिव्यक्त साक्षी निरावृत है ताके संबंधसैं तिक्तरसका प्रकाश होवै है. और तिक्तरसकी प्रतीतिमें रसनका व्यापार भासै नहीं; यातैं तिक्तरसाध्यासमें रासनत्व व्यवहार अप्रामाणिक है. या पक्षमें तिक्त रसाध्यास केवल अर्थाध्यास है, तिक्तरसाकार अविद्याकी वृत्ति निष्फलतासैं मानी नहीं, इस रीतिसैं कोई ग्रंथकार मधुर दुग्धकूं तिक्त रसाध्यासका अधिष्ठान मानिके मधुरदुग्धगोचर त्वाचवृत्तिमें अभिव्यक्त साक्षीसैं तिक्तरसका प्रकाश मानै हैं; और तिक्त रसगोचर वृत्तिका अभाव मानै हैं.

यह लेख असंगत है. काहेतैं ? स्वाकारवृत्तिमें अभिव्यक्त चेतनसैं विषयका प्रकाश होवै है. अन्याकार वृत्तिमें अभिव्यक्त चेतनसैं स्वसंबंधी विषयका प्रकाश मानै तो रूपवत् घटाकारवृत्तिमें अभिव्यक्त चेतनसैं घटगत परिमाण संख्यादिकनकी प्रतीति हुई चाहिये. और " रूपवान् घटः " ऐसा ज्ञान हुएभी घटके स्थूलतादिकनका प्रकाश होवै नहीं. मधुरदुग्धाकार त्वाचवृत्तिमें अभिव्यक्त चेतनसैं तिक्तरसका प्रकाश संभवै नहीं, परंतु दोषका अद्भुत महिमा अंगीकृत है, यातैं दोषदुष्ट इंद्रियजन्य वृत्तिमें अभिव्यक्त साक्षीसैं वृत्तिके आगोचरकाभी कहूं चेतनसंबंधीका प्रकाश मानै तो यथाकथंचित् उक्त लेखभी संभवै है. और रूपवत् घटाकार वृत्ति दोषजन्य नहीं, यातैं तिस वृत्तिके अगोचर परिमाणादिकनका तिस वृत्तिमें अभिव्यक्तिका चेतनसैं प्रकाश होवै नहीं.

१३३ मुख्यसिद्धांतका कथन.

और मुख्यसिद्धांत तो यह है:—जैसैं स्वप्न अवस्थामें सारे पदार्थ साक्षीभास्य हैं तिनमें चाक्षुषत्व रासनत्वादिक प्रतीति होवै है, तिस रीतिसैं सर्परजतादिक अनिर्वचनीय पदार्थ साक्षीभास्य हैं. तिनमें चाक्षुषत्वादिक प्रतीति भ्रम है, केवल सर्परजतादिकही साक्षीभास्य नहीं हैं; किंतु सारे अनात्मपदार्थ साक्षीभास्य हैं, स्वप्नकी नांई. घटादिक प्रमेय और नेत्रादिक प्रमाणसै नेत्रादिकनका घटादिकनसैं संबंध एक कालमें उपजै है; यातैं तिनका परस्पर प्रमाण प्रमेयभाव संभवै नहीं, और प्रतीत होवै है; यातैं अनिर्वचनीय है, यह सिद्धांत है. व्यावहारिक प्रपंचकूं मिथ्यात्वसिद्धिका उपयोगि साक्षीभास्यताके साधक मिथ्या सर्परजतादिक दृष्टांत हैं; तिनकूं ऐंद्रियकत्व मानें तो सिद्धातका साधक दृष्टांत प्रतिकूल होवै है, यातैं उपाध्यायका मत सिद्धांतविरोधी है.

अध्यस्त पदार्थकूं ऐंद्रियकत्व नहीं मानें तो आकाशमें नीलताध्यासकी अनुपपत्ति है, धर्मिज्ञानवादमें यह दोष निराकरणीय है. काहेतैं ? आकाश नीरूप है यातैं आकाशका नेत्रसैं सामान्यज्ञान संभवै नहीं, जो सामान्यज्ञान

संभवै तो नीलताध्यास होवै और उपाध्यायमतमें तो आकाशतैं नेत्रका संयोग हुए आकाशावच्छिन्न चेतनस्थ अविद्यामें क्षोभद्वारा नीलरूपकी उत्पत्ति और नीलरूपविशिष्ट आकाशगोचर नेत्रसंयोगजन्य अंतःकरणकी चाक्षुषवृत्ति एककालमें होवै है, यातैं आकाशमें नीलताध्यासका संभव है.

१३४ धर्मिज्ञानवादमें आकाशमें नीलताध्यासका असंभवदोष और ताका परिहार.

तथापि धर्मिज्ञानवादमेंभी इस अध्यासकी अनुपपत्ति नहीं. काहेतैं? यद्यपि आकाश नीरूप है तथापि आलोक द्रव्य रूपवत् है, यातैं आलोकसैं दुष्ट नेत्रका संयोग हुए और आलोकगोचर आलोकव्यापि आकाशाकार प्रमारूप सामान्यज्ञान होवै है, तिसतैं अनंतर आकाशावच्छिन्न चेतनस्थ अविद्यामें क्षोभद्वारा नीलरूपाकार अविद्याका परिणाम होवै है, तैसैं इदमाकारवृत्त्यवच्छिन्नचेतनस्थ अविद्याका नीलरूपगोचर ज्ञानाकार परिणाम होवै है; आकाशगोचर प्रमावृत्ति और नीलरूपगोचर अविद्यावृत्ति एक देशमें होनेतैं उभयवृत्ति उपहित साक्षी एक है; यातैं अधिष्ठान अध्यस्तका एक साक्षीसैं प्रकाश होवै है. यद्यपि विशेषरूपतैं अधिष्ठानका ज्ञान हुए अध्यास संभवै नहीं, और आकाशाकार प्रमावृत्तिसैं अनंतर अध्यास कह्या तहां आकाशत्वरूपतैं आकाशका ज्ञान अध्यायका हेतु कहनेसैं विशेषरूपका ज्ञान अध्यास हेतु प्रतीत होवै है सो असंगत है; तथापि आकाशत्वरूपतैं आकाशका ज्ञानभी सामान्यज्ञान है विशेष ज्ञान नहीं "नीरूपमाकाशम्" इस रीतिसैं नीरूपत्वविशिष्ट आकाशका ज्ञानही विशेष ज्ञान है. काहेतैं? अध्यासकालमें अप्रतीत अंशकूं विशेष अंश कहै हैं, ताहीकूं अधिष्ठान कहै हैं और अध्यासकालमें प्रतीत अंशकूं सामान्यअंश कहै हैं ताकूं आधार कहै हैं. "आकाशं नीलम्" इस रीतिसैं भ्रांतिकालमें आकाशत्वरूपतैं आकाशकी प्रतीति होवै है; और "नीरूपम् आकाशम्" इस रीतिसैं नीरूपत्वधर्मतैं आकाशकी प्रतीति भ्रांतिकालमें होवै नहीं; यातैं आकाशत्वरूपतैं आकाशका ज्ञानभी सामान्यज्ञान होनेतैं तिसतैं अनंतर नीलरूपका अध्यास संभवै नहीं.

१३५ सर्पादिभ्रमस्थलमें चार मत और चतुर्थ मतमेंदोष.

इस रीतिसैं सर्परजतादिक भ्रम होवै तहां तीनि मत कहे:—एक तो उपाध्यायका मत कह्या, ताके मतमें एकही ज्ञान दुष्टइंद्रियविषयके संबंधतैं अंतःकरणका परिणामरूप होवै है; यह ज्ञान अधिष्ठानके सामान्य अंशकूं और अध्यस्तकूं विषय करता भ्रमरूप है, तासैं पृथक् अधिष्ठानके सामान्य अंशमात्रगोचर प्रमाज्ञानका तिसके मतमें अंगीकार नहीं. और धर्मिज्ञानवादमें दो मत कहे. एक मतमें तो:—इदमाकार सामान्यज्ञान प्रमारूपतैं अनंतर "अयं सर्पः। इदं रजतम्" इस रीतिसैं भ्रमज्ञान होवै है सो अविद्याका परिणामरूप होवै है,और अधिष्ठानके सामान्य अंशकूं विषय करता हुआ अध्यस्तकूं विषय करै है, यातैं इदमाकार और अध्यस्ताकार होवै है, और धर्मिज्ञानवादमें दूसरा मत यह है:—इदमाकार सामान्यज्ञान अध्यास हेतु प्रमारूप होवै है; तासैं उत्तर क्षणमें सर्परजतादिगोचर अविद्याका परिणाम ज्ञान होवै है सो भ्रमरूप होवै है, यातैं अधिष्ठानगोचर होवै नहीं; किंतु केवल अध्यस्तगोचर होवै है. तिस भ्रमज्ञानमें इदं पदार्थ विषयकत्व नहीं है, तथापि तिसके अधिष्ठान ज्ञानमें इदंपदार्थ विषयकत्व है. ताका अनिर्वचनीयसंबंध भ्रमज्ञानमें उपजै है. इस रीतिसैं केवल अध्यस्त पदार्थाकार भ्रमज्ञान होवै है यह मतही समीचीन है.

और धर्मिज्ञानवादमेंही कोई ग्रंथकार तीसरा पक्ष मानै हैं. तथाहि:—अध्यासका हेतु अधिष्ठानका सामान्यज्ञान होवै है, तासैं भिन्न सर्परजतादिगोचर अविद्याकी वृत्ति निष्फल है. काहेतैं ? अधिष्ठानगोचर अंतःकरणकी इदमाकार वृत्ति जो अध्यासका हेतु मानी है, तिस वृत्तिमें अभिव्यक्त चेतनसैं ही सर्परजतादिकनका प्रकाश होवै है; यातै सर्परजतादिक ज्ञेयरूप तो अविद्याका परिणाम होवै है और ज्ञानरूपपरिणाम अविद्याका होवै नहीं; या मतमें भी उपाध्यायके मतकी नाई शुक्ति रजतादिकनमें केवल अर्थाध्यास है, ज्ञानाध्यासका अंगीकार नहीं. यह मत भी उपाध्यायके मतकी नाई सकल आर्यवचननतैं और युक्तिसैं विरुद्ध है. काहेतैं ? या मतमें भ्रमज्ञानका

लोप होवै है. इदमाकार जो ज्ञान होवै सो अधिष्ठानसें इंद्रियके संयोगतैं अन्तःकरणकी वृत्तिरूप होवै है और अधिष्ठानगोचर होवै है, यातैं प्रमा होवै है. तासै भिन्नज्ञान मानै नहीं, यातैं भ्रमज्ञान अप्रसिद्ध होवेगा. जो ऐसैं कहैः— अधिष्ठानगोचर इदमाकार ज्ञानही सर्परजतादिकनकूं विषय करैहै, यातैं बाधित पदार्थगोचर होनेतैं भ्रम कहिये है, तथापि या मतमें तिसी ज्ञानकूं अबाधित अधिष्ठानगोचरता होनेतैं प्रमात्वभी हुआ चाहिये;यातैं एक ज्ञानमें भ्रमत्वप्रमात्वका संकर होवैगा. यद्यपि सत्यरजतगोचर और शुक्तिरजतगोचर एक ज्ञान तहां भ्रमत्वप्रमात्वका संकर प्रसिद्ध है; यातैं अवच्छेदक भेदतैं जैसैं एक पदार्थमें संयोग और संयोगका अभाव विरोधी पदार्थ रहै है तैसैं एक ज्ञानमेंभी अवच्छेदक भेदतैं भ्रमत्वप्रमात्वविरोधी धर्म संभवै है. दृष्टांतमें वृक्षवृत्ति संयोगाभावका अवच्छेदक मूलदेश है और संयोगका अवच्छेदक शाखा देश है, तैसैं ज्ञानमेंभी बाधित विषयकत्व तो भ्रमत्वका अवच्छेदक धर्म है और अबाधित विषयकत्व प्रमात्वका अवच्छेदक धर्म है, यातैं एकही ज्ञानमें बाधित विषयकत्वावच्छिन्न भ्रमत्व है; और अबाधित विषयकत्वावच्छिन्न प्रमात्व होनेतैं भ्रमत्व प्रमात्वका संकर दोष नहीं; तथापि भ्रमत्वप्रमात्वकी नांई बाधितविषयकत्व अबाधित विषयकत्वभी परस्पर भावाभावरूप होनेतैं विरोधी हैं. तिनकाभी अवच्छेदक भेद विना एक ज्ञानमें समावेश संभवै नहीं और तिनके अन्य अवच्छेदक उपलब्ध होवे नहीं और किसी अन्यकी कल्पनाकी कल्पना करै तो परस्पर विरोधिही कोई अवच्छेदक मानने होवैंगे, यातैं तिनके अन्य अवच्छेदक माननेमें अनवस्था दोष होवैगा. इस रीतिसैं एक ज्ञानमें भ्रमत्व प्रमात्वका संशय संभवै नहीं और सत्यरजतगोचर शुक्ति रजतगोचर एक ज्ञानमें भ्रमत्वप्रमात्वका संकर कह्या सोभी सिद्धांतके अज्ञानसैं कह्या है. काहेतैं ? सत्यरजतगोचर अंतःकरणकी वृत्ति होवै है, शुक्तिरजतगोचर अविद्याकी वृत्ति होवै है, यातैं सत्य रजतगोचर और शुक्तिरजतगोचर अविद्याकी वृत्ति होवै है. दोनों ज्ञान समान कालमें होवै हैं और सजातीयगोचर होवै हैं, यातैं तिनका परस्पर भेद प्रतीत

होवै नहीं; किंतु तिनमें एकत्वभ्रम होवै है, यातैं भ्रमत्व प्रमात्वका संकर अदृष्टगोचर होनेतैं इदमाकार प्रमावृत्तिमें अभिव्यक्त साक्षीसैं अध्यस्तका प्रकाश संभवै नहीं; और अधिष्ठानागोचर वृत्तिमें अभिव्यक्त साक्षीसैंही अध्यस्तका प्रकाश मानिके अध्यस्त गोचर अविद्याकी वृत्ति नहीं मानैं तो अध्यस्त पदार्थकी स्मृति नहीं हुई चाहिये. काहेतैं ? अनुभवके नाशतैं संस्कार होवै है, अन्यगोचर अनुभवतैं अन्यगोचर संस्कार स्मृति होवै तो पटगोचर अनुभवतैं घटगोचर संस्कार स्मृति हुई चाहिये; यातैं समानगोचर अनुभवतैं संस्कारद्वारा स्मृतिकी उत्पत्ति होवै है, यह नियम होनेतैं अधिष्ठानगोचरवृत्तिरूप अनुभवतैं अध्यस्तगोचर संस्कारद्वारा स्मृतिकी उत्पत्ति संभवे नहीं. और अध्यस्तगोचर साक्षीरूप अनुभवतैं संस्काराद्वारा स्मृतिकी उत्पत्ति कहै तो सर्वथा असंगत है. काहेतैं ? अनुभवके नाशतैं संस्कार होवै है और साक्षी नित्य है, ताकूं संस्कारजनकता संभवै नहीं. जो ऐसैं कहैः—जा वृत्तिसैं चेतनकी अभिव्यक्तिद्वारा जिस पदार्थका प्रकाश होवै ता वृत्तिसैं तिस पदार्थगोचर संस्कारद्वारा स्मृति होवै है; पटगोचर वृत्तिमें अभिव्यक्त चेतनसैं घटका प्रकाश होवै नहीं, यातैं पटगोचर अनुभवतें घटगोचर संस्कारद्वारा स्मृतिकी आपत्ति नहीं; और अधिष्ठानगोचर अंतःकरणकी इदमाकारवृत्तिमें अभिव्यक्त चेतनसैं अध्यस्तका प्रकाश होवै है; यातैं अधिष्ठानगोचर इदमाकारप्रमासैं अध्यस्तगोचर संस्कारद्वारा स्मृतिका संभव होनेतैं अध्यस्तगोचर अविद्यावृत्तिका अंगीकार निष्फल है यह कथनभी असंगत हैः—काहेतैं ? अधिष्ठानगोचर इदमाकार ज्ञानसैं जो अध्यस्तका प्रकाश मानैं ताकूं यह पूछा चाहियेः—इदमाकार ज्ञान होवै सो अध्यस्ताकारभी होवै है अथवा नहीं होवै है ? जो ऐसैं कहै अध्यस्ताकारभी होवै है सो संभवै नहीं. काहेतैं ? प्रत्यक्षज्ञानमें आकार समर्पणका हेतु विषय होवै है. इदमाकारज्ञानसैं उत्तरक्षणमें अध्यस्त पदार्थकी उत्पत्ति होनैतैं भाविविषयसैं प्रत्यक्षज्ञानमें स्वाकारका समर्पण संभवै नहीं, यातैं इदमाकार ज्ञानकूं अध्यस्ताकारता नहीं होवै है. यह द्वितीय पक्ष कहैं तोभी संभवै नहीं.

काहेतैं ? अन्याकार वृत्तिमें अभिव्यक्त साक्षीसैं अन्य विषयका प्रकाश होवै नहीं यह पूर्व कह्या है. जो इदमाकार वृत्तिमें अभिव्यक्त साक्षीके संबंधसैं आकार समर्पण अकर्ताकाभी प्रकाश मानै तो इदमाकार वृत्तिमें अभिव्यक्त साक्षीका संबंधी जो अधिष्ठानका विशेष अंश ताकाभी प्रकाश हुआ चाहिये, यातैं इदमाकार सामान्यज्ञानसैं भिन्न अविद्याका परिणामरूप अध्यस्ताकार वृत्तिरूप ज्ञान अवश्य अंगीकरणीय है; तिसमेंभी दो पक्ष कहे हैंः—तिनमें अधिष्ठानगोचर और अध्यस्तगोचर अनिर्वचनीयज्ञान होवै है; यह प्रथम पक्ष तो समीचीन नहीं यह पूर्व कह्या है. जो अनिर्वचनीय मिथ्याज्ञानकूं उभयगोचर मानै तो प्रमात्वभ्रमत्वका संकर दोष होवैगा यातैं इदमाकार सामान्यज्ञानतैं उत्तरक्षणमें केवल अध्यस्तगोचर अविद्याकी वृत्ति होवै है. जैसैं सर्परजतादिक मिथ्या हैं तैसैं तिनका ज्ञानभी मिथ्या है, इसीवास्तैं सर्परजतादिकनके बाधकी नांई तिनके ज्ञानकाभी बाध होवै है. इदमाकार प्रमा-वृत्तिमें अभिव्यक्त साक्षीसैं ही अध्यस्तका प्रकाश मानै तो साक्षी तो सदाही अबाध्य है और इदमाकार वृत्तिभी अंतःकरणका परिणाम होनेतैं घटादि ज्ञानकी नांई व्यवहारकालमें अबाध्य है; यातैं ब्रह्मज्ञान विना अध्यस्तके ज्ञानका बाध नहीं हुआ चाहिये.

१३६ अनिर्वचनीयख्यातिमें उक्त चारि मतका अनुवाद और ताकी समाप्तिका दोहा.

इसरीतिसैं सर्परजतादिगोचर भ्रम होवै तहां सिद्धांतमें अनिर्वचनीय ख्याति कही है, तामें चारि पक्ष हैं. एक तो कवि तार्किक नृसिंहभट्टोपाध्यायका मत है, तामें अधिष्ठानसैं इंद्रियका संबंधही अध्यासका हेतु है, अधिष्ठानका सामान्यज्ञान हेतु नहीं. अन्य आचार्यनके मतमें अधिष्ठानका सामान्यज्ञान अध्यासका हेतु है, सामान्यज्ञानकूं धर्मिज्ञान कहै हैं. उपाध्यायमतसैं भिन्न तीनों मतमें समान्य ज्ञानकूं अध्यासकी कारणता मानी है, यातैं तीनों मत धर्मिज्ञानवादी हैं. तिनमें भी अध्यस्तपदार्थाकारही अविद्याकी वृत्तिरूप भ्रमज्ञान होवै है यह पक्षही समीचीन है; और अधिष्ठानगोचर

इदमाकार तथा अध्यस्ताकार अविद्याकी वृत्ति होवे है यह पक्ष और इदमाकार वृत्तिरूप सामान्यज्ञान जो अध्यासका हेतु तासैं ही निर्वाह होवै है. अध्यस्तगोचर अविद्याकी वृत्तिका अनंगीकारपक्ष समीचीन नहीं, तैसैं अध्यासका हेतु सामान्यज्ञानका अंनगीकार पक्ष उपाध्यायकाभी समीचीन नहीं. इसरीतिसैं प्राचीन ग्रंथकारोंने जो लिख्या है, तिसके अनुसारही हमने दूषण भूषण लिखे हैं.और अपने बुद्धिके बलसे विचार करै तो इन चारों मतनमें दूषण भूषण समान है. और प्रपंचके मिथ्यात्व साधनमें अद्वैतवादका अभिनिवेश है. अवांतरमतभेदके प्रतिपादनमें वा खंडनमें अभिनिवेश नहीं, यातैं किसी जिज्ञासुकूं खंडित पक्षही बुद्धिमें आरूढ होवै तो कछु हानि नहीं और एकही मतके अनुकूल हमने युक्ति लिखी है सो प्राचीन आचार्यनके मार्गसें उत्पथगमनके निरोधार्थ लिखी है.

दोहा—निश्चल बिन किनहु न लिखी, भाषामें यह रीति ।
ख्याति अनिर्वचनीयकी, पेषहु सुजन सप्रीति ॥ १ ॥

१३७ शास्त्रांतरमें उक्त पांच ख्यातिके नाम.

और शास्त्रांतरमें जो भ्रमका लक्षण स्वरूप कह्या है, तासैं विलक्षणही भ्रमका लक्षण और स्वरूप है. इस अर्थके जणावनेकूं शास्त्रांतरके भ्रमके स्वरूप भाष्यमें कहे हैं तिनका निरूपण और खंडन करैहैं. शुक्तिमें रजतादि भ्रम होवै तहां सिद्धांतपक्षसैं विना पांच मत हैंः—सत्ख्याति १ असत्ख्याति २ आत्मख्याति ३ अन्यथाख्याति ४ अख्याति भ्रमके ये नाम कहे हैं. सर्वके मतमें पंचनाममें अन्यतम भ्रमका नाम प्रसिद्ध है.

१३८–१४४ सत्ख्यातिकी रीति.

तिनमें सत्ख्यातिवादीका यह सिद्धांत हैः—शुक्तिके अवयनके साथ रजतके अवयव सदा रहे हैं. जैसै शुक्तिके अवयव सत्य हैं, तैसैं ही रजतके अवयव हैं, मिथ्या नहीं. जैसैं दोषसहित नेत्रके संबंधतैं सिद्धांतमें अविद्याका परिणाम अनिर्वचनीय रजत उपजै है, तैसैं दोषसहित नेत्रसंबंधतैं रजतावयवनसैं सत्यरजत उपजै है. अधिष्ठानज्ञानतैं जैसैं अ-

निर्वचनीय रजतकी निवृत्ति सिद्धांतमें होवैहै, तैसैं शुक्तिज्ञानतैं सत्यरजतका अपने अवयवनमें ध्वंस होवै है.

१३९ सतख्यातिवादका खंडन.

यह सतख्यातिवादीका मत है सो निराकरणीय है. काहेतें ? शुक्तिरजत दृष्टांतसैं प्रपंचकूं मिथ्यात्वकी अनुमिति होवैहै. सतख्यातिवादमें शुक्तिमें रजत सत्य है; तिसकूं दृष्टांत धरिके प्रपंचमें मिथ्यात्वसिद्धि होवै नहीं, यातैं यह पक्ष निराकरणीय है. या पक्षमें यह दोष है:—शुक्तिज्ञानसैं अनंतर " कालत्रयेपि शुक्तौ रजतं नास्ति " इस रीतिसैं शुक्तिमें त्रैकालिक रजताभाव प्रतीत होवै है. सिद्धांतमेंभी अनिर्वचनीय रजत तो मध्यकालमें होवै है और व्यावहारिक रजताभाव त्रैकालिक है. सतख्यातिवादीके मतमें व्यावहारिक रजत होवै तिस कालमें व्यावहारिक रजताभाव संभवै नहीं यातैं त्रैकालिक रजताभावकी प्रतीतिसैं व्यावहारिक रजतकथन विरुद्ध है और अनिर्वचनीय रजतकी उत्पत्तिमें तो प्रसिद्ध रजतकी सामग्री चाहिये नहीं. दोषसहित अविद्यासैं ताकी उत्पत्ति संभवै है और व्यावहारिक रजतकी उत्पत्ति तो रजतकी प्रसिद्ध सामग्री विना संभवै नहीं; और शुक्तिदेशमें रजतकी प्रसिद्ध सामग्री है नहीं, यातैं सत्यरजतकी उत्पत्ति शुक्तिदेशमें संभवै नहीं.

१४० शुक्तिमें सत्यरजतकी सामग्रीका अंगीकार और खंडन.

और जो ऐसैं कहै शुक्तिदेशमें रजतके अवयव हैं सोई सत्यरजतकी सामग्री है; ताकूं यह पूछै हैं:—रजतावयवनका उद्भूतरूप है अथवा अनुद्भूतरूप है ? उद्भूतरूप कहै तो रजतावयवनकाभी रजतकी उत्पत्तिसैं प्रथम प्रत्यक्ष हुआ चाहिये. जो अनुद्भूतरूप कहै तो अनुद्भूतरूपवाले अवयवनसैं रजतभी अनुद्भूतरूपवाला होवैगा. यातैं रजतका प्रत्यक्ष नहीं होवैगा. और उद्भूतरूपवत् त्र्यणुकारंभक द्व्यणुकमें तो अद्भूनुतरूप नहीं, किंतु उद्भूतरूप है, द्व्यणुकमें महत्व नहीं, यातैं उद्भूतरूप होनेतैंभी द्व्यणुकका प्रत्यक्ष

होवै नहीं, और द्यणुकमेंही उद्भूतरूप नहीं है, किंतु परमाणुमेंभी नैयायिक उद्भूतरूप अंगीकार करै हैं.

और जो ऐसैं कहै व्यणुककी नांई रजतावयवभी उद्भूतरूपवाले हैं,परंतु महत्वशून्य हैं; यातैं रजतावयका प्रत्यक्ष होवै नहीं, सो संभवै नहीं. काहेतैं ? महत्परिमाणके चारि भेद हैंः—आकाशादिकनमें परममहत्परिमाण है. परममहत्परिमाणवालेकूं ही नैयायिक विभु कहे हैं. विभुसैं भिन्न पटादिकनमें अपकृष्टमहत्परिमाण है, और सर्षप आदिकनमें अपकृष्टतरमहत्परिमाण है. त्र्यणुकमें अपकृष्टतम महत्परिमाण है. जो रजतके अवयवभी महत्परिमाणशून्य होवें तो द्व्यणुकसैं आरब्ध व्यणुककी नांई महत्वशून्य अवयवनतैं आरब्ध रजतादिकभी अपकृष्टतममहत्परिणामवाले ही हुए चाहिये; यातैं रजतावयव महत्वशून्य है, यह कहना संभवे नहीं. और रजतावयवमें तो महत्वका अभाव कहै तो किसी रीतिसैं संभवैभी, परंतु जहां वल्मीकमें घटका भ्रम होवै तहांभी घटावयव कपाल मानने होवेंगे. और जहां स्थाणुमें पुरुषभ्रम होवै तहां स्थाणुमें पुरुषके अवयव हस्त पादादिक मानने होवैंगे. कपाल और हस्तपादादिक तो महत्वशून्य संभवैं नहीं. रजतत्वजाति तो अणु साधारण है यातैं सूक्ष्मावयवनमेंभी रजतव्यवहार संभवै है. और घटत्व कपालत्व हस्तपादत्व पुरुषत्वादिक जाति तो महान्अवयवीमात्रवृत्ति है; तिनके सूक्ष्म अवयवनमें कपालत्वादिक जाति संभवै नहीं ? यातैं भ्रमके अधिष्ठानदेशमें आरोपितके व्यावहारिक अवयव होवैं तो तिनकी प्रतीति हुई चाहिये, यातैं व्यावहारिक अवयवनसैं रजतादिकनकी उत्पत्ति कथन असंगत है.

१४१ सत्ख्यातिवादीकरि उक्त दोषका परिहार और ताका खंडन.

और जो सत्ख्यातिवादी ऐसे कहैः—शुक्ति देशमें रजतके साक्षात् अवयव नहीं हैं, किंतु अवयवनके अवयव परम मूल व्यणुक अथवा परमाणु

रहै हैं, तैसैं वल्मीक देशमें घटके और स्थाणुदेशमें पुरुषके साक्षात् अवयवनके अवयव परममूल द्व्यणुक अथवा परमाणु रहै हैं. दोषसहित नेत्रके संबंधतैं झटिति अवयविधारा उपजिके रजत घट पुरुषकी उत्पत्ति होवै है. दोषके अद्भुत माहात्म्यतैं ऐसैं वेगसैं व्द्यणुकादिकनकी धारा उपजै है, जातैं मध्यके अवयवी कपाल हस्तपादादिक प्रतीत होवैं नहीं. अत्य अवयवी घटादिकी उत्पत्ति हुए तो कपालादिक कहींभी प्रतीति होवै नहीं, यातैं भ्रमके अधिष्ठानमें आरोपितके अवयव प्रतीत होवैं नहीं; और व्यावहारिक अवयव रजतादिकनके हैं अथवा शुक्तिदेशमें रजतके महत् अवयव हैं; और वल्मीकदेशमें घटके अवयव कपाल हैं, स्थाणुदेशमें पुरुषके अवयव हस्तपादादिक हैं; इसरीतिसैं भ्रमके अधिष्ठानमें आरोपितके सारे अवयव हैं; तोभी अधिष्ठानकी विशेषरूपतैं प्रतीति तिन अवयवनकी प्रतीतिकी प्रतिबंधक है यातैं विद्यमान महत् अवयवनका प्रत्यक्ष होवै नहीं. इस रीतिसैं सत्ख्यातिवादीका समाधानभी समीचीन नहीं. काहेतैं ? शुक्तिदेशमें व्यावहारिक रतजकी उत्पत्ति मानै तोभी अनुभवानुरोधसैं रजतकी निवृत्ति शुक्तिज्ञानसैंही मानी चाहिये.

१४२ रजतज्ञानकी निवृत्तिसैं प्रातिभासिक और व्यावहारिक रजतकी निवृत्ति और ताका खंडन.

और सतख्यातिवादी ऐसैं कहैः—रजतकी निवृत्तिमें शुक्तिज्ञानकी अपेक्षा नहीं; किंतु रजतज्ञानाभावसैं रजतकी निवृत्ति होवै है; जितने काल रजतका ज्ञान रहै उतने काल रजत रहै है. रजतज्ञानका अभाव होवै तब रजतकी निवृत्ति होवै है. शुक्तिका ज्ञान कहूं रजतज्ञानकी निवृत्तिका हेतु है, कहूं शुक्तिज्ञान विना अन्य पदार्थके ज्ञानतैं रजतज्ञानकी निवृत्ति होवै है, ता रजताज्ञानकी निवृत्तिसैं उत्तरक्षणमें रजतकी निवृत्ति होवै है अथवा रजतज्ञानकी निवृत्ति जासैं होवै तासैंही रजतज्ञानकी निवृत्तिक्षणमें रजतकी निवृत्ति होवै है. इस रीतिसैं ज्ञानकालमेंही रजतकी स्थिति होनेतैं यद्यपि प्रातिभासिक ही रजतादिक हैं, तथापि अनिर्वचनीय नहीं किंतु व्यावहारिक

सत्य हैं; जैसैं सिद्धांतमें सुखादिक प्रातिभासिक हैं तोभी स्वप्नसुखादिकनसैं विलक्षण व्यावहारिक माने हैं. और न्यायमतमें द्वित्वादिक प्रातिभासिक मानिके व्यावहारिक सत्य माने हैं; तैसैं रजतादिक प्रातिभासिक हैं तोभी व्यावहारिक सत्य हैं. इस रीतिसैं रजतज्ञानकी निवृत्तिसैं उत्तरक्षणमें रजतादिकनकी निवृत्ति होवै है; अथवा रजतज्ञानकी निवृत्तिका हेतु जो शुक्तिका ज्ञान अथवा पदार्थांतरका ज्ञान तासैंही रजतज्ञानके निवृत्तिक्षणमे रजतकी निवृत्ति होवै है. शुक्तिज्ञानसैं ही रजतकी निवृत्ति होवै यह नियम नहीं हैं.

ऐसा कहैं तो लोकानुभवसैं विरोध होवैगा; सकलशास्त्रनसैं विरोध होवैगा, सिद्धांतका त्याग होवैगा; और युक्तिविरोध होवैगा. काहेतैं ? शुक्तिज्ञानसैं रजतभ्रमकी निवृत्ति होवै है यह सर्व लोकमें प्रसिद्ध है और सकल शास्त्रमें प्रसिद्ध है और सत्ख्यातिवादीकाभी यही सिद्धांत है. और सत्ख्यातिवादीके मतमें विशेषरूपतैं शुक्तिका ज्ञान रजतावयवके ज्ञानका प्रतिबंधक है; यातैं रजतावयवके ज्ञानका विरोधी शुक्तिका ज्ञान निर्णीत है. रजतावयवकी प्रतीतिका विरोधी शुक्तिज्ञानही रजताज्ञानका विरोधी मानना क्लृप्तकल्पना है. निर्णीतकूं क्लृप्त कहै हैं. शुक्तिज्ञानसैं विना अन्यसैं रजतज्ञानकी निवृत्ति मानै तो अक्लृप्तकल्पना होवैगी. इस रीतिसैं क्लृप्तकल्पना योग्य है या युक्तिसैंभी विरोध होवैगा, यातैं शुक्तिज्ञानसैं ही रजतकी और ताके ज्ञानकी निवृत्ति माननी योग्य है.

१४३ सत्ख्यातिवादमें प्रबल दोष.

और जो पूर्व उक्तरीतिसैं रजतज्ञानाभावसैं रजतकी निवृत्ति मानै और रजतज्ञानकी निवृत्तिके अनेक साधन मानै तोभी वक्ष्यमाण दोषसैं सत्ख्यातिवादीका उद्धार होवै नहीं. सो दोष यह है:—जहां शुक्तिमें जा क्षणमें रजत भ्रम होवै तिसी क्षणमे शुक्तिसैं अग्निका संयोग होयके उत्तरक्षणमें शुक्तिका ध्वंस और भस्मकी उत्पत्ति होवै, तहां रजतज्ञानकी निवृत्तिका साधन कोई

हुआ नहीं; यातैं शुक्तिध्वंस और भस्मकी उत्पत्तिसैं प्रथम रजतकी निवृत्ति नहीं होनेतैं भस्मदेशमें रजतका लाभ हुआ चाहिये. काहेतैं ? रजत द्रव्य तैजस है, ताका गंधकादि संबंध विना ध्वंस होवै नहीं, यातैं भ्रमस्थानमें व्यावहारिक रजतरूप सत्पदार्थकी ख्याति होवै है यह सत्ख्यातिवाद असंगत है, और जहा एक रज्जुमें दश पुरुषनकूं भिन्न भिन्न पदार्थनका भ्रम होवै. किसीकूं दंडका, किसीकूं मालाका, किसीकूं सर्पका तथा किसीकूं जलधाराका, इत्यादिक पदार्थनके अवयव स्वल्परज्जुदेशमें संभवें नहीं, काहेतैं ? मूर्त द्रव्य स्थानका निरोध करै हैं, यातैं स्वल्पदेशमें इतने पदार्थनके अवयव संभवें नहीं; और भ्रमकालमें दंडादिक अवयवी सर्वथा स्वल्पदेशमें संभवें नहीं, और सिद्धांतमें तो अनिर्वचनीय दंडादिक हैं. व्यावहारिक देशका निरोध करें नहीं. और जो सत्ख्यातिवादी भी तिन दंडादिकनमें स्थाननिरोधादिक फल नहीं मानै तो दंडादिकनकूं सत् कहना विरुद्ध है और निष्फल है. दंडादिकनकी प्रतीतिमात्र होवै है अन्य कार्य तिनतैं होवै नहीं; ऐसा कहैं तो अनिर्वचनीय वादही सिद्ध होवै है.

और भ्रमस्थलमें सत्पदार्थकी उत्पत्ति मानै तो अंगारसहित उष्ण भूमिमें जलभ्रम होवै तहां जलसैं अंगार शांत हुए चाहिये और तूलके उपरि धरे गुंजापुंजमें अग्निभ्रम होवै तहां तूलका दाह हुआ चाहिये. और जो ऐसा कहैः—दोषसहित कारणतें उपजे पदार्थकी अन्यकूं प्रतीति होवै नहीं. जाके दोषतैं उपजै है ताहीकूं प्रतीति होवै है. और दोषके कार्य जल अग्निसैं आर्द्रीभाव दाह होवै नहीं तो तिनकूं सत्यता कहना केवल हास्यका हेतु है. काहेतैं ? अवयव तो स्थाननिरोधादिकके हेतु नहीं. अवयवीसैं कोई कार्य होवै नहीं. ऐसे पदार्थकूं सत् कहना सुनके बुद्धिमानोंकूं हास्य होवै है; यातैं सत्ख्यातिवादकी उक्ति संभवभी नहीं; सर्वथा यह पक्ष निर्युक्तिक है, इसीवास्ते विचारसागरमें सत्ख्याति नहीं लिखा. जा पक्षका किसी प्रकारसैं उपापदन होवै फेरि तर्कादिबलतैं खंडन होवै सो पक्ष लिख्या चाहिये. सत्ख्यातिवादका उपपादन नहीं संभवै, यातैं इस ग्रंथमेंभी लेखनीय नहीं, तथापि सर्वथा लिखे विना

अध्येताकूं ऐसा भ्रम होय जावै. ग्रंथकर्ताकूं सत्ख्यातिवादका ज्ञान नहीं था तिस भ्रमकी निवृत्तिवास्तें इहां लिख्या है.

१४४–१४८ त्रिविध असत्ख्यातिकी रीति.

१४४ शून्यवादीकी रीतिसैं असत्ख्यातिवादका खंडन.

तैसैं असत्ख्यातिवादभी सर्वथा युक्तिअनुभवशून्य है. निराकरण विनाभी किसीकी बुद्धिमें आरूढ होवै नहीं, यातैं निराकरणीय नहीं, तथापि असत्ख्यातिवादी वेदमार्गका प्रतिद्वंद्वी प्रसिद्ध है. और सूत्रनसैं ताके मतका खंडन कह्या है यातैं खंडनीय है. **असत्ख्यातिवादी दो हैं.**— एक तो शून्यवादी नास्तिक असत्ख्याति मानै हैं. तिसके मतसें तो सारे पदार्थ असत्रूप हैं; यातैं शुक्तिमें रजतभी असत् है. शून्यवादीके मतमें तो असत् अधिष्ठानमें रजत असत् है यातैं निरधिष्ठान भ्रम है. तैसैं ज्ञाता ज्ञानभी असत् हैं; या मतका खंडन शारीरकके द्वितीयाध्यायके तर्कपादमें विस्तारसैं कर्‍या है और अनुभव विरुद्ध है. काहेतैं ? शून्यवादमें सर्वस्थानमें शून्य है, यातैं किसीका व्यवहार प्रसिद्ध नहीं हुआ चाहिये, और शून्यसैं व्यवहार होवै तो जलका प्रयोजन अग्निसैं अग्निका प्रयोजन जलसैं हुआ चाहिये. अग्नि जल तो सत्य वा मिथ्या कहूं है नहीं, केवल शून्यतत्त्व है, सो सारे एकरस है, तामैं कोई विशेष नहीं. जो शून्यमें विशेष मानैं तो शून्यवादीकी हानि होवैगी. काहेतैं? वह विशेषही शून्यसैं भिन्न है, और जो ऐसैं कहे शून्यमें विशेष है, जाकूं विलक्षणता कहे हैं तासैं व्यवहारभेद होवै है. और वह विशेष और व्यवहार तथा व्यवहारका कर्ताभी परमार्थसैं शून्य है, यातैं शून्यताकी हानि नहीं सोभी संभवै नहीं. काहेतैं ? शून्यमें विशेष है यह कथन विरुद्ध है. विशेषवाला कहै तो शून्यताकी हानि होवैहै और शून्य कहै तो विशेषवत्ताकी हानितैं व्यवहार भेदका असंभव है; इस रीतिसैं शून्यवाद संभवै नहीं.

१४५ कोई तांत्रिककी रीतिसैं असत्ख्यातिवाद.

और कोई तांत्रिक असत्ख्यातिवादी है, ताके मतमें शुक्तिआदिक व्यव-

हारके पदार्थ तो असत् नहीं, किंतु भ्रमज्ञानके विषय जो अनिर्वचनीय रजतादिक सिद्धांतमें माने हैं वे असत् हैं. यातैं व्यावहारिक रजतादिक अपने देशमें हैं तिनका शुक्तिमें संबंध नहीं. और अन्यथाख्यातिवादीकी नांई शुक्तिमें रजतत्वकी प्रतीतिभी होवै नहीं. अनिर्वचनीय रजत उपजै नहीं और अख्यातिवादीकी नांई दो ज्ञान होवैं नहीं. शून्यवादीकी नांई शुक्ति असत् नहीं, ज्ञाता ज्ञानभी असत् नहीं; किंतु शुक्ति ज्ञान ज्ञाता सत् हैं. दोषसहित नेत्रका शुक्तिसैं संबंध होवै तब शुक्तिका ज्ञान होवै नहीं; किंतु शुक्तिदेशमें असत् रजतकी प्रतीति होवै है. यद्यपि अन्यथाख्यातिवादमें शुक्तिदेशमें रजत असत् है और कांताकरमें तथा हट्टमें सत् रजत दोनों मतमें है, तथापि अन्यथाख्यतिवादमें तो देशांतरस्थ सत्यरजतवृत्ति रजतत्वका शुक्तिमें भान होवै है, और असत्ख्यातिवादमें देशान्तरमें रजत तो हैं, तिसके धर्म रजतत्वका शुक्तिमें भान होवै नहीं; किंतु असत्गोचर रजतज्ञान है. शुक्तिसैं दोषसहित नेत्रके संबंधतैं रजतभ्रम होवै हैं, ताका विषय शुक्ति नहीं; जो रजतभ्रमका विषय शुक्ति होवै तो "इयं शुक्तिः" ऐसा ज्ञान हुआ चाहिये. जो शुक्तित्वरूप विशेष धर्मका दोषबलतैं भान नहीं होवै तो सामान्य अंशका "इयम्" इतनाही ज्ञान हुआ चाहिये; यातैं भ्रमका विषय शुक्ति नहीं तैसैं भ्रमका विषय रजत भी नहीं. काहेतैं ? पुरोवर्ति देशमें तो रजत है नहीं, और देशांतरमें रजत है, तासैं नेत्रका संबंध इस रीतिसैं रजतभ्रमका विषय कोई नहीं. और शुक्तिज्ञानसैं उत्तर कालमें "इह कालत्रयेऽपि रजतं नास्ति" ऐसी प्रतीति होवै है; यामैं रजतभ्रम निर्विषयक होनेतैं असत् गोचर कहिये. असत्गोचर ज्ञानकूं ही असत्ख्याति कहै हैं.

१४६ न्यायवाचस्पत्यकारकी रीतिसैं असत् ख्यातिवाद.

और कोई असत्ख्याति इस रीतिसैं कहै हैं:—शुक्तिसैं नेत्रके संबंधतैं रजतभ्रम होवै है यातैं रजतभ्रमका विषय शुक्ति है, परंतु शुक्तिमें शुक्तित्व और शुक्तित्वका समवाय दोनों दोषतैं भासैं नहीं; किंतु शुक्तिमें रजतत्वका

समवाय भासै है. जो रजतत्वका समवाय शुक्तिमें है नहीं, यातैं असत्ख्याति है; रजतत्वप्रतियोगीका शुक्ति अनुयोगिक समवाय असत् है. ताकी ख्याति कहिये प्रतीति **असत ख्याति** कहिये है. रजतत्वप्रतियोगिक समवाय रजतमें रजतत्वका प्रसिद्ध है; और शुक्त्यनुयोगिक समवाय शुक्तिमें शुक्तित्वका प्रसिद्ध है, परंतु रजतत्व प्रतियोगिक समवाय रजतानुयोगिक प्रसिद्ध है, शुक्त्यनुयोगिक नहीं. और जो शुक्त्यनुयोगिक समवाय प्रसिद्ध है, सो शुक्तित्व प्रतियोगिक हैं. रजतत्वप्रतियोगिक नहीं. इस रीतिसैं रजतत्वप्रतियोगिक शुक्ति अनुयोगिक समवाय अप्रसिद्ध होनेतैं असत् है, ताकी प्रतीतिकूं **असत ख्याति** कहै हैं. शुक्ति जाका **अनुयोगी** कहिये धर्मी होवै सो शुक्त्यनुयोगिक कहिये है, रजतत्व जिसका प्रतियोगी होवै सो रजतत्वप्रतियोगिक कहिये हैं. भाव यह हैः—केवल समवाय प्रसिद्ध है और रजतत्व प्रतियोगिक समवायभी रजतसैं प्रसिद्ध है; और शुक्त्यनुयोगी समवायमी शुक्ति धर्मनका शुक्तिमें प्रसिद्ध है; प्रसिद्ध समवायमें समवायत्व धर्म है रजतत्व प्रतियोगित्वभी समवायमें प्रसिद्ध है; तैसैं शुक्त्यनुयोगिकत्वभी समवायमें प्रसिद्ध है, परंतु रजतत्व प्रतियोगिकत्व शुक्त्यनुयोगिकत्व दोनों धर्म एक स्थानमें समवायमें अप्रसिद्ध होनेतैं शक्त्यनुयोगिकत्वविशिष्ट रजतत्वप्रतियोगिकत्वविशिष्ट सयवाय अप्रसिद्ध होनेतैं असत् है; ताकी ख्याति **असत ख्याति** कहिये है. यह न्यायवाचस्पत्यकारका मत है. इस रीतिसैं अधिष्ठानकूं मानिके **असत्ख्याति दो प्रकारकी** माने हैं, एक तो शुक्ति अधिष्ठानमें असत् रजतकी प्रतीतिरूप है और दूसरी शुक्तिमें असत् रजतत्व समवायकी प्रतीतिरूप है.

१४७ द्विविध असत्ख्यातिवादका खंडन.

सो दोनों असंगत हैं. काहेतैं? जो असत् ख्याति मानै ताकूं यह पूछै हैं; असत्ख्याति या वाक्यमें अबाध्य विलक्षण असत् शब्दका अर्थ है अथवा असत् शब्दका अर्थ निःस्वरूप है, जो ऐसैं कहैः—असत् शब्दका अर्थ निःस्वरूप है, तो "मुखे मे जिह्वा नास्ति" इस वाक्यकी नांई असत्

ख्यातिवादका अंगीकार निर्लज्जता है. काहेतैं ? सत्तास्फूर्तिरहितकूं निःस्वरूप कहै हैं. यातैं सत्तास्फूर्तिशून्यकी प्रतीति होवै है; यह असत् ख्यातिवाद कहै तैसैं सिद्ध होवै है, सत्तास्फूर्तिशून्यकी प्रतीति कहना विरुद्ध है, यातैं अबाध्यविलक्षण असत् शब्दका अर्थ कहै तो अबाध्यविलक्षण बाध्य होवै है. बाधके योग्यकूं बाध्य कहै हैं; इस रीतिसैं बाधके योग्यकी प्रतीति असत्ख्याति कहिये है, यह सिद्ध हुआ. सोई सिद्धांतीका मत है. काहेतैं ? अनिर्वचनीय ख्याति सिद्धांतमें है और बाधयोग्यही अनिर्वचनीय होवै है. इस रीतिसैं सिद्धांतसे विलक्षण असत्ख्यातिवाद है, यह कहना संभवै नहीं.

१४८–१५४ आत्मख्यातिकी रीति और खंडन.

१४८ आंतरपदार्थमानी आत्मख्यातिवादीका अभिप्राय.

आत्मख्याति असंगत है. काहेतैं ? विज्ञानवादीके मतमें आत्मख्याति है. क्षणिक विज्ञानकूं विज्ञानवादी आत्मा कहै हैं; तिसके मतमें बाह्य रजत नहीं है; किंतु आंतर विज्ञानरूप आत्मा है. ताका धर्म रजत है, दोषबलतैं बाह्य प्रतीत होवै है. शुन्यवादीके मत विना आंतरपदार्थकी सत्तामें किसी सुगत शिष्यका विवाद नहीं. बाह्य पदार्थ तो कोई माने हैं कोई नहीं मानै हैं; यातैं बाह्यपदार्थकी सत्तामें तो तिनका विवाद है. आंतर विज्ञानका निषेध शून्यवादी विना कोई नास्तिक करै नहीं, यातैं आंतररजतका विज्ञानरूप आत्मा अधिष्ठान है; ताका धर्मरजत आंतर है; दोषबलतैं बाह्यकी नांई प्रतीत होवै है. ज्ञानतैं रजतका स्वरूपसैं बाध नहीं होवै है; किंतु रजतकी बाह्यताका बाध होवै है. अनिर्वचनीय ख्यातिवादमें रजतधर्मीका बाध और इदंतारूप बाह्यवृत्ति ताका बाध मानना होवै है. और आत्मख्यातिमतमें रजतका तो बाध मानना होवै नहीं. काहेतैं ? शून्यवादीसैं भिन्न सकल सौगतके मतमें पदार्थनकी आंतरसत्तामें विवाद नहीं, यातैं स्वरूपसैं रजतका बाध मानना होवै नहीं; केवल बाह्यतारूप इदंताका बाध मानना होवै है यातैं अनिर्वचनीयवाद मानै तो धर्म और धर्मीका बाधकल्पन गौरव है.

आत्मख्याति मानै तो धर्मीके बाध विना इदंतारूप धर्ममात्रके बाधकल्पनमें लाघव है. यह आत्मख्यातिवादीका अभिप्राय है. या मतमें रजत आंतर सत्य है; ताकी बाह्य देशमें प्रतीति भ्रम है, यातैं रजतज्ञानमें रजतगोचरत्व अंशभ्रम नहीं; किंतु रजतका बाह्यदेशस्थत्व प्रतीति अंशमें भ्रम है.

१४९ आंतरपदार्थमानी आत्मख्यातिवादीके मतका खंडन.

यह मतभी समीचीन नहीं. रजत आंतर है ऐसा अनुभव किसीकूं होवै नहीं. भ्रमस्थलमें वा यथार्थ स्थलमें रजतादिकनकी आंतरता किसी प्रमाणसैं सिद्ध होवै नहीं. सुखादिक आंतर हैं और रजतादिक बाह्य हैं यह अनुभव सर्वकूं होवै है. रजतकूं आंतर मानैं तो अनुभवसैं विरोध होवै है और आंतरताका साधक प्रमाण युक्ति है नहीं; यातैं आंतर रजतकी बाह्य प्रतीति मानना असंगत है.

१५० सौगतनके दो भेदनमें बाह्यपदार्थवादीकी आत्मख्यातिका अनुवाद.

यद्यपि सौगतनमें दो भेद हैं. एक तो विज्ञानवाद है और दूसरा बाह्य वाद है. बाह्य वादमेंभी दो भेद हैं एक तो बाह्य पदार्थ अनुमेय है प्रत्यक्ष नहीं. ज्ञानका प्रत्यक्ष होवै है, ज्ञानसैं ज्ञेयकी अनुमिति होवै है. इस रीतिसैं बाह्य पदार्थनका परोक्षवाद है; और बाह्य पदार्थभी प्रत्यक्ष ज्ञानके विषय हैं. इस रीतिसैं बाह्यपदार्थनका अपरोक्षवाद है; इनमें विज्ञानवादीके मतमें तो व्यावहारिक रजतभी बाह्य नहीं है. और बाह्य पदार्थवादीके मतमें यथार्थ ज्ञानका विषय रजत तो बाह्य है, यातैं उक्त अनुभवका विरोध नहीं. और भ्रमस्थलमें बाह्य रजत माननेका प्रयोजन नहीं. काहेतैं ? कटकादि सिद्धि तो तिस रजतसैं होवै नहीं, केवल प्रतीतिमात्र होवैहै; और विषय विना प्रतीति होवै नहीं; यातैं भ्रम प्रतीतिकी सविषयता सिद्धिही तिस रजतका फल है. सो आंतरही मानै तोभी भ्रमप्रतीति सविषयक होय जावै है, बाह्य मानिके प्रतीतिकी सविषयता सिद्ध करै ताके मतमें उक्त रीतिसें धर्मधर्मीका बाध माननेतैं गौरव है. आंतररजतकी दोषबलतैं बाह्य प्रतीति मानै तो केवल इदंताके

बाध माननेतैं लाघव होवै है; और यथार्थ ज्ञानका विषय रजतपुरोवर्ति देशमें होवै है. भ्रमज्ञानका विषय रजतभी पुरोवर्तिदेशमें होवे तो यथार्थज्ञान औ भ्रमज्ञानकी विलक्षणता नहीं होवैगी. और आत्मख्याति मतमें तो यथार्थज्ञानका विषय रजतभी पुरोवर्तिदेशमें है और भ्रमज्ञानका विषय रजत आंतर है यातैं बाह्यत्व आंतरस्वरूप विषयकी विलक्षणतासैं यथार्थत्व अयथार्थत्व भेद ज्ञानके होवैं है. और बाह्यदेशमें जो भ्रमके विषयकी उत्पत्ति मानैं तो शुक्तिदेशमें उपजे रजतकी सर्वको प्रतीति हुई चाहिये. और एक अधिष्ठानमें दश पुरुषनको भिन्नभिन्न पदार्थनका भ्रम होवै तहां एक एक पुरुषको सकल पदार्थनकी प्रतीति हुई चाहिये. और आत्मख्याति मतमें तो जिसके आंतर जो पदार्थ उपजै है तिसीको पुरोवर्तिदेशमें वह पदार्थ प्रतीत होवै है; यातैं अन्य पुरुषको ताको प्रतीतिकी शंकाही होवे नहीं. भ्रमके विषयकी बाह्य उत्पत्ति माने तिसके मतमें अन्य पुरुषनकूं अप्रतीतिमें समाधानका अन्वेषणरूप क्लेशही फल है; इस रीतिसैं बाह्यपदार्थवादी सौगतमतमें आत्मख्यातिकी उक्ति संभवै है. व्यावहारिक पदार्थही तिसके मतमें बाह्य हैं, प्रातिभासिक बाह्य नहीं, केवल आंतरही है.

१५१ बाह्यपदार्थमानी आत्मख्यातिवादीके मतका खंडन.

तथापि आत्मख्यातिवाद असंगतही है: काहेतैं? रजतादिक पदार्थ स्वप्न विना जागरणमें आंतर अप्रसिद्ध हैं. बाह्य स्वभावकूं भ्रमस्थलमें आंतरकल्पना अप्रसिद्ध कल्पना दोष है और आंतर होवै तो "मयि रजतम्, अहं रजतम्" ऐसी प्रतीति हुई चाहिये. "इदं रजतम्" इस रीतिसैं रजतकी बाह्य प्रतीति हुई चाहिये.

और जो ऐसैं कहै. यद्यपि रजत आंतर है बाह्य देशमें है नहीं, तथापि दोषमाहात्म्यतैं आंतर पदार्थकी बाह्य प्रतीति होवै है. बाह्यतारूप इदंता शुक्तिमें है; दोषके माहात्म्यतैं शुक्तिकी इदंता रजतमें भासै है. जा दोषतैं आंतर रजत उपजै है ता दोषतैंही आंतर उपजे रजतमें शुक्तिकी इदंता प्रतीत होवै है. जो

रजतकी बाह्य देशमें उत्पत्ति मानैं तो बाह्य देशमें सत्यरजत तो संभवै नहीं; अनिर्वचनीय मानना होवेगा, सो अनिर्वचनीय वस्तु लोकमें अप्रसिद्ध है, यातैं अप्रसिद्ध कल्पना दोष होवैगा और आंतर तो सत्य रजत उपजै है। आंतर होनेतैं ताके हान उपादान अशक्य हैं; यातैं सत्य मानेभी कटकादि सिद्धरूप फलका अभाव संभवै है, यातैं अनिर्वचनीय वस्तुकी कल्पना होवै नहीं, अनिर्वचनीय ख्यातिसैं आत्मख्यातितैं यह लाघव है.

सोभी असंगत है. शुक्तिकी इदंता रजतमें प्रतीत होवै है. या कहनेसैं अन्यथाख्यातिका अंगीकार होवै है। जो इदंताप्रतीतिमें अन्यथा ख्याति मानी तो शुक्तिमें रजतत्व धर्मकी प्रतीतिभी अन्यथा ख्यातिही मानी चाहिये। आंतर रजतकी उत्पत्ति माननी निष्फल है. जैसें रजत पदार्थ शुक्तिसैं व्यवहित है; ताके धर्मकी शुक्तिमें प्रतीतिका असंभव कहै तो तेरे मतमेंभी शुक्तिसैं व्यवहित अंतर्देशमें रजत है, तामें शुक्तिधर्म इदंताकी प्रतीतिका असंभवतुल्य है.

१५२ आत्मख्यातिवादतैं विलक्षण अद्वैतवादका सिद्धांत.

और सिद्धांतमें तो शुक्तिवृत्तिताद'त्म्यका अनिर्वचनीय संबंध रजतमें उपजै है; ताकूं संसर्गाध्यास कहे हैं. अधिष्ठानका संबंध आरोपितमें जहां प्रतीत होवै तहां सारे अधिष्ठानका संसर्गाध्यास होवै है. संसर्गाध्यास विना अन्य धर्मकी अन्यमें प्रतीति होवै नहीं. इस रीतिसैं अध्यास विना शुक्तिवृत्ति इंदताका आंतर रजतमें प्रतीतिके असंभवतैं आत्मख्यातिवाद असंगत है और अनिर्वचनीय वस्तुकी अप्रसिद्ध कल्पना दोष कहा सोभी अज्ञानसैं कहा है. काहेतैं ? अद्वैतवादका यह मुख्य सिद्धांत हैः—चेतन सत्य है, तासैं भिन्न सकल मिथ्या है. अनिर्वचनीयकूं मिथ्या कहै हैं, यातैं चेतनसैं भिन्न पदार्थकूं सत्य कथनमें ही अप्रसिद्ध कल्पना है. चेतनसैं भिन्न पदार्थनमें अनिर्वचनीयता तो अतिप्रसिद्ध है. युक्तिसैं विचार करे तब किसी अनात्म पदार्थनका स्वरूप सिद्ध होवै नहीं और प्रतीत होवै है, यातैं सकल अनात्म पदार्थ अनिर्वचनीय हैं, सिद्धान्तमें अनात्म पदार्थ कोई सत्य नहीं.

गंधर्वनगरकीनाई दृष्ट सारा प्रपंच नष्टस्वभाव है. स्वप्नसैं जागृतपदार्थनमें रजत व्यावहारिक है. इस रीतिसैं अनात्म पदार्थनमें मिथ्यात्व सत्यत्व विलक्षणता परस्पर कही है, सो स्थूलबुद्धिवालेका अद्वैतबोधमें प्रवेशवास्ते अरुंधतीन्यायसैं कहिये है. स्थूलबुद्धिपुरुषकूं प्रथमही मुख्यासिद्धांतकी रीति कहै तो अद्भुत अर्थकूं सुनिके अनात्मसत्यत्व भावनावाला पुरुष शास्त्रसैं विमुख होयके पुरुषार्थसैं भ्रष्ट होय जावे इसवास्ते अनात्मपदार्थनकी व्यावहारिक प्रातिभासिकभेदसैं द्विविध सत्ता कही; और चेतनकी पारमार्थिक सत्ता कही. चेतनसैं न्यूनसत्ता प्रपंचकी बुद्धिमें आरूढ हुए सकल अनात्मपदार्थनकूं स्वप्नादिदृष्टांतसैं प्रातिभासिकता जानिके निषेधवाक्यनतैं सर्व अनात्मकूं सत्ता स्फूर्तिशून्य जानि लेवै, इसवास्ते सत्ताभेद कहा है और अनात्मपदार्थनका परस्पर सत्ताभेदमें अद्वैतशास्त्रका तात्पर्य नहीं यातैं अद्वैतवादीकूं अनिर्वचनीय पदार्थ अप्रसिद्ध है. यह कथन विरुद्ध है. और प्रकारांतरका असंभव है, यातैं लाघव गौरव कथन सर्वथा असंभव है. जो अनिर्वचनीयख्यातिविना अन्यप्रकारभीं संभवै तो गौरवदोष देखिके या पक्षका त्याग संभवै और उक्त वक्ष्यमाण रीतिसैं सत्ख्यातिसैं आदिलेके कोई पक्ष संभवै नहीं, यातैं गौरव लाघव विचारही निष्फल है.

१५३ सिद्धांतोक्त गौरवदोषके परिहारपूर्वक द्विविध विज्ञानवादका असंभव.

और जो आत्मख्याति निरूपणके आरंभमें कह्या. बाह्य रजतकी उत्पत्ति मानै तो रजतधर्मी और इदंताधर्म इन दोनोंका बाध माननेमें गौरव है आत्मख्याति मानैं तो इदंतामात्रके बाध होनेतैं धर्मीका बाध नहीं माननेमें लाघव है.

यह कथनभी अकिंचित्कर है. काहेतैं ? शुक्तिका ज्ञान हुए मिथ्या रजत मेरेकूं प्रतीत हुआ, इस रीतिसैं रजतका बाध सर्वके अनुभवसिद्ध है. और आत्मख्यातिकी रीतिसैं रजतमें मिथ्या बाह्यता प्रतीत हुई ऐसा बाध हुआ चाहिये; यातैं धर्मीके बाधका लाघवबलसैं लोप करे तो पाकादिफल साधक

व्यापारसमूहमें एक व्यापार करिके लाघवबलतैं अधिक व्यापारका त्याग कन्या चाहिये. और भ्रमवाले पुरुषकूं आप्त उपदेश करै तब " नेदं रजतम् किंतु शुक्तिरियम् " इस रीतिसैं रजतका स्वरूपसैं निषेध करै है. और आत्मख्यातिकी रीतिसैं "नात्र रजतम् किंतु ते आत्मनि रजतम्" इस रीतिसैं रजतके देशमात्रका निषेध कन्या चाहिये; यातैं आत्मामें उपजेकी बाह्यदेशमें ख्याति है, इस अर्थमें तात्पर्यतैं बाह्यपदार्थवादी सौगतका आत्मख्यातिवाद असंगत है. और विज्ञानसैं भिन्न कोई बाह्य और आंतरपदार्थ नहीं; किंतु विज्ञानरूप आत्माके आकार सर्व पदार्थ हैं. इस रीतिसैं विज्ञानवादीका विज्ञानरूप आत्माकी रजतरूपसैं ख्याति है, इस तात्पर्यतैंभी आत्मख्यातिवाद असंगत है. विज्ञानसैं भिन्न रजत है सो ज्ञानका विषय है; ताकूं विज्ञानरूप आत्मासैं अभिन्न कथन संभवै नहीं और विज्ञानवादीके मतमें सारे पदार्थ क्षणिक विज्ञानरूप हैं, तामें प्रत्यभिज्ञाअसंभवादिक अनंत दूषण हैं; यातैं आत्मख्याति संभवै नहीं.

१५४–१६१ अन्यथाख्यातिकी रीति और खंडन.

१५४ अन्यथाख्यातिवादीका तात्पर्य.

अन्यथाख्यातिवादभी असंगत है. यह अन्यथाख्यातिवादीका तात्पर्य है. जापुरुषकूं सत्यपदार्थके अनुभवजन्य संस्कार होवै ताके दोषसहित नेत्रका पूर्वदृष्ट सदृशपदार्थसैं संबंध होवै तहां पुरोवर्तिसदृश पदार्थके सामान्य ज्ञानतैं पूर्वदृष्टकी स्मृति होवै है अथवा स्मृति नहीं होवै तो सदृशके ज्ञानतैं संस्कार उद्भूत होवै है. जा पदार्थकी स्मृति होवै अथवा जाके उद्भूत संस्कार सत्य रजतके पदार्थका धर्म पुरोवर्तिपदार्थमें प्रतीति होवै है. जैसैं सत्य रजतके अनुभवजन्यसंस्कारसहित पुरुषका रजतसदृश शुक्तिसैं दोषसहित नेत्रका संबंध हुए रजतकी स्मृति होवै है; ताके स्मरण करे रजतका रजतत्व धर्म शुक्तिमें भासै है. अथवा नेत्रका संबंध हुए रजतभ्रममें विलंब होवै नहीं; यातैं नेत्रसंबंध और रजतके प्रत्यक्षभ्रमके अंतरालमें रजतकी स्मृति नहीं होवै है; किंतु रजतानुभवके संस्कार उद्भूत होयके

स्मृतिके व्यवधान विना शीघ्र ही शुक्तिमें रजतत्वधर्मका प्रत्यक्ष होवै है; स्मृति स्थलमें जैसैं पूर्वदृष्ट सदृशके ज्ञानतैं संस्कारका उद्बोध होवै है; तैसैं अन्य स्थलमें पूर्वदृष्टके सदृश पदार्थसैं इंद्रियका संबंध होनेतैं ही संस्कारका उद्बोध होके संस्कारगोचर धर्मका पुरोवर्तिमें भान होवै है; याकूं अन्यथाख्याति कहै हैं. अन्यरूपतैं प्रतीतिकूं अन्यथाख्याति कहै हैं. शुक्तिपदार्थमें शुक्तित्वधर्म है रजतत्व नहीं है. और शुक्तिकी रजतत्वरूपतैं प्रतीति होवै है; यातैं अन्यरूपतैं प्रतीति है.

१५५ विचारसागरोक्त द्विविध ख्यातिवादमें प्रथम प्राचीन मतका प्रकार और खंडन.

और विचार सागरमें अन्यथाख्यातिके दो भेद लिखे हैं. दूसरीका प्रकार यह है:—रजतभ्रम होवै तहां कांताकरादिकनमें स्थित रजतसैं नेत्रका संबंध होके ताका प्रत्यक्ष होवै है यातैं कांताकरमें वा हट्टमें स्थित रजतकी पुरोवर्तिदेशमें प्रतीति अन्यथा ख्याति है. या मतमें धर्म धर्मी अंशमें तो रजतका ज्ञान यथार्थ है, परंतु देश अंशमें अन्यथाज्ञान है. यद्यपि हट्टादिकनका रजत व्यवहित है, तासैं नेत्रका संबंध संभवै नहीं, तथापि दोषसहित नेत्रका व्यवहित रजतसैं संबंध होके ज्ञान होवै है; यह दोषका माहात्म्य है. इस रीतिकी अन्यथाख्यातिका वर्तमान न्यायादिग्रंथनमें उपलंभ नहीं, तथापि इस प्रकारकी अन्यथाख्यातिका खंडन अनेक ग्रंथनमें है.

यामें यह दोष है:—जो देशांतरमें स्थित रजतसैं नेत्रका संबंध होवै तो हट्टमें रजतके सन्निहित धरे अन्यपदार्थनका प्रत्यक्षभी हुआ चाहिये. कांताकरस्थ रजतका प्रत्यक्ष होवै तब कांताके करकाभी प्रत्यक्ष हुआ चाहिये और जो ऐसैं कहैः—अन्यथाख्यातिकी केवल इंद्रियसैं उत्पत्ति नहीं होवै है; किंतु पूर्वानुभवजनित संस्कारसहित सदोष नेत्रसैं अन्यथाख्यातिज्ञान उपजै है, यातैं उद्भूतसंस्कार नेत्रका सहकारी है. रजतगोचर संस्कारसहित नेत्रसैं रजतकाही ज्ञान होवै है, अन्यपदार्थ गोचर संस्कार तो है परंतु उद्बुद्ध नहीं; यातैं अन्यवस्तुका ज्ञान होवै नहीं. संस्कारनकी

उद्बुद्धता और अनुद्बुद्धता कार्यसैं अनुमेय है; यातैं दोष नहीं, तथापि जहां शुक्तिमें रजतभ्रम होवै तहां शुक्तिके समान आरोपित रजतका परिमाण प्रतीत होवै है. लघु शुक्तिमें रजतभ्रम होवै तहां आरोपित रजतमैंभी लघुता भासै है, महती शुक्तिमें रजतभ्रम होवै तहा महत्परिमाणवाला रजत भासै है; इसरीतिसैं आरोपित पदार्थमें अधिष्ठान परिमाणका नियम होनेतैं शुक्त्यादिकनमें रजतत्वादिक धर्मकी प्रतीति होवै है. अन्य देशस्थ रजतकी प्रतीति होवै तो आरोपितमें अधिष्ठान परिमाणका नियम नहीं चाहिये. और लघु तथा महत्परिमाण शुक्तिका भासै है, यातैं देशांतरके रजतकी प्रतीति नहीं और रजतसंस्कारवालेकूं अन्य पदार्थकी प्रतीति यद्यपि नहीं संभवै तथापि सारे देशके अनंत रजतनकी प्रतीति हुई चाहिये, इस रीतिसैं अनंत दूषणग्रस्त यह पक्ष है. इसीवास्ते वर्तमानग्रंथनमें या पक्षका उपलंभ होवै नहीं.

१५६ पूर्वोक्त अन्यथाख्यातिवादका खंडन.

और शुक्तिमें रजतत्व धर्मकी प्रतीति होवै है, यह अन्यथा ख्यातिवाद अनेक ग्रंथकार नैयायिकोंने यद्यपि लिख्या है तथापि तिनका लेखभी श्रुति स्मृति विरुद्ध है, यातैं श्रद्धायोग्य नहीं. स्वप्नज्ञानकूं नैयायिक मानस विपर्यय कहै हैं. और अन्यथाख्यातिकूं विपर्यय कहै हैं और श्रुतिमें स्वप्नपदार्थनकी उत्पत्ति कही है "न तत्र रथा न रथयोगा न पंन्थानो भवन्त्वथ रथान्रथयोगान्पथः सृजते " यह श्रुति है. तामें व्यावहारिक रथ अश्वमार्गनका स्वप्नमें निषेध करिके अनिर्वचनीय रथ अश्वमार्गकी उत्पत्ति कही है. तैसैं "संध्येसृष्टिराहहि' यह व्याससूत्र है. तामेंभी स्वप्नमें अनिर्वचनीय पदार्थनकी सृष्टि कही है. व्यासकृत सूत्र स्मृतिरूप है. इस रीतिसैं नैयायिकनका अन्यथाख्यातिवाद श्रुतिस्मृतिविरुद्ध है.और नेत्रसैं व्यवहित रजतत्वका शुक्तिमें ज्ञान संभवै नहीं. जो शुक्तिके समीप रजत होवै तो दोनोंसैं नेत्रका संयोग होयके रजतवृत्ति रजतत्वकी शुक्तिमें नेत्रजन्य भ्रम प्रतीति संभवै. और जहां शुक्तिके समीप रजत नहीं तहां शुक्तिमें रजतत्व भ्रम नेत्रजन्य संभवै नहीं. काहेतैं ? विशेषण

विशेष्यतैं इंद्रियका संबंध हुए इंद्रियजन्य विशिष्ट ज्ञान होवै है. जहा सत्य रजत रजत है तहा विशेषण रजतत्व है विशेष्य रजतव्यक्ति है, रजतव्यक्तिसैं नेत्रका संयोगसंबंध होवै है, और रजतत्वसैं नेत्रका संयुक्त समवाय संबंध होवै है; यातैं "इदं रजतम्" इस रीतिसैं रजतत्वविशिष्टका नेत्रजन्यज्ञान होवै है. और जहां शुक्तिमें रजतत्वाविशिष्ट भ्रम होवै तहां विशेष्य शुक्तिसैं तो नेत्रका संयोगसंबंध है, रजतत्वाविशेषणसैं संयुक्त समवाय है नहीं. जो रजतव्यक्तिसैं संयोग होवै तो रजतत्वसैं संयुक्तसमवाय होवै. रजतव्यक्तिसैं संयोगके अभावतैं रजतत्वसैं संयुक्त समवायका अभाव है, यातैं रजतविशिष्ट शुक्तिका ज्ञान संभवै नहीं.

१५७ प्रत्यक्षज्ञानके हेतु षड्विधलौकिक अरु त्रिविध अलौकिक ये दो संबन्ध.

और जो नैयायिक कहै प्रत्यक्षज्ञानका हेतु विषयइंद्रियका संबंध दो प्रकारका है. एक लौकिक संबंध है और दूसरा अलौकिक संबंध है. संयोग आदिक षट्प्रकारका संबंध लौकिक कहिये है, और सामान्यलक्षण ज्ञानलक्षण योगजन्यधर्मलक्षण यह तीनिप्रकारका अलौकिक संबंध है. लौकिक संबंधके उदाहरण और स्वरूप प्रत्यक्षनिरूपणमें कहे हैं.

अलौकिक संबंधके इसभांति उदाहरणस्वरूप हैं. जहां एक घटसैं नेत्रका संयोग होवै तहां एकही घटका नेत्रसैं साक्षात्कार नहीं होवै है, किंतु घटत्वाश्रय सकल घटनका नेत्रसैं साक्षात्कार होवै है, परंतु नवीन मतमें नेत्रसंयुक्त घटका और देशांतरवृत्ति घटनका एकही क्षणमें साक्षात्कार होवै है. और प्राचीन मतमें नेत्रसंयुक्त घटका प्रथम क्षणमें साक्षात्कार होवै है, और देशांतरवृत्ति घटका द्वितीय क्षणमें साक्षात्कार होवै है, दोनों साक्षात्कार नेत्रजन्य हैं, परंतु संबंध भिन्न है. ये दो मत हैं. तिनमें प्राचीन रीति सुगम है, यातैं प्राचीन रीतिही कहै हैं:—पुरोवर्ति घटसैं नेत्रका संयोग होयके "अयं घटः" इस रीतिसैं एक घटका साक्षात्कार होवै है. या साक्षात्कारका हेतु संयोग संबंध है, यातैं यह साक्षात्कार

लौकिक संबंध जन्य है. या साक्षात्कारका विषय घट और घटत्व हैं. तिनमेंभी व्यक्ति विशेष्य है, घटत्व प्रकार है; विशेषणकूं प्रकार कहै हैं. या ज्ञानमें प्रकार जो घटत्व सो यावत् घटमें रहै है, यातैं पुरोवर्ति घटके ज्ञान-कालमें नेत्रइंद्रियका स्वजन्यज्ञानप्रकारीभूत घटत्ववत्ता संबंध सकल घटनमें है, या संबंधसैं नेत्र इंद्रियजन्य सकल घटनका साक्षात्कार द्वितीयक्षणमें होवै है. या साक्षात्कारका विषय पुरोवर्ति घटभी है. काहेतैं ? घटत्ववत्ता जैसैं अन्य घटनमें है तैसैं पुरोवर्तिघटमें भी है, यातैं पुरोवर्तिघटगोचर दो ज्ञान होवै हैं; प्रथमक्षणमें लौकिकज्ञान होवै है, द्वितीयक्षणमें अलौकिक ज्ञान होवै है; यह उक्त संबंध अलौकिक है, अलौकिक संबंधजन्य ज्ञानभी अलौकिक है. इंद्रियका सकल घटनतैं स्वजन्यज्ञानप्रकारीभूत घटत्ववत्ता संबंध है. जहां नेत्रजन्य साक्षात्कार एक घटका होवै तहां स्वशब्द नेत्रका बोधक है, और जहा त्वक्‌सैं एक घटका ज्ञान होवै तहां स्वशब्द त्वक्‌का बोधक है. इस रीतिसैं जा इंद्रियतैं एक व्यक्तिका ज्ञान होवै तिस इंद्रियजन्यही सकल घट-नका अलौकिक साक्षात्कार होवै है; नेत्रइंद्रियजन्य एक घटका लौकिक साक्षात्कार हुए त्वक् इंद्रियजन्य सकल घटनका अलौकिक साक्षात्कार होवै नहीं. नेत्रजन्य एक घटका ज्ञान हुए स्व कहिये नेत्र तिसतैं जन्य "अयं घटः" यह ज्ञान है. तामें प्रकारीभूत कहिये विशेषण जो घटत्व तद्वत्ता कहिये ताकी आधारता घटनमें है. इस रीतिसैं सकल घटनके ज्ञानका हेतु उक्त संबंध है. सो एक घटका ज्ञान होवै तब नेत्रजन्य ज्ञानमें घटत्व प्रकार होवै है. और पुरोवर्ति घटके लौकिक ज्ञानसैं प्रथम उक्त संबंध संभवै नहीं; यातैं लौकिक ज्ञान प्रथम क्षणमें होवै है अलौकिक उत्तरक्षणमें होवै है, यह प्राचीन रीति है; नवीन रीतिसैं एकही ज्ञान सकल घटगोचर होवै है. पुरोवर्ति घट अंशमें लौकिक होवै है. देशांतरस्थ घटांशमें अलौकिक होवै है; प्रसंगप्राप्त एक रीति कही. विस्तारभयतैं नवीन रीति कही नहीं. यह सामान्य लक्षण संबंध है. जातिकूं सामान्य कहे हैं. सामान्य कहिये जाति लक्षण कहिये स्व-रूप यातैं जाति स्वरूप संबंध है. यह सिद्ध हुआः—नेत्रजन्यज्ञानप्रका-

रीभूत घटत्ववत्ता कहनेसैं घटत्वही सिद्ध होवै है; यातैं उक्त संबंध सामान्य स्वरूप है, अथवा घटत्वाधिकरणताकूं घटत्ववत्ता कहैं तोभी सामान्यलक्षणही संबंध है. काहेतैं ? अनेक अधिकरणनमें अधिकरणता धर्म सामान्य है, या स्थानमें अनेकमें जो समान धर्म होवै सो सामान्यशब्दका अर्थ है: केवल जातिही सामान्यशब्दका अर्थ नहीं, यातैं अनेक घटनमें घटत्वकी अधिकरणताभी समान धर्म होनेतैं सामान्य कहिये है. इस रीतिसैं एक व्यक्तिसैं इंद्रियका संबंध हुए इंद्रियसंबंधी व्यक्तिके समानधर्मवाली इंद्रियसंबंधी सकल व्यक्तिसैं सामान्य लक्षण अलौकिक संबंध इंद्रियका होनेतैं व्यवहित अव्यवहित वस्तुका इंद्रियजन्य अलौकिक साक्षात्कार होवै है.

और ज्ञानलक्षण संबंधका यह उदाहरणसहित स्वरूप है:—जहां इंद्रिय योग्य पदार्थसैं इंद्रियका संबंध होवै और इंद्रियसंबंध कालमें तिस इंद्रियके अयोग्य पदार्थका स्मृतिज्ञान होवै तहां इंद्रियसंबंधी पदार्थका और स्मृतिगोचर पदार्थका एक ज्ञान होवै है. तहां जिस पदार्थकी स्मृति होवै तिस अंशमें वह ज्ञान अलौकिक है; जिस अंशका इंद्रियसंबंधजन्य है तिस अंशमें लौकिक है. जैसैं चंदनसैं नेत्रइंद्रियका संयोग होवै तिस कालमें सुगंध धर्मकी स्मृति होवै तब नेत्रइंद्रियजन्य "सुगंधि चंदनम्" ऐसा प्रत्यक्ष होवै है. तहां चंदनत्वविशिष्ट चंदन तो नेत्रके योग्य है, और चंदनका धर्म यद्यपि सुगंध है तासैं नेत्रसंयुक्त समवायसंबंधभी है, तथापि नेत्रके योग्य सुगंध नहीं घ्राणके योग्य सुगंध है, यातैं नेत्रसंयुक्त समवाय संबंधसैं सुगंध धर्मका चाक्षुषसाक्षात्कार होवै नहीं; किंतु नेत्रसंयोगतैं चंदनव्यक्तिका और नेत्रसंयुक्त समवायतैं चंदनत्वका चाक्षुष ज्ञान होवै है. चंदनके सुगंधगुणतैं नेत्रका संयुक्त समवाय संबंध विद्यमानभी अकिंचित्कर है, तथापि नेत्रके संयोग होतेंही "सुगंधि चंदनम्" इस रीतिका चंदनगोचर चाक्षुषज्ञान अनुभवसिद्ध है; यातैं चंदनवृत्ति सुगंध गुणसैं नेत्रका संबंध कोई साक्षात्कारका हेतु मानना चाहिये. तहां और तौ कोई संबंध नेत्रका सुगंधगुणसैं है नहीं;

नेत्रसंयुक्त समवाय है सो गंधज्ञानका जनक नहीं. और जाकूं चंदनकी सुगंधता घ्राणसैं अनुभूत होवै ताकूंही चंदनका नेत्रसैं "सुगन्धि चन्दनम्" ऐसा ज्ञान होवै है, जाकूं चंदनकी सुगंधवत्ता घ्राणसैं अनुभूत नहीं होवै. ताकूं चंदनसैं नेत्रका संयोग हुए"सुगन्धि चन्दनम्"ऐसा ज्ञान होवै नहींः इस रीतिसैं पूर्व अनुभवजन्य सुगंधके संस्कारका"सुगन्धि चन्दनम्" या प्रत्यक्षतैं अन्वयव्यतिरेक है, यातैं "सुगन्धि चन्दनम्" या चाक्षुषज्ञानका सुगंधानुभवजन्य संस्कार वा सुगंध स्मृति हेतु है. जो सुगन्धसंस्कारकूं अथवा स्मृतिकूं सुगंध प्रत्यक्षकी स्वतन्त्रकारणता कहैं तो सुगंधअंशमें वह ज्ञान चाक्षुष नहीं होवेगा. और "सुगन्धि चंदनम" यह ज्ञान सुगंध अंशमेंभी चंदनचंदनत्वकी नांई चाक्षुषही अनुभवसिद्ध है, यातैं ता ज्ञानके हेतु संस्कारकूं वा स्मृतिकूं नेत्रका संबंध मानना चाहिये. जो नेत्रका संबंध मानैं तो सुगंधज्ञानभी संस्कार वा स्मृतिरूप नेत्रके संबंधजन्य है, यातैं चाक्षुष है, परंतु संस्कार वा स्मृतिनेत्रनिरूपित होवै तो नेत्रका संबंध होवै. जैसैं घटनिरूपितसंयोग घटका संबंध कहिये है, पटनिरूपित संयोग पटका कहिये है. इस रीतिसैं सुगंधगोचर स्मृति और संस्कारभी नेत्रनिरूपित होवै तो नेत्रका संबंध संभवै, अन्यथा नेत्रका संबंध सुगंधकी स्मृतिकूं वा सुगंधके संस्कारकूं कहना संभवै नहीं; यातैं इस रीतिसैं नेत्रनिरूपित हैं. जब चंदनका साक्षात्कार होवै तब मन आत्माका संबंध होयके मन और नेत्रका संबंध होवैं है. आत्मसंयुक्त मनसंयुक्त नेत्रका चंदनसैं संयोग होवै है; इस रीतिसैं मन आत्माका संयोग और मन नेत्रका संयोग चंदनसाक्षात्कारका हेतु हैं; जिस कालमें आत्मसंयुक्त मनका नेत्रसैं संयोग होवै तिसकालमें सुगंधकी स्मृति अथवा सुगंधके संस्कार आत्मामें समवायसंबंधसैं हैं. तिनका विषय सुगंध है, यातैं स्वसंयुक्त मनःसंयुक्तात्मसमवेत ज्ञान अथवा स्वसंयुक्त मनःसंयुक्तात्मसमवेत संस्कार चंदनके सुगंधमें है. काहेतैं ? स्वशब्दसैं नेत्रका ग्रहण है तासैं संयुक्त कहिये संयोगवाला मन है, तासैं संयुक्त कहिये संयोगवाला आत्मा है, तामें समवेत कहिये समवायसंबंधसैं वृत्ति सुगंधकी स्मृति है, और सुगंधका

संस्कारभी समवायसंबंधसैं आत्मवृत्ति है; यातैं नेत्रसंयुक्त मनःसंयुक्तात्मसमवेत स्मृति ज्ञान और नेत्रसंयुक्त मनःसंयुक्तात्मसमवेत संस्कार ये दोनों नेत्रनिरूपित हैं, नेत्रघटितस्वरूप यह परंपरा है, यातैं नेत्रका संबंध है, इस परंपरा संबंधका प्रतियोगी नेत्र है और अनुयोगी सुगंध है. जामें संबंध रहै सो संबंधका अनुयोगी कहिये है. स्मृतिरूप अथवा संस्काररूप जो उक्त परंपरासैं नेत्रका संबंध ताका विषय सुगंध है, यातैं उक्त संबंधका सुगंध अनुयोगी है. ज्ञानकी अधिकरणता विषयमें अनुभवसिद्ध है, यातैं आत्माकी नांई विषयभी ज्ञानका अधिकरण और अनुयोगी कहिये है, जैसें "घटे ज्ञानम्" यह व्यवहार होवै है तहां "घटवृत्ति ज्ञानम्" यह उक्तवाक्यका अर्थ है. इस रीतिसैं विषयभी आत्माकी नांई ज्ञानका आधार होनेतैं अनुयोगी है, परंतु समवाय संबंधसैं ज्ञानोंका आधार आत्मा है; और विषयतासंबंधसैं ज्ञानका आधार सुगंधादिक विषय है. जो ज्ञानका आधार होवै सोई संस्कारका आधार होवै है. काहेतैं ? पूर्व अनुभवतैं संस्कार उपजै है और अनुभवके समान विषयवाले उत्तर स्मृति आदिकनकूं उपजावैं हैं, यातैं पूर्व अनुभव संस्कार स्मृति इन तीनोंका आश्रय विषय समान होवै है; यातैं सुगंधगोचरसंस्कारभी विषयतासंबंधसैं सुगंधमें रहै है; यातैं नेत्रप्रतियोगिक संस्कारका अनुयोगी सुगंध है. इस रीतिसैं स्मृतिरूप अथवा संस्काररूप संबंध नेत्रका सुगंधसैं है और संयोगसंबंध चंदनव्यक्तिसैं है, संयुक्तसमवाय चंदनत्वसैं है, यातैं तीनोंकूं विषय करनेवाला "सुगन्धि चन्दनम्" यह चाक्षुषसाक्षात्कार होवै है. सुगंधवाला चंदन है यह वाक्यका अर्थ है. नेत्रसैं सुगंध चंदनत्व चंदनका साक्षात्कार होवै तहां चंदनत्वसैं तो लौकिक संबंध है. संयोगादिक षट्संबंधनकूं लौकिकसंबंध कहै हैं. स्मृति और संस्कार लौकिक संबंधसैं भिन्न होनेतैं अलौकिक हैं. जहां चंदनसैं नेत्रके संबंधकालमें सुगंधस्मृति अनुभवसिद्ध होवै तहां स्मृतिरूप संबंध है. और स्मृतिका अनुभव नहीं होवै तो संस्कारही संबंध है. इस अलौकिक संबंधकूं ज्ञानलक्षणसंबंध कहै हैं. स्मृतिमें तो ज्ञानशब्दका प्रयोग प्रसिद्ध ही है, और

संस्कारभी ज्ञानजन्य होवै है. उत्तर ज्ञानका जनक होवै है, यातैं ज्ञानका संबंधी होनेतैं ज्ञान कहै हैं.

तैसैं योगीकूं इंद्रियसंबंधीके साक्षात्कारकी नांई इंद्रियसैं व्यवहितकाभी साक्षात्कार होवै है; तहां योगाभ्यासतैं इंद्रियमें विलक्षण सामर्थ्य होवै है, यातैं योगज धर्मही इंद्रियका संबंध कहिये है. परंतु यामें मतभेद है.

जगदीशभट्टाचार्यका तो यह मत है:—जिस इंद्रियके योग्य जो पदार्थ होवै है, तिस इंद्रियतैं ता पदार्थका साक्षात्कार होवै है. योगीकूं व्यवहितका और भूतभावीकाभी इंद्रियजन्य साक्षात्कार होवै है. योगीसैं इतरकूं वर्तमान इंद्रियसंबंधीकाही साक्षात्कार होवै है और जा इंद्रियके जो पदार्थ योग्य नहीं तिस इंद्रियतैं ता पदार्थका साक्षात्कार योगीकूंभी होवै नहीं. जैसैं रूपका ज्ञान नेत्रसेही होवै है रसनादिकनतैं होवै नहीं.

और कितने ग्रंथकारनका यह मत है:—योगकी अद्भुत महिमा है. अभ्यासके उत्कर्ष अपकर्षतैं योगजधर्म विलक्षण होवै है. किसीमें तो अभ्यासके उत्कर्षतैं ऐसा धर्म होवै है. एक इंद्रियतैं योग्य अयोग्य सकलका ज्ञान होवै है, किसीमें अभ्यासके अपकर्षतैं योग्यविषयके ज्ञानकाही सामर्थ्य होवै है. सर्व प्रकारसैं योगज धर्मसैं व्यवहितका ज्ञान होवै है, यातैं योगज धर्मभी अलौकिक संबंध है.

१५८ न्यायमतमें अलौकिक संबंधसैं देशांतरस्थ रजतत्वका शुक्तिमें प्रत्यक्ष भान और ता भानसैं सुगंधिचंदनके भानतैं विलक्षणता.

इस रीतिसैं इंद्रियके संयोगादिक संबंधविना अलौकिकसंबंधतैंभी इंद्रियजन्य साक्षात्कार होनेतैं देशांतरस्थ रजतवृत्ति रजतत्वकाभी शुक्तिमें अलौकिक संबंधसैं चाक्षुष साक्षात्कार संभवै है. जैसैं सुगंध स्मृति और चंदनसैं नेत्रसंयोग हुयां " सुगन्धि चन्दनम्" इस रीतिसैं योग्यअयोग्यानुभवगोचर चाक्षुषज्ञान होवै है. इस रीतिसैं दोषसहित नेत्रका शुक्तिसैं संयोग होवै है. शुक्तिव्यक्ति तो नेत्रके योग्य है; और रजतत्वजाति यद्यपि प्रत्यक्षयोग्य है

तथापि जातिका आश्रय व्यक्ति जहां प्रत्यक्षगोचर होवै तहां जातियोग्य है और जहां जातिका आश्रय प्रत्यक्षयोग्य नहीं तहां जाति अयोग्य है, याप्र संगमें रजतत्वका आश्रय रजतव्यक्ति नेत्रसैं व्यवहित है. यातैं नेत्रयोग्य नहीं जैसैं सुगंध अंशमें चंदनज्ञान अलौकिक है; तैसैं "इदं रजतम्" यह ज्ञानभी रजतत्व अंशमें अलौकिक है, परंतु इतना भेद है:—"सुगान्धि चन्दनम्" या ज्ञानसैं तो चंदनवृत्ति सुगंध चंदनमें भासै है. और "इदं रजतम्" या ज्ञानमें इदंपदार्थमें अवृत्ति रजतत्व इदंपदार्थमें भासै है; तैसैं औरभी विलक्षणता है "सुगान्धि चन्दनम्" या ज्ञानसैं नेत्रके अयोग्य सुगंध भासै है, और चंदनकी सकल सामान्य विशेषता भासै है, और "इदं रजतम्" या ज्ञानसैं व्यवहित होनेतैं नेत्रके अयोग्य रजतत्वका भास तो सुगंधभासके समान है, परंतु चंदनके विशेषरूप चंदनत्वके भासकी नाई शुक्तिका विशेषरूप शुक्तित्वका भास होवै नहीं; और मलयाचलोद्भूत काष्ठविशेषरूप चंदनके अवयव भासै है. और शुक्तिके त्रिकोणतादि विशिष्ट अवयव भासै नहीं. इस रीतिसैं दोनों ज्ञानोंका भेद है. उक्त भेदकृतही क्रमतैं यथार्थत्व अयथार्थत्व है. यद्यपि इंद्रिय संयोग और अयोग्य धर्मकी स्मृतिरूप सामग्री दोनों ज्ञानोंमें सामान्य है और सामग्रीभेद विना उक्तप्रकारकी विलक्षणता संभवै नहीं; तथापि सामग्रीमें दोषराहित्य और दोषसाहित्य विलक्षणता है, यातैं उक्त विलक्षणता संभवै है. जैसैं "सुरभि चन्दनम्" या स्थानमें ज्ञानलक्षणसंबंधकी निरूपकता नेत्रकूं है, तैसैं "इदं रजतम्" या स्थानमेंभी नेत्रसंयुक्त मनःसंयुक्तात्मसमवेतज्ञानसंबंध है; ताका निरूपक नेत्र है और विषय रजतत्व है सो स्मृति ज्ञानका अनुयोगी है. जा विषयका ज्ञान होवै सो विषयतासंबंधसैं ज्ञानका अनुयोगी होवै है. नेत्रसैं संयोगवाला होनेतैं नेत्रसंयुक्त मन है, तासैं संयुक्त कहिये संयोगवाला जो आत्मा तामें समवेत ज्ञान रजतत्वकी स्मृति है; सो विषयतासंबंधसैं रजतत्वमें है. इस रीतिसैं नेत्रसंयुक्त मनःसंयुक्तात्मसमवेत ज्ञानरूप नेत्रका संबंध रजतत्वमें होनेतैं नेत्रसंबद्ध रजतत्वका भ्रमज्ञान प्रत्यक्ष है.

अथवा ज्ञानरूप संबंध नहीं किंतु ज्ञानका विषयतासंबंध है, यातैं नेत्रसैं युक्त मनःसंयुक्तात्मसमवेत ज्ञान विषयतासंबंध अलौकिक संबंध है, "सुगन्धि चन्दनम्" या स्थानमें संबंधरूप उक्त विषयता सुगंधमें है, और "इदं रजतम्" या स्थानमें नेत्रसंयुक्त मनः संयुक्तात्मसमवेत ज्ञान रजतत्व-स्मृति है; ताकी विषयता रजतत्वमें हैं. इस रीतिसैं विषयता अंश संबंधमें मिलावनेतैं संबंधके अनुयोगी सुगंध रजतत्व स्पष्टही है, यातैं अन्यथाख्या-तिवाद संभवै है. नेत्रके संबंध विना रजतत्वका ज्ञान संभवै नहीं, यह दोष अन्यथाख्यातिवादमें नहीं. इस रीतिसैं रजतत्व रूप विशेषणतैं नेत्रका अलौ-किक संबंध और शुक्तिरूप विशेष्यतैं लौकिकसंबंध मानिके अन्यथाख्या तिका संभव कहै हैं.

१५९ अनिर्वचनीयख्यातिमें न्यायउक्त दोष.

और अनिर्वचनीय ख्यातिमें यह दोष कहै हैं:—अन्यथाख्यातिवादीकूं भ्रमज्ञानकी कारणता दोषमें माननी होवै है और अनिर्वचनीयख्यातिवादीकूं रजतादिक अनिर्वचनीय विषयकी कारणता और तिसके ज्ञानकी कारणता माननी होवै है, यातैं अन्यथाख्यातिवादमें लाघव है. और अनिर्वचनीय ख्या-तिवादीकूं अन्यथाख्याति विना निर्वाह होवै नहीं. कहूं अन्यथाख्याति मानै हैं, कहूं अनिर्वचनीयख्याति मानै हैं, यातैं सारै अन्यथाख्यातिही माननी योग्य है. और सारै अनिर्वचनीयख्याति मानै तौ अद्वैतवादीकूं स्वमतके ग्रंथ-नसैं विरोध होवैगा. और अनिर्वचनीयख्यातिसैं निर्वाह होवै नहीं. जहां अनिर्वचनीयख्याति नहीं संभवै तहां अद्वैतमतके ग्रंथनमें अन्यथाख्यातिही लिखी है. जैसैं अनात्मपदार्थनमें अबाध्यत्वरूप सत्यत्वप्रतीति होवै है तहां अनिर्वचनीय अबाध्यत्वकी अनात्मपदार्थनमें उत्पत्ति कहैं तो अजन्मका जन्म हुआ, नित्यका ध्वंस हुआ इन वाक्यनतैं समान यह कथन विरुद्ध है; यातैं आत्मसत्यताकी अनात्ममें प्रतीतिरूप अन्यथाख्यातिही संभवै है और ऐसैं स्थानमें अन्यथाख्यातिही अद्वैतग्रंथनमें लिखी है और परोक्षभ्रमस्थ-लमेंभी अद्वैतग्रंथनमें अन्यथाख्यातिही कही है. यह तिनका तात्पर्य है:—

प्रत्यक्षज्ञान तो नियमतैं वर्तमानगोचर होवै है, और जा विषयका प्रमातासैं संबंध होवै तिस विषयका ज्ञान प्रत्यक्ष कहिये है. व्यवहित रजतके रजतत्वका प्रमातासैं संबंध संभवै नहीं; यातैं पुरोवर्ति देशमें रजतकी सत्ता अवश्य चाहिये. और परोक्ष ज्ञान तो अतीतका और भविष्यत्‌काभी होवै है; यातैं परोक्ष ज्ञानके विषयका प्रमातासैं संबंध अपेक्षित नहीं और संभवैभी नहीं. काहेतैं ? जहां अनुमान प्रमाणतैं वा शब्दप्रमाणतैं देशांतरस्थ कालांतरस्थका यथार्थज्ञान होवै तहांभी भिन्नदेशस्थ भिन्नकालस्थ प्रमातासैं संबंध होवै नहीं. भ्रमरूप परोक्ष ज्ञानमें तो प्रमातासैं विषयका संबंध सर्वथा असंभावित है, यातैं परोक्षभ्रमस्थलमें अनिर्वचनीयख्याति नहीं किंतु विषयशून्यदेशमें विषयकी प्रतीतिरूप अन्याथाख्याति है. इस रीतिसैं बहुत स्थलमैं अन्यथाख्याति मानिके अपरोक्षभ्रममें जहां व्यवहित आरोपित होवै तिसी स्थानमें अनिर्वचनीयख्याति मानी है. और जहां पुरोवर्ति देशमें अधिष्ठानसंबंधी आरोपित होवै तहांभी अन्यथाख्यातिही है. काहेतैं ? अधिष्ठानगोचर वृत्ति होवै तब आरोपित वस्तुका प्रमातासैं संबंध अन्यथा ख्याति मानेभी संभवै है. अनिर्वचनीय विषयकी उत्पत्ति निष्प्रयोजन है, इस रीतिसैं अद्वैतवादीके मतमें एक अनिर्वचनीय ख्यातिसैं निर्वाह होवै नहीं, और अन्यथाख्याति मानें तो अनिर्वचनीय ख्यातिका मानना होवै नहीं. जहां व्यवहित आरोपित होवै और प्रत्यक्षभ्रम होवै तिस स्थानमें अद्वैतवादीने अन्यथाख्यातिका असंभव कह्या है तहांभी उक्त रीतिसैं नेत्रका ज्ञानलक्षणसंबंध संभवै है. यातैं प्रत्यक्ष भ्रमका संभव होनेतैं अनिर्वचनीय ख्यातिका अंगीकार प्रयोजनशून्य गौरव दूषित है.

१६० सामान्यलक्षणादि अलौकिसंबंधकूं प्रत्यक्षज्ञानहेतुताका असंभवकरिके भ्रमज्ञानको इंद्रियअजन्यता.

ऊपर कहे हुए अनंत निरर्थक प्रलाप नैयायिक विवेकके अभावतैं करे हैं. काहेतैं ? जो सामान्यलक्षणादिक संबंध प्रत्यक्ष ज्ञानके हेतु कहे सो सकलके अनुभवसे विरुद्ध हैं. जाकूं एक घटका नेत्रजन्य ज्ञान होवै ताकूं

पूछै—कितने घटनका चाक्षुषसाक्षात्कार तेरेकूं हुआ हैं ? तब प्रश्नकर्ताकूं द्रष्टा यह कहै हैः—मेरे नेत्रके अभिमुख एक घट है. कितने घटनका साक्षात्कार हुआ यह तेरा प्रश्न अविवेकसैं है. इस रीतिसैं घटका द्रष्टा प्रश्नका उपालंभ करै है. नैयायिक रीतिसैं लौकिक अलौकिक भेदसैं सकल घटनके प्रत्यक्षकी सामग्री होनेतैं उपालंभ संभवै नहीं ऐसा उत्तर कह्या चाहिये. एक घटका लौकिक चाक्षुष हुआ है, अलौकिक चाक्षुष साक्षात्कार सर्वथा हुआ है, और व्यवहित घटका साक्षात्कार सुनि सर्वके हृदयमें विस्मय होवै है, यातैं सामान्यलक्षण संबंधसें साक्षात्कार सर्वलोकविरुद्ध है और सर्वतंत्रविरुद्ध है; परंतु एक घटका साक्षात्कार होवै तब घटांतरकी सजातीयतासैं स्मृत्यादिक संभवै हैं; तैसे " सुरभि चन्दनम् " इस रीतिसैं चंदनमें सुगंध धर्मावगाही चाक्षुषसाक्षात्कार ज्ञानरूप संबंधतैं नेत्रजन्य होवै है. यह कथनभी नैयायिकका विरुद्ध है. काहेतैं ? जा पुरुषकूं चंदनका साक्षात्कारहोवै ताकूं यह पूछैः-"किं दृष्टम्"तब द्रष्टा यद्यपि ऐसे कहै है"सुगन्धि चन्दनं दृष्टम्"तथापि फेरि विवेचनसैं पूछैः—इस चंदनमें सुगंध है यह ज्ञान तेरेकूं किस रीतिसैं हुआ ? तब द्रष्टा यह कहै हैः—श्वेतचंदन है, यातैं सुगंध यामें अवश्य होवेगा. रक्तचंदनमें सुगंध नहीं होवै है, इस रीतिके श्वेतमें गंध होवै है; इस रीतिसैं सुगंधज्ञानमें अनुमानजन्यताके सूचक वचन कहै है. और नेत्रसे सुगंधका साक्षात्कार मेरेकूं हुआ है ऐसा उत्तर कहै नहीं, यातैं सुगंधका ज्ञान नेत्रजन्य प्रत्यक्षरूप नहीं; किंतु सुगंध अंशमें वह ज्ञान अनुमिति है चंदन अंशमें प्रत्यक्ष है. और " सुगन्धि चन्दनम् " इस वाक्य प्रयोगवाले चंदनद्रष्टाकूं पूछैः—या चंदनमें अल्पगंध है अथवा उत्कट गंध हैं ? तब ऐसा उत्तर कहै हैः—नेत्रसैं श्वेतचंदन प्रतीत होवै है यातैं गंध सामान्यकी अनुमिति होवै है. गंधका प्रत्यक्ष होवै तो गंधके उत्कर्ष अपकर्षका ज्ञान होवै. यातैं गंधके उत्कर्ष अपकर्ष तो नासिकासैं आघ्रात करे तब ज्ञान होवै, नेत्रसे तो श्वेतचंदनका ज्ञान होवै है; तासैं गंधसामान्यका ज्ञान होवै है ऐसा उत्तर कहनेसेभी सुगंधके ज्ञानकी अनुमिति होवै है, प्रत्यक्ष होवै नहीं. जा इंद्रियसैं

रूप-रस-गंध स्पर्श-शब्दका ज्ञान होवै ता इंद्रियसैं रूपादिकनके उत्कर्ष अपकर्षका ज्ञान होवै है. जो नेत्रेंद्रियसैं गंधका ज्ञान होवै तो गंधके उत्कर्ष अपकर्षका ज्ञान हुआ चाहिये; यातैं चंदनमें सुगंधका ज्ञान अनुमितिरूप है, प्रत्यक्ष नहीं. अनुमितिज्ञानसैं तो उत्कर्ष अपकर्षकी अप्रतीति अनुभवसिद्ध है. धूमसैं वह्निका ज्ञान होवैं तहां वह्निके अल्पत्वमहत्वका ज्ञान होवै नहीं. और जो नैयायिक ऐसैं कहैं लौकिक संबंधजन्य प्रत्यक्षसे विषयके उत्कर्ष अपकर्ष भासैं हैं. अलौकिकसैं विषयका सामान्यधर्म भासै है विशेष धर्म भासैं नहीं, सोभी असंगत है. काहेतैं ? सामान्य धर्मसैं तो परोक्ष ज्ञानसैंभी विषयका प्रकाश संभवै है. अप्रसिद्ध संबंधसैं अप्रसिद्ध प्रत्यक्ष कल्पना निष्प्रयोजन है. और विशेषरूपतैं सुगंधका प्रकाश होवै नहीं, सामान्यरूपतैं सुगंधका प्रकाश है, ऐसा सुगंधका ज्ञान नेत्रसे होवै हैं. इस नैयायिकवचनमें यह सिद्ध होवै हैं, नेत्रसैं श्वेतचंदनका साक्षात्कार होते ही सुगंधका सामान्य ज्ञान अनुमितिरूप होवै हैं. ता अनुमितिका प्रयोजक चंदनकी श्वेतताज्ञान-द्वारा नेत्र है. इस रीतिसैं सुगंधका ज्ञान नेत्रजन्य नहीं अनुमिति हैं. और जो नैयायिक ऐसैं कहैं:-यद्यपि नेत्रजन्य सुगंधका ज्ञान उत्कर्ष अपकर्षकूं प्रकाशे नहीं यातैं अनुमितिके समान है तथापि अनुमितिरूप संभवै नहीं. काहेतैं? "सुगन्धि चन्दनम्" यह ज्ञान एक हैं दो नहीं. एक ही ज्ञानकूं सुगंधअंशमें अनुमितिता और चंदनअंशमें प्रत्यक्षता कहै तो अनुमितित्व प्रत्यक्षत्व विरोधी धर्मका समावेश होवैंगा; यातैं सर्व अंशमें प्रत्यक्ष है यह कथनभी संभवै नहीं. काहेतैं ? तेरे मतमें एक ज्ञानमें जैसें लौकिकत्व अलौकिकत्व विरोधी धर्मका समावेश है, तैसें अनुमितित्व प्रत्यक्षत्वकाभी एक ज्ञानमें समावेश संभवै है और प्रत्यक्षत्व अनुमितित्वका विरोध तो न्यायशास्त्रके संस्कारवालेकूं प्रतीत होवै है. और लौकिकत्व तो परस्पराभावरूप है, यातैं तिनका विरोधी सर्वकूं भासैं है. प्रतियोगीअभावका परस्पर विरोध है. यह सकल लोकमें प्रसिद्ध हैं; यातैं लोकप्रसिद्ध विरोधवाले धर्मनका समावेश नैयायिक माने हैं, यातैं विरोधी पदार्थनका समावेश नहीं. यह वाक्य निर्लज्जतामूलक है.

और वेदांतमतमें तो अंतःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञान सांश होनेतें एक वृत्तिमें अंशभेदतें विरोधि धर्मनका समावेश संभवै है. न्यायमतमें ज्ञानजन्यता है परंतु द्रव्य नहीं, यातें सांश नहीं. निरंश ज्ञानमें विरोधी धर्मनका समावेश बाधित है, यातें "सुगन्धि चन्दनम्" यह ज्ञान सुगंध अंशमें अनुमिति है और चंदन अंशमें प्रत्यक्ष है. अथवा ज्ञानका उपादान अंतःकरण सांश है, यातें अंतःकरणके परिणाम दो ज्ञान हैं. "सुगन्धि" यह ज्ञान अनुमितिरूप है; "चन्दनम्" यह ज्ञान प्रत्यक्ष है. दोनों परिणाम एक कालमें होवैहैं, यातें तिनका द्वित्व कदीभी भासै नहीं. इस रीतिसैं "सुरभि चन्दनम्" यह ज्ञान सुगंधअंशमें चाक्षुष नहीं, और या ज्ञानकूं किसी रीतिसैं अलौकिक संबंधजन्यता कहै भी तथापि "इदं रजतम्" इत्यादिक भ्रम तो उक्तरीतिसैं संभवै नहीं. काहेतैं ? शुक्तिसैं नेत्रका संबंध और रजतत्वस्मृतिकूं "इदं रजतम्" या ज्ञानकी कारणता मानै ताकूं यह पूछै हैं:—शुक्तिसैं नेत्रका संबंध होयके शुक्तिरजत साधारण धर्म चाकचिक्यविशिष्ट शुक्तिका इदंरूपतैं सामान्यज्ञान होयके रजतकी स्मृति होवै है, तिसतैं उत्तर भ्रम होवै है अथवा शुक्तिके सामान्यज्ञानतैं पूर्वही शुक्तिसैं नेत्रका संबंध होवै तिसी कालमें रजतत्वविशिष्ट रजतकी स्मृति होयके "इदं रजतम्" यह भ्रम होवै है ? जो प्रथम पक्ष कहै तो संभवै नहीं. काहेतैं ? प्रथम तो शुक्तिका सामान्य ज्ञान, तिसतैं उत्तर रजतत्वविशिष्ट रजतकी स्मृति, तिसतैं उत्तर रजतभ्रम, इस रीतिसैं तीनि ज्ञानोंकी धारा अनुभवसैं बाधित है. "इदं रजतम्" यह एक ही ज्ञान सर्वकूं प्रतीत होवै है.

और जो ऐसै कहै:—प्रथम शुक्तिका सामान्य ज्ञान हुए विना शुक्तिसैं नेत्रके संयोगकालमें रजतकी स्मृति होयके "इदं रजतम्" यह भ्रम होवै है, सोभी संभवै नहीं. काहेतैं ? सकल ज्ञान चेतनरूप स्वप्रकाश है. वृत्तिरूप ज्ञान साक्षीभास्य है. कोई ज्ञान किसी कालमें अज्ञात होवै नहीं. यह वार्ता आगे प्रतिपादन करेंगे; यातैं शुक्तिसैं नेत्रके संयोगकालमें रजतकी स्मृति होवै तो स्मृतिका प्रकाश हुआ चाहिये. स्मृतिमें चेतनभाग

तो स्वयंप्रकाश है और वृत्तिभागका साक्षी अधीन सदा प्रकाश होवै है, यातैं स्मृतिका अनुभव हुआ चाहिये. और नैयायिककूं शपथपूर्वक यह पूछै, शुक्तिमें "इदं रजतम्" या भ्रमतैं पूर्वकालमें रजतस्मृतिका अनुभव तेरेकूं होवै है ? तब यथार्थवक्ता होवै तो स्मृतिके अनुभवका अभावही कहै है, यातैं शुक्तिसैं नेत्रसंयोगकालमें भ्रमके पूर्व रजतकी स्मृति संभवै नहीं.

औंर जो ऐसैं कहैः—रजतानुभवजन्य रजतगोचर संस्कारसहित नेत्रसंयोगतैं रजतभ्रम है, संस्कारगुण प्रत्यक्षयोग्य नहीं; किंतु अनुमेय है, यातैं उक्त दोष नहीं, तथापि ताकूं यह पूछैं हैंः—उद्‌बुद्ध संस्कार भ्रमके जनक हैं अथवा उद्‌बुद्ध और अनुद्‌बुद्ध दोनों संस्कार भ्रमके जनक हैं ? जो दोनोंकूं जनकता कहै तो संभवै नहीं. काहेतैं ? अनुद्‌बुद्ध संस्कारनसैं स्मृत्यादिक ज्ञान कदीभी होवै नहीं. जो अनुद्‌बुद्धसैंभी स्मृति होवै तो अनुद्‌बुद्धसंस्कारसैं सर्वदा स्मृति हुई चाहिये; यातैं उद्‌बुद्धसंस्कारसैं स्मृति होवैं हैं. तैसैं भ्रमज्ञानभी उद्‌बुद्धसंस्कारसैं ही संभवै है, यातैं उद्‌बुद्ध संस्कार भ्रमके जनक हैं यह कहै सोभी संभवै नहीं. काहेतैं ? संस्कारके उद्बोधक सदृशदर्शनादिक हैं; यातैं शुक्तिसैं नेत्रके संयोगतैं चाकचिक्यविशिष्ट शुक्तिका ज्ञान हुए पाछै रजतगोचर संस्कारका उद्बोध संभवै हैं. नेत्रशुक्तिके संयोगकालमें रजतगोचरसंस्कारका उद्बोध संभवै नहीं, यातैं यह मानना होवेगा. प्रथमक्षणमें नेत्रसंयोग, द्वितीय क्षणमें चाकचिक्यधर्मविशिष्ट शुक्तिका ज्ञान, तिसतै उत्तर क्षणमें संस्कारका उद्‌बोध, तिसतैं उत्तरक्षणमें रजतभ्रम संभवै है. इस रीतिसैं नेत्रसंयोगतैं चतुर्थ क्षणमें भ्रमज्ञानकी उत्पत्ति सिद्ध हुई. सो अनुभवसैं बाधित है. नेत्रसंयोगसैं अव्यवहित उत्तरक्षणमें चाक्षुष ज्ञान होवै है. तैसाही अनुभव होवै है, यातैं उक्त रीति असंगत है.

और उक्त रीतिसैं शुक्तिके दो ज्ञान सिद्ध होवै हैं. एक तो संस्कारका उद्‌बोधक सामान्य ज्ञान और दूसरा संस्कारजन्य भ्रमज्ञान. इस रीतिसैं शुक्तिके दो ज्ञानभी अनुभवसिद्ध नहीं हैं. नेत्रसंयोग होनेतैंही "इदं रजतम्"

यह एकही ज्ञान अनुभवासिद्ध है, यातैं रजतानुभवजन्यसंस्कारसहित नेत्रसंयोगतैं " इदं रजतम् " यह भ्रम होवै है यह कहनाभी संभवै नहीं.

और "सुगन्धि चन्दनम्" या ज्ञानकूं अलौकिकप्रत्यक्ष मानैं तोभी "इदं रजतम्" यह ज्ञान तो ज्ञानलक्षण अलौकिक संबंधजन्य संभवै नहीं. काहेतैं? "सुगन्धि चन्दनम्" यह ज्ञान हुए सुगंधके उत्कर्ष अपकर्षका संदेह होवै है; यातैं सुगंधके उत्कर्ष अपकर्षका निश्चयरूप प्राकट्य अलौकिक ज्ञानतैं होवै नहीं. यह मानना चाहिये. जो अलौकिक ज्ञानतैंभी विषयका प्राकट्य होवै तो सुगंधके अपकर्षादिकनका संदेह संभवै नहीं. और " इदं रजतम् " या भ्रमतैं और सत्य रजतमें " इदं रजतम् " या प्रमातैं रजतकी प्रकटता सम होवै है. जो भ्रम स्थलमें रजतकी प्रकटता न होवै तो रजतके परिमाणादिकनका संदेह हुआ चाहिये ? और परिमाणादिकनका संदेह होवै नहीं, यातैं भ्रमज्ञानतैं रजतकी प्रकटता होवै है. और ज्ञानलक्षणसंबंधजन्य ज्ञानतैं विषयकी प्रकटता होवै नहीं, यातैं " इदं रजतम् " या भ्रमज्ञानका हेतु ज्ञानलक्षणसंबंध नहीं.

और विचार करै तो ज्ञानरूप संबंध कहूंभी संभवै नहीं. काहेतैं ? ज्ञानलक्षणसंबंधसैं अलौकिक प्रत्यक्ष होवै है. या पक्षका यह निष्कर्ष है. जहां एक पदार्थकी अनुभवजन्य स्मृति होवै अथवा अनुभवजन्य संस्कार होवै और परपदार्थसैं इंद्रियका संबंध होवै तहां इंद्रियसंबंधीमें स्मृतिगोचर पदार्थकी अथवा संस्कारगोचर पदार्थकी प्रतीति होवै है. इंद्रियसंबंधी पदार्थ तो विशेष्यरूपतैं प्रतीत होवै है. और स्मृतिगोचर पदार्थ विशेषणरूपतैं प्रतीत होवै है. जैसैं "सुगन्धि चन्दनम्"या ज्ञानमें नेत्ररूप इंद्रियसंबंधी चंदन विशेष्य है और स्मृतिगोचर सुगंध विशेषण है. तैसैं "इदं रजतम्" या भ्रमज्ञानमेंभी इंद्रियसंबंधी शुक्ति विशेष्य है और स्मृतिका गोचर अथवा संस्कारका गोचर रजतत्व विशेषण है. विशेषण विशेष्य दोनोंका ज्ञान प्रत्यक्ष है. या पक्षका अंगीकार होवै तो अनुमानप्रमाणका उच्छेद होवैगा. काहेतैं ? "पर्वतो वह्निमान्" ऐसा अनुमितिज्ञान अनुमानप्रमाणतैं होवै है, हेतुमें साध्यकी व्या-

प्तिके स्मरणतैं अथवा साध्यकी व्याप्तिके उद्बुद्ध संस्कारनतैं अनुमितिज्ञान होवै है, यह अर्थ अनुमाननिरूपणमें निर्णीत है. साध्यकी व्याप्तिकी स्मृति होवै तब व्याप्तिनिरूपक साध्यकीभी स्मृति होवै है, यातैं पर्वतसैं नेत्रका संयोग और वह्निकी स्मृतिसैं "पर्वतो वह्निमान्" ऐसैं प्रत्यक्षज्ञानका संभव होनेतैं पक्षमें साध्यनिश्चयरूप अनुमितिज्ञानका जनक अनुमानप्रमाणका अंगीकार निष्फल है. और गौतम कणाद कपिलादिक सर्वज्ञकृत सूत्रनमें अनुमानप्रमाण प्रत्यक्षसैं भिन्न कह्या है. जो अनुमानप्रमाण निष्प्रयोजन होता तो सूत्रनमें नहीं कहते; यातैं अनुमानका प्रयोजन साधक ज्ञानलक्षणसंबंधजन्य अलौकिक प्रत्यक्ष अलीक है. और जो अन्यथाख्यातिवादी ऐसैं कहै. प्रत्यक्ष ज्ञानकी विषयतासैं अनुमिति ज्ञानकी विषयता विलक्षण है, इसीवास्ते प्रत्यक्षके विषयमें परिमाणादिकनका संदेह नहीं होवै है और अनुमितिके विषयमें परिमाणादिकनका संदेह होवै है. इस रीतिसैं परोक्षता अपरोक्षतारूप विषयताका भेद अनुमितिज्ञान और प्रत्यक्षज्ञानके भेदसैं होवै है; यातैं परोक्षतारूप विषयताका संपादक प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं; किंतु अनुमितिज्ञान है. ताका हेतु अनुमानप्रमाण है, यह कथनभी संभवै नहीं. काहेतैं ? लौकिक प्रत्यक्षकी विषयता तो अनुमितिसैं विलक्षण है, परंतु "सुगन्धि चन्दनम्" इत्यादिक ज्ञान सुगंधादिक अंशमें अलौकिक है, तहां सुगंधका ज्ञान अनुमितिके समान है. जैसैं अनुमिति ज्ञानके विषयमें उत्कर्षादिक अनिर्णीत होवै हैं तैसैं सुगंधके उत्कर्षादिकभी अनिर्णीत हैं, यातैं अलौकिक प्रत्यक्षकी विषयताका अनुमितिकी विषयतासैं भेद नहीं. और भ्रमरूप अलौकिक प्रत्यक्षकी विषयता रजतादिकनमें है ताका तो यद्यपि अनुमितिकी विषयतासैं भेद अनुभवसिद्ध है, इसीवास्ते रजतकी अल्पतादिकनका संदेह होवै नहीं, तथापि ज्ञानलक्षणसंबंधजन्य अलौकिक प्रत्यक्षप्रमाकी विषयतासैं भेद नहीं. जैसैं अनुमितिके विषयमें अप्राकट्य है तैसैं अलौकिक प्रत्यक्षप्रमाके विषयगंधमें अप्राकट्य है. यातैं ज्ञानलक्षणसंबंधसैं पर्वतमें वह्निका अलौकिक प्रत्यक्षसैं प्रकाश संभवै है. अनुमितिज्ञानके वास्ते

अनुमानप्रमाण व्यर्थ होवेगा, और अनुमानप्रमाण सवर्ज्ञवचनासिद्ध है; यातैं अनुमानकी व्यर्थतासंपादक अलौकिकप्रत्यक्ष असिद्ध है.

और जो यह कह्या, विलक्षणविषयताका संपादक अनुमितिज्ञान है, ताका हेतु अनुमानप्रमाण व्यर्थ नहीं; यह कथनही असंगत है. काहेतैं ? जहां अनुमान प्रमाणतैं अनुमिति होवै तहां सारैं अलौकिक प्रत्यक्षकी सामग्री है. जैसैं पर्वतमें वह्निकी अनुमितिसे पूर्व धूमदर्शन व्याप्तिज्ञान तो अनुमितिकी सामग्री है; और पर्वतसैं नेत्रका संबंध और वह्निकी स्मृति यह अलौकिकप्रत्यक्षकी सामग्री है. दोनों ज्ञानोंकी दो सामग्री होनेतैं पर्वतमें वह्निका प्रत्यक्षरूपही ज्ञान होवैगा, अनुमितिज्ञान होवै नहीं; यातैं अनुमानप्रमाण व्यर्थ ही होवै है. काहेतैं ? यह न्यायशास्त्रका निर्णीत अर्थ है, जहां एकगोचर अनुमितिसामग्रीका और अपरगोचर प्रत्यक्षसामग्रीका समावेश होवै तहां अनुमिति सामग्री प्रबल है. जैसैं पर्वतसैं नेत्रसंयोग तो पर्वतके प्रत्यक्षकी सामग्रीका और वह्निकी अनुमितिकी सामग्रीका समावेश हुए वह्निकी अनुमिति होवै है, पर्वतका प्रत्यक्षज्ञान होवै नहीं. जहां धूमसैं और वह्निसैं नेत्रका संयोग होवै और धूममें वह्निकी व्याप्तिका ज्ञान होवै तहां वह्निकी अनुमितिकी सामग्री है और वह्निके प्रत्यक्षकी सामग्री है; यातैं समानगोचर उभयज्ञानकी सामग्री है; तहां प्रत्यक्षसामग्री प्रबल है, यातैं वह्निका प्रत्यक्षही ज्ञान होवै है. वह्निकी अनुमिति होवै नहीं. और पुरुषमें "पुरुषो न वा" ऐसा संदेह होयके "पुरुषत्वव्याप्यकरादिमानयम्" ऐसा प्रत्यक्षरूप परामर्शज्ञान और नेत्रका संयोग होवै तहां परामर्श तो पुरुषकी अनुमितिकी सामग्री है और पुरुषतैं पुरुषके नेत्रसंयोग पुरुषके प्रत्यक्षकी सामग्री है. तहां पुरुषका प्रत्यक्षज्ञानही होवै है, पुरुषकी अनुमिति होवै नहीं; यातैं एकविषयके दोनों ज्ञानोंकी सामग्री होवै तिनमें प्रत्यक्ष सामग्री प्रबल है; यातैं वह्निकी अनुमिति सामग्री होतेभी अलौकिक संबंधरूप सामग्रीतैं वह्निका प्रत्यक्ष ज्ञानही होवेगा इसरीतिसैं ज्ञानलक्षण अलौकिक संबंधतैं प्रत्यक्ष ज्ञानकी उत्पत्ति मानै तो अनुमान प्रमाण व्यर्थ है.

जो नैयायिक ऐसैं कहैः—यद्यपि भिन्न विषय होवै तहां प्रत्यक्षसामग्रीसैं अनुमिति सामग्री प्रबल है,और समान विषय होवै तहां अनुमितिसामग्रीसैं प्रत्यक्ष सामग्री प्रबल है,तथापि समानविषय होनेसैंभी लौकिक प्रत्यक्षकी सामग्री अनुमितिसामग्रीसैं प्रबल है. और अलौकिक प्रत्यक्षकी सामग्री तो अनुमितिकी सामग्रीसैं सारै दुर्बल है, यातैं पर्वतमें वह्निकी अनुमिति सामग्रीसैं अलौकिक प्रत्यक्ष सामग्रीका बाध होनेतैं अनुमानप्रमाण निष्फल नहीं, यह कहनाभी समीचीन नहीं. काहेतैं ? जहां स्थाणुमें "स्थाणुर्न वा" ऐसा संदेह होयके "पुरुषत्वव्याप्यकरादिमानयम्" ऐसा भ्रम होयके "पुरुषएवायम्" ऐसा भ्रमरूप प्रत्यक्ष होवै है; तहां नैयायिकवचनकी रीतिसैं अनुमिति हुई चाहिये, प्रत्यक्ष नहीं हुआ चाहिये. काहेतैं ? उक्त स्थलमें स्थाणुमें पुरुषत्वका प्रत्यक्ष होनेतैं भ्रमप्रत्यक्ष है. और भ्रमप्रत्यक्षकी तेरे मतमें अलौकिक सामग्री है यातैं अनुमिति सामग्रीसैं अलौकिक प्रत्यक्षकी सामग्रीकूं दुर्बल मानैं तो उक्त स्थलमें अनुमिति हुई चाहिये; और जो उक्त स्थलमें पुरुषका भ्रम अनुमितिरूप मानैं तो उत्तरकालमें "पुरुषं साक्षात्करोमि" ऐसा अनुव्यवसाय हुआ चाहिये; यातैं दोनों समान विषय होवैं तहां लौकिक प्रत्यक्षसामग्रीकी नांई अलौकिक प्रत्यक्षसामग्रीभी प्रबल है, अनुमितिसामग्री दुर्बल है, यातैं ज्ञानलक्षण संबंधसैं प्रत्यक्षकी उत्पत्ति मानैं तो अनुमिति ज्ञानकूं बाधके पर्वतादिकनमें वह्निआदिकनका प्रत्यक्ष ज्ञानही होवैगा, यातैं अनुमान प्रमाण निष्फल होवेगा. इसकारणतैं जो अनुमानप्रमाण माने ताके मतमें स्मृतिज्ञानसहित इंद्रियसंयोगतैं वा संस्कारसहित इंद्रियसंयोगतैं व्यवहित वस्तुका प्रत्यक्ष ज्ञान संभवै नहीं; यातैं शुक्तिका रजतत्वरूपतैं प्रतीतिरूप अन्यथाख्याति संभवै नहीं.

१६१ अनिर्वचनीयवादमें न्यायोक्त दोषका उद्धार.

और अनिर्वचनीय ख्यातिवादमें जो जो दोष कहे हैं सो कहते हैं. अनिर्वचनीयख्यातिके मतमें विषयकी और ज्ञानकी कारणता दोषमें मानै हैं, अन्यथाख्यातिवादमें ज्ञानकी कारणता मानै हैं, विषयकी नहीं. यातैं अन्य-

थाख्यातिवादमें लाघव है. और अनिर्वचनीय ख्यातिवादीकूं अन्यथाख्यातिभी माननी होवै है. अन्यथाख्यातिवादीकूं अनिर्वचनीयख्याति माननी होवै नहीं, यातैंभी लाघव है; यह कथनभी अविवेकमूलक है. काहेतैं ! अन्यथाख्यातिवादीकूं श्रुतिस्मृतिकी आज्ञातैं स्वप्नमें तो अनिर्वचनीयख्याति अवश्य माननी चाहिये. वेदोक्त अर्थका पुरुषमतिकल्पित युक्तिसमुदायसैं अन्यथाभावकल्पन आस्तिककूं योग्य नहीं. और शुक्तिरजतका तादात्म्य प्रतीत होवै है. जैसैं इदंपदार्थमें रजतत्वका समवाय प्रतीत होवै है तैसैं इदंपदार्थका और रजतका तादात्म्य प्रतीत होवै है. इदंपदार्थ शुक्ति है, शुक्तिरजतका तादात्म्य अन्यस्थानमें प्रसिद्ध नहीं; यातैं पुरोवर्तिदेशमें शुक्तिरजतका तादात्म्य अनिर्वचनीय उपजै है. जो अनिर्वचनीय तादात्म्य-उत्पत्ति नहीं मानै तो अप्रसिद्धकी अपरोक्षप्रतीति नहीं होवैगी. और तादात्म्यकी अपरोक्ष प्रतीति होवै है. और जो नैयायिक आग्रहतैं यह कहै; शुक्तिमें रजतत्वका समवायही भासै है; याकाभी यह अर्थ है समवाय संबंधतैं रजतत्व भासै है और शुक्तिरजतका तादात्म्य भासै नहीं ऐसा कहै तो शुक्तिज्ञानतैं उत्तरकालमें "नेदं रजतम्" ऐसा बाध होवै है. ताका बाध्य इदं पदार्थमें रजतका तादात्म्य है. जो भ्रमकालमें इदंपदार्थमें रजतका तादात्म्य नहीं भासे तो बाध निर्विषय होवैगा. जो केवल रजतत्वका समवायही शुक्तिमें भासै तो "नात्र रजतत्वम्" ऐसा बाध हुआ चाहिये. यातैं शुक्तिमें रजतका तादात्म्य भासै है सो शुक्तिरजतका तादात्म्य उभयसापेक्ष है, कहूं प्रसिद्ध नहीं; यातैं अनिर्वचनीय तादात्म्यकी उत्पत्ति अन्यथाख्यातिवादमें आवश्यक है; केवल अन्यथाख्यातिसैं निर्वाह होवै नहीं.

और अनिर्वचनीयख्यातिवादीकूं अन्यथाख्याति माननी होवै है. और अद्वैतग्रंथकारोंने मानी है; यह कथनभी अद्वैतग्रंथनके अभिप्रायके अज्ञानतैं है. काहेतैं ? अद्वैतवादमें कहूंभी अन्यथाख्याति नहीं. सारै अनिर्वचनीयख्याति है. बहुत क्या कहैं:—जहां प्रमा ज्ञान कहै हैं, तहां अद्वैत सिद्धांतमें विषय और ज्ञान अनिर्वचनीय है; और कितने स्थानोंमें

अन्यथाख्याति लिखी है ताका यह तात्पर्य है. जहां अधिष्ठानआरोप्यक संबंध होवै और परोक्ष भ्रम होवै तहां अन्यथाख्यातिभी संभवै है, परं सौर अन्यथाख्याति संभवै नहीं. जहां आरोप्य व्यवहित हुए अपरोक्ष भ्र होवै तहां अनिर्वचनीयख्याति आवश्यक है, यातैं आवश्यक अनिर्वचनी यख्यातिही सौर मानी चाहिये; इस रीतिसैं अन्यथाख्यातिका कथन संभ वाभिप्रायतैं है, अंगीकरणीयत्वाभिप्रायतैं नहीं. जहां आत्मसत्ताकी अनात्मे अन्यथाख्याति कही तहांभी आत्मसत्ताकी अनिर्वचनीय संबंध उपजै है इस रीतिसैं जहां अनिर्वचनीयसंबंधीकी उत्पत्ति नहीं संभवै तहां अनिर्व चनीय संबंधका अंगीकार है. तैसैं परोक्षभ्रम होवै तहांभी अनिर्वचनीय विष यकी उत्पत्ति ब्रह्मविद्याभरणमें लिखी है, परंतु परोक्षभ्रम होवै तहां अन्य थाख्याति मानै तोभी दोष नहीं है. इस वास्ते सरलबुद्धितैं परोक्षभ्रम अन्य थाख्यातिरूप कह्या है.

और जो ऐसैं कहैः—" तदेवेदं रजतम् " इस रीतिसैं शुक्तिमें रजतक प्रत्यभिज्ञा भ्रम होवै तहां अनिर्वचनीयरजतकी पुरोवर्तिदेशमें उत्पत्ति मानै तो सन्निहितरजतमें तो तत्ता संभवै नहीं. यातैं देशांतरस्थ रजतवृत्ति रज तत्वकी और तत्ताकी शुक्तिपदार्थमें प्रतीति होवै है, अथवा तादात्म्यसंबं धसैं देशांतरस्थ रजतकी प्रतीति होवै है, यातैं उक्त स्थलमें अन्यथाख्याति आवश्यक है.

यह कथनभी असंगत है. काहेतैं ? उक्त प्रत्यभिज्ञामेंभी अनिर्वचनीय रजतही विषय है; देशांतरस्थ नहीं. काहेतैं ? प्रमातासैं संबंध विना अपरोक्ष अवभास संभवै नहीं; और देशांतरस्थ रजतका प्रमातासैं संबंध बाधित है, यातैं देशांतरस्थ रजतकी प्रतीति नहीं. और जहां यथार्थ प्रत्यभिज्ञा होवै तहांभी तत्ता अंशमें स्मृति है यह सिद्धांत है; यातैं " तदेवेदं रजतम् " यह भ्रमरूप प्रत्यभिज्ञाभी तत्ताअंशमें स्मृति है और " इदं रजतम्" इतने अंशमें अनिर्वचनीय प्रत्यक्ष है; यातैं कहूंभी अन्यथाख्याति आवश्यक नहीं. जहां अनिर्वचनीय विषयकी उत्पत्ति नहीं संभवै तहां अनिर्वचनीय संबंधकी

उत्पत्ति होवै है; जैसैं आत्मानात्मका अन्योन्याध्यास होवै है तहां अनात्मामें आत्मा और आत्मधर्म अनिर्वचनीय उपजै है, यह कहना संभवै नहीं यातैं आत्माका और आत्मधर्मनका अनात्मामें अनिर्वचनीय संबंध उपजै है. इस रीतिसैं सारे अनिर्वचनीय ख्यातिसैं निर्वाह होवै है, कहूंभी अन्यथाख्याति माननी होवै नहीं.

और जो अन्यथाख्यातिवादीने अनिर्वचनीय ख्यातिवादमें यह गौरव कह्या ता दोषकूं अनिर्वचनीय रजतादिक और तिनके ज्ञानकी कारणता माननेतैं केवल ज्ञानकी कारणता माननेमें लाघव है. अन्यथाख्यातिवादमें रजत तो देशांतरमें प्रसिद्ध है; ताके रजतत्वधर्मका शुक्तिमें ज्ञान होवै है. अथवा तादात्म्यसंबंधसैं रजतका शुक्तिमें ज्ञान होवै है. इस रीतिसैं केवल ज्ञानही दोषजन्य है. और अनिर्वचनीयख्यातिवादमें विषय और ज्ञान दोनों दोषजन्य कहे हैं, यातैं गौरव है.

यह कथनभी असंगत है. काहेतैं ? लाघवबलतैं अनुभवसिद्ध पदार्थका लोप करै तो यथार्थ ज्ञानके विषयभी नहीं मानैं और विज्ञानवादकी रीतिसैं केवल विज्ञानही मानै तो अतिलाघव है. जैसैं अनुभवसिद्ध घटादिक मानिके लाघवसहकृत विज्ञानवादका त्याग है, तैसैं अपरोक्षप्रतीतिसिद्ध अनिर्वचनीय रजतादिक मानिके अन्यथाख्यातिवादभी त्याज्य है.

और विचार करैं तो गौरवभी अन्यथाख्यातिवादमें है. काहेतैं ? देशांतरस्थ रजतका ज्ञान मानै ताके मतमें यह गौरव है. रजतनेत्रसंयोगकी रजतसाक्षात्कारमें कारणता निर्णीत है; तिस निर्णीतका त्याग होवै है, और रजतआलोकसंगसैं रजतका साक्षात्कार निर्णीत है. अन्यथाख्यातिवादमें शुक्ति आलोकसंगसें रजतका भ्रमसाक्षात्कार होवै है. सो अनिर्णीत है, यातैं अनिर्णीतका अंगीकार होवै है. तैसैं ज्ञानलक्षणसंबंध अप्रसिद्ध है, यातैं अप्रसिद्धका अंगीकार होवै है. और जो ज्ञानलक्षणसंबंधको मानै तोभी जा पदार्थका अलौकिक संबंधसैं प्रत्यक्ष होवै है ताकी प्रकटता होवै नहीं. इसीवास्ते " सुगन्धि चन्दनम् " इस रीतिसैं सुगंधका अलौकिक प्रत्यक्ष

हुएभी " सुगन्धं साक्षात्करोमि " ऐसा अनुव्यवसाय होवैं नहीं. औ संबंध जन्य रजतभ्रम हुए रजतकी प्रकटता होवै है. इसीवास्ते भ्रमतैं उ रकालमें " रजतं साक्षात्कारोमि " ऐसा अनुव्यवसाय होवै है. इस रीति ज्ञानलक्षणसंबंधजन्य यथार्थ ज्ञानमें प्राकट्यजनकता नहीं है. भ्रमस्थल अलौकिक ज्ञानकूं प्राकट्यजनकता मानी सोभी अप्रसिद्धकल्पना है. इ रीतिसैं अनेक प्रकारकी अप्रसिद्ध कल्पना अन्यथाख्यातिवादमें होनेतें या प विषे ही गौरव है. और दोषकूं अनिर्वचनीय विषयकी जनकता तो श्रुति तिबलतैं स्वप्नमें है, अप्रसिद्ध कल्पना नहीं. ब्रह्मानंदकृत अनिर्वचनी यवादमें अन्यथाख्यातिका खंडन विशेष कऱ्या है, सो प्रकार कठिन है यातैं ब्रह्मविद्याभरणकी सुगमरीतिसैं अन्यथाख्यातिवादकी हेयता प्रतिपाद करी, यातैं अन्यथाख्याति असंगत है.

१६२-१७८ अख्यातिवादकी रीति और खंडन.

१६२ अख्याति वादीका तात्पर्य.

जैसें अन्यथाख्याति असंगत है तैसें अख्यातिवाद भी असंगत है प्रभाकरका अख्यातिवाद है. यह ताका तात्पर्य है. अन्य शास्त्रनमें यथा अयथार्थ भेदसैं दो प्रकारका ज्ञान मान्या है. यथार्थ ज्ञानसैं प्रवृ निवृत्ति सफल होवै है. अयथार्थ ज्ञानसैं प्रवृत्ति निवृत्ति निष्फल होवै है. य सकल शास्त्रनका लेख असंगत है. काहेतैं? अयथार्थज्ञान अप्रसिद्ध है, स ज्ञान यथार्थ ही होवै है. जो अयथार्थ ज्ञानभी होवै तो पुरुषकूं ज्ञान होते ज्ञानत्व सामान्य धर्म देखिके उत्पन्न हुए ज्ञानमें अयथार्थका संदेह होय प्रवृत्तिनिवृत्तिका अभाव होवैगा. काहेतैं ? ज्ञानमें यथार्थत्व निश्चय औ अयथार्थतासंदेहका अभाव पुरुषकी प्रवृत्तिनिवृत्तिके हेतु हैं. और अयथा ताके संदेह होनेतैं दोनों संभवै नहीं. और अयथार्थ ज्ञानकूं नहीं मानै उत्पन्न हुए ज्ञानमें उक्त संदेह होवै नहीं. काहेतैं ? कोई ज्ञान अयथार्थ है तो तिसकी ज्ञानत्व धर्मतैं सजातीयता अपने ज्ञानमें देखिके अयथार्थ संदेह होवै सो अयथार्थ ज्ञान है नहीं. सारे ज्ञान यथार्थ ही हैं,

ज्ञानमें अयथार्थतासंदेह होवै नहीं. इस रीतिसैं भ्रमज्ञान अप्रसिद्ध है. जहां शुक्तिमें रजतार्थीकी प्रवृत्ति होवै है और भयहेतुक रज्जुसैं निवृत्ति होवै है तहांभी रजतका प्रत्यक्षज्ञान और सर्पका प्रत्यक्षज्ञान नहीं है. तहांभी रजतका प्रत्यक्ष ज्ञान और सर्पका प्रत्यक्षज्ञान उक्त स्थलमें होवै तो यथार्थ तो संभवै नहीं; यातैं अयथार्थ होवै, सो अयथार्थ ज्ञान अलीक है, यातैं उक्त स्थलमें रजतका और सर्पका प्रत्यक्षज्ञान नहीं; किंतु रजतका स्मृतिज्ञान है और शुक्तिका इदंरूपतैं सामान्यज्ञान प्रत्यक्ष है. तैसैं पूर्वानुभूत सर्पका स्मृतिज्ञान है और सामान्य इदंरूपतैं रज्जुका प्रत्यक्ष ज्ञान है. शुक्तिसैं तथा रज्जुसैं दोषसहित नेत्रका संबंध होवै है, यातैं शुक्तिका तथा रज्जुका विशेष रूप भासै नहीं; किंतु सामान्यरूप इदंता भासे है. और शुक्तिसैं नेत्रके संबंधजन्य ज्ञान हुए रजतके संस्कार उद्बुद्ध होयके शुक्तिके सामान्यज्ञानतैं उत्तरक्षणमें रजतकी स्मृति होवै है. तैसैं रज्जुके सामान्य ज्ञानतैं उत्तरक्षणमें सर्पकी स्मृति होवैं हैं. यद्यपि सकल स्मृतिज्ञानमें पदार्थकी तत्ताभी भासे है, तथापि दोषसहित नेत्रके संबंधतैं संस्कार उद्बुद्ध होवै तहां दोषके माहात्म्यतैं तत्ताअंशका प्रमोष होवै है, यातैं प्रमुष्टतत्ताकी स्मृति होवै है प्रमुष्ट कहिये लुप्त हुई है तत्ता जिसकी सो **प्रमुष्टतत्ताक शब्दका अर्थ है.** इस रीतिसैं "इदं रजतम्,अयं सर्पः"इत्यादिक स्थलमें दो ज्ञान हैं.तहां शुक्तिका और रज्जुका सामान्य इदं रूपका प्रत्यक्ष ज्ञान यथार्थ है और रजतका तथा सर्पका स्मृति ज्ञानभी यथार्थ है. यद्यपि विशेष शुक्तिरज्जुभागकूं त्यागिके प्रत्यक्षज्ञान हुआ है और तत्ताभागरहित स्मृतिज्ञान हुआ है, तथापि एक भाग त्यागनेसैं ज्ञान अयथार्थ होवै नहीं; किंतु अन्यरूपतैं **ज्ञानकूं अयथार्थ** कहै हैं, यातैं उक्त ज्ञान यथार्थ है, अयथार्थ नहीं. इस रीतिसैं भ्रमज्ञान अप्रसिद्ध है.

१६३ अख्यातिवादीकरि अन्यकृत शंकाका उद्धार.

और जो शास्त्रांतरवाले ऐसे कहैं:—जा पदार्थमें इष्टसाधनता ज्ञान होवै तामें प्रवृत्ति होवै है; और जामें अनिष्टसाधनता ज्ञान होवै तासैं निवृत्ति होवै

है. अख्यातिवादीके मतमें शुक्तिमें इष्टसाधनताज्ञान कहै तो भ्रमका अंगी कार होवै, यातैं इष्टसाधनता ज्ञानके अभावतैं शुक्तिमें रजतार्थीकी प्रवृत्ति नहीं हुई चाहिये. तैसैं रज्जुमें अनिष्टसाधनत्व है नहीं. और ताका ज्ञान मानै तो भ्रमका अंगीकार होवै, यातैं अनिष्टसाधनताज्ञानके अभावतैं निवृत्ति नहीं हुई चाहिये, यातैं भ्रमज्ञान आवश्यक है. ताका इस रीतिसैं अख्याति वादी समाधान करै है:—जा पदार्थमें पुरुषकी प्रवृत्ति होवै ता पदार्थका सामान्य रूपतैं प्रत्यक्षज्ञान और इष्ट पदार्थकी स्मृति और स्मृतिके विषयतैं पुरोवर्ति पदार्थका भेद ज्ञानाभाव तैसैं स्मृतिज्ञानका पुरोवर्तिके ज्ञानतैं भेदज्ञानाभाव इतनी सामग्री प्रवृत्तिकी हेतु है, यातैं भ्रमज्ञान विना प्रवृत्ति संभवै है. जो विषयका और ज्ञानका भेदज्ञानाभावही प्रवृत्तिमें हेतु कहैं तो उदासीन दशामें प्रवृत्ति हुई चाहिये. और विषयका सामान्यज्ञानसहित इष्टकी स्मृतिही प्रवृत्तिका कारण कहैं तो "देशान्तरे तद्रजतं किंचिदिदं" इस रीतिसैं देशांतरसंबंधी रूपतैं रजतकी स्मृति होवै और शुक्तिका किंचिद्रूपतैं ज्ञान होवै तहांभी रजतार्थीकी प्रवृत्ति हुई चाहिये. यातैं इष्टपदार्थतैं विषयका भेद ज्ञानाभावभी प्रवृत्तिका हेतु है. उक्त स्थलमें इष्ट रजतका शुक्तिसैं भेदज्ञान है ताका अभाव नहीं, यातैं प्रवृत्ति होवै नहीं. जो इष्टपदार्थका पुरोवर्तिसैं भेदज्ञानाभावही प्रवृत्तिकी सामग्रीमें मिलावे और दोनोंके ज्ञानका भेदज्ञानाभाव नहीं कहै तो "इदं रजतम्" इस रीतिसैं दो ज्ञान होयके इदंपदार्थका मेरेकूं प्रत्यक्षज्ञान हुआ है और रजतका स्मृतिज्ञान हुआ है. इस रीतिसैं दोनों ज्ञानोंके भेदका ज्ञान होवै अथवा इदं पदार्थका ज्ञान और रजत पदार्थका ज्ञान मेरेकूं परस्पर भिन्न हुए हैं. इस रीतिसैं भेदज्ञान होवै; तहांभी विषयका भेदज्ञान नहीं, यातैं प्रवृत्ति हुई चाहिये. यातैं ज्ञानका भेदज्ञानाभावभी प्रवृत्तिसामग्रीमें कह्या चाहिये. उक्त स्थलमें पुरोवर्तिका सामान्यज्ञान और इष्टरजतकी स्मृति है, तैसैं पुरोवर्तिसैं इष्टरजतके भेदज्ञानका अभावभी है परंतु दोनों ज्ञानोंका भेदज्ञान है ताका अभाव नहीं. इस रीतिसैं उभयविषभेदज्ञानाभावसहित इष्टस्मृति सहित पुरोवर्तिका सामान्यज्ञान प्रवृत्तिका

हेतु है. सो पुरोवर्तिशुक्तिका इदंरूपतैं सामान्यज्ञान यथार्थ है. यातैं भ्रमका अंगीकार निष्फल है. जहां शुक्तिमें रजतका भेदज्ञान होवै तहां रजतार्थीकी प्रवृत्ति होवै नहीं और शुक्तिज्ञानमें रजतज्ञानका भेद ग्रह होवै तहांभी प्रवृत्ति होवै नहीं; यातैं भेदज्ञान प्रवृत्तिका प्रतिबंधक है, प्रतिबंधका अभाव कारण होवै है; यातैं भेदज्ञानाभावमें प्रवृत्तिकी कारणता माननेमें अप्रसिद्धकी कल्पना नहीं; और जहां रज्जुदेशतैं भयहेतुसैं पलायन होवै है; तहांभी सर्पभ्रम नहीं होवै है; किंतु द्वेषगोचर सर्पकी स्मृति और रज्जुका सामान्यज्ञान तैसैं ज्ञान और तिनके विषयका भेदज्ञानाभाव पलायनके हेतु है. पलायनभी प्रवृत्तिविशेष है, परंतु वह प्रवृत्ति विषयके अभिमुख नहीं; किंतु विमुख प्रवृत्ति है: विमुखप्रवृत्तिमें द्वेषगोचरकी स्मृति हेतु है, सन्मुख प्रवृत्तिमें इच्छागोचरकी स्मृति हेतु है. इस रीतिसैं भयजन्य पलायनादि क्रिया होवै ताकूं प्रवृत्ति कहो अथवा निवृत्ति कहो ताका हेतु द्वेषगोचर पदार्थकी स्मृति है; और जहां शुक्तिज्ञानसैं रजतार्थीकी प्रवृत्तिका अभावरूप निवृत्ति होवै ताका हेतु तो शुक्तिज्ञान है, सोभी भ्रम नहीं. और जहां सत्यरजतमें रजतार्थीकी प्रवृत्ति होवै तहां तो रजतत्वविशिष्ट रजतका ज्ञानही रजतार्थीकी प्रवृत्तिका हेतु है. पुरोवर्ति सत्यरजतमें रजतका भेदज्ञानाभाव प्रवृत्तिका हेतु नहीं, यातैं विशिष्ट ज्ञानमें प्रवृत्तिजनकताका सर्वथा लोप नहीं. काहेतैं ? जहां सत्य रजत है तहां पुरोवर्ति रजतमें रजतका भेदज्ञानाभावही प्रवृत्तिका हेतु कहै तो संभवै नहीं. जो प्रतियोगी प्रसिद्ध होवै ताका अभाव व्यवहारगोचर होवै है. अप्रसिद्ध प्रतियोगीका अभाव व्यवहारयोग्य नहीं. जैसैं शशशृंगाभावका प्रतियोगी अप्रसिद्ध है; यातैं शशशृंगाभावभी अलीक है. अलीक पदार्थसैं कोई व्यवहार होवै नहीं. केवल शब्दप्रयोग और विकल्परूप ज्ञान तो अलीक पदार्थका होवै है. और अलीक पदार्थमें कारणता कार्यता नित्यता अनित्यतादिक व्यवहार होवै नहीं; यातैं प्रसिद्ध पदार्थका अभावही व्यवहारयोग्य होवै है. अप्रसिद्धका अभाव किसी व्यवहारके योग्य नहीं; यातैं अलीक है. सत्य रजतमें रजतका भेद है नहीं यातैं सत्यरजतमें रजतका भेदज्ञान संभवै

नहीं. जो भ्रम ज्ञानकूं मानै तो सत्यरजतमें रजतका भेदज्ञान संभवै. अख्यातिवादीके मतमें भ्रमज्ञान अप्रसिद्ध है, यातैं सत्यरजतमें रजतका भेदज्ञान संभवै नहीं. इस रीतिसैं सत्यरजतमें रजतप्रतियोगिक भेदज्ञानरूप प्रतियोगीके असंभवतैं सत्यरजतमें रजतप्रतियोगिक भेदज्ञानका अभाव अलीक है; तामें प्रवृत्तिकी जनकता संभवै नहीं; यातैं सत्यरजतस्थलमें पुरोवर्ति देशमें रजतत्वविशिष्ट रजत है, ऐसा विशिष्ट ज्ञानही रजतार्थीकी प्रवृत्तिका हेतु है और अख्यातिवादमें भ्रमज्ञान तो है नहीं, सौर ज्ञान यथार्थ है तथापि कहूं प्रवृत्ति सफल होवै है. इसका हेतु कह्या चाहिये; तामें यह हेतु है, विशिष्टज्ञानजन्य प्रवृत्ति सफल होवै है, भेदज्ञानाभावजन्य प्रवृत्ति निष्फल होवै हैं, रजतदेशमेंभी भेदज्ञानाभावजन्य प्रवत्ति कहै तो सौर समप्रवृति हुई चाहिये; यातैं सफल प्रवृत्तिका जनक विशिज्ञष्टान मानना चाहिये और जहां सत्यरजतमें रजतार्थीकी प्रवृत्ति नहीं होवै तहां प्रवृत्त्यभावरूप निवृत्ति है, ताका हेतु रजतत्वविशिष्ट रजतज्ञानभाव है, तदांभी भ्रमरूप रजताभावज्ञान नहीं. काहेतैं? प्रवृत्ति निवृत्ति परस्पर प्रतियोगी अभावरूप है. प्रवृत्तिरूप प्रतियोगीका हेतु रजतत्वविशिष्ट रजतज्ञान है; और प्रवृत्ति अभावरूप निवृत्तिका हेतु रजतत्वविशिष्ट रजतज्ञानका अभाव है. इस रीतिसैं आख्यातिवादमें विषय नहीं होवै और विषयार्थीकी प्रवृत्ति होवै ताके हेतु इष्ट स्मृत्यादिक हैं. विशिष्टज्ञान नहीं. जहां शुक्तिदेशमें " इदं रजतम् " ऐसा ज्ञान होवै सो एक ज्ञान नहीं है, शुक्तिका इदमाकार सामान्य ज्ञान है; रजतकी प्रमुष्टतत्ताक स्मृति है. इन दो ज्ञानोंसे प्रवृत्ति होवै है, परंतु भेदज्ञानभाव होवै तब प्रवृत्ति होवै है. भेदज्ञान हुए प्रवृत्ति होवै नहीं, यातैं उक्त ज्ञानद्वयसहित भेदज्ञानाभाव प्रवृत्तिका हेतु है.

और बहुत ग्रंथनमें असंबन्धग्रहाभावसैं प्रवृत्ति कही है. ताका यह अर्थ है:—शुक्तिमें रजतत्वका असंबंध है, तैसैं रजतकाभी इदं पदार्थमें तादात्म्य संबंध नहीं. ऐसा जाकूं ज्ञान होवै ताकी प्रवृत्ति होवै नहीं; यातैं असंबंधग्रहका अभाव प्रवृत्तिका हेतु है यातैं भेदग्रहाभावके समान अर्थही

सिद्ध होवै है, परंतु इस रीतिसैं प्रवृत्ति होवै सो निष्फल होवै है. और विषय देशमें विषयार्थीकी प्रवृत्तिका हेतुविशिष्ट ज्ञान है. विशिष्ट ज्ञानसैं जहां प्रवृत्ति होवै तहां सफल होवै है. भ्रमज्ञान अप्रासिद्ध है. सर्वज्ञान यथार्थ है. जहां ज्ञानद्वयसैं निष्फल प्रवृत्ति होवै तहां ज्ञानद्वयकूं ही भ्रम कहै हैं. यह प्रभाकरका अख्यातिवाद है. ज्ञानद्वयका विवेकाभाव और उभय विषयका विवेकाभाव अख्यातिपदका पारिभाषिक अर्थ है.

१६४ अख्यातिवादका खण्डन.

यह मतभी समीचीन नहीं. काहेतैं ? शुक्तिमें रजतभ्रमतैं प्रवृत्त हुए पुरुषकूं रजतका लाभ नहीं होवै तब पुरुष यह कहै है, रजतशून्यदेशमें रजत ज्ञानसैं मेरी निष्फल प्रवृत्ति हुई; इस रीतिसैं भ्रमज्ञान अनुभवसिद्ध है, ताका लोप संभवै नहीं. और मरुभूमिमें जलका बाध होवै तब यह कहै हैं, मरुभूमिमें मिथ्याजलकी प्रतीति मेरेकूं हुई, या बाधतैंभी मिथ्या जल और ताकी प्रतीति होवै है. अख्यातिवादीकी रीतिसैं तो रजतकी स्मृति और शुक्तिज्ञानके भेदाग्रहतैं मेरी शुक्तिमें प्रवृत्ति हुई ऐसा बाध हुआ चाहिये. और मरभूमिके प्रत्यक्षसैं और जलकी स्मृतिसैं मेरी वृत्ति हुई, ऐसा बाध हुआ चाहिये और विषय तथा भ्रमज्ञान दोनों त्यागिके अनेक प्रकारकी विरुद्ध कल्पना अख्यातिवादमें है. तथाहिः—नेत्रसंयोग हुए दोषके माहात्म्यतैं शुक्तिका विशेष रूपतैं ज्ञान होवै नहीं यह कल्पना विरुद्ध है, तैसैं तत्तांशके प्रमोषतैं स्मृति कल्पना विरुद्ध है; और यिषयनका भेद है और भासै नहीं.तैसैं ज्ञानोंका भेद है कदीभी भासे नहीं, यह कल्पना विरुद्ध है, और रजतकी प्रतीतिकालमें अभिमुख देशमें रजतप्रतीति होवै है, यातैं अख्यातिवाद अनुभवविरुद्ध है. और अख्यातिवादीके मतमें रजतका भेदग्रह प्रवृत्तिका प्रतिबोधक होनेतैं रजतके भेदग्रहका अभाव जैसैं रजतार्थीकी प्रवृत्तिका हेतु मान्या है, तैसैं सत्यरजतस्थलमें रजतका अभेदग्रह निवृत्तिका प्रतिबंधक अनुभवसिद्ध है यातैं रजतके अभेदग्रहका अभाव निवृत्तिका हेतु होवैगा. इसरीतिसैं रजतके भेदज्ञानका अभाव रजतार्थीकी प्रवृत्तिका हेतु है, और रजतके अभेद-

ज्ञानका अभाव रजतार्थीकी निवृत्तिका हेतु है. शुक्तिदेशमें "इदं रजतम्" ऐसैं दो ज्ञान होवें तहां अख्यातिवादीके मतमें दोनों हैं. काहेतैं ? शुक्तिमें रजतका भेद तो है, परंतु दोषबलतैं रजतके भेदका शुक्तिमें ज्ञान होवै नहीं यातैं प्रवृत्तिका हेतु रजतके भेदज्ञानका अभाव है. और शुक्तिमें रजतका अभेद है नहीं. और अख्यातिवादमें भ्रमका अंगीकार नहीं. यातैं शुक्तिमें रजतके अभेदका ज्ञान संभवै नहीं. इस रीतिसैं शुक्तिसैं रजतार्थीकी निवृत्तिका हेतु रजतके अभेदज्ञानका अभाव है. रजतार्थीकी सामग्री दोनों है और प्रवृत्ति निवृत्ति दोनों परस्पर विरोधी हैं. एककालमें दोनों संभवैं नहीं, और दोनोंके असंभवतैं दोनोंका त्याग करै सोभी संभवै नहीं. काहेतैं? प्रवृत्तिका अभावही इस स्थानमें निवृत्तिपदार्थ है, यातैं प्रवृत्तिका त्याग करै निवृत्तिप्राय होवै है. निवृत्तिका त्याग करैं प्रवृत्तिप्राय होवै है. इसरीतिसैं उभयके त्यागमें और उभयके अनुष्ठानमें अशक्त हुआ अख्यातिवादी व्याकुल होयके लज्जातैं प्राणत्याग करेगा. यातैं अख्यातिवाद मरणका हेतु है या अर्थमें अनेक कोटी हैं. क्लिष्ट जानिके लिखी नहीं.

और अख्यातिवादीके मतमेंभी इच्छाविना भ्रमज्ञानकी सामग्री बलतैं सिद्ध होवै है. जहां धूमरहित वह्निसहित पर्वतमें धूलिपटल देखिके वह्निव्याप्य धूमवान् ऐसा परामर्श होवै है, तहां वह्निकी प्रमारूप अनुमिति होवै है. काहेतैं ? अनुमितिका विषय वह्नि पर्वतमें विद्यमान है, यातैं प्रमा है. ताका हेतु "वह्निव्याप्य धूमवान्पर्वतः" इस रीतिसैं पर्वतमें वह्निव्याप्य धूमके संबंधका ज्ञान तो अख्यातिवादीके मतमें संभवै नहीं. काहेतैं ? पर्वतमें धूमका संबंध है नहीं. और भ्रमज्ञानका अंगीकार होवै तो धूमसंबंधरहित पर्वतमें धूमसंबंधका ज्ञान होवै, भ्रम ज्ञानका अंगीकार नहीं; यातैं धूमरहितमें धूमसंबंधका ज्ञान संभवै नहीं, यातैं पर्वतमें धूमके असंबंधज्ञानका अभावरूप परामर्शही उक्त अनुमितिका कारण होनेतैं सौर पक्षमें हेतुका असंबंधज्ञानाभावही अनुमितिका कारण मान्या चाहिये. जहां पक्षमें हेतुका संबंध है तहां पक्षमें हेतुके असंबंधज्ञानका अभाव है, और पक्षमें हेतुका संबंधज्ञानभी है.

परंतु जहां उक्त पर्वतमें धूम नहीं है और अनुमिति होवै है, तहां पक्षमें हेतुका संबंधज्ञान संभवै नहीं. और हेतुके असंबंधज्ञानका अभाव सौर संभवे है. यातैं पक्षमें हेतुके असंबंध ज्ञानका अभावही अनुमितिका कारण अख्यातिवादमें सिद्ध होवैहै; यातैं वक्ष्यमाणरीतिसैं गलग्रहन्यायतैं अख्यातिवादीके मतमें अनुमितिरूप भ्रमज्ञानकी सिद्धि होवै है. तथाहिः—जैसैं वह्निका व्याप्य धूम है; तैसैं इष्टसाधनत्वका व्याप्य रजतत्व है, "यत्र यत्र रजतत्वं तत्र इष्टसाधनत्वम्" इस रीतिसैं रजतत्वमें इष्टसाधनताकी व्याप्ति है, जामें जाकी व्याप्ति होवै सो ताका व्याप्य होवैहै, जाकी व्याप्ति होवै सो व्यापक होवै है; इस रीतिसैं इष्टसाधनत्व व्यापक हैं, रजतत्व व्याप्य है, व्याप्य हेतु होवै है, व्यापक साध्य होवै है, यह प्रकार अनुमानमें लिख्या है. यातैं रजतत्व हेतुसैं इष्टसाधनत्वरूप साध्यकी अनुमिति होवै है. यह अर्थ तो सर्वके मतमें निर्विवाद है, अन्यमतमें तो पक्षमें व्याप्य हेतुके संबंधज्ञानतैं व्यापक साध्यकी अनुमिति होवै है. और अख्यातिवादमें पक्षमें व्याप्य हेतुके असंबंधज्ञानाभावतैं साध्यकी अनुमिति होवैहै, यह अर्थ प्रतिपादन कर्‍या है. यातैं "इदं रजतम्" इसरीतिसैं जहां शुक्तिदेशमें ज्ञान होवै तहां इदंपदार्थ शुक्तिमें रजतत्वका ज्ञान तो नहीं है, तथापि रजतत्वके असंबंधका ज्ञान नहीं; यातैं रजतत्वके असंबंधका ज्ञानाभाव होनेतैं इदंपदार्थरूप पक्षमें रजतत्वरूप हेतुके असंबंध ज्ञानाभावतैं इष्ट साधनत्वरूप साध्यकी अनुमिति इच्छा विना सामग्रीबलतैं सिद्ध होवै है, सो इदंपदार्थमें इष्टसाधनत्वकी अनुमिति भ्रमरूप है, काहेतें? इदंपदार्थ शुक्ति हैं, तामें इष्टसाधनत्व है नहीं. इष्टसाधनत्वराहितमें इष्टसाधनत्वका अनुमिति ज्ञान भ्रमरूप हैं. इस रीतिसैं गलग्रहन्यायतैं अख्यातिवादीके मतमें भ्रमज्ञानकी सिद्धि होवै है. धूलिपटलसहित पर्वतमें जो धूमका परामर्श कह्या तहां धूमका संबंधज्ञान पर्वतमें मानै तो धूमका संबंधज्ञानही भ्रमरूप मानना होवै है और तिस पर्वतमें धूमका असंबंधज्ञानाभाव अनुमितिका हेतु कहै तो तिस स्थानमें तो भ्रमज्ञानके अंगीकारसैंभी निर्वाह हुआ, परंतु सकल अनुमितिमें हेतुके असंबंधज्ञानाभावकूं कारण मानिके शुक्तिमें

रजतत्वके असंबंधज्ञानाभावतैं इष्टसाधनत्वकी भ्रमरूप अनुमिति सिद्ध हुई. इस रीतिसैं उभयतःपाशारज्जुन्यायतैं अख्यातिवादीके मतमें भ्र सिद्ध होवै है.

और भी अख्यातिवादमें दोष हैं:—जहां रंग रजत धरे होवैं तिनका "इमे रजते" ऐसा ज्ञान होवै; यह ज्ञान अन्यमतनकी रीतिसैं तो रंग अंशमें भ्रम है और रजत अंशमें प्रमा है; और रंगमें तथा रजतमें तथा रजतमें रजतत्व धर्मकूं विषय करै है; यातैं रंग अंशमें रजतत्वविशिष्ट ज्ञान है; और अख्यातिवादीके मतमें भ्रमज्ञान तो है नहीं. उक्त ज्ञानभी सर्व अंशमें यथार्थ है, परंतु रजत अंशमें तो रजतत्व संसर्ग ग्रह है. और रंग अंशका इदंरूपतैं ज्ञान है तामें रजतत्वके असंबंधका अग्रह है; इस रीतिसैं भेदकल्पन अनुभवविरुद्ध है. काहेतैं ? रंग और रजतका " इमे रजते " इस रीतिसैं एक रूप उल्लेख होवै है; तामें उक्त भेदकथनकी रीतिसैं विलक्षण उल्लेख हुआ चाहिये, और रंग अंशमें रजतत्वका संबंधग्रह तो भ्रमके अनंगीकारतैं संभवै नहीं; रजतअंशमेंभी रजतत्वके असंबंधका आग्रह मानै तो संभवै है. काहेतैं ? रजतमें रजतत्वके असंबंधका ग्रह नहीं है; किंतु संबंधका ग्रह है यातैं एकरूप उल्लेखभी संभवै है, परंतु जहां प्रवृत्तिका विषय अभिमुख होवै तहां संसर्गविशिष्ट ज्ञानसैं प्रवृत्ति होवै है यह पूर्व नियम कह्या है, ताका त्याग होवैगा. और जो ऐसैं कहै जहां प्रवृत्तिका विषय इष्टपदार्थही अभिमुख होवै अनिष्ट पदार्थ अभिमुख होवै नहीं, तहां संसर्गविशिष्टका ज्ञान होवै है. जैसैं केवल रजतका " इदं रजतम् " यह ज्ञान रजतत्वविशिष्टका ज्ञान है. और जहां इष्ट रजत अनिष्ट रंग दोनों अभिमुख होवै और अनिष्टपदार्थकाभी इष्टकी नांई इदमाकार ज्ञान होवै तहां इष्ट पदार्थमेंभी रजतत्वविशिष्ट ज्ञान होवै नहीं; किंतु रजतत्वके असंबंधज्ञानका अभाव होवै है. यह माननेमें " इमे रजते " इस रीतिसैं समान उल्लेख संभवै है. रजत और रंगका इदमाकार सामान्य ज्ञान है. तैसैं रंगमें रजतत्वका असंबंध तो है परंतु असंबंधका दोषतैं ज्ञान नहीं, यातैं रंगमें रजतत्वके असंबं-

धज्ञानका अभाव है; और रजतमें रजतत्वका असंबंध नहीं; यातैं असंबंधज्ञानका अभाव है. यातैं एक रस उल्लेख संभवै है, परंतु उक्त रीतिसैं रजत अंशमेंभी निष्फल प्रवृत्ति हुई चाहिये, यातैं उक्त स्थलमें रजतअंशमें रजतत्व विशिष्टका ज्ञान है. काहेतैं ? अख्यातिवादीके मतमें भ्रमज्ञान तो है नहीं. जासैं निष्फल प्रवृत्ति होवै; किंतु इष्टपदार्थके भेदके ज्ञानतैं जो प्रवृत्ति होवै सो निष्फल होवै हैं; और विशिष्टज्ञानतैं सफल प्रवृत्ति होवै है, यातैं रंग रजत पुरोवर्ति होवै और " इदं रजतम् " ऐसा ज्ञान होवै तहां रजतरंगका इदं रूपसैं तो ज्ञान सम है, परंतु रजतका इदमंशमें रजतत्वविशिष्ट ज्ञान है; और रंगके इदमंशमें रजतत्वके संबंधका अग्रह है, अथवा रजतका भेदाग्रह है. जहां रजतत्वका असंबंध है तहां रजतका भेद है, यातैं रजतत्वके असंबंधका अग्रह और रजतभेदका अग्रह कहनेमें अर्थभेद नहीं. इस रीतिसैं अख्यातिवादमें " इमे रजते " या स्थानमें समान उल्लेख संभवै नहीं, यातैं अख्यातिवाद असंगत है.

१६५ भ्रमज्ञानवादीके मतमें उक्तदोषका असंभव.

और जो भ्रमज्ञानकूं मानै तिनके मतमें दोष कह्या:—जो भ्रमज्ञानभी प्रसिद्ध होवै तो सर्व ज्ञानोंमें भ्रमत्वसंदेहतैं निष्कंप प्रवृत्ति नहीं होवैगी, सोभी संभवै नहीं. काहेतैं ? अख्यातिवादीके मतमें भ्रमज्ञान तो नहीं है, सारे ज्ञान यथार्थ हैं परंतु ज्ञानसैं प्रवृत्ति तो कहूं सफल होवै है, कहूं निष्फल होवै है यातैं प्रवृत्तिमें सफलता निष्फलताकी संपादक तो ज्ञानोंमें विलक्षणता अख्यातिवादीनेभी मानी है. जहां संसर्गविशिष्ट ज्ञानसैं प्रवृत्ति होवै सो सफल होवै है, यातैं सफल प्रवृत्तिका जनक संसर्गविशिष्ट ज्ञान प्रमा है. अगृहीत भेदज्ञानद्वयसैं निष्फल प्रवृत्ति होवै हैं. निष्फल प्रवृत्तिके जनक दो ज्ञान होवै हैं सो अप्रमा है, यद्यपि विषयके भावाभावतैं ज्ञानोंमें प्रमात्व अप्रमात्व नहीं है, तथापि प्रवृत्तिकी विलक्षणताके हेतु प्रमात्व अप्रमात्व तो अख्यातिवादीकूं इष्ट है और अप्रमात्व संज्ञातैंभी अख्यातिवादीका विद्वेष होवै तोभी अगृहीत भेदज्ञानद्वयमें सफल प्रवृत्तिजनक ज्ञानतैं

विलक्षणता तो अनुभवसिद्ध है और अख्यातिवादीने मानी है, यातैं व्यवहा भेदवास्ते संज्ञांतर करणीय है, यातैं प्रसिद्ध संज्ञासैं ही व्यवहार करना योग्य है. इसरीतिसैं भ्रमज्ञानके अनंगीकारमें भी भ्रमके स्थानमें निष्फल प्रवृत्तिके जनक जो अगृहीत भेद यथार्थ ज्ञान होवै और सफल प्रवृत्तिका जनक रजतमें रजतत्वविशिष्ट ज्ञान होवै तिनमें ज्ञानत्वरूप समान धर्म देखिके यह संदेह संभवै है. जैसैं शुक्तिमें अगृहीत भेद दो ज्ञान हैं तिनका भेद प्रतीत नहीं होवैहै, तैसैं यह ज्ञानभी अगृहीत भेद ज्ञानद्वयरूप है, अथवा भेदरहित एक है? जो अगृहीत भेद ज्ञानद्वयरूप होवेगा तो रजतका लाभ प्रवृत्तिसैं नहीं होवैगा, या संदेहतैं अख्यातिवादमें भी निष्कंप प्रवृत्ति संभवै नहीं; यातैं निष्कंप प्रवृत्तिका असंभव दोनों मतमें समान है, इस रीतिसैं अख्यातिवादभी असंगत है.

१६६ प्रमात्व अप्रमात्वके स्वरूप उत्पत्ति और ज्ञानका प्रकार. प्रमात्व अप्रमात्वका स्वरूप.

अनिर्वचनीयख्यातिही निर्दोष है:— सत्ख्याति आदिक पंचविध वादका विस्तारसैं खंडन विवरण आदिक ग्रंथनमें है, इहां रीतिमात्र जनाई है. अख्यातिवादीने सिद्धांततमें निष्कंप प्रवृत्तिका असंभव दोष कह्या; तिस दोषका अख्यातिवादमें भी संभव कह्या और स्वमतमें उद्धार नहीं कर्या ताका यह उद्धार है:—जिस पदार्थका जो ज्ञान होवै ता ज्ञानमें अप्रमात्वनिश्चय होवै तो प्रवृत्ति होवै नहीं. अप्रमात्वका संदेह होवै तो सकंप प्रवृत्ति होवै है, प्रमात्वका निश्चय होवै तो निष्कंप प्रवृत्ति होवै है; इसवास्तै प्रमात्व अप्रमात्वका स्वरूप और तिनकी उत्पत्ति और तिनके ज्ञानका प्रकार कहै हैं, यद्यपि प्रमात्व अप्रमात्वका स्वरूप पूर्व कह्या है. स्मृतिसैं भिन्न जो अबाधित अर्थगोचर ज्ञान सो प्रमा है, तासैं भिन्न ज्ञान अप्रमा है, या कहनेतैं यह जाना जावै है. स्मृतिभिन्न अबाधित अर्थगोचर ज्ञानका धर्म प्रमात्व है, तासैं अन्य ज्ञानका धर्म अप्रमात्व है, तथापि पूर्व उक्त पारिभाषिक प्रमात्व स्मृतिमें नहीं है और प्रवृत्तिका उपयोगी प्रमात्व स्मृतिमेंभी मानना चाहिये, काहेतैं? स्मृतिज्ञानसैंभी पुरुषकी प्रवृत्ति होवै है. जिस स्थानमें स्थित इष्ट पदा-

र्थकी स्मृति होवै तिस स्थानमें पुरुषकी प्रवृत्ति होवै है. स्मृतिज्ञानमें प्रमात्वका निश्चय होवै तो निष्कंप प्रवृत्ति होवै है, यातैं प्रवृत्तिका उपयोगी प्रमात्व स्मृतिमेंभी है. यातैं उक्त स्वरूप प्रमात्वसैं अन्यविध प्रमात्वका स्वरूप कह्या चाहिये. सकल शास्त्रनमें स्मृतिसैं भिन्न ज्ञानमें अनुभव व्यवहार करै हैं, संस्कारजन्य ज्ञानमें स्मृतिव्यवहार करै हैं, यथार्थ अनुभवमें प्रमा व्यवहार करै हैं. और तासैं भिन्नमें अप्रमा व्यवहार करै हैं. इस रीतिसैं ज्ञानत्व धर्म तो सकल ानमें होनेतैं व्यापक है और अनुभवत्व स्मृतित्व ज्ञानत्वके व्याप्य कहे परस्पर विरोधी हैं तैसैं प्रमात्व धर्मभी अनुभवत्वका व्याप्य है. काहेतैं ? अनुभवत्व तो यथार्थानुभव और अयथार्थानुभवमें रहै है. और प्रमात्वधर्म यथार्थानुभवमेंही रहै हैं यातैं अनुभवत्वका व्याप्य प्रमात्व है, तैसैं यथार्थत्वकाभी प्रमात्व व्याप्य है. काहेतैं ? यथार्थत्व तो सत्यपदार्थकी स्मृतिमें भी रहै है, और स्मृतिमें प्रमात्व रहै नहीं, यातैं यथार्थत्वकाभी प्रमात्व व्याप्य है, यह शास्त्रकारनकी परिभाषा है. याके अनुसार प्रमाका स्मृतिसैं भिन्न अबाधित अर्थगोचर ज्ञान प्रमा कहिये है; यह लक्षण कह्या है. जिस प्रमात्वके मानतैं पुरुषकी निष्कंप प्रवृत्ति होवै ऐसा प्रमात्वस्मृतिमेंभी मानना चाहिये; यातैं इस प्रसंगमें यथार्थत्वका व्याप्य प्रमात्व नहीं; किंतु यथार्थत्वका नामही प्रमात्व है. पूर्व उक्त पारिभाषिक प्रमात्व तो स्मृतिमें नहीं है, यथार्थत्व है, यथार्थत्वरूपही प्रमात्व विचारणीय है. और जो स्मृतिज्ञानमें प्रमाव्यवहारसैं सर्वथा विद्वेष होवै तो प्रमात्वज्ञानसैं निष्कंप प्रवृत्ति होवै है, इस वाक्यकूं त्यागिके यथार्थत्व ज्ञानसैं निष्कंप प्रवृत्ति होवै है, ऐसा वाक्य कहै; इस रीतिसैं या प्रसंगमें प्रमात्वका एकही अर्थ है; यातैं या प्रसंगमें यथार्थत्व धर्मका प्रमात्वशब्दसैं व्यवहार है.

१६७ न्यायवैशेषिकमतमें ज्ञानकी उत्पादकसामग्रीतैं बाह्य सामग्रीतैं प्रमात्व अप्रमात्वकी उत्पत्ति.

(परतः प्रामाण्यवाद और परतः अप्रामाण्यवाद.)

न्यायशास्त्रके मतमें ज्ञानकी उत्पादक सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवै नहीं. और ज्ञानकी ज्ञापकसामग्रीसैं प्रमात्वका ज्ञान होवै नहीं; याकूं परतः

प्रामाण्यवाद कहै हैं. या प्रसंगमें प्रमात्वका नाम प्रामाण्य हैं. परतः कहिये अन्यतैं प्रामाण्यकी उत्पत्ति होवै है, अन्यतैंही प्रामाण्यका ज्ञान होवै है, ज्ञानकी सामग्रीतैं भिन्न सामग्री परशब्दका अर्थ है, यातैं यह निष्कर्ष हुआः—ज्ञानकी सामग्रीतैं प्रमात्वकी सामग्री भिन्न है. ज्ञानकी उत्पत्तिकी सामग्री तो इंद्रिय अनुमानादिक पूर्व कही है, तासैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवै तो सकल ज्ञान प्रमा हुए चाहिये. अप्रमाज्ञानका लोप होवैगा; यातैं ज्ञानकी उत्पत्तिसामग्रीसैं अधिक सामग्रीसैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवै है. जहां अधिक सामग्री नहीं है तहां ज्ञानमें प्रमात्वधर्म होवै नहीं, यातैं भ्रमज्ञानका लोप नहीं सो अधिक सामग्री गुण है. जहां गुणसहित इंद्रिय अनुमानादिकनतैं ज्ञान होवै तहां प्रमा होवै है; गुणरहित इंद्रियानुमानादिकनतैं ज्ञान होवै सो प्रमा नहीं. प्रत्यक्ष प्रमाकी उत्पत्तिमें विषयके अधिक देशमें इंद्रियका संयोग गुण है और साध्यके व्याप्यहेतुका साध्यवत्पक्षमें ज्ञान अनुमितिप्रमाकी उत्पत्तिमें गुण है. जहां व्यभिचारी हेतुका पक्षमें ज्ञान होवै, तहां अनुमिति ज्ञानकी सामग्री पक्षमें हेतुका ज्ञान तो है, परंतु व्याप्यहेतुका ज्ञानरूप गुण नहीं; यातैं अनुमिति प्रमा होवै नहीं, इस रीतिसैं ज्ञानवृत्ति प्रमात्व धर्मकी उत्पत्तिमें ज्ञानकी जनकसामग्रीतैं अन्य गुणकी अपेक्षा होनेतैं परतः प्रामाण्यकी उत्पत्ति होवै है.

प्रमात्वकी नांई ज्ञानवृत्ति अप्रमात्वकीभी परतः उत्पत्ति होवै है. काहेतैं? भ्रमज्ञान दोषजन्य होवै है यह वार्ता प्रसिद्ध है. और प्रमाज्ञानमें दोष हेतु नहीं, यातैं ज्ञानकी सामग्रीतैं दोष बाह्य है सो दोष अनंत प्रकारका है. इस रीतिसैं ज्ञानसामग्रीतैं दोषपर है. भिन्नकूं पर कहै हैं तासैं अप्रमाकी उत्पत्ति होनेतैं परतः अप्रामाण्यकी उत्पत्ति होवै है. अप्रमात्वकूं अप्रामाण्य कहै हैं. इस रीतिसैं प्रमात्वकी उत्पत्ति और अप्रमात्वकी उत्पत्ति परतः होवै है.

१६८ ज्ञान और ज्ञानत्वकी सामग्रीतैं अन्यकारणतैं प्रमात्वके ज्ञानकी उत्पत्ति (परतःप्रामाण्यग्रहवाद)

तैसैं ज्ञानके ज्ञानकी सामग्रीतैं प्रमात्वका ज्ञान होवै नहीं, किंतु ज्ञानका

और ज्ञानत्वका जा सामग्रीतैं ज्ञान होवैं तासैं कन्यकारणतैं प्रमात्वका ज्ञान होवै हैं. तैसैं प्रत्यक्षादिक प्रमाणतैं घटादिकनका ज्ञान होवै तैसैं मनःसंयुक्त समवाय संबंधतैं घटादिज्ञानका ज्ञान होवै है. नेत्रादि प्रमाणतैं घटका ज्ञान होवैं ताका " अयं घटः " ऐसा आकार है. और मनोरूप प्रमाणतैं घट ज्ञानका प्रत्यक्ष होवै ताका "घटमहं जानामि" ऐसा आकार है. "घटमहं जानामि" या मानस ज्ञानका विषय घटज्ञान हैं और घटभी विषय है. काहेतैं ? ज्ञानका ज्ञान अनुव्यवसाय कहिये है. घटादिकनका ज्ञान व्यवसाय कहिये है. अनुव्यसायज्ञानका यह स्वभाव है. व्यवसायके विषयकूं त्यागै नहीं किंतु विषमसहित व्यवसायको प्रकाशै है; इसीवास्ते ज्ञानके ज्ञानकी अनुव्यवसाय संज्ञा है. व्यवसायके अनुसारीकूं अनुव्यवसाय कहै हैं, जैसैं व्यवसायके घटादिक विषय हैं तैसैं अनुव्यवसायकेभी घटादिक विषय हैं; यातैं व्यवसायके अनुसार अनुव्यवसाय है, और अनुव्यवसाय ज्ञानका आत्माभी विषय है. काहेतैं ? यह नियम है. ज्ञान इच्छा कृति सुख दुःख द्वेष ये आत्माके विशेष गुण हैं. इनमें किसी एक गुणकी प्रतीति होवै तो आत्माकी प्रतीति होवै; किसीकी प्रतीति नहीं होवै तो आत्माकी प्रतीति होवै नहीं; यातैं सकल विशेष गुणनकूं त्यागिके आत्माकी प्रतीति होवै नहीं, तैसैं आत्माकूं त्यागिके केवल ज्ञानादिकनकी प्रतीति होवै नहीं; यातैं घटके ज्ञानका ज्ञान होवै तब आत्माकाभी ज्ञान होवै है, यातैं व्यवसायज्ञानकूं और ताके विषय घटकूं तैसैं व्यवसायके आश्रय आत्माकूं "घटमहं जानामि " यह ज्ञान प्रकाशै है; इसीवास्ते त्रिपुटीगोचर ज्ञानकूं अनुव्यवसाय कहै हैं, अनुव्यवसाय ज्ञानका करण मन है, यातैं सकल विषयनतैं मनका संबंध कह्या चाहिये. जैसैं घट ज्ञान आत्मा विषय हैं, तैसैं घटत्व ज्ञानत्व आत्मत्वभी घटज्ञानके ज्ञानके विषय हैं. घटज्ञानसैं तो मनका स्वसंयुक्त समवायसंबंध है, और ज्ञानत्वसैं स्वसंयुक्त समवेत समवाय संबंध है, आत्मासैं स्वसंयोग संबंध है, आत्मत्वसैं स्वसंयुक्त समवायसंबंध है, और घटसैं तो मनका संबंध

प्रत्यक्षका हेतु संभवै नहीं. काहेतैं ? बाह्य पदार्थका ज्ञान स्वतंत्र मनसैं होवै नहीं. यातैं घटसैं मनका अलौकिक संबंध कह्या चाहिये. लौकिक संबंधसैं बाह्यपदार्थका ज्ञान मनसैं होवै नहीं. अलौकिक संबंधसैं बाह्यपदार्थकाभी मनसैं ज्ञान होवै है, सो अलौकिकसंबंध ज्ञानलक्षण है. अनुव्यवसायज्ञानका विषय जो व्यवसाय ज्ञान सोई मनका घटसैं संबंध है ताका यह स्वरूप है. स्वसंयुक्त समवेतज्ञान अथवा स्वसंयुक्त समवेतज्ञानविषयता घटसैं मनका संबंध है. ज्ञानलक्षणवाक्यमें लक्षणशब्दका स्वरूप अर्थ करैं तब तो आद्य-संबंध है, लक्षण शब्दका ज्ञापक अर्थ करैं तब द्वितीय संबंध है. स्वशब्दका अर्थ मन है तासैं संयुक्त आत्मतामें समवेतव्यवसायज्ञान है सो घटमें रहै है, यातैं उक्त ज्ञानही मनका घटमें संबंध होनेतैं घटका मानसज्ञान होवै है,और द्वितीय पक्षमें उक्त ज्ञानकी विषयतारूप संबंध घटमें है. व्यवसायज्ञानके विषय घटपटत्व दोनों हैं, यातैं व्यवसायरूप संबंधसैं अनुव्यवसाय ज्ञानके दोनों विषय हैं. इस रीतिसैं घटज्ञानादिक अनुव्यवसायज्ञानके विषय हैं; यातैं ज्ञानका ज्ञान **अनुव्यवसाय** है. ताकी सामग्री मनःसंयोगादि-रूप है, तासैं ज्ञानका और ज्ञानत्वका ज्ञान होवै है, प्रमात्वका ज्ञान होवै नहीं; किंतु ज्ञान होयके पुरुषकी सफल प्रवृत्ति होवै तासैं उत्तरकालमें प्रवृ-त्तिजनक ज्ञानमें प्रमात्वका अनुमिति ज्ञान होवै है. जैसैं तडागमें जलके प्रत्यक्ष ज्ञानतैं जलार्थीकी प्रवृत्ति हुए जलका लाभ होवै तब पुरुषको ऐसा अनुमान होवै है, "इदं जलज्ञानं प्रमा सफलप्रवृत्तिजनकत्वात् । यत्र सफल-प्रवृत्तिजनकत्वं तत्र प्रमात्वम् । यथा निर्णीतप्रमायाम्" इहां वर्तमान जलज्ञान पक्ष है. यद्यपि अनुमानकालमें जलज्ञान अतीत है, तथापि वर्तमानके समीप भूत भविष्यत्‌भी वर्तमानही कहिये है; यातैं वर्तमानजलज्ञानही पक्ष कह्या अतीत नहीं कह्या. प्रमात्व साध्य है. आगे हेतुदृष्टांत स्पष्ट हैं. **व्यतिरेक दृष्टान्त** कहना होवे तो "यत्र यत्र सफलवृत्तिजनकत्वं नास्ति तत्र प्रमात्वं नास्ति । यथा शुक्तौ रजतज्ञानम्"इस रीतिसैं वाक्य कहै, या अनु-मानैं जलज्ञानमें प्रमात्वका निश्चय होवै है. इस रीतिसैं सकल ज्ञानोंमें सफल

प्रवृत्तिसैं प्रमात्वकी अनुमिति होवै है. जलज्ञानग्राहक सामग्री " जलमहं जानामि " या अनुव्यवसायकी सामग्री है; प्रमात्वग्राहक सामग्री उक्त अनुमान है, सो अनुव्यवसायकी सामग्रीतैं भिन्न होनेतैं पर है; यातैं परतः प्रमात्वग्रह होवै है. यद्यपि न्यायमतमें अनुमितिका विषय पक्षभी होवै है, और उक्त अनुमितिमें जलज्ञान पक्ष है यातैं प्रमात्वका अनुमानभी ज्ञान-ग्राहक सामग्री है. तैसैं अनुव्यवसायभी दो प्रकारका होवै है. एक तो " जलमहं जानामि " ऐसा अनुव्यवसाय होवै है. जहां प्रमात्व निश्चयतैं उत्तर अनुव्यवसाय होवै तहां "जलं प्रमिनोमि" ऐसा अनुव्यवसाय होवै है, यातैं उक्त अनुमानरूप ज्ञानग्राहक सामग्रीतैं प्रमात्वका निश्चय हुआ और द्वितीय अनुव्यवसायकी सामग्रीभी ज्ञान ग्राहक है, तासैं प्रमात्वका निश्चय हुआ. इस रीतिसैं सिद्धांतकोटि स्वतःप्रामाण्यग्रहकी प्राप्ति हुई, तथापि जो जो ज्ञानग्राहक सामग्री सो सारी प्रमात्वकी ग्राहक है यह सिद्धांत कोटि है; ज्ञानग्राहक सकल सामग्रीमें "जलमहं जानामि" या अनुव्यवसायकी सामग्रीभी अंतर्भूत है, तातैं प्रमात्वका ग्रह होवै नहीं, यातैं सिद्धांत कोटिका अंगीकार नहीं.

इस रीतिसैं घटादिकनके ज्ञानतैं घटादिकनका प्रकाश होवै है. घटादिकनके प्रकाश हुएभी घटादिकनके ज्ञानका और ज्ञानके आश्रय आत्माका प्रकाश होवै नहीं. जिस कालमें अनुव्यवसायज्ञान होवै तब घटादिक विषयसहित और आत्मसहित घटादिज्ञानका प्रकाश होवै है, परंतु अनुव्यवसायज्ञानतैं व्यवसायकी त्रिपुटीका प्रकाश होवै है, अनुव्यवसायका प्रकाश होवै नहीं. जब अनुव्यवसायगोचर अनुव्यवसाय होवै तब प्रथम अनुव्यवसायका प्रकाश होवै है द्वितीयअनुव्यवसाय अप्रकाशित ही रहै है। प्रथम अनुव्यवसाय तो व्यवसायगोचर है, अनुव्यवसायगोचर द्वितीय अनुव्यवसाय है. " घटज्ञानमहं जानामि " यह द्वितीय अनुव्यवसायका स्वरूप है. द्वितीय अनुव्यवसायका व्यवहार इष्ट होवै तो " घटज्ञानस्य ज्ञानमहं जानामि " ऐसा तृतीय अनुव्यवसाय होवै है, परंतु न्यायमतमें घटज्ञानसैं

घटका प्रकाश होयके घटका व्यवहार सिद्ध होवै है. घटव्यवहारमें घटज्ञानके प्रकाशकी अपेक्षा नहीं. घटज्ञानका व्यवहार इष्ट होवै तब अनुव्यवसायतैं घटज्ञानका प्रकाश होयके घटज्ञानका व्यवहार होवै है; अनुव्यसायके प्रकाशकी अपेक्षा नहीं. इसरीतिसैं जाका व्यवहार इष्ट होवै ताके ज्ञानकी अपेक्षा है. विषयका प्रकाशक जो ज्ञान सो प्रकाशित होवै अथवा अप्रकाशित होवै ताके प्रकाशसैं उपयोग नहीं. जो प्रकाशित ज्ञानसैं ही विषयका प्रकाश होवै तो न्यायमतमें अनवस्था दोष होवै. काहेतैं ? जा ज्ञानतैं विषय प्रकाश होवै सो ज्ञान स्वप्रकाश तो है नहीं ताका प्रकाशक ज्ञानांतर होवै तब ज्ञानतैं विषयका प्रकाश होवै तिस प्रथम ज्ञानका प्रकाशक ज्ञानांतरका अन्य ज्ञान चाहिये, तृतीयका प्रकाशक चतुर्थ ज्ञान चाहिये; इस रीतिसैं अनवस्था दोष होवै. परस्पर सापेक्ष प्रकाश मानै तो अन्योन्याश्रय चक्रिका दोष होवै. यातैं विषयके प्रकाशमें अपने प्रकाशकी ज्ञान अपेक्षा करै नहीं; किंतु स्वव्यवहारमें प्रकाशकी अपेक्षा है, जहां घटादिक विषयका व्यवहार इष्ट होवै तहां घटज्ञानकी घटके प्रकाशवास्ते अपेक्षा है. अप्रकाशित ज्ञानसैंही घटका व्यवहार होवै है, जैसैं जब घटका ज्ञान नहीं होवै है तिसकालमें भी जलधारणादि प्रयोजनकी सिद्धि घट करै है. स्वकार्यमें प्रकाशकी अपेक्षा घट करै नहीं. तैसैं ज्ञानका कार्य विषयका प्रकाश है, ता विषयप्रकाशरूप कार्यमें अपने प्रकाशकी अपेक्षा ज्ञान करै नहीं. घटकी नाई स्वव्यवहारमें प्रकाशवास्ते ज्ञानकी अपेक्षा ज्ञान करै है. जा ज्ञानका व्यवहार इष्ट होवै तिस ज्ञानका ज्ञान होवै है. ज्ञानज्ञानके प्रकाशकी अपेक्षा नहीं. इच्छाके विषयकूं इष्ट कहै हैं; यातैं न्यायमतमें अनवस्था दोष कहै हैं, सो तिनका अविवेकमूलक प्रलाप है. इस रीतिसैं न्यायमतमें कोई ज्ञान स्वप्रकाश नहीं, यातैं ज्ञानके ज्ञानकी जासैं उत्पत्ति होवै सो ज्ञानग्राहक सामग्री कहिये है. अनुव्यवसायज्ञानकी सामग्री मनःसंयोगादिक और ज्ञानलक्षण अलौकिक संबंध है, सो अनुव्यवसायभेदसैं नाना है. तैसैं " जलज्ञानं प्रमा " यह अनुमितिभी ज्ञानका ज्ञान है, ताका जनक अनु-

मान है, सोभी ज्ञानग्राहक सामग्री है; और तासैं जलज्ञानके प्रमात्वका ज्ञान नहीं होवै है. और " जलं प्रमिनोमि " इस अनुव्यसायकी सामग्रीभी ज्ञानग्राहक सामग्री है; और तासैं जलज्ञानके प्रमात्वका ज्ञान होवै है, परंतु " जलमहं जानामि " यह अनुव्यवसायभी जलज्ञानका ज्ञान है और जलज्ञानके प्रमात्वकूं प्रकाशै नहीं; यातैं ज्ञानग्राहक सामग्री उक्त अनुव्यवसाय सामग्रीसैं जलज्ञानके प्रमात्वका अग्रहण होनेतैं जलज्ञानग्राहक सकल सामग्रीतैं जलज्ञानके प्रमात्वका ग्रहण नहीं होनेतैं स्वतः प्रामाण्यग्रह होवै नहीं; किंतु परतः प्रामाण्यग्रह होवै है. जो जो ज्ञानग्राहक सामग्री तिन सर्वतैं प्रमात्वग्रह होवै, याकूं स्वतः प्रामाण्यग्रह कहे हैं. या पक्षमें प्रमात्वधर्मकूं त्यागिके किसी ज्ञानका ज्ञान होवै नहीं. प्रमात्व ज्ञानत्व ये उभय धर्मविशिष्ट ज्ञानका ज्ञान होवै है; केवल ज्ञानत्वधर्मविशिष्ट ज्ञानका ज्ञान होवै नहीं. और परतः प्रामाण्यग्रहवादमें प्रथम अनुव्यवसायतैं प्रमात्वकूं त्यागिके ज्ञानत्वविशिष्ट ज्ञानका ज्ञान होवै है, फेरि अन्य अनुव्यवसायतैं वा उक्त प्रकारके अनुमानतैं प्रमात्वका ज्ञान होवै है.

१६९ मीमांसक और सिद्धांतसंमत स्वतःप्रामाण्यवादमेंदोष.

मीमांसकमतमें और सिद्धांतमतमें स्वतः प्रामाण्यग्रहका अंगीकार है, न्यायवैशेषिक मतमें परतः प्रामाण्यग्रहका अंगीकार है और स्वतः प्रामाण्यग्रहमें यह दोष कह्या है: जहां एक पदार्थका अनेकवार ज्ञान होयके प्रवृत्ति हुई होवै तहां तो ज्ञानके प्रमात्वमें कहूं संदेह होवै नहीं. काहेतैं ? अनेकवार सफल प्रवृत्ति होयके प्रमात्वनिश्चय होय जावै है, सो प्रमात्वनिश्चय प्रमात्वसंशयका विरोधी है, परंतु जा पदार्थका अपूर्व ज्ञान होवै ताके ज्ञानमें प्रमात्वका संदेह होवै है, सो नहीं हुआ चाहिये. काहेतैं ? अद्वैतमतमें और प्रभाकरके मतमें तो ज्ञान स्वप्रकाश है, यातैं ज्ञान कदीभी अगृहीत होवै नहीं गृहीतही होवै है, यातैं प्रमात्वभी साथही गृहीत होवै तो निर्णीत पदार्थका संदेह होवै नहीं, यातैं प्रमात्वका संदेह संभवै नहीं. सिद्धांतपक्षमें तो प्रकाशरूप ज्ञान है, प्रकाशपदार्थका ज्ञानपदार्थसैं भेद नहीं.

१७० प्रभाकरके मतमें सारे ज्ञानतैं त्रिपुटीका प्रकाश.

और प्रभाकरके मतमें ज्ञानके विषयमें प्रकाश होवै है. प्रकाशका हेतु ज्ञान है. जैसैं घटका ज्ञान होवै तब घटज्ञानतैं घटका प्रकाश होवै. तैसैं घटका ज्ञान अपने स्वरूपका प्रकाश करै है. और अपना आश्रय जो आत्मा ताका प्रकाश करै है, सारे ज्ञान त्रिपुटीको प्रकाशै है. ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयका समुदाय त्रिपुटी कहिये है. इस रीतिसैं प्रभाकरके मतमें अपने स्वरूपकूंभी ज्ञान विषय करै है और अपने प्रमात्वकूं विषय करै हैं.

१७१ मुरारिमिश्रका मत.

और मुरारिमिश्रके मतमें ज्ञानका प्रकाश अनुव्यवसायतैं होवै है, और तिस ज्ञानका प्रकाशक अनुमितिही प्रमात्वका प्रकाश मान्या है; यातैं अनुव्यवसायसैं उत्तर प्रमात्वका संदेह नहीं हुआ चाहिये.

१७२ भट्टका सिद्धांत.

तैसैं भट्टका यह सिद्धांत हैः—घटादिकनके ज्ञानका ज्ञान प्रत्यक्षरूप होवै नहीं. काहेतैं ? ज्ञानगुण प्रत्यक्षयोग्य नहीं, यातैं ज्ञानका ज्ञान अनुमिति रूप होवै है, मानसप्रत्यक्ष रूप नहीं. सो अनुमिति ज्ञान इस रीतिसैं होवै है, इंद्रियविषयके संयोगतैं प्रत्यक्षज्ञान होवै अथवा अनुमिति ज्ञान होवै. सकलज्ञानतैं घटादिक विषयमें ज्ञातता नाम धर्म उपजै है, इसीवास्ते ज्ञान हुआ पाछै " ज्ञातो घटः " ऐसा व्यवहार होवै है. ज्ञानसैं प्रथम जो घटइंद्रियका संयोग होवै, तासैं " अयं घटः " ऐसा प्रत्यक्ष होवै है, सो प्रत्यक्षज्ञान समवायसंबंधसैं ज्ञातामें रहै है, विषयतासंबंधसैं घटमें रहै है. जहां विषयता संबंधसैं ज्ञान होवै तहां समवाय संबंधसैं ज्ञातता उपजै है. इस रीतिसैं घटके ज्ञानतैं घटमें ज्ञातता उपजै है. तिस ज्ञातताका उपादान कारण घट है, निमित्त कारण ज्ञान है. असमवायिकारणपरिभाषा भट्टके मतमें है नहीं. उपादान कारणसैं भिन्नकूं निमित्तकारण ही कहै हैं. इस रीतिसैं ज्ञानजन्य ज्ञातता धर्म घटमें होवै है. प्रथम तो "अयं घटः" इस रीतिसैं घटका प्रकाशक प्रत्यक्ष हुआ है. ता प्रत्यक्षसैं घटमें ज्ञातता धर्म उपज्या तब इंद्रियसंयोगतैं

तिसी घटका "ज्ञातो घटः" इसरीतिसैं प्रत्यक्ष होवै है. इस रीतिसैं ज्ञानजन्य ज्ञातताका बाह्य इंद्रियसैं प्रत्यक्ष होवै है. और बाह्य पदार्थके ज्ञानका बाह्य इंद्रियसैं तो किसीके मतमें प्रत्यक्ष होवै नहीं. न्यायादिकनके मतमें ज्ञानका मानसप्रत्यक्ष होवै है. भट्टके मतमें घटादिकनके ज्ञानका मानसप्रत्यक्षभी होवै नहीं, परंतु घटादिज्ञानका अनुमानजन्य अनुमिति ज्ञान होवै है. अनुमानका यह आकार है. " अयं घटः विषयतासंबन्धेन ज्ञानवान्समवायेन ज्ञाततावत्वात् । यत्र यत्र समवायेन ज्ञातता तत्र विषयतासंबन्धेन ज्ञानम्" या स्थानमें पुरोवर्ति घट पक्ष है, विषयतासंबंधसैं ज्ञान साध्य है, आगे हेतु दृष्टांत है. अन्य ग्रंथनमें प्रकारांतरसैं अनुमान लिख्या हैं सो कठिन है. और भट्टके मतमें अनुमानसैं ज्ञान जानिये है. यह सुगमरीति दिखाईहै.इस रीतिसैं ज्ञानग्राहक सामग्री भट्टके मतमें अनुमान है.

१७२ न्यायवैशेषिकमतका निष्कर्ष.

या अनुमानतैं ही घटज्ञानके प्रमात्वकाभी ज्ञान होवै है. यातैं ज्ञानकी अनुमिति हुए पाछैं प्रमात्वका संदेह भट्टमतमें नहीं हुआ चाहिये; यातैं ज्ञानके सकल ज्ञानतैं प्रमात्वका निश्चय होवै नहीं; किंतु सफल प्रवृत्ति हुए पाछे ज्ञानके प्रमात्वका निश्चय होवैं है. यह न्यायका और वैशेषिकका मत है. याकूं परतः प्रामाण्यवाद कहै हैं. ज्ञानकी उत्पत्तिकी सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवैं नहीं; अधिक सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवै है तैसैं अधिक सामग्रीतैं प्रमात्वका ज्ञान होवै है. प्रमात्वकी नांई अप्रमात्वकी परतः उत्पत्ति होवै है और परतः ज्ञान होवै, जो ज्ञानकी जनक सामग्रीतैं ज्ञानके अप्रमात्व धर्मकी उत्पत्ति होवै तो सकल ज्ञान अप्रमा हुए चाहिये; यातैं ज्ञानकी जनक सामग्रीसैं अप्रमात्वकी उत्पत्ति होवै नहीं, ज्ञानके जनक इंद्रिय अनुमानादिक हैं. तिनमें दोषका सहकार होवै तो अप्रमात्वसहित ज्ञानकी उत्पत्ति होवै, ऐसे दोष नानाविध हैं.

यद्यपि सिद्धांतमें साक्षीभास्य प्रमात्व है, यातैं प्रमात्वके ज्ञानकीभी उत्पत्ति कहे साक्षीकी उत्पत्ति सिद्ध होवै है सो बनै नहीं, तथापि वृत्तिमें

आरूढ साक्षी प्रमात्वादिकनकूं प्रकाशे है, यातैं वृत्तिभी ज्ञान कहिये है ताकी उत्पत्ति संभवै है. यह वार्ता पूर्व कही है, तथापि उक्त अर्थके कथनतैं श्रोता अध्येताकूं बोध दृष्ट होवै है. शास्त्रीय अर्थके मंदसंस्कारवाले पुरुषकूं वारंवार कहनेतैं अनायासतैं बोध होवै है. यातैं इस प्रकरणमें अनेक अर्थ वारंवार कहे हैं, पुनरुक्ति दोष नहीं. इस रीतिसैं न्यायमतमें परतः प्रामाण्यवाद मान्या है और स्वतः प्रामाण्यवादमें संशयकी अनुपपत्ति दोष कह्या है.

१७४ न्यायवैशेषिक मतका खंडन.

सो सकल असंगत है. प्रमात्वका ज्ञान तो पाछे कहैंगे, प्रथम तो अनुव्यवसाय ज्ञानतैं ज्ञानका प्रकाश होवै है; यह कथन असंगत है. काहेतैं ? जो अप्रकाश स्वभाव ज्ञान होवै तो ताके संबंधतैं घटादिकनका प्रकाश नहीं होवेगा. और जो पूर्व कह्या घटादिकनके प्रकाशमें ज्ञान अपने प्रकाशकी अपेक्षा करै नहीं. जैसैं घटादिक अज्ञातभी स्वकार्य करै हैं, तैसैं ज्ञानभी अज्ञात हुआ विषयका प्रकाशरूप स्वकार्य करैहै; सो संभवै नहीं. काहेतैं ? प्रमात्वविशिष्ट प्रमा होवै हैं, अप्रमात्वविशिष्ट अप्रमा होवै है. इस रीतिसैं ज्ञानमें प्रमात्व और अप्रमात्व धर्मकी विलक्षणता ज्ञानकी जनक सामग्रीके अधीन है: कहूं ज्ञानकी ऐसी सामग्री है, जातैं प्रमात्वविशिष्ट ज्ञानकी उत्पत्ति होवै है; और कहूं ऐसी सामग्री है, जातैं अप्रमात्वविशिष्ट ज्ञानकी उत्पत्ति होवै है. यातैं ऐसा मानना चाहिये. प्रमात्व धर्म तो एक है, सकल प्रमामें ताका संबंध है, परंतु प्रमात्वका संबंध सामग्रीके अधीन है; इस रीतिसैं ज्ञानमें प्रमात्वकी प्रयोजक सामग्री होनेतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति कही है. तैसैं अप्रमात्वका प्रयोजक दोष हैं. यातैं दोषजन्य अप्रमात्व कहिये है. दोषजन्य कहनेका दोष प्रयोज्यमें तात्पर्य है, और तिनके ज्ञानकी तो मुख्य उत्पत्ति संभवै है.

प्रत्यक्षभ्रम होवै तहां तो नेत्रादिगत प्रमाण दोषकी नांई विषयगत सादृश्य दोषभी हेतु है, कहूं प्रत्यक्षभ्रममें विषयगत सादृश्य दोषका व्यभिचारभी है;

परंतु सदृशमेंही बहुत भ्रम होवै है, यातैं बहुत स्थानमें तो सादृश्यदोष भ्रमका हेतु है. जहां विसदृशमें भ्रम अनुभवसिद्ध होवै तहां सादृश्य दोष भ्रमका कारण नहीं, एक रूपसैं दोष हेतु नहीं; किंतु जिसके हुयां जो भ्रम होवै तिस दोषकूं तिस भ्रमकी कारणता है. परोक्षभ्रमज्ञानमें सादृश्यकी अपेक्षा नहीं, यह अनुभवसिद्ध है, यातैं परोक्षज्ञानमें विषयगत दोष हेतु नहीं; किंतु अनुमितिभ्रमविषे अनुमान दोष हेतु है, व्याप्य हेतुका ज्ञान अनुमान है, हेतुमें व्यभिचारादिक दोष न्यायग्रंथनमें प्रसिद्ध है. और शाब्दभ्रम होवै तहां श्रोतामें वाक्यतात्पर्यका अनवधारण दोष है, वक्तामें विप्रलंभकतादिक दोष हैं, शब्दमें अन्यथा बोधकत्वादिक दोष हैं, इस रीतिसैं अप्रमात्वके हेतु दोष अनुभवानुसारतैं जानने चाहिये.

या प्रसंगमें प्रमात्वकी उत्पत्ति और अप्रमात्वकी उत्पत्ति कही सो विरुद्ध प्रतीत होवै है. भूत भविष्यत् वर्तमान सकल प्रमामें प्रमात्वधर्म एक है तैसैं सकल अप्रमामें अप्रमात्वभी एक है. तिनकी उत्पत्ति कहना संभवै नहीं, तथापि अपने कारणतैं ज्ञान उपजै तब कोई ज्ञान प्रमा होवै है. कोई अप्रमासौर भौतिक ज्योति आप प्रकाशरूप हुए अन्यकूं प्रकाशे हैं, प्रकाशहीन ज्योतिसैं किसीका प्रकाश देख्या नहीं. जो प्रकाशहीनभी स्वभावबलतैं स्वसंबंधीका प्रकाश करै तो सुवर्णस्थ ज्योतिर्भागतैं सुवर्णसंबंधी घटादिकनका प्रकाश हुआ चाहिये. स्वरूपप्रकाशतैं प्रकाशमान भौतिक ज्योतिसैं घटादिकनका प्रकाश देख्या है; और स्वरूपप्रकाशतैं अप्रकाशमान सुवर्ण रजतादिरूप ज्योतिसैं किसीका प्रकाश देख्या नहीं, यातैं स्वरूपप्रकाशतैं प्रकाशमान ज्ञानके संबंधसैं घटादिकनका प्रकाश होवै यह मानना चाहिये; यातैं प्रकाशस्वभाव ज्ञान है. केवल दृष्टांतबलसैं ज्ञानकूं स्वप्रकाशता नहीं मानै हैं; किंतु अनुभवसैंभी स्वप्रकाशता सिद्ध होवै है. जहां दुर्बोध अज्ञात पदार्थका पुरुषकूं ज्ञान होयके "ज्ञातव्यं ज्ञातं नावशिष्यते ज्ञातुम्" ऐसा वाक्य हर्षसैं कहै ताकूं अन्य पुरुष कहै. "एतदज्ञानं ज्ञातुमवशिष्यते" इस वाक्यकूं सुनिके हास्य करे है; यातैं ज्ञानका प्रकाश ताके अनुभवसिद्ध

है. ज्ञानके प्रकाशकी अवशेषता सुनिके हसै हैं; और "घटज्ञानं ज्ञातं न वा" इस वाक्यके वक्ताकूं निर्बुद्धी कहै है; यातैं कदाचित्‌भी ज्ञानमें अज्ञातता नहीं. अज्ञातताके अभावतैं ज्ञानगोचर अनुव्यवसाय होवै हैं, यह कथन असंगत है. और किसी पुरुषकूं ऐसा संदेह होवै नहीं, मुझको घटका ज्ञान हुआ है अथवा नहीं हुआ. जो घटका ज्ञान अज्ञात होवै तो कदाचित् संदेहभी हुआ चाहिये; यातैं ज्ञान अज्ञात होवै नहीं. ज्ञानका प्रकाश अनुव्यवसाय होवै है, यह कथन असंगत है. और जो ऐसैं कहैः—ज्ञानगोचरज्ञान नहीं होवै तो "अयं घटः, घटमहं जानामि" इस रीतिसैं ज्ञानमें विलक्षणता प्रतीति नहीं हुई चाहिये. काहेतैं? न्यायमतमें तो प्रथम ज्ञानका विषय घट है, द्वितीय ज्ञानका विषय घटज्ञान है, यातैं विषयभेदतैं ज्ञानोंकी विलक्षणता संभवै है; और स्वप्रकाश ज्ञानवादीके मतमें ज्ञानका विषय ज्ञान होवै नहीं. दोनों ज्ञानोंका विषय घट होनेतैं विषयभेदके अभावतैं विलक्षण प्रतीति नहीं हुई चाहिये, यह शंकाभी संभवै नहीं. जैसैं एकही घटका कदाचित् "अयं घटः" ऐसा ज्ञान होवै हैं, कदाचित् "अनित्यो घटः" ऐसा ज्ञान होवै हैं, तहां विषयके भेद विना विलक्षण ज्ञान होवै है; परंतु प्रथम ज्ञानमें घटकी अनित्यता भासै नहीं, और द्वितीय ज्ञानमें घटकी अनित्यता भासै है, तैसैं "अयं घटः" या ज्ञानमें घटकी ज्ञातता भासै नहीं. और "घटमहं जानामि" या ज्ञानमें घटकी ज्ञातता भासै है. ज्ञानजन्य प्रकटताकूं **ज्ञातता** कहै हैं. द्वितीयज्ञानका विषय घटवृत्ति ज्ञातता है, घटका ज्ञान नहीं; इसीवास्ते घटज्ञानसैं उत्तरकालमें कदाचित् "घटमहं जानामि" ऐसा ज्ञान होवै है. कदाचित् "ज्ञातो घटः" ऐसा प्रत्यक्ष होवै है. "ज्ञातो घटः" या प्रत्यक्षका विषय घटकी ज्ञातता है. यह अर्थ भट्टकूं संमत है और अनुभवानुसारी है. काहेतैं? जैसैं "अनित्यो घटः" या कहनेतैं अनित्य पदार्थमें विशेषण अनित्यत्वकी प्रतीति घटमें सर्वकूं संमत है, तैसैं "ज्ञातो घटः" या कहनेतैं ज्ञात पदार्थमें विशेषण ज्ञातत्वकी घटमें प्रतीति सर्वानुभवसिद्ध है. "ज्ञातो घटः" इस ज्ञानके अवसरमें "घटमहं जानामि" यह ज्ञान होवै है, यातैं "घटमहं

जानामि" यह ज्ञानभी घटकी ज्ञातताकूं विषय करै है; इस रीतिसैं ज्ञानगोचर ज्ञान नहीं माने तोभी "अयं घटः; घटमहं जानामि" इस रीतिसैं विलक्षण ज्ञान संभवै है, यातैं अनुव्यवसायज्ञानका विषय ज्ञान है यह नैयायिकमत असंगत है.

१७५ मुरारिमिश्रके मतका खंडन.

तैसैं मुरारिमिश्रका मतभी या प्रसंगमें नैयायिकमततुल्य है; यातैं असंगत है. यद्यपि मुरारिमिश्रके मतमें ज्ञानप्रकाशक अनुव्यवसायतैं ही प्रमात्वका प्रकाश होवै है इतना न्यायमतसैं विशेष है, तथापि यह विशेष अकिंचित्कर है. काहेतैं? अप्रकाश स्वभावज्ञानका अनुव्यवसायतैं प्रकाश होवै है या अंशमें न्यायके तुल्य होनेतैं असंगत हैं.

१७६ भट्टमतखंडन.

तैसैं भट्टके मतमें अनुमितिसैं ज्ञानका परोक्ष प्रकाश होवै है यह न्यायतैंभी असंगत है. काहेतैं? तिसके मतमेंभी ज्ञानका प्रकाशक जो अनुमिति तासैं प्रमात्वका प्रकाश होवै है इतना अंश तो न्यायसैं विलक्षण है; सिद्धांत अनुकूल है, तथापि घटादिक विषयकूं अपरोक्षता करनेवाले प्रत्यक्षज्ञानका अनुमितिरूप परोक्ष प्रकाश होवै है, यह कथन हास्यका आस्पद है.

१७७ प्रभाकरमतका खंडन.

तैसैं प्रभाकरके मतमेंभी घटज्ञानादिक अपने प्रकाशमें अनुव्यवसायकी अपेक्षा करै नहीं. इतने अंशमें सिद्धांतके अनुकूल है और प्रमात्वग्रहमें ज्ञानग्राहक सामग्रीतैं अन्यकी अपेक्षा करै नहीं इस अंशमेंभी सिद्धांतके अनुकूल है, तथापि प्रभाकरमतभी श्रद्धायोग्य नहीं. काहेतैं? सकल ज्ञान स्वप्रकाश हैं और त्रिपुटीविषयक हैं; केवल विषयगोचर कोई ज्ञान होवै नहीं. सारै ज्ञान "घटमहं जानामि" इस रीतिसैं त्रिपुटीगोचर होवै है. "अयं घटः" इस रीतिसैं केवल विषयगोचर ज्ञान अप्रसिद्ध है. घटसैं इंद्रियका संबंध हुए घटका ज्ञान होवै सो घटकूं और अपने स्वरूपकूं तथा अपने आश्रय आत्माकूं विषय करैहै, तैसैं घटका ज्ञानही अपने धर्म प्रमात्वकूं विषय करै है; इस

रीतिसैं घटका ज्ञान अपने प्रकाशमें अन्यकी अपेक्षा करै नहीं. इतना अंश तो समीचीन है, परंतु अपना प्रकाश आप करैहै यह विरुद्ध है. एक क्रियाका जो कर्ता होवै सो कर्म होवै नहीं; यातैं प्रकाशका कर्ता आप और प्रकाशका कर्मभी आपही; यह कथनभी विरुद्ध है. और सिद्धांतमें तो ज्ञान प्रकाशरूप है, यातैं उक्त विरोध नहीं. इस रीतिसैं प्रकाशरूप ज्ञानकूं नहीं मानैं सो मत सकल अशुद्ध है, यातैं ज्ञानका अनुव्यवसायतैं प्रकाश होवै है, यह नैयायिकवचन असंगत है.

१७८ स्वतःप्रामाण्यवादका अंगीकार और सिद्धांतमतमें उक्त संशयानुपपत्तिरूप दोषका उद्धार.

और ज्ञानग्रहकालमें प्रमात्वका ग्रह होवै तो संशयानुपपत्ति होवैहै याका यह समाधान हैः—ज्ञानकी ग्राहकसामग्रीतैं प्रमात्वका ग्रह होवै है, परंतु दोषाभावसहित ज्ञानसामग्रीतैं प्रमात्वका ग्रह होवै है यह आगे कहैंगे. जहां संशय होवै तहां दोषाभाव नहीं, जो दोष नहीं होवै तो संशय संभवै नहीं, काहेतैं ? संशय ज्ञानभी भ्रम है और भ्रमकी उत्पत्तिमें दोष हेतु है, यातैं संशय स्थलमें दोषाभाव संभवै नहीं. और प्रमात्वज्ञानमें दोषाभाव हेतु है, यातैं जहां संशय होवै है तहां प्रमात्वका ज्ञान नहीं होवै है,यातैं संशय संभवै है, सिद्धांतमें वृत्तिरूपज्ञानका साक्षीसैं प्रकाश होवै है, यातैं ज्ञानग्राहक सामग्री साक्षी है, तासैंही वृत्तिज्ञानके प्रमात्वका ग्रह होवै है, परंतु किसी स्थानमें ज्ञान तो प्रमा होवै हैं ऐसा विलक्षण दोष होवै. जासैं अनिर्वचनीय भ्रमकी तो उत्पत्ति होवै नहीं; यातैं ज्ञान तो प्रमा हुआ ताके प्रमात्वका प्रकाश साक्षी करै तिसमें प्रतिबंधक होय जावै, यातैं ज्ञानग्राहक साक्षी तो है, प्रमात्वका ग्रहण होवै नहीं; इस कारणतैं उक्त लक्षणकी अव्याप्ति है. ज्ञानग्राहक सकल सामग्रीतैं प्रमात्वके ग्रहकूं स्वतोग्रह कहै हैं. उक्त स्थलमें ज्ञानग्राहक सामग्रीतैं प्रमात्वग्रह हुआ नहीं, यातैं अव्याप्ति है, तथापि दोषाभावसहित ज्ञानग्राहक सामग्रीतैं प्रमात्वका ग्रह होवै ताकूं स्वतःप्रामाण्यग्रह कहै हैं. उक्त स्थलमें दोषाभावसहित सामग्री नहीं; किंतु दोषसहित सामग्री है; यातैं

उक्त स्थलमें लक्ष्य नहीं; या कारणतैं अव्याप्ति नहीं. इस रीतिसैं ज्ञानके प्रमात्वका प्रकाशक तो दोषाभावसहित साक्षी है और अप्रमात्वका ग्रह तो साक्षीसैं होवै नहीं. काहेतैं ? भ्रमका लक्षण दोषजन्यत्व है अथवा निष्फल प्रवृत्तिजनकत्व है अथवा अधिष्ठानसैं विषम सत्तावालेका अवभास है ? इस रीतिसैं दोषघटित निष्फल प्रवृत्तिघटित विषमसत्ताघटित भ्रमके लक्षण हैं सो दोषादिक साक्षीके विषय नहीं, यातैं दोषादिघटित अप्रमात्वभी साक्षीका विषय नहीं; यातैं अप्रमात्वका ज्ञान तो नैयायिककी नांई निष्फल प्रवृत्ति देखिके होवै है, तैसैं अप्रमात्वकी उत्पत्तिभी ज्ञानकी सामान्य सामग्रीतैं होवै तो सकल ज्ञान अप्रमा हुए चाहिये; यातैं दोषसहित ज्ञानकी उत्पादक सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवै है याका अर्थ यह है:—दोषसहित नेत्रानुमानादिकनतैं अप्रमा ज्ञानकी उत्पत्ति होवै है, अप्रमात्वविशिष्ट भ्रमज्ञानकी उत्पत्ति ही या प्रकरणमें अप्रमात्वकी उत्पत्ति कहिये है, और प्रमात्वकी उत्पत्ति तो ज्ञानकी सामान्य सामग्रीतैं ही होवै है.

१७९ न्यायमत (परतःप्रामाण्यवाद) में दोष.

और जो प्रमात्वकी उत्पत्तिमें गुण कारण कह्या सो संभवै नहीं. काहेतैं ? प्रत्यक्षस्थलमें अधिक अवयवनतैं इंद्रियका संयोग गुण कह्या सो निरवयव रूपादिके प्रत्यक्षमें संभवै नहीं; और अनुमितिमें व्याप्य हेतुका पक्षमें ज्ञान गुण कह्या सोभी संभवै नहीं. काहेतैं? जहां वह्निसहित पर्वतमें धूलिपटलमें धूमभ्रम होयके वह्निका ज्ञान होवै तहां उक्त गुण तो नहीं है और वह्निकी अनुमिति प्रमा होवे है यातें प्रमात्वकी उत्पत्तिमें गुणकूं जनकता कहना संभवै नहीं किंतु ज्ञानसामान्यकी सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवै है.

और जो ऐसैं कहै:—ज्ञानसामान्यकी सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति मानैं तो भ्रमस्थलमें भी ज्ञानसामान्यसामग्री होनेतैं प्रमाज्ञान हुया चाहिये ताका यह समाधान है:—दोष होवै तहां प्रमाज्ञान होवै नहीं यातैं प्रमात्वकी उत्पत्तिमें दोष प्रतिबंधक है. और सकल कार्यकी उत्पत्तिमें प्रतिबंधकाभाव हेतु है, यातैं दोषाभावसहित ज्ञानकी सामग्रीतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति होवै है.

इहां प्रमात्वकी उत्पत्ति कहनेसैं प्रमात्वविशिष्ट ज्ञानकी उत्पत्तिमें तात्पर्य है, यातैं प्रमात्वधर्मकी उत्पत्तिकथन असंगत नहीं. इस रीतिसैं दोषाभावसहित जो ज्ञानकी उत्पादक नेत्रादिरूप सामग्री तासैं प्रमाज्ञानकी उत्पत्ति होनेतैं प्रमात्वकी उत्पत्ति स्वतः होवै है.

यद्यपि ज्ञानसामान्यकी सामग्री इंद्रिय अनुमानादिक हैं, सामान्य ज्ञानका कारण दोषाभाव नहीं, और प्रमात्वकी उत्पत्तिमें दोषाभावभी कारण कह्या यातैं सामान्यसामग्रीतैं अधिककारणजन्य होनेतैं परतःप्रामाण्यका अंगीकार हुया, तथापि ज्ञानसामान्यकी सामग्रीतैं अधिक भावकी अपेक्षा होवै तौ परतःप्रामाण्य होवै है; अभावरूप दोषाभावकी अपेक्षातैं परतःप्रामाण्य होवै नहीं. तैसैं ज्ञानकी ग्राहक सामग्री साक्षी हैं. दोषाभावसहित साक्षीसैं ज्ञानके प्रमात्वका ज्ञान होवै है और दोषसहित इंद्रिय अनुमानादिरूप ज्ञानकी उत्पादक सामग्रीतैं अप्रमात्वकी उत्पत्ति होवै है. ज्ञानसामान्यकी सामग्री इंद्रिय अनुमानादिक हैं, तिनतैं दोष पर है, यातैं अप्रमात्वकी उत्पत्ति परतैं होवै है. और भ्रम होयके प्रवृत्ति हुए फलका लाभ नहीं होवै, तब अप्रमात्व अनुमिति ज्ञान होवै सो अनुमानसैं होवै है; और ज्ञानग्राहकसामग्री साक्षीसैं अनुमानभिन्न है यातैं अप्रामाण्यग्रहभी परतैं होवै है. अनुमानका आकार यह है:—"इदं जलज्ञानम् अप्रमा निष्फलप्रवृत्तिजनकत्वात् । यत्र यत्र निष्फलप्रवृत्तिजनकत्वं तत्र अप्रमात्वम् । यथा भ्रमान्तरे" इस रीतिसैं ज्ञानकी उत्पत्तिकालमें ही साक्षीसैं ज्ञानके स्वरूपका प्रकाश होवै है और ज्ञानवृत्ति प्रमात्वका प्रकाश होवै है.

१८० अख्यातिवादीके वचनका परिहार.

निश्चयज्ञानका संशयज्ञानसैं विरोध है, यातैं प्रमात्वका निश्चय हुयां प्रमात्वका संदेह होवै नहीं, यातैं भ्रमत्व संदेहसैं निष्कंप प्रवृत्तिका अभाव होवै; यह अख्यातिवादीका वचन असंगत है. यद्यपि प्रमात्व संशयका विरोधी प्रमात्वनिश्चय है, भ्रमत्वसंशयका विरोधी प्रमात्वनिश्चय नहीं. काहेतैं? समान विषयमें संशय और निश्चय विरोधी होवै है, प्रमात्वनिश्चय और

भ्रमत्वसंशयके विषय प्रमात्व और भ्रमत्व भिन्न हैं यातैं अख्यातिवादी-कथित वचन संगत है, तथापि जिस ज्ञानमें प्रमात्वनिश्चय होवै तिस ज्ञानमें भ्रमत्वका निश्चय और भ्रमत्वका संदेह होवै नहीं, यह अनुभवसिद्ध है; यातैं भ्रमत्वसंदेहकाभी विरोधी है, और विचार करैं तौ प्रमात्वसंशय और भ्रमत्वसंशयका भेद नहीं, एकही पदार्थ है- काहेतैं? "एतदज्ञानं प्रमा न वा" यह प्रमात्व संशयका आकार है. यामें विरोधिकोटि प्रमात्व है और निषेधकोटि भ्रमत्व है. काहेतैं? ज्ञानमें प्रमात्वका निषेध करैं भ्रमत्वही शेष रहै है. तैसें "एतदज्ञानं भ्रमो न वा" यह भ्रमत्वसंशयका आकार है, यामें विधिकोटि भ्रमत्व है निषेधकोटि प्रमात्व है. ज्ञानमें भ्रमत्वका निषेध करैं तो प्रमात्वकाही शेष रहै है; इस रीतिसैं दोनों संशयमें भ्रमत्व प्रमात्व दो कोटि समान है, यातैं प्रमात्वसंशय और भ्रमत्वसंशयका भेद नहीं, तथापि जामें विधिकोटि प्रमात्व है सो प्रमात्वसंशय कहिये है, जामें विधि-कोटि भ्रमत्व है सो भ्रमत्वसंशय कहिये है, या प्रकारतैं प्रमात्व संशय और भ्रमत्वसंशयका विषय समान होनेतैं प्रमात्वनिश्चय हुआ. जैसैं प्रमात्वसंशय होवै नहीं तैसैं भ्रमत्वसंशयभी होवै नहीं; यातैं सिद्धांतमतमें भ्रमज्ञानकूं मानैं तोभी निष्कंपप्रवृत्ति संभवै है. अनिर्वचनीयका निश्चय भ्रम-निश्चय है.

१८१ भ्रांतिज्ञानकी त्रिविधता और वृत्तिभेदका उद्धार.

इस रीतिसैं संशयनिश्चयभेदसैं भ्रमज्ञान दो प्रकारका है. तर्क ज्ञानका भ्रम निश्चयके अंतर्भूत है. काहेतैं? व्याप्यके आरोपतैं व्यापकका आ-रोप तर्क है. जैसैं "यदि वह्निर्न स्यात्तदा धूमोऽपि न स्यात्" ऐसा ज्ञान धूमवह्निसहित देशमें होवै सो तर्क है, तहां वह्निका अभाव व्याप्य है, धू-मका अभाव व्यापक है, वह्न्यभावके आरोपतैं धूमाभावका आरोप होवै है, वह्निधूमके होनेतैं वह्न्यभावका और धूमाभावका ज्ञान है, यातैं भ्रम है बाध होनेतैं भ्रम होवै ताकूं आरोप कहै है; इहा धूमवह्निका सद्भाव है,

यातैं तिनके अभावका बाध है. ताके होनेतैं भी पुरुषकी इच्छातैं वह्निके अभावका और धूमाभावका भ्रमज्ञान होवै है यातैं आरोप है. इस रीतिसैं आरोपस्वरूप तर्कभी भ्रमके अंतर्भूत है पृथक् नहीं. वृत्तिके प्रसिद्ध भेद कहे और अवांतर भेद अनंत है.

इति श्रीमन्निश्चलदाससाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरे वृत्तिभेदनिरूपणप्रसंगप्राप्तसत्ख्यात्यादिनिराकरणागताख्यातिनिराकरणप्रयोजकस्वतःप्रमात्वप्रमाणनिरूपणं नाम सप्तमः प्रकाशः ॥ ७ ॥

अथ जीवेश्वरस्वरूपवृत्तिप्रयोजनसहित कल्पितनिवृत्तिस्वरूपनिरूपणं नामाष्टमप्रकाशप्रारम्भः ।

१८२–१८७ अज्ञानविषे विचार.

१८२ वृत्तिके प्रयोजन कहनेकी प्रतिज्ञा.

सप्तम प्रकाशमें वृत्तिका स्वरूप कह्या, अब अष्टम प्रकाशमें वृत्तिका प्रयोजन कहते हैं. अज्ञानकी निवृत्ति वृत्तिका मुख्य प्रयोजन है. घटादिक अनात्माकार वृत्तिसैं घटादिक अवच्छिन्न चेतनस्थ अज्ञानकी निवृत्ति होवै है. अखंड ब्रह्माकारवृत्तिसैं निरवच्छिन्न चेतनस्थ अज्ञानकी निवृत्ति होवै है.

१८३ अज्ञानका आश्रय और विषय.

वाचस्पतिके मतमें वृत्तिसैं नाश्य अज्ञानका आश्रय जीव है और विषय ब्रह्म है. विवरणकारादिकनके मतमें अज्ञानका आश्रय और विषय शुद्धचेतन है. जैसैं ज्ञानकृत घटादिकनका प्रकाश ज्ञानकी विषयता कहिये है, तैसैं अज्ञानकृत स्वरूपका आच्छादनही अज्ञानकी विषयता है. जीवभाव ईशभाव अज्ञानाधीन हैं, यातैं अज्ञानकृत जीव अज्ञानका आश्रय संभवै नहीं; इस अर्थके ज्ञानमें उपयोगी प्रथम जीव ईश्वरका स्वरूप निरूपण करैंगे.

१८४ अज्ञानका निरूपण.

जीवईश्वरके निरूपणमें उपयोगी अज्ञानका निरूपण करै हैं. **अज्ञान, अविद्या, प्रकृति, माया, शक्ति,** ये नाम एकही पदार्थके हैं. माया अविद्याका भेदवाद एकदेशीका है. नैयायिकादिक ज्ञानाभावकूं ही **अज्ञान** कहे हैं. सिद्धांत मतमें आवरण विक्षेपशक्तिवाला अनादि भावरूप **अज्ञान** पदार्थ है. विद्यासैं नाश्य होनेतैं **अविद्या** कहे हैं, प्रपंचका उपादान होनेतैं **प्रकृति** कहै हैं, दुर्घटकूंभी संपादन करै यातैं **माया** कहै हैं, स्वतंत्रताके अभावतैं **शक्ति** कहै हैं.

१८५ अज्ञानकी अनादिभावरूपतामें शंका.

अज्ञानकूं अनादिभावरूपता कथन संभवै नहीं. काहेतैं ? यह अद्वैत ग्रंथका लेख है:—चेतनसैं भिन्न वा अभिन्न अज्ञान है यह दोनों पक्ष संभवें नहीं. काहेतैं ? "नेह नानास्ति किंचन" इत्यादिक **श्रुतिवचनतैं** चेतनसैं भिन्नका निषेध है, और जड चेतनका अभेद संभवै नहीं, और भिन्नत्व अभिन्नत्वका परस्पर विरोध होनेतैं चेतनसैं भिन्नाभिन्न अज्ञान है यह कथनभी संभवै नहीं, तैसैं अद्वैतप्रतिपादक श्रुतिविरोधसैं अज्ञानकूं सत्स्वरूपता संभवै नहीं, प्रपंचकारणताके असंभवतैं तुच्छतास्वरूप असत्स्वरूपता संभवै नहीं, परस्परविरोधी धर्म एकमें संभवै नहीं, यातैं सत् असत् उभय रूप कहना संभवै नहीं. तैसैं अज्ञानकूं सावयव मानैं तो न्यायमतमें तो द्रव्य आरंभक उपादानकूं **अवयव** कहै हैं, सांख्यादिकमतमें द्रव्यरूप परिणामवाले उपादानकूं **अवयव** कहै हैं. उपादानकूं ही अवयव कहैं तो शब्दका उपादान आकाशभी शब्दका अवयव होवैगा. तैसैं अपने गुणक्रियाके उपादानकारण घटादिकभी रूपादिक गुणनके और चलनरूप क्रियाके अवयव होवैंगे. यातैं द्रव्यके उपादानकारणकूं **अवयव** कहै हैं, अन्यके उपादानकूं अवयव कहैं नहीं. अवयवजन्यकूं **सावयव** कहै हैं. जो अविद्या द्रव्य होवै तो सावयवता संभवै; अविद्यामें द्रव्य द्रव्यत्व संभवै नहीं. काहेतैं ? नित्यअनित्यभेदसैं **द्रव्य दो प्रकारका** होवै है. जो अविद्याकूं

नित्यद्रव्यरूप मानै तो सावयवत्व कथन असंगत है.—तैसैं ज्ञानसैं अविद्याका नाश नहीं हुआ चाहिये. अनित्य द्रव्यरूप मानै तो ताके अवयवी आत्मासैं भिन्न होनेतैं अनित्यही होवैंगे और अवयवके अवयवभी अनित्य होनेतैं अनवस्था होवैगी. और अंत्य अवयवकूं परमाणुकी नांई नित्य मानै तो अद्वैतप्रतिपादक श्रुतिवचनका विरोध होवैगा. न्यायमतमें नित्य परमाणुका और सांख्यमतमें नित्यप्रधानका अंगीकार श्रुतिविरुद्ध है. इस रीतिसैं द्रव्यत्वके अभावतैं अज्ञानमें सावयवत्व संभवै नहीं. तैसैं उपादानताके असंभवतैं निरवयव अज्ञान है, यह कथनभी संभवै नहीं. सावयवही उपादानकारण होवै है. और न्यायमतमें शब्दका उपादानकारण आकाश निरवयव मान्या है सोभी "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः" इस श्रुतिसैं विरुद्ध है. तैसैं द्व्यणुकका उपादानकारण परमाणु निरवयव मान्या है सोभी निरवयव परमाणुके संयोग असंभवादि दोषतैं सूत्रकारने शारीरक शास्त्रके द्वितीयाध्यायस्थ द्वितीय पादमें निषेध कन्या है; यातैं प्रपंचके उपादान अज्ञानकूं निरवयवता संभवै नहीं, और अज्ञानकूं प्रपंचकी उपादानता "मायां तु प्रकृतिं विद्यात्" इस श्रुतिमें प्रसिद्ध है. माया और अज्ञानका भेद नहीं, इस रीतिसैं अज्ञानमें सावयवता अथवा निरवयवता संभवै नहीं. तैसैं परस्परविरुद्ध उभयरूपताभी संभवै नहीं. इस रीतिसैं किसी धर्मसैं अज्ञानका निरूपण अशक्य होनेतैं ताकूं **अनिर्वचनीय** कहै हैं. इस प्रकारका लेख बहुत ग्रंथनमें है, यातैं अनिर्वचनीय अज्ञानकूं अनादिभावरूपता कथन संभवै नहीं. भावरूपता कहनेतैं सत्‌रूपता सिद्ध होवै है और सत्‌रूपताका निषेध किया है.

१८६ उक्त शंकाका समाधान.

जैसैं सत्‌विलक्षण अज्ञान है तैसैं असत्‌विलक्षणभी है, यातैं अबाध्यरूप सत्त्व तो अज्ञानमें नहीं है, परंतु तुच्छरूप असत्‌सैं विलक्षणतारूप सत्त्वका अज्ञानमें अंगीकार है इसीवास्ते सत् असत्‌सैं विलक्षण अनिर्वच-

नीय अज्ञान है; सर्वथा वचनके अगोचरकूं अनिर्वचनीय नहीं कहै है; किंतु पारमार्थिक सत्स्वरूप ब्रह्मसैं विलक्षण और सर्वथा सत्तास्फूर्तिशून्यशशशृंगादिक असत्सैं विलक्षणही अनिर्वचनीय शब्दका पारिभाषिक अर्थ है; यातैं अनादिभावरूपताकथन संभवै है. और नैयायिकादिकनके मतमें जैसैं निषेधमुख प्रतीतिका विषय ज्ञानाभावरूप अज्ञान है, तैसा अद्वैतग्रंथनमें अज्ञानशब्दका अर्थ नहीं है; किंतु ज्ञानबाध्य रज्जुसर्पादिक जैसैं विधिमुख प्रतीतिके विषय हैं तैसैं ज्ञानसैं निवर्तनीय विधिमुख प्रतीतिका गोचर अज्ञान हैं. अज्ञानशब्दमें अकारका विरोधी अर्थ है यह पूर्व कह्या है, यातैं अज्ञानमें भावरूपता कथन संभवै है. और प्राचीन आचार्य विवरणकारादिकोंने अत्यंत उद्घोषतैं प्रकाशविरोधी अंधकारकूं भावरूपता प्रतिपादन करिके ज्ञानविरोधी अज्ञानकूं भावरूपताही प्रतिपादन करी है, यातैं अज्ञानकूं भावरूपता श्रवण करैं तो उत्कर्ष होवै ते अल्पश्रुत है. इस रीतिसैं भावरूप अज्ञान है, उत्पत्तिरहित होनेतैं अनादि है और घटकी नांई अवयव समेतरूप सावयव नहीं है, तथापि अंधकारकी नांई सांश है.

१८७—२०३ जीव और ईश्वरविषे विचार.

१८७ माया अविद्यापूर्वक जीवईश्वरके रूपमें चारि पक्ष.

शुद्धचेतनके आश्रित मूलप्रकृतिमें चेतनका प्रतिबिंब ईश्वर है, आवरणशक्तिविशिष्ट मूलप्रकृतिके अंशनकूं अविद्या कहै हैं, अविद्यारूप अनंत अंशनमें चेतनके अनंत प्रतिबिंब जीव कहै हैं और तत्त्वविवेक ग्रंथनमें इस रीतिसैं जीवईश्वरका निरूपण है. जगत्का मूलभूत प्रकृतिके दो रूप कल्पित हैं, इसीवास्ते मूल प्रकृतिके प्रसंगमें "माया चाविद्या च स्वयमेव भवति" यह श्रुति है. "स्वयमेव" कहिये जगत्का मूल प्रकृति आपही मायारूप अविद्यारूप होवै है. शुद्धसत्वप्रधान माया है, मलिनसत्ववाली अविद्या है. रजोगुणतमोगुणसैं अभिभूत सत्वकूं मलिनसत्व कहै हैं, जासैं रजोगुण तमोगुण अभिभूत होवै ताकूं शुद्ध सत्व कहै हैं, तिरस्कृतकूं अभि-

भूत कहे हैं. उक्त रूप मायामें प्रतिबिंब ईश्वर है और अविद्यामें प्रतिबिंब जीव है. ईश्वरकी उपाधि मायाका सत्व शुद्ध होनेतैं ईश्वर सर्वज्ञ है. जीवकी उपाधि अविद्याका सत्व मलिन है, यातैं जीव अल्पज्ञ है. कोई ग्रंथकार इस रीतिसैं कहै हैं:—उक्त श्रुतिमें दो रूपवाली प्रकृति कही है, तामें यह हेतु है:—विशेषशक्तिकी प्रधानतासैं माया कहै हैं, आवरणशक्तिकी प्रधानतासैं अविद्या कहै हैं, ईश्वरकी उपाधि मायामें आवरण शक्ति नहीं; यातैं मायामें प्रतिबिंब ईश्वरकूं अज्ञता नहीं और आवरणशक्तिमती अविद्यामें प्रतिबिंब जीवकूं अज्ञता है. और संक्षेपशारीरकमें यह कह्या है:—जीवकी उपाधि कार्य है और ईश्वरकी उपाधि कारण है, इस प्रकारसैं श्रुति कहै है; यातैं मायामें प्रतिबिंब ईश्वर है, अंतःकरणमें प्रतिबिंब जीव है. या प्रसंगमें प्रतिबिंबकूं जीव कहै अथवा ईश्वर कहै, तहां केवल प्रतिबिंबकूं जीवता अथवा ईश्वरता इष्ट नहीं है; किंतु प्रतिबिंबत्वविशिष्ट चेतनकूं जीवता और ईश्वरता जाननी. काहेतैं ? केवल प्रतिबिंबकूं जीवता ईश्वरता होवै तो जीववाचक पद और ईश्वरवाचक पदमें भागत्यागलक्षणाका असंभव होवैगा, और परमार्थ तो यह है:—पूर्वउक्त चारिही पक्षनमें बिंबप्रतिबिंबका अभेदवाद है; या वादमें प्रतिबिंब मिथ्या नहीं है किंतु ग्रीवास्थ मुखमेंही प्रतिबिंबत्व प्रतीति होवै है; सो भ्रमरूप प्रतीति होवै है; यातैं प्रतिबिंबत्व धर्म तो मिथ्या है और स्वरूपसैं प्रतिबिंब मिथ्या नहीं. यह अर्थ आगे स्पष्ट होवैगा.

१८८ उक्त चारिपक्षनमें मुक्त जीवनका शुद्धब्रह्मसैं अभेद.

उक्त चारो पक्षनमें जीव ईश्वर दोनोंकूं प्रतिबिंब मानै हैं, यातैं मुक्त जीवनका प्राप्य शुद्ध ब्रह्म है ईश्वर नहीं. काहेतैं ? एक उपाधिका विनाश होवै तब तिस उपाधिके प्रतिबिंबका अपर प्रतिबिंबसैं अभेद होवै नहीं. किंतु अपने बिंबसैं अभेद होवै है. ईश्वरभी प्रतिबिंब है, यातैं जीवरूप प्रतिबिंबकी उपाधिका नाश हुए प्रतिबिंबरूप ईश्वरसैं संभवै नहीं; किंतु बिंबभूत शुद्ध ब्रह्मसैं ही अभेद होवै है.

१८९ उक्त च्यारी पक्षनमें षट् अनादि पदार्थ कहिके त्रिविध चेतनका अंगीकार.

इस रीतिसैं उक्त पक्षनमें जीव, ईश, शुद्ध ब्रह्मभेदसैं त्रिविध चेतनका अंगीकार है; इसीवास्ते वार्तिकमें षट् पदार्थ अनादि कहे हैं:--शुद्धचेतन १, ईश्वरचेतन २ जीवचेतन ३ अविद्या ४, अविद्याचेतनका परस्पर संबंध ५, और इन पांचोंका परस्पर भेद ६; ये षट्पदार्थ उत्पत्तिशून्य होनेतैं अनादि हैं. इनमें चेतनके तीनिही भेद कहे हैं.

१९० चित्रदीपमें विद्यारण्यस्वामीने उक्तचेतनके च्यारि भेद.

चित्रदीपमें विद्यारण्यस्वामीने चेतनके चारि भेद कहे हैं, तथाहिः—जैसैं घटाकाश, महाकाश, जलाकाश, मेघाकाश भेदसैं आकाशके चारि भेद हैं. घटावच्छिन्न आकाशकूं घटाकाश कहै हैं, निरवच्छिन्न आकाशकूं महाकाश कहै हैं, घटजलमें आकाशके प्रतिबिंबकूं जलाकाश कहै हैं. मेघमें जलके सूक्ष्म कण हैं तिनमें आकाशके प्रतिबिंबकूं मेघाकाश कहे हैं; तैसैं चेतनभी कूटस्थ १, ब्रह्म २, जीव ३, ईश्वर ४; भेदसैं चारिप्रकारका है. स्थूलसूक्ष्मशरीरके अधिष्ठानचेतनकूं कूटस्थ कहै हैं, निरवच्छिन्नचेतनकूं ब्रह्म कहै हैं, शरीररूप घटमें बुद्धिस्वरूप जलमें जो चेतनका प्रतिबिंब ताकूं जीव कहै हैं, मायारूप अंधकारस्थ जो जलकणसमान बुद्धिवासना तिनमें प्रतिबिंबकूं ईश्वर कहै हैं, सुषुप्त्यवस्थामें जो बुद्धिकी सूक्ष्म अवस्था ताकूं वासना कहै हैं, केवल बुद्धिवासनामें प्रतिबिंबकूं ईश्वर कहै तो बुद्धिवासनाकूं अनंतता होनेतैं ईश्वरभी अनंत हुए चाहिये; यातैं बुद्धिवासनाविशिष्ट अज्ञानमें प्रतिबिंबकूं ईश्वर कहै हैं. इस रीतिसैं विज्ञानमयकोश जीव है. जाग्रत्स्वप्नअवस्थामें स्थूल अंतःकरणकूं विज्ञान कहै हैं; तामें प्रतिबिंबकूं विज्ञानमय कहै हैं. "मैं कर्ता, भोक्ता, स्थूल, दुर्बल, काण, बधिर हूं" इस रीतिसैं विशेष विज्ञानवाला जीव है; और सुषुप्त्यवस्थामें बुद्धिवासनासहित अज्ञानरूप आनंदमय कोश ईश्वर है. आ-

नंदमयकोशकूं ईश्वरता मांडूक्य उपनिषत्में प्रसिद्ध है. इस रीतिसैं चेतनके चारि भेद चित्रदीपमें कहे हैं.

१९१ बिंबप्रतिबिंबवादसैं आभासवादका भेद.

और विद्यारण्यस्वामीके मतमें प्रतिबिंब मिथ्या है. पूर्व उक्त पक्षनमें बिंबप्रतिबिंबका अभेद होनेतैं प्रतिबिंब सत्य है, एकही पदार्थमें उपाधिके सान्निधानतैं बिंबत्वप्रतिबिंबत्वभ्रम होवै है और बिंबका स्वरूपही प्रतिबिंब है. और विद्यारण्यस्वामीके मतमें दर्पणादिकनमें बिंबके सान्निधानतैं अनिर्वचनीय प्रतिबिंबकी उत्पत्ति होवै है, यातैं जीवईश्वरका स्वरूप मिथ्या है.

१९२ आभासवादकी रीतिसैं जीवब्रह्मके अभेदके वाक्यनमें बाधसमानाधिकरण.

जीवका ब्रह्मसैं अभेदप्रतिपादक वाक्यनमें बाध समानाधिकरण है, अभेदसमानाधिकरण नहीं है: जैसैं पुरुषमें स्थाणुभ्रम होयके पुरुषका ज्ञान हुए " यह स्थाणु पुरुष है " इस रीतिसैं पुरुषतैं स्थाणुका अभेद कहैं, तहां स्थाणुके अभाववाला पुरुष है अथवा स्थाणुका अभाव पुरुष है; इस रीतिसैं बोध होवै है. अधिकरणतैं अभाव पृथक् है या मतमें स्थाणुके अभाववाला पुरुष है ऐसा बोध होवै है. कल्पितका अभाव अधिष्ठानरूप है; या मतमें स्थाणुका अभाव पुरुष है ऐसा बोध होवै है. इस रीतिसैं अयं शब्दका अर्थ " जीव ब्रह्म " या वाक्यका जीवके अभाववाला ब्रह्म है; यह अर्थ है अथवा जीवका अभाव ब्रह्म है यह अर्थ है ? अभावकूं बाध कहै हैं. उक्त रीतिसैं कल्पित पदार्थका सत्यअधिष्ठानसैं अभेद कहै, तहां बाधसमानाधिकरणही विवक्षित होवै है.

१९३ कूटस्थ और ब्रह्मके अभेदस्थलमें अभेद (मुख्य) समानाधिकरण.

जहां कूटस्थका ब्रह्मसैं अभेद कहैं तहां **अभेद समानाधिकरण** है. जैसैं जलाकाशका महाकाशतैं अभेद कहैं, तहां जलाकाशका महाकाशतैं बाधसमानाधिकरण है, और घटाकाशका महाकाशतैं अभेद कहैं, तहां अभे-

दसमानाधिकरण है; याहीकूं मुख्यसमानाधिकरण कहै हैं. इस रीतिसैं विद्यारण्यस्वामीने जीवका ब्रह्मसैं बाधसमानाधिकरणही लिख्या है.

१९४ उक्त बाधसमानाधिकरणमें विवरणकारके वचनतैं अविरोध.

और विवरण ग्रंथमें " अहं ब्रह्मास्मि " या वाक्यमें अहं शब्दके अर्थ जीवका ब्रह्मसैं मुख्य समानाधिकरण लिख्या है और बाध समानाधिकरणका महावाक्यनमें खंडन लिख्या है ताका समाधान विद्यारण्यस्वामीने इस रीतिसैं लिख्या हैः—बुद्धिस्थ चिदाभास और कूटस्थका अन्योन्याध्यास है. काहेतैं ? चिदाभासविशिष्ट बुद्धिका अधिष्ठान कूटस्थ है; अहंप्रतीतिका विषय चिदाभासविशिष्ट बुद्धि है. और स्वयंप्रतीतिका विषय कूटस्थ है. " अहं स्वयं जानामि । त्वं स्वयं जानासि । स स्वयं जानाति " इस रीतिसैं सकल प्रतीतिमें अनुगत स्वयंशब्दका अर्थ है; और अहं त्वम् आदिक शब्दनका अर्थ व्यभिचारी है. स्वयंशब्दका अर्थ कूटस्थ सौर अनुगत होनेतैं अधिष्ठान है; और अहं त्वम् आदिक शब्दनका अर्थ चिदाभासविशिष्ट बुद्धिरूप जीव व्यभिचारी होनेतैं अध्यस्त है. कूटस्थमें जीवका स्वरूपाध्यास है. और जीवमें कूटस्थका संबंधाध्यास है, यातैं कूटस्थजीवका अन्योन्याध्यास होनेतैं परस्परविवेक होवै नहीं, यातैं ब्रह्मसैं कूटस्थके मुख्यसमानाधिकरणका जीवमें व्यवहार करै हैं. और जीवमें कूटस्थधर्मके आरोप विना मिथ्या जीवका सत्यब्रह्मसैं मुख्य समानाधिकरण संभवै नहीं, यातैं स्वाश्रय अंतःकरणका अधिष्ठान जो कूटस्थ, ताके धर्मकी विवक्षासैं जीवका ब्रह्मसैं मुख्य समानाधिकरण कह्या है; इस रीतिसैं चित्रदीपमें विद्यारण्यस्वामीने विवरणकारके वचनतैं अविरोधका प्रकार लिख्या है.

१९५ विवरणोक्त जीवका ब्रह्मसैं मुख्यसमानाधिकरण और विद्यारण्यके वाक्यकी प्रौढिवादता.

और विवरणग्रंथकूं पूर्व उत्तर देखै तो यह प्रकार संभवै नहीं. काहेतैं? विवरणग्रंथमें बिंबका स्वरूपही प्रतिबिंब मान्या है, यातैं ताके मतमें प्रतिबिंबत्वरूप जीवत्व तो मिथ्या है, और प्रतिबिंबरूप जीवका स्वरूप मिथ्या नहीं,

किंतु ताका स्वरूप सत्य हैं; यातैं जीवका ब्रह्मसैं मुख्य समानाधिकरण संभवै है. और विद्यारण्यस्वामीने जो विवरणग्रंथका उक्त अभिप्राय कह्या सो प्रौढिवादसैं कह्या है. तथाहिः--प्रतिबिंबकूं मिथ्यात्व मानेभी जीवमें कूटस्थत्व विवक्षातैं महावाक्यनमें विवरणउक्त मुख्यसमानाधिकरण संभवै है,यातैं "मुख्य समानाधिकरणकी अनुपपत्तिसैं प्रतिबिंबकूं सत्यत्व अंगीकरणीय नहीं" इस प्रौढिवादसैं विद्यारण्यस्वामीने उक्त अभिप्राय विवरणका लिख्या है और विवरणग्रंथका उक्त अभिप्राय है नहीं. प्रौढि कहिये उत्कर्षसैं जो वाद कहिये कथन, ताकूं **प्रौढिवाद** कहैं हैं. प्रतिबिंबकूं मिथ्यात्व मानिके महावाक्यनमें मुख्य समानाधिकरणभी प्रतिपादन करिशके हैं; इस रीतिसैं अपना उत्कर्ष बोधन किया है.

१९६ विद्यारण्योक्त चेतनके चारिभेदका अनुवाद.

इस रीतिसैं अंतःकरणमें आभास **जीव** है, सो विज्ञानमय कोशरूप है. बुद्धिवासनाविशिष्ट अज्ञानमें आभास ईश्वर है, सो आनंदमयकोशरूप है. दोनोंका स्वरूप मिथ्या है, कूटस्थ और जीवका अन्योन्याध्यास है, और ब्रह्मचेतन ईश्वरका अन्योन्याध्यास है, यातैं जीवमें कूटस्थ धर्मनके आरोपतैं कहूं पारमार्थिक ब्रह्मता कही है. तैसैं ईश्वरमें आध्यासिक ब्रह्मत्वकी विवक्षातैं कहूं वेदांतवेद्यत्वादिक धर्म कहे हैं, यातैं चेतनके चारि भेद हैं, यह क्रिया चित्रदीपमें कही है.

१९७ विद्यरण्यस्वामीउक्त बुद्धिवासनामें प्रतिबिंबकी ईश्वरताका खंडन.

परंतु बुद्धिवासनामें प्रतिबिंबकूं ईश्वरता संभवै नहीं, तैसैं आनंदमयकोशकूं ईश्वरता कथनभी संभवै नहीं. तथाहिः—बुद्धिवासनाविशिष्ट अज्ञानमें प्रतिबिंबकूं ईश्वर कहै ताकूं यह पूछा चाहिये. ईश्वरभावकी उपाधि केवल अज्ञान है अथवा वासनासहित अज्ञान है अथवा केवल वासना है? जो प्रथमपक्ष कहै तो बुद्धिवासनाविशिष्ट अज्ञानमें प्रतिबिंबकूं ईश्वरताकथनसैं विरोध होवैगा. जो द्वितीयपक्ष कहै तो केवल अज्ञानकूंही ईश्वरभावकी उपाधि मानना चाहिये.

बुद्धिवासनाविशिष्ट अज्ञानकूं ईश्वरकी उपाधि कहना निष्फल है जो विद्यारण्यस्वामीका भक्त इस रीतिसैं कहैं, केवल अज्ञानकूं ईश्वरकी उपाधि मानैं तो ईश्वरमें सर्वज्ञता सिद्ध होवै नहीं, यातैं सर्वज्ञताके लाभार्थ बुद्धिवासनाभी अज्ञानकी विशेषण मानी है, यह कथनभी असंगत है. काहेतैं ? अज्ञानस्थ सत्वांशकी सर्वगोचर वृत्तिसैंही सर्वज्ञताका लाभ होनेतैं बुद्धिवासनाकूं अज्ञानकी विशेषणता मानना निष्फल है; और अज्ञानस्थ सत्वांशकी वृत्तिसैंही सर्वज्ञता संभवै है, बुद्धिवासनातैं सर्वज्ञता सिद्ध होवै नहीं. काहेतैं? एक एक बुद्धिवासनाकूं तो निखिल पदार्थगोचरता संभवै नहीं. सर्वज्ञतालाभके अर्थ सकलवासनाकूं अज्ञानविशेषणता मानना चाहिये; सो प्रलयकाल विना एक कालमें सर्व वासनाका सद्भाव संभवै नहीं: यातैं सर्वज्ञताकी सिद्धि वासनातैं होवै नहीं; इस रीतिसैं धीवासनासहित अज्ञान ईश्वरकी उपाधि है, यह द्वितीयपक्षभी संभवै नहीं. जो केवल वासना ईश्वरकी उपाधि है, यह तृतीय पक्ष कहै तथापि यह पूछ्या चाहियेः—एक एक वासनामें प्रतिबिंब ईश्वर है अथवा सकल वासनामें एक प्रतिबिंब ईश्वर है ? जो प्रथमपक्ष कहै तो जीवजीवकी बुद्धिकी वासना अनंत होनेतैं तिनमें प्रतिबिंब ईश्वरभी अनंत होवैंगे, और एक एक वासनाकूं अल्पगोचरता होनेतैं तिनमें प्रतिबिंबरूप अनंत ईश्वरभी अल्पज्ञही होवैंगे. सर्व वासनामें एक प्रतिबिंब मानैं तो सर्व वासना प्रलय विना युगपत् होवै नहीं. और अनेक उपाधिमें अनेकही प्रतिबिंब होवै है, यातैं सर्व वासनामें एक प्रतिबिंब संभवै नहीं, इस रीतिसैं केवल अज्ञानही ईश्वरकी उपाधि है.

१९८ विद्यारण्यस्वामीउक्त आनंदमयकोशकी ईश्वरताका खंडन.

विद्यारण्यस्वामीने चित्रदीपमें वासनाका निष्फल अनुसरण कर्‍या है, तैसैं आनंदमयकोशकूं ईश्वरता कथनभी असंगत है. काहेतैं ? जाग्रत् स्वप्नमें स्थूलावस्थाविशिष्ट प्रतिबिंबसहित अंतःकरणकूं **विज्ञानमय** कहै हैं, विज्ञानमय जीवही सुषुप्तिकालमें सूक्ष्मरूपतैं भी लीन हुआ **आनंदमय** कहिये है; तिसकूं ईश्वर मानै तो जाग्रत् स्वप्नमें अंतःकरणकी विलीन अवस्थारूप आ-

नंदमयके अभावतैं ईश्वरकाभी अभाव हुआ चाहिये. अनंतपुरुषनकी सुषुप्तिमें अनंत ईश्वर हुए चाहिये. जीवके पंचकोश सकल ग्रंथकारोंने कहे हैं और पंचकोशविवेकमें विद्यारण्यस्वामीने आपभी जीवके पंचकोश कहे हैं. आनंदमयकूं ईश्वरता मानैं तो सकल वचन असंगत होवैंगे, यातैं आनंदमयकूं ईश्वरता संभवै नहीं.

१९९ मांडूक्योपनिषदुक्त आनंदमयकी सर्वज्ञता आदिकका अभिप्राय.

और मांडूक्यउपनिषत्में आनंदमयकूं सर्वज्ञता सर्वेश्वरता कही है, तासैं भी आनंदमयकूं ईश्वरता सिद्ध होवै नहीं. काहेतैं? मांडूक्यमें यह अर्थ है:— विश्व तैजस प्राज्ञभेदसैं जीवके तीनि स्वरूप हैं. विराट् हिरण्यगर्भ अव्याकृतभेदसैं ईश्वरकेभी तीनि भेद हैं. यद्यपि हिरण्यगर्भकूं जीवता सकल उपनिषत्में प्रसिद्ध है. हिरण्यगर्भरूपकी प्राप्तिकी हेतु उपासना उपनिषत्में प्रसिद्ध है, और उपनिषदुपासनाकर्ता जीवही कल्पांतरमें हिरण्यगर्भपदवीकूं प्राप्त होवै है तैसैं विराट्भावकी प्राप्तिकी उपासनातैं कल्पांतरमें जीवकूंही विराट्रूपकी प्राप्ति होवै है. और हिरण्यगर्भके ऐश्वर्यतैं विराट्का ऐश्वर्य न्यून है, और ईश्वरका ऐश्वर्य सर्वसैं उत्कृष्ट है, तामें अपकृष्ट ऐश्वर्य संभवै नहीं, तैसैं हिरण्यगर्भका पुत्र विराट् होवै हैं, ताकूं क्षुधापिपासाकी बाधा होवै है, यह गाथा पुराणमें प्रसिद्ध है, यातैं हिरण्यगर्भ और विराट्कूं ईश्वरताकथन संभवै नहीं, तथापि सत्यलोकवासी सूक्ष्मसमष्टिका अभिमानी सुखभोक्ता हिरण्यगर्भ तो जीव हैं, और स्थूलसमष्टिका अभिमानी विराट् जीव है; और सूक्ष्म प्रपंचका प्रेरक अंतर्यामीभी हिरण्यगर्भशब्दका अर्थ है, तैसैं स्थूलप्रपंचका प्रेरक अंतर्यामी विराट्शब्दका अर्थ हैं. चेतन प्रतिबिंबगर्भ अज्ञानरूप अव्याकृतही सूक्ष्मसृष्टिकालमें ताका प्रेरक होवै तब हिरण्यगर्भ संज्ञक होवै है, स्थूलसृष्टिकालमें ताका प्रेरक होवैं, तब विराट् संज्ञक होवै है; इस रीतिसैं जीवमें और ईश्वरमें हिरण्यगर्भ शब्दकी और विराट् शब्दकी प्रवृत्ति होवै है. परंतु सूक्ष्मस्थूलके अभिमानी जीवमें तो हिरण्यगर्भ शब्द और विराट्शब्दकी शक्ति वृत्ति है, और

द्विविध प्रपंचके प्रेरक ईश्वरमें तिन शब्दनकी गौणी वृत्ति है. जैसैं जीवरूप हिरण्यगर्भका और विराट्का स्वीयतासंबंध सूक्ष्म स्थूल प्रपंचसे है, तैसैं ईश्वरकाभी सूक्ष्मस्थूल प्रपंचसैं प्रेर्यतासंबंध है; यातैं सूक्ष्मदृष्टि संबंधित्वरूप हिरण्यगर्भ वृत्तिगुणके योगतैं ईश्वरमें हिरण्यगर्भशब्दकी गौणी वृत्ति है; तैसैं स्थूल सृष्टिसंबंधित्वरूप विराट्वृत्तिगुणके योगतैं ईश्वरमें विराट्शब्दकी गौणी वृत्ति है इस रीतिसैं हिरण्यगर्भ विराट्शब्दके जीव ईश्वर दोनों अर्थ हैं. जिस प्रसंगमें जो अर्थ संभवै ताका ग्रहण करै; और गुरुसंप्रदायविना वेदांतग्रंथकूं अवलोकन करैं तिनकूं पूर्व उक्त व्यवस्थाका ज्ञान होवै नहीं; यातैं हिरण्यगर्भ विराट् शब्दनतैं कहूं जीवका, कहूं ईश्वरका संभव देखिके मोहकूं प्राप्त होवै है. मांडूक्य उपनिषद्में त्रिविध जीवका त्रिविध ईश्वरतैं अभेदचिंतन लिख्या है. जिस मंदबुद्धिपुरुषकूं महावाक्यविचारतैं तत्वसाक्षात्कार होवै नहीं ताकूं प्रणवचिंतन मांडूक्यमें कह्या है. ताका प्रकार विचारसागरके पंचमतरंगमें स्पष्ट है. तहां विश्वविराट्का और तेजस हिरण्यगर्भका तथा प्राज्ञ ईश्वरका अभेदचिंतन लिख्या है; यातैं ईश्वरके धर्म सर्वज्ञतादिक प्राज्ञरूप आनंदमयमें अभेदचिंतनके अर्थ कहे हैं; और आनंदमयकूं ईश्वरताविवक्षासे नहीं कहे. जैसैं विश्वविराट्के अभेदचिंतनके अर्थ वैश्वानरके उन्नीस मुख कहे हैं. चतुर्दश त्रिपुटी और पंचप्राण ये उन्नीस विश्वके भोगसाधन होनेतैं विश्वका मुख हैं और वैश्वानर ईश्वर हैं; ताकूं भोग होवै नहीं; यातैं विश्वविराट्के अभेदचिंतनके अर्थही विश्वके भोगसाधन पदार्थनकूं वैश्वानरकी भोगसाधनता कही है. विराट्कूं वैश्वानर कहे हैं. मांडूक्यवचनका अभेदचिंतनमें तात्पर्य है, वस्तुके स्वरूपके अनुसारही चिंतन होवै है, यह नियम नहीं है; किंतु अन्यरूपतैंभी चिंतन होवै है. यह अर्थभी विचारसागरमें स्पष्ट है, यातैं मांडूक्यवचनतैं आनंदमयकूं ईश्वरता सिद्ध होवै नहीं.

२०० आनंदमयकी ईश्वरतामें विद्यारण्य स्वामीके तात्पर्यका अभाव.

और विद्यारण्यस्वामीनेभी ब्रह्मानंदनामग्रंथनमें "जीवकी अवस्थाविशेष

आनंदमयकोश है" यह लिख्या है. तहां यह प्रसंग हैः—जाग्रत्स्वप्नमें भोग देनेवाले कर्मसमुदायका नाश हुए निद्रारूपतैं विलीन अंतःकरणका भोगदेनेवाले कर्मके वशतैं घनीभाव होवै है ताकूं विज्ञानमय कहैं है; सोई विज्ञानमय सुषुप्तिमें विलीन अवस्थावाला अंतःकरणरूप उपाधिके संबंधतैं आनंदमय कहिये हैं; इसरीतिसैं विज्ञानमयकी अवस्थाविशेषही आनंदमय कह्या है; यातैं विद्यारण्यस्वामीकूंभी आनंदमयकोशमें जीवत्वही इष्ट है. यद्यपि विलक्षण लेख देखिके और परंपरावचनमें परंपरातैं यह कहै हैं; पांच विवेक और पांच दीप तौ विद्यारण्यकृत हैं और पांच आनंद भारतीतीर्थकृत हैं; तथापि एकही ग्रंथमें पूर्व उत्तरका विरोध संभवै नहीं; यातैं पंचदशीग्रंथमें आनंदमयकूं ईश्वरता विवक्षित नहीं, और चित्रदीपमें तिसकूं ईश्वरता कही है, सो मांडूक्यवचनकी नांई चिंतनीय ईश्वराभेदमें तात्पर्यसैं कही है; आनंदमयकूं ईश्वरतामें विद्यारण्य स्वामीका तात्पर्य नहीं. इस रीतिसैं विद्यारण्यस्वामीने चेतनके चारीभेद पंचदशीके चित्रदीपप्रकरणमें कहै हैं, तथापिः—

२०१ चेतनके तीनभेदोंका विद्यारण्यस्वामीसहित सर्वकूं स्वीकार.

दृग्दृश्यविवेक नामग्रंथमें विद्यारण्यस्वामीने कूटस्थका जीवमें अंतर्भाव लिख्या है, तथापि पारमार्थिक व्यावहारिक प्रातिभासिक भेदसैं जीव तीन प्रकारका है. स्थूलसूक्ष्म—भेदद्वयावच्छिन्न कूटस्थचेतन पारमार्थिक जीव है, तिसका ब्रह्मसैं मुख्य अभेद है; मायासैं आवृत कूटस्थमें कल्पित अंतःकरणमें चिदाभास है, सो देहद्वयमें अभिमानकर्ता व्यावहारिक जीव है. ब्रह्मज्ञानसैं पूर्वताका बाध होवै नहीं, यातैं व्यावहारिक है. निद्रारूपमायासैं आवृतव्यावहारिक जीवरूप अधिष्ठानमें कल्पित प्रातिभासिक जीव है. स्वप्न अवस्थामें प्रातिभासिक प्रपंचका अहंममाभिमानी प्रातिभासिक जीव है. ब्रह्मज्ञानसे विनाही जाग्रत्प्रपंचके बोधसैं प्रातिभासिक प्रपंचकी निवृत्तिकालमें व्यावहारिक जीवके बोधसैं प्रातिभासिक प्रपंचकी निवृत्तिकालमें व्यावहारिक जीवके बोधसैं प्रातिभासिक निवृत्ति होवै है. इस

रीतिसैं कूटस्थका जीवमें अंतर्भाव है, यातैं जीवईश्वर शुद्धचेतन भेदसैं त्रिविधचेतन है; यही पक्ष सर्वकूं संमत है और वार्तिकवचनके अनुकूल है.

२०२ जीवका मोक्षदशामें उक्तपक्षनविषे शुद्ध ब्रह्मसैं और विवरणपक्षविषे ईश्वरसैं अभेद.

पूर्वउक्त सकल पक्षनमें जीवकीनांई ईश्वरभी प्रतिबिंबरूप है,यातैं ईश्वरतैं मोक्षदशामें जीवका अभेद इनके मतमें होवै नहीं; काहेतैं? उपाधिके अपसरणतैं एक प्रतिबिंबका अन्यप्रतिबिंबसैं अभेद अनुभवगोचर नहीं; किंतु बिंबसैंही अभेद होवैहै; तैसैं शुद्धचेतनसैंही प्रतिबिंबरूप जीवका मोक्षमें अभेद होवैहै और विवरणकारके मतमें बिंबचेतन ईश्वर है, ताके मतमें ईश्वरसेही जीवका अभेद होवैहै.

२०३–२१० वेदांतके सिद्धांतमें प्रक्रियाके भेद.

२०३ विवरणकारके मतमें अज्ञानविषे प्रतिबिंब जीव और बिंब ईश्वरका निरूपण.

विवरणकारके मतमें जीवईश्वरकी उपाधि एकही अज्ञान है. अज्ञानमें प्रतिबिंब जीव है; बिंब ईश्वर है. जहां दर्पणमें मुखका प्रतिबिंब प्रतीति होवै तहां दर्पणमें मुखकी छाया नहीं और दर्पणमें अनिर्वचनीय प्रतिबिंबकी उत्पत्ति नहीं. तैसे व्यावहारिक प्रतिबिंबकीभी उत्पत्ति नहीं; किंतु दर्पणगोचर चाक्षुषवृत्ति दर्पणसैं प्रतिहत होयके ग्रीवास्थमुखकूंही विषय करै हैं. इस रीतिसैं ग्रीवास्थमुखमेंही बिंबप्रतिबिंब भाव प्रतीत होवै है. सो ग्रीवास्थ मुख सत्य है, यातैं बिंबप्रतिबिंबका स्वरूपभी ग्रीवास्थमुखरूप होनेतैं सत्य हैं; परंतु ग्रीवास्थमुखमें बिंबत्व प्रतिबिंबत्व धर्म मिथ्या है. अनिर्वचनीय मिथ्या बिंबत्वप्रतिबिंबत्वका अधिष्ठान मुख है. इस रीतिसैं बिंबकीनांई प्रतिबिंबकाभी स्वरूप सत्य होनेतैं दर्पणस्थानी अज्ञानके सन्निधानसैं शुद्धचेतनमें बिंबस्थानी ईश्वरकीनांई प्रतिबिंबस्थानी जीवकाभी स्वरूप सत्य है, यातैं महावाक्यनमें मुख्यसमानाधिकरण संभवैहै, परंतु बिंबत्वरूप ईश्वरत्व और प्रतिबिंबत्वरूप जीवत्व दोनों धर्म मिथ्या हैं; तिनके

अधिष्ठान शुद्धचेतन है. यद्यपि उक्तरीतिसैं जीवईश्वरकी उपाधि एक अज्ञान है, यातैं दोनोंकूं अज्ञता वा सर्वज्ञता हुई चाहिये, तथापि दर्पणादिक उपाधिके लघुत्वपीतत्वादिक धर्मका आरोप प्रतिबिंबमें होवै है, बिंबमें नहीं; यातैं आवरणस्वभाव अज्ञानकृत अल्पज्ञता जीवमें है; बिंबरूप ईश्वरमें स्वरूपप्रकाशतैं सर्वज्ञत्व है. यद्यपि बिंब प्रतिबिंबका उक्तरीतिसैं अभेद है, यातैं बिंबप्रतिबिंबके धर्मनका भेदकथन संभवै नहीं. जो बिंबप्रतिबिंबका भेद होवै तो उक्त व्यवस्था संभवै तथापि दर्पणस्थत्वरूप बिंबप्रतिबिंबत्वका ग्रीवास्थमुखमें भ्रम होवै है. भ्रमसिद्ध प्रतिबिंबत्वकी अपेक्षासैं बिंबत्वव्यवहार होवै है; यातैं एक मुखमें बिंबत्वप्रतिबिंबत्व दोनों आरोपित हैं. तैसैं एकही मुखमें बिंबत्वप्रतिबिंबत्वरूपतैं धर्मीके भेदका भ्रम होवै हैं. भ्रांतिसैं प्रतीत जो बिंबप्रतिबिंबका भेद तासैं उक्त व्यवस्था संभवै है. इस रीतिसैं विवरणकारके मतमें अज्ञानमें प्रतिबिंब जीव है और बिंबचेतन ईश्वर है. अज्ञान अनिर्वचनीय है, यातैं अज्ञानसद्भावकालमेंभी अज्ञानका परमार्थसैं अभाव होनेतैं बिंबप्रतिबिंबरूप चेतनही परमार्थसैं शुद्धचेतन है. यातैं ईश्वरभावकी प्राप्तिभी शुद्धहिकी प्राप्ति है.

२०४ अवच्छेदवादीकरि आभासवादका खंडन और स्वमतका निरूपण.

कोई आचार्य यह कहै हैं:—अंतःकरणावच्छिन्नचेतन जीव है और अंतःकरणसैं अवच्छिन्नचेतन ईश्वर है; नीरूपचेतनका प्रतिबिंब संभवै नहीं. यद्यपि कूपतडागादिक जलगत आकाशमें नीलता विशालताके अभाव होनेतैं "नीलं नभः। विशालं नभः" ऐसी प्रतीति होवै है, यातैं विशालता विशिष्ट और आरोपितनीलताविशिष्ट आकाशका प्रतिबिंब मानना चाहिये और आकाशमें रूप है नहीं, यातैं नीरूपकाभी प्रतिबिंब संभवै है; तथापि आकाशमेंभी भ्रांतिसिद्ध आरोपित नीलरूप है. चेतनमें आरोपित रूपकाभी अभाव होनेतैं ताका प्रतिबिंब संभवै नहीं. जा पदार्थमें आरोपित वा अनारोपित रूप होवै, ताका प्रतिबिंब होवै है; सर्वथा रूपरहितका प्रतिबिंब

होवै नहीं; और निरुपाधिमें तो सर्वथा प्रतिबिंब संभवै नहीं. काहेतैं ? स्वरूपवाले दर्पणादिकनमेंही प्रतिबिंब देख्या है, यातैं नीरूप अंतःकरणमें वा नीरूप अविद्यामें नीरूपचेतनका प्रतिबिंब संभवै नहीं. और रूपरहित शब्दका नीरूप आकाशमें जैसैं प्रतिध्वनिरूप प्रतिबिंब कहै हैं सोभी असंगत है. काहेतैं ? उक्त रीतिसैं आकाश रूपरहित नहीं और आकाशमें जो प्रतिध्वनि होवै है सो शब्दका प्रतिबिंब नहीं, काहेतैं ? जो प्रतिध्वनिकूं शब्दका प्रतिबिंब मानै तो आकाशवृत्ति शब्दका अभाव होवैगा. भेरीदंडादिकनके संयोगतैं पार्थिव शब्द होवै है; तिस पार्थिवशब्दतैं ताके सन्मुखदेशमें पाषाणादि अवच्छिन्न आकाशमें प्रतिध्वनिरूप शब्द होवै है; तिस प्रतिध्वनिशब्दका पार्थिव शब्द निमित्तकारण है, यातैं पार्थिवध्वनिके समानही प्रतिध्वनि होवै है. जो प्रतिध्वनिकूं शब्दका प्रतिबिंब मानै तो प्रतिबिंबकूं अनिर्वचनीय मानै है, और विवरणकारके अनुसारी बिंबस्वरूपही प्रतिबिंबकूं मानै हैं, इन दोनों मतमें आकाशका गुण प्रतिध्वनि नहीं होवैगा. काहेतैं? व्यावहारिक आकाशका गुण प्रातिभासिक संभवै नहीं; यातैं अनिर्वचनीय प्रतिबिंबवादमें प्रतिध्वनिकूं पार्थिवशब्दका प्रतिबिंब मानैं तो आकाशका गुण कहना संभवै नहीं और बिंबप्रतिबिंबके अभेदवादमें पार्थिवशब्दका प्रतिबिंबरूप प्रतिध्वनिका अपने बिंबसैं अभेद होनेतैं पृथिवीका गुण प्रतिध्वनि होवैगा; यातैं प्रतिध्वनिकूं शब्दका प्रतिबिंब मानैं तो किसी प्रकारतैं आकाशका गुण प्रतिध्वनि है, यह कथन संभवै नहीं और प्रतिध्वनिसैं भिन्न शब्द पृथिवी जल अग्निवायुके हैं. आकाशमें अन्यप्रकारका शब्द है नहीं, यातैं शब्दरहितही आकाश होवैगा और शब्दराहित आकाश है यह मत अशास्त्रीय है. भूतविवेकमें विद्यारण्यस्वामीने यह कह्या है:—कटकटा शब्द पृथिवीका है, चुलचुल शब्द जलका है, भुक् भुक् शब्द अग्निका है, सीसी शब्द वायुका है, प्रतिध्वनिरूप शब्द आकाशका है; तैसैं अन्यग्रंथकारोंनेंभी आकाशका गुणही प्रतिध्वनि कह्या है; यातैं शब्दका प्रतिबिंब प्रतिध्वनि नहीं;

किंतु आकाशका स्वतंत्र शब्द प्रतिध्वनि है ताका उपादानकारण आकाश है, और भेरीआदिकनमें जो पार्थिव ध्वनि होवै है, सो प्रतिध्वनिका निमित्त-कारण है; यातैं रूपरहित प्रतिबिंब संभवै नहीं. जो प्रतिबिंबवादी इसरीतिसैं कहै कूपादिकनके आकाशमें "विशालं आकाशं" यह प्रतीति होवैहै. और कूपदेशके आकाशमें विशालता है नहीं, यातैं बाह्य देशस्थ रूपरहित विशाल आकाशका कूपजलमें प्रतिबिंब होनेतैं रूपरहित चेतनका प्रतिबिंब संभवैहै; तथापि रूपवाले उपाधिमेंही प्रतिबिंब होवैहै, रूपरहित उपाधिमें प्रतिबिंब संभवै नहीं. आकाशके प्रतिबिंबका उपाधि कूपजल है, तामें रूप है और अविद्या अंतःकरणादिक रूपरहित हैं, तिनमें चेतनका प्रतिबिंब संभवै नहीं यातैं अंतःकरणावच्छिन्नचेतन जीव है और अंतःकरणसैं अनवच्छिन्न चेतन ईश्वर है.

२०५ अवच्छेदवादका कथन.

अविद्यावच्छिन्न चेतन जीव है और मायावच्छिन्न चेतन ईश्वर है.

२०६ अंतःकरणसैं अवच्छिन्नचेतन जीव और अनवच्छिन्नचेतन ईश्वर है इस पक्षका खंडन.

अंतःकरणावच्छिन्नकूं जीव मानैं और अनवच्छिन्नकूं ईश्वर मानैं तो ब्रह्मांडसैं बाह्य देशस्थ चेतनमें ईश्वरता होवैगी. काहेतैं? ब्रह्मांडमें अनंतजीवनके अनंत अंतःकरण व्याप्त हैं,यातैं अनंतांतःकरणानवच्छिन्नचेतनका ब्रह्मांडके मध्यलाभ संभवै नहीं.जो ब्रह्मांडसैं बाह्य देशमेंही ईश्वरका सद्भाव मानैं तो अंतर्यामिप्रतिपादक वचनसैं विरोध होवैगा. "यो विज्ञाने तिष्ठन् विज्ञानमंतरो यमयति" इस वचनमें विज्ञानपदबोध्य जीव देशमें ईश्वरका सद्भाव कह्या है, यातैं अंतःकरणसैं अनवच्छिन्न ईश्वर नहीं; किंतु मायावच्छिन्नचेतनही ईश्वर है और अंतःकरणसैं अनवच्छिन्नकूं ईश्वरता मानै तो अंतःकरणसैं संबंधभावही ईश्वरताकी उपाधि सिद्ध होवै है और ईश्वरमें सर्वज्ञतादिक उपाधिकृत है, अभावरूप उपाधिसैं सर्वज्ञतादिक धर्मनकी सिद्धि होवै नहीं.

२०७ तृप्तिदीपमें विद्यारण्यस्वामीउक्त अंतःकरणके संबंध और ताके अभावके उपाधिपनेका अभिप्राय.

विद्यारण्यस्वामीने तृप्तिदीपमें यह कह्या हैः—जैसैं अंतःकरणका संबंध उपाधि है, तैसैं अंतःकरणके संबंधका अभावभी उपाधि है. जैसैं लोहकी शृंखलासैं संचारका निरोध होवै है, तैसैं सुवर्णकी शृंखलासैंभी संचारका निरोध होवै है. इस रीतिसैं अंतःकरणके संबंधरूप भाव उपाधिसैं जीवस्वरूपका बोध होवै है और उक्त संबंधके अभावतैं परमात्मस्वरूपका बोध होवै है; इस रीतिसैं विद्यारण्यस्वामीने अंतःकरणराहित्यभी उपाधि कह्या है ताका यह अभिप्राय हैः—जैसैं अंतःकरण संबंधसैं जीवस्वरूपका बोध होवै है, तैसैं अंतःकरणराहित्यसैं ब्रह्मस्वरूपका बोध होनेतैं ब्रह्मके बोधका उपयोगी अंतःकरणराहित्यभी है, यातैं विद्यारण्यस्वामीके वचनतैंभी अभावरूप उपाधिसैं ईश्वरमें सर्वज्ञतादिकनकी सिद्धिप्रतीति होवै नहीं.

२०८ अवच्छेदवादके भेदपूर्वकताकी समाप्ति.

यातैं मायावच्छिन्न चेतनही ईश्वर है, ईश्वरका उपाधि माया सर्व देशमें है, यातैं ईश्वरमें अंतर्यामिताभी संभवै है और अंतःकरणअवच्छिन्नकूं जीव मानै तो कर्ता भोक्ता चेतनके प्रदेशभिन्न होवैंगे; यातैं कृतका नाश और अकृतकी प्राप्ति होवैगी. यातैं अविद्यावच्छिन्नचेतनही जीव है, अंतःकरणावच्छिन्नचेतन जीव नहीं. इस रीतिसैं कितनेक ग्रंथकार अवच्छेदवादकूं ही मानै हैं और प्रतिबिंबके प्रतिपादक श्रुतिस्मृतिवचनोंका विरोधपरिहार तिनके ग्रंथनमें स्पष्ट है.

२०९ सिद्धांतमुक्तावलि आदिकविषे उक्तएक जीव (दृष्टिसृष्टि) वादका निरूपण.

सिद्धांतमुक्तावलीकारादिकनका यह मत हैः—

दोहाः—ज्यूं अविकृत कौंतेयमैं, राधापुत्र प्रतीति ॥
चिदानंदघन ब्रह्ममैं, जीव भावतिहिंरीति ॥ १ ॥

सदा असंग नित्यमुक्त चिदानंद ब्रह्ममें कल्पित अविद्यादिकनके संबं-

घसैं प्रतिबिंबितता यथा अवच्छिन्नता संभवै नहीं. जैसैं मृगतृष्णाके जलसैं पूरित वंध्यासुतकुलालने शशशृंगके दंडसैं रचित घटके संबंधसैं आकाशमें प्रतिबिंबितता वा अवच्छिन्नता होवै नहीं; किंतु आकाशके समानसत्तावाले जनपूरित घटतडागादिकनके संबंधसैंही आकाशमें प्रतिबिंबितता और अवच्छिन्नता होवैं है. अविद्या और ताका कार्य ब्रह्मचेतनके समानसत्तावाले नहीं किंतु स्वतःसत्ताशून्य है, और ब्रह्मकी सत्तासैं सत्तावाले अविद्यादिक हैं; यातैं शशशृंगादिकनकी नांई अत्यंत अलीक अविद्यादिकनतैं चेतनका संबंधकथनही संभवै नहीं; विनके संबंधसैं प्रतिबिंबिततादिक तो अत्यंत दूर है यातैं सदा एकरस ब्रह्म है; ताके विषे अवच्छिन्नता वा प्रतिबिंबितता रूप जीवता संभवै नहीं; किंतु कल्पित अज्ञानके कल्पितसंबंधसैं ब्रह्ममें विना हुआ जीवत्व प्रतीत होवै है. जैसैं अविकारी कुंतीपुत्रमें राधापुत्रताकी प्रतीति भ्रमरूप हुई है; तैसैं प्रतिबिंबादिक विकारबिनाही ब्रह्ममें जीवत्व भ्रम होवै है और प्रतिबिंबरूप वा अवच्छेदरूप जीवभावकी प्राप्ति होवै नहीं. स्वाविद्यासे जीवभावापन्न ब्रह्मही प्रपंचका कल्पक होनेतैं सर्वज्ञत्वादिक धर्मसहित ईश्वरभी या पक्षमें जीव कल्पित है. जैसैं स्वप्नकल्पित राजाकी सेवातैं स्वप्नमें फलकी प्राप्ति होवै है, तैसैं स्वप्नकल्पित ईश्वरभजनतैं फलकी प्राप्तीभी संभवै है; इस रीतिसैं अनादि अविद्याके बलतैं स्वकीय ब्रह्मभावके आवरणतैं जीवत्व भ्रम होवै है. "तत्त्वमस्यादि" वाक्यजन्य साक्षात्कारतैं जीवत्वभ्रमकी निवृत्ति होवै है, भ्रमकालमैंभी जीवत्व है नहीं; किंतु नित्यमुक्त चिदानंद स्वरूप ब्रह्मही है. यह पक्षही भाष्यकार वार्तिककारने बृहदारण्यके व्याख्यानमें कर्णके दृष्टांतसैं प्रतिपादन किया है. जैसैं कुंतीपुत्रकर्णकूं हीनजातिके संबंधसैं निकृष्टताका भ्रम हुया है, और अनेकविध तिरस्कारजन्य दुःखका अनुभव करता हुआ स्वतःसिद्ध कुंतीपुत्रतानिमित्तक उत्कर्षसैं प्रच्युत हुआ है.

कदाचित् एकांतमें सूर्य भगवानने कह्या "तूं राधापुत्र नहीं, किंतु मेरे संबंधसैं कुंतीउदरसैं उत्पन्न हुया है" इस प्रकारके सूर्यवचनतैं अपनेमें हीन

जातिके भ्रमकूं त्यागिके स्वतःसिद्ध कुंतीपुत्रतानिमित्तक उत्कर्षकूं जानता हुया. तैसैं चिदानंद ब्रह्मभी अनादि अविद्याके संबंधसैं जीवत्वभ्रमकूं प्राप्त हुवा स्वतःसिद्ध ब्रह्मभावका विस्मरण करिके अनेकविध दुःखकूं अनुभव करै है.

कदाचित् अपने अज्ञानतैं कल्पित स्वप्न कल्पित आचार्यके तुल्य आचार्यद्वारा महावाक्यश्रवणतैं स्वगोचरविद्यासैं अविद्याकी निवृत्ति हुयां नित्य परमानंदका स्वरूप चैतन्यसैं अनुभव करै है. इस रीतिसैं बृहदारण्यके व्याख्यानमें भाष्यकारने और वार्तिककारने लिख्या है. जैसैं जीवकी अविद्या कल्पित आचार्य वेदोपदेशके हेतु है, तैसैं ईश्वरभी स्वप्नकल्पित राजाकी नांई जीवकल्पितही भजनतैं फलका हेतु है; या मतमें एक जीववाद है, यातैं एक जीवकल्पित ईश्वरभी एकही है, नाना ईश्वरकी आपत्ति नहीं. शुकवामदेवादिकनकी मुक्तिप्रतिपादक शास्त्रसैंभी स्वप्नकल्पित नाना पुरुषनकी नांई जीवाभासही नानासिद्ध होवै हैं. नानाजीववादकी सिद्धि होवै नहीं. जैसैं स्वप्नमें एक द्रष्टाकूं नानापुरुष प्रतीति होवैं, तिनमें कोई महावनमें उत्पथगामी हुए व्याघ्रादिजन्य दुःखकूं अनुभव करै है; कोई राजमार्गमें आरूढ होयके स्वनगरकूं प्राप्त होवै है; तहां वनमें भ्रमण और स्वनगरकी प्राप्ति स्वप्न द्रष्टाकूं नहीं. किंतु आभास पुरुषनकूं होवै है. तैसैं अविद्यासहित ब्रह्मरूप जीवकूं बंधमोक्षकी प्राप्ति नहीं; किंतु अभासरूप जीवनकूं बंधमोक्ष प्रतीत होवै है.

या पक्षमें किसके ज्ञानतैं अविद्याकी निवृत्तिरूप मोक्ष होवैगा, यह प्रश्न करै तो तेरे ज्ञानतैं होवैगा; यह उत्तर है. अथवा किसीके ज्ञानतैं मोक्ष होवै नहीं; यह उत्तर है. काहेतैं ? या मतमें बंधका अत्यंत असद्भाव आत्मामें है. नित्यमुक्त आत्माका मोक्ष होवैगा अथवा हुआ है, यह कथन संभवै नहीं. इस अभिप्रायतैं मोक्षप्रतिपादक वाक्यनकूं अर्थवाद कहै हैं, और बंध है अद्यपर्यंत कोई मुक्त हुआ नहीं, आगे पुरुषार्थसैं मोक्ष होवैगा, इस अभिप्रायतैं वामदेवादिकनकी मुक्तिप्रतिपादक वाक्यनकूं अर्थवाद नहीं कह्या.

काहेतैं ? जो बंध होनेतैं वामदेवादिकनका मोक्ष नहीं हुया तो आगेभी मोक्षकी आशा निष्फल है; या बुद्धिसैं श्रवणमें प्रवृत्तिकाही अभाव होवैगा, यातैं आत्मामें बंधका अत्यंत असद्भाव है, नित्यमुक्त ब्रह्मरूप आत्मा है ताका मोक्ष संभवै नहीं; यह उत्तम भूमिकारूढ विद्वान्‌का निश्चय है.

२१०—२१६ वेदांतसिद्धांतकी नानाप्रक्रियाका तात्पर्य.

२१० सकल अद्वैतग्रन्थनके तात्पर्यका विषय.

नित्यमुक्त आत्मस्वरूपके ज्ञानतैं दुःखपरिहार और सुखकी प्राप्तिके निमित्त अनेकविध कर्तव्य बुद्धिजन्य क्लेशकी निवृत्तिही वेदांत श्रवणका फल है. आत्मस्वरूपमें बंधका नाशरूप वा परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्ष वेदांत श्रवणका फल नहीं. वेदांतश्रवणतैं पूर्वभी आत्मामें बंधका लेश नहीं, तथापि अत्यंत असत् बंधकी प्रतीति होवै है; यातैं भ्रमतैंही वेदांतश्रवणमें प्रवृत्ति होवै है. जाकूं बंधभ्रम नहीं होवै ताकी प्रवृत्ति होवै नहीं. सकल अद्वैतशास्त्रका इस पक्षमेंही तात्पर्य है.

२११ जीवईश्वरविषे सर्वग्रंथकारनकी संमतिका एकत्र निर्णय.

इसरीतिसैं जीवईश्वरका स्वरूपनिरूपण ग्रंथकारोंने बहुत विस्तारसैं लिख्या है; तहां जीवके स्वरूपमें तो एकत्व अनेकत्वका विवाद है; और सर्वमतमें ईश्वर एक है, सर्वज्ञ है, और नित्यमुक्त है; ईश्वरमें आवरणका अंगीकार किसी अद्वैतवादके ग्रंथनमें नहीं. जो ईश्वरमें आवरण कहै, सो वेदांतसंप्रदायसैं बहिर्भूत है, परंतु नाना अज्ञानवादमें जीवाश्रित ब्रह्मविषयक अज्ञान है, यह वाचस्पतिका मत है. तहां जीवके अज्ञानतैं कल्पित ईश्वर और प्रपंच नाना मानै हैं; तथापि जीवके अज्ञानसैं कल्पित ईश्वरभी सर्वज्ञही मानैं हैं, ईश्वरमें आवरणका अंगीकार नहीं.

२१२ विवरणकारकी रीतिसे प्रतिबिंबके स्वरूपका निरूपण.

जीवईश्वरके स्वरूपनिरूपणमें प्रतिबिंबका स्वरूप निरूपण करै हैं:— विवरणकारके मतमें दर्पणादिक उपाधिसैं प्रतिहत नेत्रकी रश्मि ग्रीवास्थ मुखकूं विषय करै है. जहां द्रष्टासैं भिन्नपदार्थकाभी दर्पणसैं अभिमुखतारूप संबंध

होवै, तहां दर्पणसैं संबंधी होयके प्रतिहतनेत्रका द्रष्टासैं भिन्नभी दर्पणाभिमुख पदार्थसैं संबंध होयके स्वस्थानमेंही ताका साक्षात्कार होवै है. जहां अनेक पदार्थ दर्पणके अभिमुख होवैं तहां प्रतिहत नेत्रसैं अनेकपदार्थनका साक्षात्कार होवैहै, दर्पणाभिमुख जो उद्भूतरूपवान् होवै तामें प्रतिहत नेत्रजन्य साक्षात्कारभी योग्यता है; यातैं दर्पणाभिमुख पदार्थके सन्मुख नेत्रकी वृत्ति जावै हैं. स्वगोलकमेंही नेत्रकी वृत्ति आवे, यह नियम नहीं; इसरीतिसैं विवरणकारके मतमें ग्रीवास्थ मुखकाही साक्षात्कार होवैहै, परंतु पूर्वाभिमुख ग्रीवास्थ मुखमें प्रत्यङ्मुखत्व दर्पणस्थत्व स्वभिन्नत्व भ्रम होवै है; यातैं दर्पणमें पूर्वाभिमुख प्रतिबिंब है और मेरे मुखसैं भिन्न है, ऐसा व्यवहार होवै है.

या पक्षमें यह शंका है:—जो बिंबभूत मुखादिकनकाही प्रतिहतनेत्रसैं साक्षात्कार होवै तौ सूर्यके प्रकाशतैं नेत्रका प्रतिरोध होवै है, यातैं जलसैं प्रतिहत नेत्रसैंभी सूर्यके साक्षात्कारके असंभवतैं जलदेशमें सूर्यतैं भिन्नताके प्रतिबिंबकी उत्पत्ति माननी चाहिये और बिंबके साक्षात्कारके अर्थ उपाधिसैं संबंधी होयके नेत्रकी रश्मिकी प्रतिहति मानैं तौ जलके अंतर्गत सिकताका साक्षात्कार नहीं हुआ चाहिये. इन दोनों शंकाके ये समाधान हैं:— केवल नेत्रका आकाशस्थ सूर्यके प्रकाशतैं अवरोध होवैहै, और जलादिक उपाधिसैं प्रतिहत नेत्रका सूर्यप्रकाशतैं अवरोध होवै नहीं. तैसैं कोई नेत्र रश्मि जलमें प्रविष्ट होयके तिसके अंतर्गत सिकताकूं विषय करैहैं, तिसी नेत्रकी अन्य रश्मि प्रतिहत होयके बिंबकूं विषय करैहै; यह दृष्टके अनुसार कल्पना है; यातैं बिंबसैं भिन्न प्रतिबिंब नहीं; यहही विवरणकारका मत है.

२१३ विद्यारण्यस्वामीके और विवरणकारके मतकी विलक्षणता.

विद्यारण्यस्वामी आदिकोंने पारमार्थिक, व्यावहारिक, प्रातिभासिक भेदसैं त्रिविध जीव कह्याहै. व्यावहारिक अंतःकरणमें प्रतिबिंबकूं व्यावहारिक जीव कहैहैं, स्वप्न अवस्थाके प्रातिभासिक अंतःकरणमें प्रतिबिंबकूं प्रातिभासिक जीव कहैं हैं, विवरणकारकी रीतिसैं बिंबसैं पृथक् प्रतिबिंबके अभावतैं जीवके तीनि भेद संभवै नहीं; यातैं त्रिविध जीववादके

अनुसारी बिंबप्रतिबिंबका भेद मानैहैं; तिनके मतमें दर्पणादिक उपाधिमें अनिर्वचनीयप्रतिबिंबकी उत्पत्ति होवैहै, प्रतिबिंबका अधिष्ठान दर्पणादिक है, और बिंबका सन्निधान निमित्तकारण है. यद्यपि निमित्तकारणके अभावतैं कार्यका अभाव होवै नहीं और बिंबके अपसरणतैं प्रतिबिंबका अभाव होवै है; तथापि निमित्तकारणके दो भेद हैं. कोई तो कार्यतैं अव्यवहित पूर्वकालवृत्ति निमित्तकारण होवैहै, कोई कार्यकालवृत्ति निमित्तकारण होवैहै. घटादिकनके दंडकुलालादिक निमित्तकारण हैं, सो कार्यतैं पूर्वकाल वृत्ति चाहिये. घटादिकनकी सत्ता होनेपर तिनकी अपेक्षा नहीं, तैसैं प्रत्यक्षज्ञानमें स्वविषय निमित्तकारण है; तहां विषयकी सत्ता ज्ञानकालमें अपेक्षित है, विनाशाभिमुख घटसैं नेत्रका संयोग होनेपर भी घटाका साक्षात्कार होवै नहीं; यातैं ज्ञानकालमें वर्तमान घटादिकही अपने साक्षात्कारके निमित्तकारण हैं; और दूरस्थ नानापदार्थनमें एकत्व भ्रम होवैहै. मंदांधकारस्थ रज्जुमें सर्पभ्रम होवै है; यातैं एकत्र भ्रमका निमित्त कारण दूरस्थत्वदोष है, रज्जुमें सर्पभ्रमका निमित्तकारण मंदांधकार है दूरस्थत्व और मंदांधकारका अभाव हुयां एकत्वभ्रम और सर्पभ्रमका अभाव होनेतैं कार्य कालमें वर्तमान दूरस्थत्व और मंदांधकार उक्त द्विविध अध्यासके निमित्तकारण है. तिसरीतिसैं बिंबका सन्निधानभी कार्यकालमें वर्तमानही प्रतिबिंब अध्यासका हेतु होनेतैं बिंबके अपसरणतैं प्रतिबिंबका अभाव संभवै है; यातैं सन्निहित बिंब तो प्रतिबिंबका निमित्तकारण है. भ्रमका अधिष्ठानही उपादानकारण कहिये हैं; यातैं प्रतिबिंबके उपादानकारण दर्पणादिक हैं. और विवरणकारके मतमें प्रतिबिंबका स्वरूप तो बिंबसैं भिन्न नहीं परंतु दर्पणस्थत्व विपरीतदेशाभिमुखत्व बिंबभिन्नत्व धर्मकी उत्पत्ति ग्रीवास्थ मुखमें होवै है, सोभी तीनों धर्म अनिर्वचनीय है. निमित्तकारण तिनका अधिष्ठानरूप उपादानकारण ग्रीवास्थमुख है, सन्निहित दर्पणादिक हैं; इस रीतिसैं चेतनके प्रतिबिंबवादमें दो मत हैं. विवरणकारकेमतमें प्रतिबिंबका बिंबसैं अभेद होनेतैं प्रतिबिंबका स्वरूप सत्य है और विद्यारण्यस्वामी

आदिकनके मतमें दर्पणादिकनमें अनिर्वचनीय मुखाभासकी उत्पत्ति होवै हैं. याकूंही **आभासवाद** कहै हैं. विवरण उक्तपक्षकूं **प्रतिबिंबवाद** कहै हैं. दोनों पक्षनका परस्पर खंडन और स्वपक्षका मंडन बृहद्ग्रंथनमें स्पष्ट है परंतु विस्तारभयतैं यहां लिख्या नहीं.

२१४ दोनोंके पक्षनकी उपादेयता.

प्रतिबिंबवादमें अथवा आभासवादमें आग्रह नहीं, चेतनमें संसारधर्मका संभव नहीं और जीवईशका परस्पर भेद नहीं, इस अर्थके बोधके अनेक रीति कही हैं. **जिस पक्षसैं असंग ब्रह्मात्मबोध होवै, सोई पक्ष आदरणीय है.**

२१५ बिंबप्रतिबिंबके अभेद पक्षकी रीतिकी अभेदके बोधनमें सुगमता.

तथापि बिंबप्रतिबिंबके अभेदपक्षकी रीतिसैं असंगब्रह्मात्मबोध अनायासतैं होवै है. काहेतैं ? दर्पणादिकनमें मुखादिकनका लौकिक प्रतिबिंब होवै है, तहांभी बिंबका स्वरूप तो सदा एकरस है, उपाधिके सन्निधानतैं बिंबप्रतिबिंबका भेदभ्रम होवै है, तैसैं ब्रह्म चेतन तो सदा एकरस है, अज्ञानादिक उपाधिके संबंधतैं जीवभाव ईशभावकी प्रतीतिरूप भ्रम होवे है. इसरीतिसैं असंगचेतनमें जीवईशभेदका सर्वथा अभाव है. जीवत्व ईश्वरत्व धर्म तो परस्पर भिन्न कल्पित है और परस्पर भिन्नधर्मी कल्पितभी नहीं; यातैं बिंबप्रतिबिंबका अभेदवाद अद्वैतमतके अत्यंत अनुकूल है.

२१६–२३७ प्रतिबिंबविषे विचार.

२१६ आभासवाद और प्रतिबिंबवादसैं किंचिद्भेद.

आभासवादमें जैसैं अनिर्वचनीय प्रतिबिंब है, ताका अधिष्ठान दर्पणादिक उपाधि है; तैसैं विवरणोक्त प्रतिबिंबवादमेंभी दर्पणस्थविपरीतदेशाभिमुखत्वादिक धर्म अनिर्वचनीय हैं. तिनका अधिष्ठान मुखादिक बिंब हैं, यातैं दोनों पक्षनमें अनिर्वचनीयका परिणामी उपादान अज्ञान कह्या चाहिये.

२१७ प्रतिबिंबकी छायारूपताका निषेध.

और कोई ग्रंथकार छायाकूं प्रतिबिंब मानैं हैं सो संभवै नहीं.

काहेतैं ? शरीरवृक्षादिकनतैं जितने देशमें आलोकका अवरोध होवै, उतने देशमें आलोकविरोधी अंधकार उपजै है; तिस अंधकारकूं **छाया** कहै हैं. अंधकारका नीलरूप होनेतैं छायाकाभी नियमतैं नीलरूप होवै है. और स्फटिक मौक्तिकका प्रतिबिंब श्वेत होवै है, सुवर्णका प्रतिबिंब पीतरूपवाला होवै है, रक्तमाणिक्यके प्रतिबिंबमें रक्तरूप होवै है. प्रतिबिंबकूं छायारूप मानै तो सकल प्रतिबिंबनका नीलरूप हुया चाहिये; यातैं छायारूप प्रतिबिंब नहीं.

२१८ प्रतिबिंबकी बिंबसैं भिन्न व्यावहारिक द्रव्यरूपताका निषेध.

और जो कोई इस रीतिसैं कहैः—यद्यपि अंधकारस्वरूप छायासे प्रतिबिंबका भेद है, तथापि मीमांसाके मतमें जैसैं आलोकाभावकूं अंधकार नहीं मानै है, किंतु आलोकविरोधी भावरूप अंधकार है, तामें क्रिया होनेतैं और नीलरूप होनेतैं अंधकार द्रव्य है, क्रिया और गुण द्रव्यमेंही होवै हैं.

जैसैं दशमद्रव्य अंधकार है, तैसैं प्रतिबिंबभी पृथिवी जलादिकनतैं भिन्नद्रव्य है. इस रीतिसैं प्रतिबिंबकूं स्वतंत्र द्रव्य मानैं ताकूं यह पूछ्या चाहियेः—सो प्रतिबिंब नित्यद्रव्य है अथवा अनित्यद्रव्य है ? जो नित्यद्रव्य होवै तौ आकाशादिकनकी नांई उत्पत्तिनाशहीन होनेतैं प्रतिबिंबके उत्पत्ति नाश प्रतीत नहीं हुये चाहिये? यातैं प्रतिबिंबकूं अनित्यद्रव्य कहै तौ उपादानके देशमें कार्य द्रव्य रहै है, यातैं प्रतिबिंबके उपादानकारण दर्पणादिकही मानने होवैंगे और दर्पणादिकनकूं प्रतिबिंबकी उपादानता संभवै नहीं. काहेतैं? दर्पणादिक उपादानमें जो प्रतिबिंबरूप द्रव्यका सद्भाव मानैं ताकूं यह पूछ्या चाहियेः—प्रतिबिंबमें जो रूप और ह्रस्वदीर्घादिक परिणामस्वरूप गुण हैं, तथापि बिंबसैं विपरीताभिमुखत्वादिक धर्म, और हस्तपादादिक अवयव जो प्रतिबिंबमें प्रतीत होवै हैं; सो प्रतिबिंबमें व्यावहारिक है अथवा नहींहै? किंतु मिथ्या प्रतीत होवैहै ? जो रूप परिमाणादिकनका प्रतिबिंबमें व्यावहारिक अभाव मानै और प्रतिबिंबके रूपादिकनकूं प्रातिभासिक मानैं तो व्यावहारिक द्रव्यस्वरूप प्रतिबिंबका अंगीकार निष्फल है और प्रतिबिं-

बके रूपपरिमाणादिकनकूं व्यावहारिक मानैं तो अल्पपरिमाणवाले दर्पणमें महापरिमाणवाले अनेक प्रतिबिंबनकी उत्पत्ति संभवै नहीं और प्रतिबिंबमिथ्यात्वमें तो शरीरके मध्यसंकुचितदेशमें स्वप्नके मिथ्याहस्ती आदिकनकी उत्पत्ति होनेतैं उक्त दोषका संभव नहीं. तैसैं प्रतिबिंबकूं व्यावहारिक द्रव्य कहैं तो एकविधरूपवाले दर्पणमें दर्पणके समानरूपवाले प्रतिबिंबकीही उत्पत्ति हुई चाहिये और अनेकविधरूपवाले अनेक प्रतिबिंबनकी एक दर्पणमें उत्पत्ति होवै है. एक रूपवाले उपादानसैं अनेकविधरूपवाले अनेक उपादेयकी उत्पत्ति होवै नहीं, और दर्पणके मध्य वा दर्पणके अतिसमीप अन्यपदार्थ कोई प्रतीत होवै नहीं; जासैं अनेकविधरूपवाले प्रतिबिंबनकी उत्पत्ति संभवै, यातैं व्यावहारिक द्रव्यरूप कहना प्रतिबिबकूं संभवै नहीं; किंवा दर्पणके अतिसमीप और तो कोई प्रतिबिंबका उपादान दीखै नहीं, दर्पणही उपादान मानना होवैगा सो संभवै नहीं. काहेतैं ? सघन अवयवसहित पूर्वकी नांई अविकारी प्रतीत होनेतैं दर्पणमें निम्न उन्नत हनुनासिकादिक अनेकविध अवयववाले द्रव्यांतर प्रतिबिंबकी उत्पत्ति कहना सर्वथा युक्तिहीन है, यातैं बिंबसैं पृथक् व्यावहारिक द्रव्यस्वरूप प्रतिबिंब है, यह पक्षभी छायावादकीनाईं असंगत है.

२१९ आभासवाद और प्रतिबिंबवादकी युक्तिसहितता कहिके दोनों पक्षनमें अज्ञानकी उपादानता.

इस रीतिसैं सन्निहित दर्पणादिकनतैं मुखादिक अधिष्ठानमें प्रतिबिंबत्वादिक अनिर्वचनीय धर्म उपजै है अथवा सन्निहित मखादिकनतैं दर्पणादिक अधिष्ठानमें अनिर्वचनीय प्रतिबिंब उपजैहै ? ये दोनों पक्ष युक्तिसहित है; यातैं अनिर्वचनीय धर्मका वा अनिर्वचनीय प्रतिबिंबका उपादान कारण कह्या चाहिये.

२२० मूलाज्ञानकूं वा तूलाज्ञानकूं प्रतिबिंब वा ताके धर्मनकी उपादानताके असंभवकी शंका.

तहां जगत्‌का साधारणकारण मूलाज्ञानही प्रतिबिंबत्वादिक धर्मनका वा

धर्मीका उपादानकारण कहै तो आकाशादिकनकी नांई मूलाज्ञानके कार्य होनेतैं प्रतिबिंबत्वादिक धर्म वा धर्मी प्रतिबिंबभी सत्य हुये चाहिये और उक्त रीतिसैं अनिर्वचनीय मानैहैं, यातैं मूलाज्ञानकूं अनिर्वचनीयकी उपादानता संभवै नहीं; तैसैं विवरणकारके मतमें मुखावच्छिन्न चेतनस्थ अज्ञानकूं प्रतिबिंबत्वादि धर्मनका उपादान मानैं, और विद्यारण्यस्वामी आदिकनके मतमें दर्पणावच्छिन्न चेतनस्थ अज्ञानकूं प्रतिबिंबका उपादान मानैं तौ अवस्था अज्ञानके कार्यकूं अनिर्वचनीयता होनेतैं सत्यताकी आपत्ति तो यद्यपि नहीं है, तथापि अधिष्ठानज्ञानसैं अनिर्वचनीयकी निवृत्ति होवैहै; और प्रतिबिंबाध्यासका अधिष्ठान उक्तरीतिसैं मुखावच्छिन्न चेतन वा दर्पणावच्छिन्न चेतन है; और मुखका ज्ञान वा दर्पणका ज्ञानही अधिष्ठानका ज्ञान है; तिसतैं उत्तर कालमेंभी प्रतिबिंबकी प्रतीति सर्वके अनुभवसिद्ध है, यातैं मुखावच्छिन्न चेतनका वा दर्पणावच्छिन्नचेतनका आवरक अवस्थाज्ञानभी प्रतिबिंबाध्यासका उपादान संभवै नहीं.

२२१ उक्त शंकाका कोईक ग्रंथकारकी रीतिसैं समाधान.

या स्थानमें कोई ग्रंथकार इसरीतिसैं समाधान करै हैं:—यद्यपि शुक्तिरजतादिक अध्यासमें अधिष्ठानके विशेष ज्ञानतैं आवरणशक्ति और विक्षेपशक्तिरूप अज्ञानके दोनों अंशनकी निवृत्ति होवैहै, तथापि अनुभवके अनुसारतैं प्रतिबिंबाध्यासके अधिष्ठानज्ञानतैं अज्ञानके आवरणशक्तिअंशकीही निवृत्ति होवैहै, यातैं अधिष्ठानज्ञानतैं आवरणशक्तिरूप अंशकी निवृत्ति हुएभी प्रतिबिंबादिक और तिनका ज्ञानरूप विक्षेपका हेतु अज्ञानका अंश रहनेतैं अधिष्ठानज्ञानतैं उत्तरकालमेंभी प्रतिबिंबादिक प्रतीत होवैहैं; यातैं **उपाधिअवच्छिन्न चेतनस्थ मूलाज्ञानका कार्य प्रतिबिंबाध्यास है** यह पक्ष संभवै है.

२२२ उक्त शंकाका अन्यग्रंथकारोंकी रीतिसैं समाधान.

अन्य ग्रंथकारोंका यह मत है:—दर्पणादिकनका उपादान मूलाज्ञान ही प्रतिबिंबाध्यासका उपादान है, यातैं दर्पणादिकनके हुए भी प्रतिबिंबकी

प्रतीति होवैहै. ब्रह्मके ज्ञानतैं ब्रह्मचेतनके आवरक अज्ञानकी और ताके कार्यकी निवृत्ति होवैहै. दर्पणादिकनके ज्ञानतैं दर्पणादिक अवच्छिन्न चेतनके आवरक अज्ञानकी निवृत्ति हुएभी ब्रह्मस्वरूप आवरक अज्ञानकी निवृत्ति होवै नहीं. ब्रह्मात्मस्वरूपके आच्छादक अज्ञानकूं **मूलाज्ञान** कहै हैं, उपाधिअवच्छिन्न चेतनके आच्छादक अज्ञानकूं **अवस्थाज्ञान** कहै हैं, ताहीकूं **तूलाज्ञान** कहै हैं; मूलाज्ञानसैं तूलाज्ञानका भेद है वा अभेद है, यह विचार आगे लिखैंगे.

२२३ मूलाज्ञान और तूलाज्ञानके भेदविषे किंचित विचार.

यद्यपि मूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानै तो दर्पणादिकनकीनांई व्यावहारिकही प्रतिबिंबादिकभी हुये चाहियें; और ब्रह्मज्ञानसैं विनाही प्रतिबिंबत्वादिक धर्मनमें तथा प्रतिबिंबमें मिथ्यात्व बुद्धि होनेतैं प्रातिभासिक हैं. मूलाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता मानै तो प्रातिभासिकता संभवै नहीं, तथापि ब्रह्मज्ञानसैं निवर्तनीय अज्ञानका कार्य व्यावहारिक हैं. और ब्रह्मज्ञानसैं विनाही निवर्तनीय अज्ञानका कार्य प्रातिभासिक है, इसरीतिसैं व्यावहारिक प्रातिभासिकका भेद कहै तो उक्त शंका होवैहै. अज्ञानसैं अतिरिक्त दोषजन्य नहीं होवै, किंतु केवल अज्ञानजन्य होवै ताकूं **व्यावहारिक** कहै हैं. अज्ञानसैं अतिरिक्त दोषजन्य होवै ताकूं **प्रातिभासिक** कहै हैं. इस रीतिसैं व्यावहारिक प्रातिभासिकका भेद कहैं; उक्त शंकाका संभवै नहीं. काहेतैं ? दर्पणादिक उपाधिसैं मुखादिकनका संबंध हुयें ब्रह्मचेतनस्थ मूलाज्ञानका प्रतिबिंबत्वादिक धर्मरूप वा प्रतिबिंबत्वादिक धर्मीरूप परिणाम होवै है. और दोनों पक्षमें अधिष्ठान ब्रह्मचेतन है.

२२४ आभासवाद और प्रतिबिंबवादमें धर्मी वा धर्मके अध्यासकी उत्पत्तिका उपादान तूलाज्ञानकूं मानिके अधिष्ठानका भेद.

पूर्व जो कह्या है:—विद्यारण्यस्वामीके मतमें प्रतिबिंबकी उत्पत्ति मानैं तो दर्पणादिक अवच्छिन्नचेतन अधिष्ठान हैं, और दर्पणादिक अवच्छिन्नचेतनस्थ अज्ञान उपादान है. तैसैं विवरणकारके मतसैं प्रतिबिंबत्वादिक धर्मनकी ही

उत्पत्ति मानै है, बिंबावच्छिन्नचेतन अधिष्ठान है और बिंबावच्छिन्न चेतनस्थ अज्ञान उपादान है इस रीतिसैं धर्माध्यासपक्ष और धर्मीअध्यास पक्षमें अधिष्ठानका और उपादानका भेद है; सो अवस्थाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता मानिके कह्या है.

२२५ दोनौं पक्षनमें मूलाज्ञानकी उपादानता मानैं तौ अधिष्ठानका भेद और मूलाज्ञानकूं उक्त अध्यासके उपादानताकी योग्यता.

मूलाज्ञानकूं उपादानता मानै तो दोनों मतनमें अधिष्ठानका भेद संभवै नहीं और मूलाज्ञानकूंही उक्त अध्यासकी उपादानता माननी चाहिये. काहेतैं ? अवस्थाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता मानै तो दर्पणादिकनके ज्ञानतैं वा मुखादिकनके ज्ञानतैं अज्ञानकी आवरणशक्त्यंशकी निवृत्ति हुयां विक्षेपशक्त्यंशकी स्थिति मानै तौ ब्रह्मज्ञानसें ब्रह्मस्वरूपका आवरक मूलाज्ञानांशही नष्ट होवैगा; तैसैं शुक्त्यादिकनके ज्ञानसैं शुक्त्याद्यवच्छिन्नचेतनका आवरक तूलाज्ञानांशही नष्ट होवैगा और व्यावहारिक प्रातिभासिक विक्षेपका हेतु द्विविध अज्ञानांशके शेष रहनेतैं विदेहकैवल्यमेंभी व्यावहारिक प्रातिभासिक विक्षेपके सद्भावतैं सर्व संसारका अनुच्छेद होवैगा, यातैं आवरण हेतु अज्ञानांशकी निवृत्ति हुयां विक्षेपहेतु अज्ञानांशका शेष कहना संभवै नहीं.

२२६ तूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानताके वादीका मत.

और तूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता वादी ऐसैं कहैः—आवरण हेतु अज्ञानांशकी निवृत्ति हुयां विक्षेपहेतु अज्ञानांशका शेष स्वाभाविक नहीं है, किंतु विक्षेपहेतु अज्ञानांशकी निवृत्तिका प्रतिबंधक होवै तहां विक्षेप हेतु अज्ञानांशका शेष रहैहै. ब्रह्मज्ञानसैं आवरण हेतु अज्ञानांशकी निवृत्ति हुआंभी विक्षेपहेतु अज्ञानांशकी निवृत्तिमें प्रतिबंधक प्रारब्धकर्म रहै, उतने काल विक्षेपहेतु अज्ञानांशका शेष रहै है. प्रारब्धरूप प्रतिबंधकके अभाव हुयां विक्षेपहेतु अज्ञानांशकीभी निवृत्ति होवै है परंतु इतना भेद हैः—आवरक अज्ञानांशकी निवृत्ति तौ महावाक्यजन्य अंतःकरणकी प्रमारूप वृत्तिसैं

होवै है. प्रारब्धबलसैं कितने वर्ष जीवै तबपर्यंत पूर्ववृत्ति तौ रहै नहीं; और विक्षेपनिवृत्तिके अर्थ मरणके अव्यवहित पूर्व कालमें महावाक्य-विचारका विद्वान्‌कूं विधान नहीं और मरण मूर्छाकालमें महा-वाक्य विचारका संभवभी नहीं; यातैं विक्षेपशक्तिके नाशका हेतु तत्वज्ञानके संस्कारसहित चेतन है और आवरणशक्तिके नाशका हेतु तत्वज्ञान है. जैसैं मूलाज्ञानकी विक्षेपशक्तिकी निवृत्तिमें प्रतिबंधक प्रारब्ध कर्म है, तैसैं प्रतिबिंबाध्यासमें विक्षेपशक्तिकी निवृत्तिमें सुखादिकबिं-बसैं दर्पणादिक उपाधिका संबंधही प्रतिबंधक है; ताके सद्भावमें आवर-णांशकी निवृत्ति हुयांभी प्रतिबिंबादिक विक्षेपकी निवृत्ति होवै नहीं. बिंब-उपाधिका संबंधरूप प्रतिबंधककी निवृत्ति हुयां विक्षेपकी निवृत्ति होवै है, शुक्तिरजतादिक अध्यास होवै तहां आवरणके नाशतैं अनंतर विक्षे-पकी निवृत्तिमें प्रतिबंधकके अभावतैं विक्षेप शेष रहै नहीं, इस रीतिसैं विक्षेपनिवृत्तिमें प्रतिबंधकाभावसहित अधिष्ठानज्ञानकूं हेतुता होनेतैं और मोक्षदशामें प्रारब्धरूप प्रतिबंधकके अभावतैं संसारका उपलंभ संभवै नहीं; यातैं आवरणशक्तिके नाशतैं उत्तरभी विक्षेशपक्तिका सद्भाव मानै तौ उक्त दोषके अभावतैं अवस्थाज्ञानकूंभी प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानना उचित है.

२२७ उक्तमतके निषेधपूर्वक मूलाज्ञानकूंही प्रतिबिंबा-ध्यासकी उपादानता.

यह कथनभी अयुक्त है. काहेतैं ? जहां देवदत्तके मुखका और दर्पणा-दिक उपाधिका यज्ञदत्तकूं यथार्थ साक्षात्कार होवै, तिसतैं उत्तरकालमें भी देवदत्तमुखका दर्पणसैं संबंध हुयां यज्ञदत्तकूं देवदत्तमुखसैं प्रतिबिंबत्वादिक धर्मनका अध्यास विवरणके मतमें होवै है, तैसैं विद्यारण्यस्वामीके मतमें देव-दत्तमुखके प्रतिबिंबका अध्यास दर्पणमें होवैहै सो नहीं हुया चाहिये. काहेतैं ? उक्त अध्यासकी निवृत्तिमें बिंबउपाधिका संबंधही प्रतिबंधक है, मुख वा दर्पणरूप अधिष्ठानके ज्ञानकालमें तिस प्रतिबंधकका अभाव होनेतैं प्रतिबं-

धकाऽभावसहित अधिष्ठान होवै है. विवरणकारके मतमें "देवदत्तमुखे दर्पणस्थत्वं प्रत्यङ्मुखत्वादिकं नास्ति" ऐसा ज्ञान अध्यासका विरोधी है: और विद्यारण्यस्वामीके मतमें "दर्पणे देवदत्तमुखं नास्ति" ऐसा ज्ञान उक्त अध्यासका विरोधी है. काहेतैं? दोनों मतनमें क्रमतैं "देवदत्तमुखे दर्पणस्थत्वं प्रत्यङ्मुखत्वं दर्पणे देवदत्तमुखं" इस रीतिसैं अध्यासके आकारका भेद है. ताकी हेतु विक्षेपशक्तिविशिष्ट अज्ञानअंशकीभी निवृत्ति हुईहै; यातैं उपादानके अभावतैं उक्त स्थलमें यज्ञदत्तकूं देवदत्तमुखका प्रतिबिंबभ्रम नहीं हुया चाहिये और ब्रह्मचेतनस्थ मूलाज्ञानकूंही प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानैं तो उक्त उदाहरणमें देवदत्तके मुखका और दर्पणका ज्ञान हुयेभी ब्रह्मरूप अधिष्ठानज्ञानके अभावतैं उपादानके सद्भावतैं उक्त अध्यास संभवै है. यातैं मूलाज्ञानही प्रतिबिंबाध्यासका उपादान है यह पक्षही समीचीन है.

२२८ मूलाज्ञानकी उपादानताके पक्षमें शंका.

परंतु या पक्षमें यह शंका है:—ब्रह्मचेतनस्थ मूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानैं तौ ब्रह्मज्ञानसैं विना प्रतिबिंब भ्रमकी निवृत्ति नहीं हुई चाहिये. काहेतैं ? अधिष्ठानके यथार्थज्ञानतैं अज्ञानकी निवृत्तिद्वारा भ्रमकी निवृत्ति होवैहै. और प्रतिबिंबाध्यासका अधिष्ठान उक्त पक्षमें ब्रह्मचेतन है, दर्पणावच्छिन्न चेतन वा मुखावच्छिन्न चेतन अधिष्ठान नहीं, मुख दर्पणादिज्ञानतैं मूलाज्ञानकी निवृत्ति मानै तौ उपादानके नाशतैं मुखदर्पणादिक व्यावहारिक पदार्थनकाभी अभाव हुया चाहिये; यातैं मूलज्ञानकूं उपादानता मानैं तौ मुखादिकनतैं बिंबउपाधिके वियोगकालमेंभी प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्ति संभवै नहीं.

२२९ उक्त शंकाका समाधान.

या शंकाका यह समाधान है:-आवरण शक्ति और विक्षेपशक्तिके भेदतैं दो अंशवाला अज्ञान है. प्रतिबंधकरहित अधिष्ठानज्ञानतैं अशेष अज्ञानकी निवृत्ति होवै है. प्रारब्ध कर्म प्रतिबंधक होनेतैं ब्रह्मरूप अधिष्ठानज्ञान हुये भी विक्षेपहेतु अज्ञानांशकी निवृत्ति होवै नहीं, और घटादिक

अनात्मपदार्थगोचर ज्ञान होवै तिनतैं अज्ञानकी निवृत्ति तो होवै नहीं, परंतु जितनेकाल घटादिकनका स्फुरण रहै उतनेकाल अंधकारसैं आवृत गृहके एकदेशमें प्रभाप्रकाशतैं अंधकारके संकोचकीनांई अज्ञानजन्य आवरणका संकोच होवै है तैसैं सुखदर्पणादिकनके साक्षात्कारतैं ब्रह्मके आच्छादक मूलाज्ञानकी निवृत्ति तो यद्यपि नहीं होवै है, तथापि अज्ञानजन्यप्रतिबिंबाध्यासरूप विक्षेपका सुखदर्पणादिज्ञानतैं उपादानमें विलयरूप संकोच होवै है. उपादानमें विलयकूं ही कार्यकी सूक्ष्म अवस्था कहै हैं. इस रीतिसैं अधिष्ठानज्ञानके अभावतैं अज्ञानकी निवृत्तिविना प्रतिबिंबाध्यासकी बाधरूप निवृत्तिका यद्यपि संभव नहीं है, तथापि मुखदर्पणादिकनके ज्ञानतैं प्रतिबंधकका अभाव हुयां कार्यका उपादानमें विलयरूप निवृत्ति होवै है,

२३० एकदेशीकी रीतिसैं बाधका लक्षण.

इस रीतिसैं संसारदशामें प्रतिबिंबाध्यासका बाध होवै नहीं; यह कोई एकदेशी मानै है. या मतमें अभावनिश्चयकूं बाध नहीं कहै हैं. काहेतैं ? "मुखे दर्पणस्थत्वं नास्ति, दर्पणे मुखं नास्ति" इसरीतिसैं विवरणकार विद्यारण्यस्वामीके मतभेदसैं उभयविध अध्यासका अभावनिश्चय सर्व अविद्वान्‌केभी अनुभवसिद्ध है. ताका संसारदशामें अभाव कहना संभवै नहीं, यातैं ब्रह्मज्ञानविना प्रतिबिंबाध्यासका बाध नहीं मानै ताके मतमें केवल अधिष्ठानशेषकूं बाध कहै हैं. प्रतिबिंबाध्यासका अभावनिश्चय उक्तरीतिसैं हुयांभी संसारदशामें अज्ञानकी सत्ता होनेतैं केवल अधिष्ठान शेष नहीं है; किंतु अज्ञानविशिष्ट अधिष्ठान है. इसरीतिसैं प्रतिबंधकरहित मुखदर्पणादिक साक्षात्कारतैं अधिष्ठानज्ञानविना बाधरूप अज्ञाननिवृत्तिका अभाव हुयांभी अपने उपादानमें विलयरूप कार्यका संकोच होवैहै उपादानरूपसैं कार्यकी स्थितिकूंही सूक्ष्मावस्था कहै हैं.

२३१ बहुत ग्रंथकारनकी रीतिसैं बाधका लक्षण और ब्रह्मज्ञानविना प्रतिबिंबाध्यासके बाधकी सिद्धि.

बहुत ग्रंथकारोंके मतमें ब्रह्मज्ञानसैं विना मूलाज्ञानके नाशविनाभी मूला-

ज्ञानजन्य प्रतिबिंबाध्यासका बाध होवैहै, यह तिनका अभिप्राय है. मिथ्यात्वनिश्चय वा अभावनिश्चय बाध कहिये है, यह सर्व ग्रन्थनका निष्कर्ष है. बहुत स्थानमें मिथ्यात्वनिश्चयभी अभावनिश्चय पदार्थ होवै, तहां अधिष्ठानमात्र शेष रहैहै; अज्ञान शेष रहै नहीं. इस अभिप्रायतैं किसी ग्रंथकारनें अधिष्ठानमात्रका शेषही बाधका स्वरूप कह्या है; और अधिष्ठानमात्रका शेष बाधका लक्षण नहीं. जो बाधका यही लक्षण होवै तौ स्फटिकमें लौहित्यभ्रमादिक सोपाधिक अध्यास होवै, तहां अधिष्ठानज्ञानसैं उत्तरकालमेंभी जपाकुसुम और स्फटिकका परस्परसंबंधरूप प्रतिबंधक होनेतैं लौहित्य अध्यासकी निवृत्ति नहीं होवै है. तैसैं विद्वानकूं प्रारब्धकर्म प्रतिबंधक होनेतैं शरीरादिकनकी निवृत्ति नहीं होवै है, यातें आज्ञानकार्यविशिष्ट अधिष्ठान दोनों स्थानमें होनेतैं केवल अधिष्ठानशेषके अभावतैं बाधव्यवहार नहीं हुया चाहिये. और श्वेत स्फटिकके साक्षात्कारतैं लौहित्यअध्यासका बाध होवैहै. ब्रह्मसाक्षात्कारतैं जीवन्मुक्त विद्वानकूं संसारका बाध होवैहै इसरीतिसैं. विक्षेपसहित अधिष्ठानमें बाधव्यवहार सकल ग्रंथकारोंनें लिख्याहै; तहां अध्यस्त पदार्थमें मिथ्यात्वनिश्चय वा ताका अभावनिश्चयही बाधकास्वरूप संभवै है, और प्रतिबंधकरहित मुखदर्पणादिकनके ज्ञानतैं मुखमें प्रतिबिंबत्वादिक धर्मनका तथा दर्पणमें प्रतिबिंबादिक धर्मीका मिथ्यात्वनिश्चय होवै है, तैसैं अभावनिश्चय होवै है; यातैं ब्रह्मज्ञानसैं विना प्रतिबिंबाध्यासका बाध होवै नहीं, यह कथन अयुक्त है.

२३२ मुखदर्पणादि अधिष्ठानके ज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्तिकी हेतुता.

जैसैं अधिष्ठानज्ञानतैं अध्यासकी बाधरूप निवृत्ति होवै, तैसैं मुखदर्पणादिकनके अपरोक्षज्ञानतैं भी प्रतिबंधकरहितकालमें प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्ति अनुभवसिद्ध है; यातैं प्रतिबंधककाभावसहित मुखदर्पणादि ज्ञानभी अधिष्ठानकीनांई अध्यासनिवृत्तिका हेतु है. इसरीतिसैं मानना योग्य है; और मुखदर्पणादि ज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासनिवृत्तिकी कारणता संभवै भी है.

काहेतैं ! समानविषयका ज्ञानतैं अज्ञानका विरोध है. भिन्नविषयक ज्ञान अज्ञानका विरोध नहीं; यातैं मुखदर्पणादिकज्ञानका मुखदर्पणादिक अवच्छिन्नचेतनस्थ अवस्थाज्ञानसैंही विरोध हैं. ब्रह्माच्छादक मूलाज्ञानसैं ब्रह्मज्ञानविना अन्यज्ञानका विरोध नहीं, यातैं ब्रह्मज्ञानविरोधी मूलाज्ञानसैं दर्पणादिकज्ञानके विरोधाभावतैं प्रतिबिंबाध्यासके उपादान मूलाज्ञानकी निवृत्ति तौ यद्यपि नहीं होवैहै, तथापि अज्ञाननिवृत्तिसैं विनाभी विरोधी ज्ञानसैं पूर्वज्ञानकी निवृत्ति अनुभवसिद्ध है.

२३३ मुखदर्पणादिकके ज्ञानकूं मूलाज्ञानकी निवृत्तिविना प्रतिबिंबाध्यासकी नाशकता.

जहां रज्जुके अज्ञानतैं सर्पभ्रमतैं उत्तर दंडभ्रम होवै तहां दंडज्ञानतैं सर्पके उपादान अवस्थाज्ञानकी निवृत्ति तौ होवै नहीं. काहेतैं ? अधिष्ठानके तत्वज्ञानतैंही अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै, यातैं रज्जुज्ञानविना रज्जुचेतनस्थ अज्ञानकी संभवै नहीं. और दंडभ्रमसैंही रज्जुचेतनस्थ अज्ञानकी निवृत्ति होवै तौ उपादानके अभावतैं दंडअध्यासका स्वरूपंही सिद्ध नहीं होवैगा; यातैं दंडज्ञानतैं अज्ञाननिवृत्तिविना जैसैं सर्पाध्यासकी निवृत्ति होवैहै, तैसैं "मुखे प्रतिबिंबत्वं नास्ति । दर्पणे मुखं नास्ति" इसप्रकारसैं मुखदर्पणका ज्ञान प्रतिबिंबाध्यासका विरोधी होनेतैं तासैंभी प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्ति होवैहै, और प्रतिबिंबकाध्यासके उपादान मूलाज्ञानकी उक्त ज्ञानसैं निवृत्ति संभवै नहीं. जो उक्त ज्ञानसैं मूलाज्ञानकी निवृत्ति कहै, तौ मूलाज्ञानके कार्य मुखदर्पणादिक व्यावहारिक पदार्थभी नष्ट हुये चाहिये; यातैं मुखदर्पणादिकज्ञानकूं विरोधिविषयक होनेतैं अज्ञाननिवृत्तिविनाभी प्रतिबिंबाध्यासकी नाशकता है. भावअभावका परस्पर विरोध होवै है, यातैं तिनके ज्ञानभी परस्पर विरोधी होवै हैं. जहां स्थाणुमें स्थाणुत्वज्ञानतैं उत्तर पुरुषत्वभ्रम होवै तहां "स्थाणुत्वं नास्ति" ऐसै विरोधी भ्रमज्ञानतैं पूर्व प्रमाज्ञानकी निवृत्ति होवै है. घटवाले भूतलमें घटाभावके भ्रमज्ञानतैं उत्तर घटसैं इंद्रियके संयोग हुयां "घटवद्भूतलं" ऐसैं विरोधी प्रमाज्ञानतैं पूर्व भ्रमज्ञानकी

निवृत्ति होवै है. जहां रज्जुमें सर्पभ्रमतैं उत्तर दंडभ्रम होवै दंडभ्रमतैं सर्प-भ्रमकी निवृत्तिहोवैं है. इसरीतिसैं कहूं भ्रमज्ञानतैं प्रमाज्ञानकी निवृत्ति, कहूं प्रमाज्ञानतैं भ्रमज्ञानकी निवृत्ति, कहूं भ्रमज्ञानकी भ्रमज्ञानतैं निवृत्ति होवैहै. जहां भ्रमतैं प्रमाकी निवृत्ति और भ्रमतैं भ्रमकी निवृत्ति होवै तहां भ्रमका उपादान अज्ञानके सद्भावमें ही पूर्व ज्ञानकी निवृत्ति होवैहै. जहां प्रमाज्ञानतैं भ्रमकी निवृत्ति होवै तहां अधिष्ठानका यथार्थ ज्ञान प्रमा होनेतैं अज्ञान-सहित भ्रमकी निवृत्ति होवैहै; या प्रकारतैं अधिष्ठान ज्ञानविना मूलाकी निवृत्ति विनाभी मुखदर्पणादिज्ञानतैं प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्ति संभवै है.

विरोधी ज्ञानतैं पूर्वज्ञानकी निवृत्ति होवैहैं, यह नियम है, और अधिष्ठा-नके यथार्थज्ञानतैं ही पूर्व भ्रमकी निवृत्ति होवै, यह नियम नहीं; परंतु अधि-ष्ठानके यथार्थज्ञानविना अज्ञानकी निवृत्ति होवै नहीं; यातैं अज्ञानकी निवृत्ति केवल अधिष्ठानकी विशेष प्रमातैं होवैहै, यह नियम है. विवरणकारके मतमें " मुखे प्रतिबिंबत्वं दर्पणस्थत्वं प्रत्यङ्मुखत्वं " ऐसा अध्यास होवैहै; ताका विरोधी " मुखे प्रतिबिंबत्वादिकं नास्ति " ऐसा ज्ञान है. और विद्यारण्यस्वा-मीके मतमें " दर्पणे मुखं " ऐसा अध्यास होवैहै; " दर्पणे मुखं नास्ति " ऐसा ज्ञान ताका विरोधी है. नैयायिक मतनमेंभी भावअभावका परस्पर विरोध मानिके तिनके ज्ञानोंकाभी विषय विरोधसैं विरोध मान्याहै; या प्रकारतैं मूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानैं तौ बिंब उपाधिका सन्निधान रूप प्रतिबंधकरहित कालमें मुखदर्पणादिक ज्ञानतैं अज्ञाननिवृत्तिविनाभी उक्त अध्यासकी निवृत्ति संभवै है.

२३४ उक्त पक्षमें पद्मपादाचार्यकृत पंचपादिकाकी रीतिसैं तूलाज्ञानकूं अध्यासकी हेतुताके वादीकी शंका.

या पक्षमें यह शंका है:—शारीरकभाष्यकी टीका पंचपादिका नाम पद्म-पादाचार्यनें किया है, ताकूं भाष्यकारके वचनतैं सर्वज्ञता हुई है. तिस सर्व-ज्ञवचन पंचपादिकामें यह लिख्याहै:—जहां सर्परजतादिक भ्रम होवैं तहां रज्जुशुक्तिके ज्ञानतैं सर्परजतादिकनके उपादान अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै;

और अज्ञानकी निवृत्तिसैं सर्परजतादिक अध्यासकी निवृत्ति होवै है. रज्जु शुक्ति आदिकनके ज्ञानकूं सर्परजतादिकनकी निवृत्तिमें साक्षात्कारण मानै तो उपादानके नाशतैं भावकार्यका नाश होवै है; या नियमकी हानी होवैगी, और अधिष्ठानज्ञानतैं अज्ञानका नाश होवै है, अज्ञाननाशतैं अध्यासका नाश होवै है. इस रीतिसैं मानैं तो उक्त नियमका व्यभिचार होवै नहीं. यद्यपि अंधकारकी नांई अज्ञानभी भावरूप है; तथापि अज्ञान अनादि होनेतैं कार्य नहीं; यातैं अज्ञानकी निवृत्ति तो अधिष्ठानज्ञानतैं भी संभवै है, परंतु भावकार्य सर्पादिक अध्यासकी निवृत्ति उपादानके नाशविना होवै नहीं. घटध्वंसकी निवृत्तिभी वेदांतमतमें होवै है और अभाव पदार्थका उपादानकारण होवै नहीं. यातैं उपादानके नाशविनाभी घटध्वंसरूप कार्यका नाश होवै है. परंतु घटध्वंस भाव नहीं; यातैं उपादान नाशकूं भावकार्यके नाशमें नियत हेतुताके संरक्षणकूं पंचपादिकामें अज्ञाननिवृत्तिद्वारा अधिष्ठानज्ञानकूं अध्यासनिवृत्तिकी हेतुता कही है. अज्ञाननिवृत्तिकूं त्यागिके अधिष्ठानज्ञानकूं अध्यासनिवृत्तिकी साक्षात् हेतुताका निषेध कऱ्या है; और मूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानैं तो उक्त रीतिसैं अज्ञाननिवृत्तिसैं विनाही प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्ति माननी होवै है; यातैं पंचपादिकावचनतैं विरोध होवैगा. अवस्थाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता मानैं तो विरोध नहीं; काहे तैं ? अवस्थाज्ञानकूं उक्तअध्यासकी उपादानता कहैं ताके मतमें विवरणकारकी रीतिसैं मुखावच्छिन्न चेतनस्थ अज्ञानकूं धर्माध्यासकी उपादानता सिद्ध होवैहै. विद्यारण्यस्वामीकी रीतिसैं दर्पणावच्छिन्न चेतनस्थ अज्ञानकूं धर्मी अध्यासकी हेतुता सिद्ध होवै है और प्रतिबंधकरहितकालमें मुखज्ञानतैं वा दर्पणज्ञानतैं तिन अज्ञानोंकी क्रमतैं निवृत्ति होवै है. अज्ञाननिवृत्तिद्वारा प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्ति होवै है, यातैं अवस्थाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानना पंचपादिकावचनके अनुकूल है. और मूलाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता कहना पंचपादिकावचनसैं विरुद्ध है. इस रीतिसैं उक्त अध्यासकी हेतुता अवस्थाज्ञानकूं मानैं तो ताका यह पूर्वपक्ष है.

२३५ उक्तशंकाकी अयुक्तता.

परंतु अवस्थाज्ञानकूं हेतुता मानैं भी पंचपादिकावचनसैं विरोधपरिहार होवै नहीं. तथाहिः—जहां दर्पणसंबंधरहित देवदत्तमुखका वा देवदत्तमुखवियुक्त दर्पणका यज्ञदत्तकूं साक्षात्कार होवै, और उक्त रक्षणमें देवदत्तमुखका दर्पणसैं संबंध होवै है, तहांभी प्रतिबिंबाध्यास होवै है. मूलाज्ञानकूं उपादानता मानैं तो मुखदर्पणादि साक्षात्कारसैं ताकी निवृत्ति होवै नहीं. और मुखज्ञानतैं मुखावच्छिन्नचेतनस्थ अज्ञानकी तैसैं दर्पणज्ञानतैं दर्पणावच्छिन्नचेतनस्थ अज्ञानकी निवृत्ति अवश्य होवै है. और मुखदर्पणसाक्षात्कारतैं उत्तरकालमैंभी मुखदर्पणसन्निधानसैं प्रतिबिंबाध्यास होवै है; यातैं मुखदर्पणसाक्षात्कारतैं अवस्था अज्ञानके आवरणशक्तिविशिष्ट अज्ञानांशका नाश नहीं होनेतैं विशेषरूपतैं ज्ञानाधिष्ठानमैंभी अध्यास संभवै है; तहां दर्पणमुखका परस्पर वियोग हुयां प्रतिबंधका भावसहित अधिष्ठानज्ञानतैं अज्ञाननिवृत्तिद्वारा अध्यासकी निवृत्ति कहना अवस्थाज्ञानवादीकूंभी संभवै नहीं. किंतु ज्ञानतैं साक्षात् अध्यासकी निवृत्ति कहनाही संभवै है. काहेतैं? रज्जुज्ञानतैं शुक्तिके अज्ञानका नाश नहीं होवै है, यातैं ज्ञानतैं अज्ञानमात्रका नाश नहीं होवै है; किंतु समानविषयक अज्ञानका ज्ञानतैं नाश होवै है. ज्ञानतैं जाका प्रकाश होवै सो ज्ञानका विषय कहिये है: अज्ञानसैं आवृत होवै सो अज्ञानका विषय कहिये है. यज्ञदत्तकूं अध्यासतैं पूर्वकालमैं हुया जो मुखदर्पणका साक्षात्कार तासैं आवरणका नाश होनेतैं अज्ञानकृत आवरणरूप अज्ञानके विषयका मुखदर्पणमें अभाव है, यातैं ज्ञान अज्ञानके विरोधका संपादक समानविषयत्वके भंगतैं उक्तस्थलमैं अज्ञाननिवृत्तिविना अध्यासमात्रकी निवृत्ति अवस्था ज्ञानवादीकूंभी माननी होवै है. इसरीतिसैं अवस्थाऽज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता मानैंभी पंचपादिकावचनसैं विरोधपरिहार होवै नहीं.

२३६ तूलाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी हेतुता मानैं तौ पंचपादिकाके वचनसैं विरोध और मूलाज्ञानकूं हेतुता मानैं तौ अविरोध.

और सूक्ष्मविचार करै तो अवस्थाऽज्ञानकूं उक्त अध्यासकी हेतुता मानै

तौ पंचपादिकावचनसैं विरोध है, मूलाज्ञानकूं हेतुता मानै तौ विरोध नहीं. तथाहिः—ज्ञानसैं केवल अज्ञानकी निवृत्ति होवै है, और अज्ञानरूप उपादानकी निवृत्तिसैं अज्ञानकार्यकी निवृत्ति होवै है; इसरीतिसैं पंचपादिकावचन है ताका यह अभिप्राय नहीं. भावकार्यके नाशमें उपादानका नाश नियतहेतु होनेतैं ज्ञानतैं अध्यासनिवृत्ति संभवै नहीं. काहेतैं? उपादानके नाश विना भावकार्यका नाश होवै नहीं तो भावकार्यके नाशमें उपादानके नाश नियतहेतु होवै; और भावकार्य द्व्यणुक है, ताके उपादान परमाणु हैं, तिनकूं नित्यता होनेतैं नाश संभवै नहीं; यातैं परमाणुसंयोगके नाशतैं द्व्यणुकका नाश होवै है, तहां भावकार्यके नाशमें उपादान नाशकी हेतुताका व्यभिचार है; यातैं भावकार्यके नाशमें उपादान नाशकी हेतुता नियमके संरक्षण अभिप्रायतैं पंचपादिकाकी उक्ति नहीं है; और केवल आग्रहतैं पंचपादिकावचनका उक्त नियमसंरक्षणमें अभिप्राय कहै तो दंडभ्रमसे सर्पाध्यासकी निवृत्ति नहीं होवैगी; और नैयायिक मतमेंभी द्व्यणुक भिन्नद्रव्यके नाशमें उपादानके नाशकूं हेतुता मानी है. सकल भावकार्यके नाशमें उपादान नाशकूं हेतुता कहैं तो परमाणु और मन नित्य हैं; तिनके नाशके असंभवतैं तिनकी क्रियाका नाश नहीं होवैगा, तैसैं नित्यआत्माके ज्ञानादिगुणका और नित्य आकाशके शब्दादिगुणका नाश नहीं होवैगा, यातैं भावकार्यके नाशमें उपादानका नाश नियतहेतु है, यह कथन असंगत है, परंतु इसी स्थानमें आश्रयका नाश हुयां कार्यकी स्थिति होवै नहीं, तहां उपादानका नाशभी कार्य नाशका हेतु है, तथापि कार्यनाशमें उपादानका नाश नियत हेतु नहीं. उपादानके सद्भावमें अन्यकारणतैं भी कार्यका नाश होवै है. इसरीतिसैं उक्त नियम संरक्षणमें अभिप्रायतैं पंचपादिकाकी उक्ति नहीं है; किंतु अधिष्ठान ज्ञानतैं अध्यासकी निवृत्ति होवै तहां अधिष्ठानज्ञानकूं अध्यासनिवृत्तिमें कारणता नहीं है, अधिष्ठानज्ञान तो अज्ञाननिवृत्तिका कारण है. और अज्ञाननिवृत्ति अध्यासनिवृत्तिका कारण है. जैसैं कुलालका जनक घटमें अन्यथासिद्ध होनेतैं कारण नहीं तैसैं अध्यासनिवृत्तिमें अधिष्ठानज्ञानका ज्ञान

अन्यथासिद्ध होनेतैं कारण नहीं; इसरीतिसैं अधिष्ठानज्ञानसैं अध्यासकी निवृत्ति होवै तहां ज्ञानसैं अज्ञानमात्रकी निवृत्ति होवैहै अध्यासकी निवृत्ति उपादान अज्ञानके नाशतैं होवैहै; यह पंचपादिकावचनका अभिप्राय है. और सर्वत्र अध्यासकी निवृत्तिमें अज्ञाननिवृत्तिकूं हेतुता है; इस अभिप्रायतैं पंचपादिकाकी उक्ति होवै तो दंडभ्रमसैं अज्ञाननिवृत्तिके अभावतैं सर्पभ्रमकी निवृत्ति नहीं हुई चाहिये, यातैं अधिष्ठानके यथार्थ ज्ञानसैं अध्यास निवृत्ति होवैहै, तहां अज्ञानकी निवृत्तिही अध्यास निवृत्तिका हेतु है; यह नियम पंचपादिकाग्रंथमें विवक्षित है; और अवस्थाऽज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी हेतुता मानै ताके मतमें मुखदर्पणादिक ज्ञानही अधिष्ठानका ज्ञान है, तासैं अज्ञान निवृत्तिद्वारा अध्यासकी निवृत्ति मानना पंचपादिकानुसार है; और यज्ञदत्तकूं पूर्वज्ञानसैं आवरणनाशस्थलमें देवदत्तमुखका उपाधिसन्निधान हुयां प्रतिबिंबाध्यास होवैहै. उपाधिवियोगकालमें अधिष्ठानज्ञानसैं अध्यासनिवृत्ति होवै, तहां अज्ञाननिवृत्तिद्वारा अध्यासकी निवृत्ति संभवै नहीं; किंतु अधिष्ठानज्ञानतैं साक्षात् अध्यासकी निवृत्ति होवै है; यातैं पंचपादिकासैं विरुद्ध है. और मूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानै तौ मुखदर्पणादिक ज्ञानतैं प्रतिबिंबाध्यासकी निवृत्ति होवै, तहां मुखदर्पणादिकनकूं यापक्षमें अधिष्ठानताके अभावतैं अधिष्ठान ज्ञानजन्य अध्यासकी निवृत्ति नहीं है; किंतु विरोधी विषयके ज्ञानकूं विरोधी होनेतैं मुखदर्पणादिकनके ज्ञानकूं अध्यासनिवर्तकता है. और पंचपादिकामें अधिष्ठानजन्य अध्यासकी निवृत्तिही अज्ञाननिवृत्तिद्वारा विवक्षित है; और अधिष्ठानज्ञानविना प्रकारान्तरसैं अध्यासकी निवृत्तिमें अज्ञाननिवृत्तिकूं द्वारता विवक्षित नहीं है इसरीतिसैं मूलाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्यासकी उपादानता मानैं तो मुखदर्पणादिज्ञानजन्य अध्यासकी निवृत्ति अधिष्ठानज्ञानजन्य नहीं, और अवस्थाज्ञानकूं उक्त अध्यासके उपादान मानैं तो मुखदर्पणादिज्ञानजन्य अध्यासकी निवृत्ति अधिष्ठानज्ञाजन्य है; और अधिष्ठानसैं अध्यासकी निवृत्ति होवै सो अज्ञाननिवृत्तिद्वाराही पंचपादिकामें विवक्षित है, और पूर्वज्ञात अधिष्ठानमें अध्यास

होयके निवृत्ति होवै, तहां उक्तरीतिसैं अज्ञाननिवृत्तिद्वारा अध्यासकी निवृत्ति संभवै नहीं;यातैं अवस्थाज्ञानकूं प्रतिबिंबाध्याकी उपादानता मानैं तो पंचपादिका वचनसैं विरोध है. मूलाज्ञानकूं उक्त अध्यासकी उपादानता मानैं तो विरोध नहीं.

२३७ प्रतिबिंबाध्यासकी व्यावहारिकता और प्रातिभासिकताके विचारपूर्वक स्वप्नाध्यासके उपादानके विचारकी प्रतिज्ञा.

इस रीतिसैं आकाशादि प्रपंचकीनांई मूलाज्ञानजन्य प्रतिबिंबाध्यास है, परंतु एकदेशीकी रीतिसैं ब्रह्मज्ञानविना ताकी बाधरूप निवृत्ति नहीं होनेतैं प्रतिबिंबाध्यासमें व्यावहारिकत्व शंका होवै है; तथापि बिंबउपाधिका संबंधरूप आगंतुक दोषजन्य है, यातैं प्रातिभासिक है. आकाशादिक प्रपंचका अध्यास है, सो अविद्यामात्रजन्य है, यातैं व्यावहारिक है. और अनंतर उक्तरीतिसैं तो अधिष्ठानज्ञानविना विरोधीज्ञानसैं बाधरूप निवृत्तिका संभव होनेतैं संसारदशामें बाध्यत्वरूप प्रातिभासिकत्वभी संभवै है, जैसैं प्रतिबिंबाध्यासमें मतभेदसैं अवस्थाऽज्ञान और मूलाज्ञान उपादान कह्या तैसैं स्वप्नाध्यासभी किसीके मतमें अवस्थाज्ञानजन्य है, और मतांतरमें मूलाज्ञानजन्य है.

२३८–२४७ स्वप्नविषे विचार.

२३८ तूलाज्ञानकूं स्वप्नके उपादानताकी रीति.

अवस्थाज्ञानकूं स्वप्नकी उपादानता उसरीतिसैं कहै हैः—अज्ञानकी अवस्थाविशेष निद्रा है. काहेतैं ? आवरणविक्षेपशक्तियुक्तता अज्ञानका लक्षण है. और स्वप्नकालमें जागृत द्रष्टा दृश्यका आवरण अनुभवसिद्ध है. देवदत्त नाम ब्राह्मणजाति जाग्रत्कालमें पितापितामहादिकनके मरणतैं उत्तर दाह श्राद्धादि करिके धनपुत्रादिसंपदासहित सो बन हुयां आत्माकूं यज्ञदत्तनाम क्षत्रियजाति बाल्यावस्थाविशिष्ट अन्नवस्त्रके अलाभतैं क्षुधाशीतसैं पीडित हुवा स्वपितापितामहके अंकमें रोदनकर्ता अनुभव करै है. तहां जाग्रत् कालके व्यावहारिक द्रष्टादृश्यका मूलाज्ञानसैं आवरण कहैं तो जाग्रत्कालमेंभी ज्ञानका आवरण हुयां चाहिये, अन्य कोई आवरणकर्ता प्रतीत होवै नहीं,

यातैं स्वप्नकालमें निद्राही आवरण करै है. और स्वप्नके पदार्थाकार परिणामभी निद्राकाही होवै है. इसरीतिसैं आवरणविक्षेपशक्तिविशिष्ट निद्रा है, यातैं अज्ञानलक्षण निद्रामें होनेतैं अज्ञानकी अवस्थाविशेष निद्रा है, परंतु अवस्थाज्ञान सादि है. काहेतैं ? मूलाज्ञानही आगंतुक आकारविशिष्ट हुवा किंचित् उपाध्यवच्छिन्न चेतनका आवरण करै ताकूं अवस्थाऽज्ञान और तूलाऽज्ञान कहै है. इसरीतिसैं आगंतुक आकार-विशिष्ट होनेतैं अवस्थाज्ञान सादि है; ताकी उत्पत्तिमें निमित्तकारण जाग्र-द्भोग हेतु कर्मनका उपराम है, और मूलाज्ञानकाही आकार विशेष होनेतैं मूलाज्ञान उपादानकारण है, निद्रारूप अवस्थाज्ञानसैं आवृत व्यावहारिक द्रष्टामें प्रातिभासिक द्रष्टा अध्यस्त है. तिस निद्रासैं आवृत व्यावहारिक दृश्यमें प्रातिभासिक दृश्य अध्यस्त है; यातैं प्रातिभासिक द्रष्टाका अधिष्ठान व्यावहारिक द्रष्टा है, और प्रातिभासिक दृश्यका अधिष्ठान व्यावहारिक दृश्य है; भोगके अभिमुख कर्म होवै तब जाग्रत् होवै है, तिसकालमें ब्रह्म-ज्ञान रहित पुरुषनकूं भी व्यावहारिक द्रष्टादृश्यका ज्ञानही अधिष्ठानका ज्ञान है, तासैं अवस्थाज्ञानरूप उपादानकी निवृत्तिद्वारा प्रातिभासिक द्रष्टादृश्यकी निवृत्ति होवैहै. व्यावहारिक द्रष्टाके ज्ञानतैं प्रातिभासिक द्रष्टाकी और व्या-वहारिक दृश्यके ज्ञानतैं प्रातिभासिक दृश्यकी निवृत्ति होवैहै.

२३९ उक्तपक्षमें शंका.

या पक्षमें यह शंका है:—उक्तरीतिसैं जाग्रतद्रष्टाका और स्वप्नद्रष्टाका भेद है. और अन्यद्रष्टाके अनुभूतकी अन्यकूं स्मृति होवै तौ देवदत्तके अनुभूतकी यज्ञदत्तकूं स्मृति हुई चाहिये; यातैं स्वप्नके अनुभूतकी जाग्रत् कालमें स्मृति होवैहै, द्रष्टाका भेद मानैं तौ स्मृतिका असंभव होवैगा.

२४० उक्तशंकाका समाधान.

ताका यह समाधान है:—यद्यपि अन्यके अनुभूतकी अन्यकूं स्मृति होवै नहीं, तथापि स्वानुभूतकी स्वकूं स्मृति होवैहै, तैसैं स्वतादात्म्यवालेनें अनुभूतकीभी स्वकूं स्मृति होवैहै, यातैं देवदत्तयज्ञदत्तका परस्पर

तादात्म्य नहीं है, और जाग्रत्‌के द्रष्टामें स्वप्नद्रष्टाकूं अध्यस्तता होनेतैं तामें ताका तादात्म्य है, अध्यस्तपदार्थका अधिष्ठानमें तादात्म्य होवै है. इस रीतिसैं जाग्रत् द्रष्टाके तादात्म्यवाला स्वप्नद्रष्टा है, ताके अनुभूतकी जाग्रत् द्रष्टाकूं स्मृति होवै है.यज्ञदत्तमें देवदत्तके तादात्म्यके अभावतैं देवदत्तके अनुभूतकी यज्ञदत्तकूं स्मृतिकी आपत्ति नहीं. इसरीतिसैं स्वप्नाध्यासका उपादान निद्रारूप अवस्थाज्ञान है.

२४१ व्यावहारिक जीव और जगतकूं स्वप्नके प्रातिभासिक जीव और जगत्‌का अधिष्ठानपना.

स्वप्नकालमें दृश्यमात्रकी अज्ञानसैं उत्पत्ति मानैं और व्यावहारिक जाग्रत्‌कालके जीवकूं द्रष्टा मानैं तो संभवै नहीं. काहेतैं ? व्यावहारिक जीवका स्वरूप निद्रारूप अज्ञानसैं आवृतहै. अज्ञानावृत जीवके संबंधसैं विषयका अपरोक्ष होवैहै, यातैं स्वप्नप्रपंचके अपरोक्षज्ञानका असंभव होवैगा, यातैं दृश्यकीनांई द्रष्टाभी व्यावहारिक जीवमें अध्यस्त है, सो अनावृत है; ताके संबंधसैं प्रातिभासिक दृश्यका अपरोक्षज्ञान संभवै है. इसरीतिसैं पारमार्थिक व्यावहारिक प्रातिभासिक भेदसैं जीवत्रिविधवादी ग्रंथकारोंनें स्वप्नका अधिष्ठान व्यावहारिक जीव जगत् कह्या है, परंतुः—

२४२ उक्तपक्षकी अयुक्ततापूर्वक चेतनकूं स्वप्नका अधिष्ठानपना.

यह मत अयुक्त है. काहेतैं ? व्यावहारिक द्रष्टाभी दृश्यकीनांई अनात्मा होनेतैं जड है यातैं सत्तास्फूर्तिप्रदानरूप अधिष्ठानता व्यावहारिक द्रष्टादृश्यमें संभवै नहीं,किंतु चेतनकूं स्वप्नप्रपंचकी अधिष्ठानता कहना उचित है,इसीवास्ते रज्जुशुक्तिकूं सर्परूप्यकी अधिष्ठानतावचनका रज्ज्ववच्छिन्नचेतन अधिष्ठानमें तात्पर्य कह्या है, बहुत ग्रंथनमेंभी चेतनही स्वप्नप्रपंचका अधिष्ठान कह्या है यातैं अहंकारावच्छिन्न चेतन स्वप्नका अधिष्ठान है, यह दो मत समीचीन हैं.

२४३ अहंकारावच्छिन्नचेतनकूं स्वप्नका अधिष्ठान मानिके तूलाज्ञानकूं ताकी उपादानता और जाग्रत्‌के बोधसैं ताकी निवृत्ति.

तिनमें अहंकारावच्छिन्न चेतनकूं अधिष्ठानता मानैं तौ मूलाज्ञानसैं ताका

आवरण संभवै नहीं, यातैं अहंकारावच्छिन्नका आच्छादक अवस्थाऽज्ञानही स्वप्नका उपादान संभवै है. जाग्रत्‌के बोधसैं ब्रह्मज्ञानविना ताकी निवृत्तिभी संभवै है.

२४४ अहंकाराऽनवच्छिन्नचेतनकूं स्वप्नका अधिष्ठान मानिके मूलाज्ञानकूं ताकी उपादानता और उपादानमें विलयरूपताकी निवृत्तिः

अविद्यामें प्रतिबिंबचेतन वा बिंबरूपईश्वरचेतन अहंकाराऽनवच्छिन्न चेतन है, ताकूं अधिष्ठानतामें तो ताका आच्छादक मूलाज्ञानही स्वप्नका उपादान मानना होवै है. जाग्रत् बोधसैं ताकी बाधरूप निवृत्ति होवै नहीं, किंतु उपादानमें विलयरूप निवृत्ति स्वप्नकी जाग्रत्‌में होवै है.

२४५ अहंकारानवच्छिन्नचेतनकूंही अधिष्ठान मानिके विरोधी ज्ञानतैं अज्ञानकी एक विक्षेप हेतु शक्तिके नाशका अंगीकार.

अथवा प्रतिबिंबाध्यास निरूपणमें उक्तरीतिसैं जाग्रत्‌बोध विरोधीज्ञान होनेतैं स्वप्नाध्यासकी निवृत्ति कहैं, परंतु विरोधीज्ञानतैं आवरण हेतु अज्ञान अंशकी निवृत्ति होवै नहीं; किंतु विक्षेपहेतु अंशकी निवृत्ति होवै है. विरोधी ज्ञानसैं अशेष अज्ञानकी निवृत्ति कहै, तो दंडभ्रमसैं सर्पभ्रमकी निवृत्ति स्थलमें उपादान हेतुके अभावतैं दंडभ्रमकाही असंभव होवैगा. विक्षेप अंशभी अशेष निवृत्ति होवै तो दंडभी विक्षेपरूप है; ताका उपलंभ नहीं हुया चाहिये. यातैं इसरीतिसैं मानना उचित है:-- एक अज्ञानमें अनंतविक्षेपकी हेतु अनंतक्ति है. विरोधीज्ञानतैं एक विक्षेपकी हेतुशक्तिका नाश होवै है, अपर विक्षेपहेतु शक्ति रहै हैं, यातैं कालांतरमें तिसी अधिष्ठानमें फेरि अध्यास होवै है, इसीवास्ते अतीतस्वप्नका जाग्रत् बोधसैं बाध हुयें भी आगामी स्वप्नरूपविक्षेपकी हेतुशक्तिका अवशेष होनेतैं दिनांतरमें स्वप्नाध्यास होवै है, यातैं अहंकारानवच्छिन्नचेतनकूं स्वप्नकी अधिष्ठानताभी संभवै है, परंतुः—

२४६ उक्तचेतनकूं स्वप्नकी अधिष्ठानवादमेंभी शरीरके अन्तर्देशस्थचेतनकूंही अधिष्ठानताका संभव.

उक्त चेतनकूं स्वप्नकी अधिष्ठानतावादमेंभी शरीरके अंतर्देशस्थ चेतनही

अधिष्ठान संभवै है, बाह्य देशस्थकूं अधिष्ठान मानैं तौ घटादिकनकीनांईं एक स्वप्नकी प्रतीति सर्वकूं हुई चाहिये. और घटादिकनकी अपरोक्षतामें सर्परजतादिकनकी अपरोक्षतामें जैसैं इंद्रियव्यापारकी अपेक्षा है तैसैं स्वप्नकी अपरोक्षतामेंभी इंद्रियव्यापारकी अपेक्षा चाहिये. और शरीरके अंतर्देशस्थचेतनमें स्वप्नका अध्यास मानैं तो प्रमातासैं संबंधी होनेतैं सुखादिकनकीनांई इंद्रियव्यापारसैं विनाही अपरोक्षता संभवै है; इसरीतिसैं अहंकारावच्छिन्न वा अहंकाराऽनवच्छिन्न चेतनही स्वप्नका अधिष्ठान है ये दोनों मत प्रामाणिक हैं.

२४७ शरीरके अंतर्देशस्थ अहंकाराऽनवच्छिन्न चेतनकूं स्वप्नकी अधिष्ठानताकी योग्यता.

अहंकाराऽनवच्छिन्नकूं कहैं, तामेंभी दो भेद हैं. अविद्यामें प्रतिबिंब जीवचेतन वा अविद्यामें बिंब ईश्वरचेतन दोनों अहंकारानवच्छिन्न हैं, और दोनों व्यापक होनेतैं शरीरके अंतर हैं. काहेतैं ? चेतनमें बिंबप्रतिबिंब भेद स्वाभाविक होवै तो विरुद्ध धर्माश्रयता अंतरस्थ एकचेतनमें संभवै नहीं. सो बिंबप्रतिबिंबतारूप ईश्वरजीवता उपाधिकृत है; एकही चेतनमें अज्ञानसंबंधसैं बिंबता प्रतिबिंबता कल्पित है; यातैं शरीरस्थ एकचेतनमें ही उभयविध व्यवहार होवै है, तैसैं अंतर्देशस्थमें ही स्वप्नाध्यासकी अधिष्ठानताका अंतःकरणकूं अवच्छेदक मानैं तौ अहंकारावच्छिन्नकूं अधिष्ठानता सिद्ध होवै है: तिसी चेतनमें स्वप्नकी अधिष्ठानताका अंतःकरणकूं अवच्छेदक नहीं मानैं तो अहंकारानवच्छिन्नकूं अधिष्ठानता सिद्ध होवै है. एकही देवदत्तमें पुत्रदृष्टिसैं विवक्षा होवै तो पिता कहै है, देवदत्तके जनककी दृष्टिसैं विवक्षा होवै तौ पुत्र कहै है. विवक्षाभेदसैं एक देवदत्तमें पितृता पुत्रतारूप विरुद्ध धर्मके व्यवहारकीनांई शरीरके अंतर्देशस्थ एक चेतनमें अवच्छिन्नत्व अनवच्छिन्नत्व बिंबत्व प्रतिबिंबत्वरूप विरुद्ध धर्मके व्यवहारका असंभव नहीं. इसरीतिसैं अविद्या प्रतिबिंबरूप जीवचेतनमें वा बिंबरूप ईश्वरचेतनमें स्वप्नकी अधिष्ठानता मानिके अहंकारा-

नवच्छिन्नमें स्वप्नाध्यास मानैंभी शरीरदेशस्थ अंतर्चेतन प्रदेशमेंही स्वप्नकी अधिष्ठानता उचित है.

२४८ बाह्यांतरसाधारणदेशस्थ चेतनमें स्वप्नकी अधिष्ठानताके कथनमें गौडपाद और भाष्यकार आदिकनके वचनसैं विरोध.

बाह्यांतरसाधारण देशस्थमें स्वप्नकी अधिष्ठानता कहै तौ गौडपादाचार्यके वचनतैं और भाष्यकारादिकनके वचनसैं विरोध होवैगा. काहेतैं ? मांडूक्यकारिकाके वैतथ्य प्रकरणमें गौडपादाचार्यनें यह कह्या है:—स्वप्नके हस्ती पर्वतादिकनकी उत्पत्तिके योग्य देशकालका अभाव होनेतैं स्वप्नके पदार्थ मिथ्या हैं. इस प्रकारसैं गौडपादाचार्यकी उक्तिके व्याख्यानमें भाष्यकारादिकोंनें यह कह्या है, क्षणघटिकादिकालमें और सूक्ष्म नाडी देशमें व्यावहारिक हस्ती आदिकनकी उत्पत्ति संभवै नहीं; यातैं स्वप्नके पदार्थ वितथ हैं; इस रीतिसैं शरीरके अंतर्देशमें स्वप्नकी उत्पति कही है. साधारणचेतनमें अधिष्ठानता मानैं तो सूक्ष्म देशमें उत्पत्तिकथन असंगत होवैगा. यातैं शरीरके अंतर्देशस्थ अहंकारानवच्छिन्न चेतनमें स्वप्नाध्यास है.

२४९ अहंकारानवच्छिन्न चेतनभी अविद्यामें प्रतिबिंब और बिंब दोनों है तिनमें प्रतिबिंबरूपजीवचेतनकूं अधिष्ठानताका संभव.

अहंकारानवच्छिन्नचेतनभी अविद्या प्रतिबिंब और बिंब दोनों है, और मतभेदसैं दोनोंकूं स्वप्नकी अधिष्ठानता है, तथापि अविद्यामें प्रतिबिंबरूप जीवचेतनकूं अधिष्ठानता कहना ही समीचीन है. काहेतैं ? अपरोक्ष अधिष्ठानमें अपरोक्ष अध्यास होवै है, और शुद्ध ब्रह्मकीनांई ईश्वरचेतनका ज्ञान केवल शास्त्रसैं होवै है. स्वप्नाध्यासका ईश्वरचेतनकूं अधिष्ठान माने तौ शास्त्ररूप प्रमाणके अभावतैं अधिष्ठानकी अपरोक्षताविना अध्यासकी अपरोक्षताका असंभव होवैगा; और अविद्यामें प्रतिबिंब जीवचेतन अहंकारावच्छिन्न तो अहमाकारवृत्तिका गोचर होवै है. और अहंकारावच्छिन्न अविद्यामें प्रतिबिंबरूप जीवचेतनभी अहमाकारवृत्तिका गोचर

तो नहीं है, परंतु जीवचेतन आवृत नहीं; यातैं स्वतः अपरोक्षतामें अपरोक्ष अध्यास संभवै है.

२५० उक्त पक्षविषे संक्षेपशारीरकमें उक्त अध्यासकी अपरोक्षतावास्ते अधिष्ठानकी त्रिविध अपरोक्षता.

संक्षेपशारीरकमें अध्यासकी अपरोक्षतावास्ते अधिष्ठानकी अपरोक्षता तीनि प्रकारसैं कही है, सर्परजतादिकनकी अपरोक्षताका उपयोगी रज्जुशुक्ति आदिकनकी अपरोक्षता इंद्रियसैं होवै है, गगनमें नीलतादिक अध्यासका उपयोगी गगनकी अपरोक्षता मनसैं होवै है, स्वप्नकी अपरोक्षताकी उपयोगी अधिष्ठानकी अपरोक्षता स्वभावसिद्ध है; इस रीतिसैं संक्षेपशारीरकमें सर्वज्ञात्ममुनिने स्वतः अपरोक्षमें स्वप्नाध्यास कह्या है, यातैं जीवचेतनही स्वप्नका अधिष्ठान है.

२५१ उक्त पक्षमें शंकासमाधानपूर्वक जीवचेतनरूप अधिष्ठानके स्वरूपप्रकाशतैं स्वप्नका प्रकाश.

यद्यपि जीवचेतनकूं अनावृत होनेतैं स्वतःप्रकाशस्वभाव मानैं तो अविद्याकूं व्यापकता होनेतैं तिसमें प्रतिबिंबरूप जीवचेतनभी व्यापक है; ताका घटादिकनसैं सदा संबंध है, यातैं नेत्रादिजन्यवृत्तिकी अपेक्षा विनाही घटादिकनकी अपरोक्षता हुई चाहिये. और जीवचेतनसैं संबंधीकी अपरोक्षतामें भी वृत्तिकी अपेक्षा मानै तौ स्वतः अपरोक्ष जीवचेतनसैं स्वप्नाध्यासकी अपरोक्षता कही असंगत होवैगी, तथापि स्वाप्नाध्यासका जीवचेतन अधिष्ठान है और घटादिकनका अधिष्ठान जीवचेतन नहीं; किंतु ब्रह्मचेतन है, यातैं स्वप्नके पदार्थनका तो अपने अधिष्ठान जीवचेतनमें तादात्म्यसंबंध है. और घटादिकनका अधिष्ठान ब्रह्मचेतन होनेतैं तिनका तादात्म्यसंबंध ब्रह्मचेतनसैं है, जीवचेतनसैं नहीं. नेत्रादिजन्यवृत्तिद्वारा जीवचेतनका घटादिकनसैं संबंध होवै है, वृत्तिसैं पूर्वकालमें जो घटादिकनका संबंध सो अपरोक्षताका संपादक नहीं; यातैं घटादिकनसैं जीवचेतनके विलक्षण संबंधकी हेतु वृत्तिकी अपेक्षातैं अपरोक्षता होवै है; और

स्वप्नाध्यासमें अधिष्ठानता रूप संबंधसैं जीवचेतनके सदा संबंधी पदार्थनका वृत्तिविनाही प्रकाश होवै है. इस रीतिसैं प्रकाशात्म श्रीचरणनाम आचार्यने कह्या है; और मतभेदसैं वृत्तिका प्रयोजन आगे कहैंगे. याप्रकारतैं अविद्यामें प्रतिबिंब जीवचेतन स्वप्नका अधिष्ठान है और ताके स्वरूपप्रकाशतैं स्वप्नका प्रकाश होवै है, परंतुः—

२५२ अद्वैतदीपिकामें नृसिंहाश्रमाचार्योक्त आकाशगोचर चाक्षुषवृत्तिके निरूपणपूर्वक संक्षेप शारीरकोक्त आकाशगोचरमानस वृत्तिका अभिप्राय.

या प्रसंगमें आकाशगोचर मानसवृत्ति कही. तहां नृसिंहाश्रम आचार्यनें अद्वैतदीपिकामें यह कह्याहैः—यद्यपि नीरूप आकाशगोचर चाक्षुष वृत्ति संभवै नहीं, तथापि आकाशमें प्रवृत्त आलोकरूपवाला होनेतैं आलोकाकार चाक्षुषवृत्ति होवै है. और आलोकावच्छिन्नचेतनका जैसैं वृत्तिद्वारा प्रमातासैं अभेद होवै, तैसैं आलोकदेशवृत्ति आकाशावच्छिन्न चेतनकाभी अभेद होवैहै. इस रीतिसैं आलोकाकार चाक्षुषवृत्तिका विषय होनेतैं आकाशकी अपरोक्षताभी नेत्रइंद्रियजन्यही कहीहै. और संक्षेपशारीरकमें मानस अपरोक्षता कही ताका यह अभिप्राय हैः—आकाश तो नीरूप है, यातैं आकाशाकार तो वृत्ति संभवै नहीं. अन्याकारवृत्तिसैं समानदेशस्थ अन्यका प्रत्यक्ष मानै तो घटके रूपाकार वृत्तिसैं घटके ऱ्हस्वदीर्घ परिमाणका प्रत्यक्ष हुया चाहिये; और आलोकाकारवृत्तिसैं आलोकदेशस्थवायुकाभी चाक्षुष प्रत्यक्ष हुया चाहिये, यातैं आलोकाकार चाक्षुषवृत्तिसैं आकाशकी अपरोक्षताके असंभवतैं मानस अपरोक्षताही संभवै है.

२५३ उभयमतके अंगीकारपूर्वक अद्वैतदीपिकोक्त-रीतिकी समीचीनता.

सूक्ष्मविचार करै तौ अद्वैतदीपिकाकी रीतिसैं अन्याकारवृत्तिसैं अन्यकी अपरोक्षता अप्रसिद्ध है, ताका अंगीकार दोष है, तथापि फलबलतैं कहूं अन्याकारवृत्तिसैं अन्यकी अपरोक्षता मानै तौ उक्त दोषका उद्धार होवै है

और संक्षेपशारीरक रीतिसैं बाह्यपदार्थमें अंतःकरणगोचरता अप्रसिद्ध है, ताका अंगीकार दोष है, और फलबलतैं अन्याकार नेत्रकी वृत्तिसहकृत अंतःकरणकी वृत्तिकी गोचरता बाह्यपदार्थमें मानैं तौ केवल अंतःकरणकूं बाह्यपदार्थ गोचरता नहीं; या नियमका भंगरूप दोष नहीं. इसप्रकारसैं उभयथालेख संभवै है, तथापि अद्वैतदीपिकारीतिही समीचीन है. काहेतैं ? आलोकाकारवृत्तिकूं सहकारितारूप कारणता मानिके अंतःकरणमें बाह्यपदार्थगोचर साक्षात्कारकी करणता अधिक माननी होवै है, अद्वैतदीपिकारीतिसैं अंतःकरणकूं बाह्यसाक्षात्कारकी करणता नहीं माननी होवै है, यातैं लाघव है. और नेत्रकूं सहकारिता नहीं मानिके केवल अंतःकरणकूं आकाशप्रत्यक्षका हेतु मानैं तौ निमीलित नेत्रकूं भी आकाशका मानसप्रत्यक्ष हुया चाहिये. और अंतःकरणकूं ज्ञानकी उपादानता होनेतैं करणताकथन सर्वथा अयुक्त है, यातैं संक्षेपशारीरकमें आकाशके प्रत्यक्षकूं मानसता कथन प्रौढिवाद है. इसरीतिसैं अध्यासकी अपरोक्षताका हेतु अधिष्ठानकी अपरोक्षता इंद्रियसैं अथवा स्वरूपप्रकाशतैं होवै है, इतनाही कहना उचित है. इसरीतिसैं मतभेदसैं स्वप्नका उपादान अवस्थाज्ञान है अथवा मूलाज्ञान है.

२५४ रज्जुसर्पादिकनकी सर्वमतमें तूलाज्ञानकूंही उपादानता.

रज्जुसर्पादिकनका तो सर्वमतमें अवस्थाज्ञानही उपादान कारण है. और रज्जु आदिकनके ज्ञानतैं तिनकी निवृत्ति होवै है. रज्जुके ज्ञानतैं अज्ञाननिवृत्तिद्वारा सर्पकी निवृत्ति होवै है, यातैं एकबार ज्ञातरज्जुमें कालांतरमें उपादानके अभावतैं सर्पभ्रम नहीं हुया चाहिये. या शंकाका समाधान वृत्तिके प्रयोजननिरूपणमें कहेंगे.

२५५ स्वप्नके अधिष्ठान आत्माकी स्वयंप्रकाशतामें प्रमाणभूत बृहदारण्यककी श्रुतिका अभिप्राय.

स्वप्नके अधिष्ठानकूं स्वतः अपरोक्षतासैं स्वप्नकी अपरोक्षता पूर्व कही है और स्वयंज्योतिर्ब्राह्मणवाक्यमें भी "अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति" इस रीतिसैं स्वप्नके प्रसंगमें कह्याहै, ताका यह अभिप्राय है:—यद्यपि तीनों अव-

स्थामें आत्मा स्वयंप्रकाश है, तथापि अपने प्रकाशमें अन्यप्रकाशकी अपेक्षा- रहित जो सकलका प्रकाशक ताकूं स्वयंप्रकाश कहैहैं, जाग्रत् अवस्थामें सूर्यादिक और नेत्रादिक प्रकाशक होनेतैं अन्यप्रकाशकी अपेक्षारहित ता आत्मामें निर्द्धारित होवै नहीं; और स्थूलदर्शीकूं सुषुप्तिमें कोई ज्ञान प्रतीत होवै नहीं; इसीवास्ते सुषुप्तिमें ज्ञानसामान्यका अभाव नैयायिक मानै हैं; यातैं आत्मप्रकाशका सुषुप्तिमेंभी निर्द्धार होवै नहीं. इस अभिप्रायतैं श्रुतिनें स्वप्नअवस्थामें आत्माकूं स्वयंप्रकाश कहा है.

२५६ स्वप्नमें इंद्रिय और अंतःकरणकूं ज्ञानकी असाधनता कहिके स्वतः अपरोक्ष आत्मासैं स्वप्नकी अपरोक्षता.

स्वप्न अवस्थामें भी नेत्रादिक इंद्रियका संचार होवै, तौ स्वप्नमेंभी आत्माकूं प्रकाशांतर निरपेक्षताके अभावतैं स्वयंप्रकाशताका निर्द्धार अशक्य होवैगा. इसरीतिसैं इंद्रियव्यापारतैं विना स्वप्नमें आत्मप्रकाश है, स्वप्नमें हस्तमें दंडकूं लेके उष्ट्रमहिषादिकनकूं ताडनकर्ता नेत्रसैं आम्रादिकनकूं देखता भ्रमण करै है; और हस्तनेत्रपादके गोलक निश्चल प्रतीत होवैं हैं, यातैं स्वप्नमें व्याव- हारिक इंद्रियका व्यापार नहीं, और प्रातिभासिक इंद्रियका अंगीकार नहीं. जो स्वप्नमें प्रातिभासिक इंद्रिय होवै तौ स्वप्नमें प्रकाशांतरके अभावतैं स्वयंप्रकाशता श्रुतिमें कहीहै ताका बाध होवैगा. और विचारसागरमें स्वप्नमें इंद्रिय प्रातिभासिक कहेहैं सो प्रौढिवाद है. स्वप्नमें प्रातिभासिक इंद्रिय मानिके भी ज्ञानके समानकालमें तिनकी उत्पत्ति होनेतैं ज्ञानकी साधनता तिनकूं संभवै नहीं. इसरीतिसैं अपना उत्कर्ष बोधन करनेकूं पूर्ववादीकी उक्ति मानिके समाधान है, यातैं स्वप्नमें ज्ञानके साधन इंद्रिय नहीं. और इंद्रिय- व्यापार विना केवल अंतःकरणकूं ज्ञानसाधनताके अभावतैं और तत्त्वदीपिकाके मतसैं अंतःकरणका स्वप्नमें गजादिरूप परिणाम होनेतैं ज्ञानकर्मकूं ज्ञान- साधनताके असंभवतैं अंतःकरणव्यापारविना आत्मप्रकाश है. यातैं स्वतः अपरोक्ष आत्मासैं स्वप्नकी अपरोक्षता होवै है, और स्वप्नअवस्थामें गजादि- कनमें चाक्षुषता प्रतीत होवै है, सोभी गजादिकनकीनांई अध्यस्त है, जाग्र-

तूमें घटादिककी चाक्षुषता व्यावहारिक है और रज्जुसर्पादिकनकी चाक्षुषता अध्यस्त होनेतैं प्रातिभासिक है.

२५७—२५९ दृष्टिसृष्टि और सृष्टिदृष्टिवादका भेद.

२५७ दृष्टिसृष्टिवादमें सकल अनात्माकी ज्ञातसत्ता (साक्षिभास्यता) कहिके दृष्टिसृष्टिपदके दो अर्थ.

दृष्टिसृष्टिवादमें तो किसी अनात्मपदार्थकी अज्ञातसत्ता नहीं, किंतु ज्ञातसत्ता है; यातैं रज्जुसर्पकीनांई सकल अनात्मवस्तु साक्षिभास्य हैं. तिनमें इंद्रियजन्यज्ञानकी विषयता प्रतीत होवै है, सो अध्यस्त है दृष्टिसृष्टिवादमें दो भेद हैं:—सिद्धांतमुक्तावली आदिग्रंथनमें तो यह कह्या है:—दृष्टि कहिये ज्ञानस्वरूपही सृष्टि है, ज्ञानतैं पृथक् सृष्टि नहीं. और आकरग्रंथनमें यह कह्या है:—दृष्टिसृष्टिज्ञानसमय अनात्मपदार्थकी सृष्टि है, ज्ञानतैं पूर्व अनात्मपदार्थ होवै नहीं; यातैं सकलदृश्यकी ज्ञातसत्ता हैं अज्ञातसत्ता नहीं; इस रीतिसैं द्विविध दृष्टिसृष्टिवाद है सकल अद्वैत शास्त्रकूं यही अभिमत है.

२५८ सृष्टिदृष्टिवाद [व्यावहारिकपक्ष] का कथन.

कितने ग्रंथकारोंनें स्थूलदर्शी पुरुषनके अनुसारतैं सृष्टिदृष्टिवाद मान्या है. प्रथम सृष्टि होवै है उत्तरकालमें प्रमाणके संबंधतैं दृष्टि होवै है. सृष्टिसैं उत्तर दृष्टि होवै यह सृष्टिदृष्टिपदका अर्थ है. यापक्षमें अनात्मपदार्थकीभी अज्ञातसत्ता है. और अनात्म घटादिकनकी रज्जुसर्पादिकनसैं विलक्षण व्यावहारिकसत्ता है और दृष्टि सृष्टि वादमें कोई अनात्मवस्तु प्रमाणका विषय नहीं, किंतु ब्रह्मही वेदांतरूप शब्दप्रमाणका विषय है. अचेतन पदार्थ सारे साक्षिभास्य हैं, तिनमें चाक्षुषतादिकप्रतीति भ्रमरूप है. प्रमाणप्रमेयविभागभी स्वप्नकीनांई अध्यस्त है. और सृष्टिदृष्टिवादमें अनात्मपदार्थ घटादिक प्रमाणके विषय हैं. तैसैं गुरुशास्त्रादिकभी व्यावहारिक हैं. शुक्तिरजतादिकनतैं विलक्षण हैं. व्यावहारिक रजतादिक पदार्थनसैं कटकादिरूप प्रयोजनसिद्धि होवै है, प्रातिभासिकसैं प्रयोजनसिद्धि होवै नहीं, तथापि अधिष्ठानज्ञानसैं निवृत्ति दोनोंकी समान होवै है, और सदसद्विलक्षणत्व-

रूप अनिर्वचनीयत्वभी दोनोंमें समान है, तैसैं स्वाधिकरणमें त्रैकालिक अभावभी दोनोंका समान है, यातैं प्रातिभासिककीनांई व्यावहारिक पदार्थभी मिथ्या हैं, यातैं, सृष्टिदृष्टिवादमेंभी अद्वैतकी हानि नहीं.

२५९–२६६ मिथ्याप्रपंचके मिथ्यात्वमें शंकासमाधान.

२५९ उक्त दोनों पक्षविषे मिथ्यापदार्थनके मिथ्यात्व धर्ममें द्वैतवादिनका आक्षेप.

या प्रसंगमें यह शंका है:—दृष्टिसृष्टिवादमें तथा सृष्टिदृष्टिवादमें सकल अनात्म मिथ्या है, यामें विवाद नहीं, परंतु मिथ्या पदार्थनमें मिथ्यात्वधर्म है, तामें द्वैतवादी यह आक्षेप करैहै:—प्रपंचमें मिथ्यात्वधर्म सत्य है अथवा मिथ्या है? सत्य कहै तौ चेतनभिन्न अनात्म धर्मकूं सत्यता होनेतैं अद्वैतकी हानि होवैगी. और मिथ्यात्वकूं मिथ्या कहै तौ भी अद्वैतकी हानि होवैगी. तथाहि:— मिथ्या पदार्थकूं स्वविरोधी पदार्थकी प्रतिक्षेपकता होनेतैं प्रपंचके मिथ्याभूत मिथ्यात्वतैं ताकी सत्यताका प्रतिक्षेप नहीं होवैगा. जैसैं एकही ब्रह्ममें सप्रपंचत्व निष्प्रपंचत्व धर्म है. मिथ्याभूत सप्रपंचत्व धर्मतैं निष्प्रपंचत्वका प्रतिक्षेप होवै नहीं; किंतु सप्रपंचत्व निष्प्रपंचत्व दोनों धर्मवाला ब्रह्म है. कल्पित सप्रपंचत्व है और पारमार्थिक निष्प्रपंचत्व है, तैसैं प्रपंचमें कल्पित मिथ्यात्व है और पारमार्थिक सत्यत्व है; इसरीतिसैं प्रपंचके पारमार्थिक सत्यत्वधर्मके सद्भावतैं अद्वैतकी हानि होवैगी.

२६० उक्त आक्षेपका अद्वैत दीपिकोक्त समाधान.

इस आक्षेपका अद्वैत दीपिकामें यह समाधान लिख्या है:—"सन् घटः" इस रीतिसैं घटादिकनमें सत्यता प्रतीत होवै है और अधिष्ठानगत सत्यताका घटादिकनमें भान होवै है अथवा अधिष्ठानगत सत्यताका घटादिकनमें अनिर्वचनीय संबंध उपजै है. घटादिकनमें सदसद्विलक्षणतारूप मिथ्यात्व धर्म श्रुतिसिद्ध है. सद्विलक्षणमें मिथ्यात्व होनेतैं मिथ्यात्वका सत्यत्वसैं विरोध है, यातैं घटादिकनमें अपनी सत्यता नहीं. ताका मिथ्यात्वसैं प्रतिक्षेप होवै है. और जो द्वैतवादी कहै हैं, मिथ्यात्वधर्मकूं सत्यता

मानै विना मिथ्याभूत मिथ्यात्वसैं प्रपंचकी सत्यताका प्रतिक्षेप संभवै नहीं. जो मिथ्याभूत धर्मसैं भी स्वविरोधी धर्मका प्रतिक्षेप कहै तौ मिथ्याभूत सप्रपंचत्वतैं ब्रह्मकी निष्प्रपंचताकाभी प्रतिक्षेप हुया चाहिये. यह कथन अयुक्त है, काहेतैं ? यह नियम हैः—प्रमाणसिद्ध एक धर्मतैं स्वसमानसत्तावाले धर्मीके स्वविरोधी धर्मका प्रतिक्षेप होवैहै. जहां धर्मीकी विषमसत्ता होवै ताके विरोधी धर्मका प्रतिक्षेप होवै नहीं. ब्रह्मका सप्रपंचत्व व्यावहारिक है. और ब्रह्म पारमार्थिक है, यातैं सप्रपंचत्वके समानसत्तावाला धर्मी ब्रह्म नहीं. ताके निष्प्रपंचत्वका सप्रपंचत्वसैं प्रतिक्षेप होवै नहीं. और व्यावहारिक प्रपंचमें मिथ्यात्वभी व्यावहारिक है. काहेतैं ? आगंतुक दोषरहित केवल अविद्याजन्य प्रपंच और मिथ्यात्व है. यातैं दोनों व्यावहारिक होनेतैं मिथ्यात्वके समानसत्तावाला प्रपंच है, ताके सत्यत्वका मिथ्यात्वसैं प्रतिक्षेप होवैहै. और सत्यधर्मतैं ही विरोधी धर्मका प्रतिक्षेप मानै तौ "रजतं सत्" इसरीतिसैं शुक्तिरजतमें सत्यत्व प्रतीत हुयेका रजतके मिथ्यात्वसैं प्रतिक्षेप नहीं हुया चाहिये. काहेतैं ? कल्पितरजतमें मिथ्यात्वसैं धर्मभी कल्पित है, सत्य नहीं. यातैं विरोधी धर्मके प्रतिक्षेपमें प्रतिक्षेपक धर्मकी सत्यता अपेक्षित नहीं किंतु जा धर्मीके धर्म विरोधी होवै सौ धर्मी प्रतिक्षेपक धर्मके समानसत्तावाला चाहिये, यातैं ब्रह्मके सप्रपंचत्वतैं निष्प्रपंचत्वतैं प्रतिक्षेपकी आपत्ति नहीं. और प्रपंचके व्यावहारिक मिथ्यात्वतैं सत्यत्वका प्रतिक्षेप संभवै है.

२६१ मिथ्याप्रपंचके मिथ्यात्व धर्ममें प्रकारांतरसैं द्वैतवादिनका आक्षेप.

और प्रकारांतरसैं द्वैतवादी आक्षेप करै है; तथा हिः—प्रपंचमें मिथ्यात्व धर्मकूं मिथ्या मानै तौभी प्रपंचके पारमार्थिक सत्यत्वका प्रतिक्षेप होवै नहीं. काहेतैं ? समानसत्तावाले धर्मनका विरोध होवैहै, विषमसत्तावाले पदार्थनका विरोध होवै नहीं. जो विषमसत्तावाले पदार्थनका विरोध होवै तौ शुक्तिमें प्रातिभासिक रजततादात्म्यतैं व्यावहारिक रजतभेदका प्रतिक्षेप हुया चाहिये.

इसप्रकारतैं प्रपंचके व्यावहारिक मिथ्यात्वतैं पारमार्थिक सत्यत्वके प्रतिक्षेपका असंभव होनेतैं प्रपंच सत्य है, यातैं अद्वैतका असंभव है.

२६२ उक्त आक्षेपके उक्तही समाधानकी घटता.

या शंकाका उक्तही समाधान है. काहेतैं ? पूर्वोक्तरीतिसैं सर्परजतादिकनके मिथ्यात्वतैं तिनके सत्यत्वका प्रतिक्षेप नहीं हुआ चाहिये; यातैं प्रमाणनिर्णीत धर्मतैं विरोधी धर्मकी प्रतिक्षेपकतामें प्रमाणनिर्णीतत्व प्रयोजक हैं. रजतका मिथ्यात्व प्रमाणनिर्णीत है, ताके विरोधी सत्यत्वका प्रतिक्षेप कहै तैसैं प्रपंचका मिथ्यात्वभी श्रुत्यादि प्रमाणोंतैं निर्णीत है, तासैं प्रपंचसत्यत्वका प्रतिक्षेप होवै है, शुक्तिमें रजतका तादात्म्य भ्रमसिद्ध है, प्रमाण निर्णीत नहीं; तासैं रजत भेदका प्रतिक्षेप होवै नहीं, उलटा शुक्तिमें रजतभेदही प्रमाण निर्णीत है; तासैं रजत तादात्म्यका प्रतिक्षेप होवै है, और प्रपंचके मिथ्यात्वके मिथ्यात्वकूं व्यावहारिक मानिके ताके धर्मी प्रपंचकूं सत्य कहना सर्वथा विरुद्ध है. काहेतैं ? व्यावहारिक धर्मका आश्रय व्यावहारिक ही संभवै है. यातैं द्वैतवादीका द्वितीय आक्षेपभी असंगत है.

२६३ अद्वैतदीपिकोक्त समाधान सत्ताके भेद मानै तौ संभव और एकसत्ता मानैं तौ असंभव.

इस रीतिसैं अद्वैतदीपिका ग्रंथकी रीतिसैं पातिक्षेपक धर्मके समान सत्तावाला धर्मी होवै, ताके विरोधी धर्मका प्रतिक्षेप होवै है ऐसा नियम मानैं तौ प्रपंचके मिथ्याभूत मिथ्यात्वतैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप संभवै है, और ब्रह्मके सप्रपंचत्वतैं निष्प्रपंचत्वका प्रतिक्षेप होवै नहीं; परंतु सत्ता भेद मानै तौ अद्वैतदीपिकोक्त समाधान संभवै है. और ब्रह्मरूप सत्ताकाही घटादिकनमें भान होवै है, व्यावहारिक प्रातिभासिक पदार्थनमें भिन्नसत्ता नहीं. यापक्षमें एक सत्ता मानै तो उक्तसमाधान संभवै नहीं.

२६४ उक्त आक्षेपका निश्चलदासोक्त समाधान.

किंतु अस्मद्भावनासैं यह समाधान है:—प्रमाणनिर्णीतधर्मसैं स्वविरोधी

धर्मका प्रतिक्षेप होवै है और दोनों धर्म प्रमाणनिर्णीत होवैं, तहां अपर धर्मका प्रतिक्षेप होवै नहीं. प्रपंचका मिथ्यात्व श्रुत्यादिप्रमाणसैं निर्णीत है, और प्रपंचके सत्यत्वमें कोई श्रुतिवचन प्रमाण नहीं. उलटा श्रुतिवाक्यनतैं सत्यत्वका अभाव प्रतीत होवै है, यातैं प्रपंचके मिथ्यात्वतैं सत्यत्वका बाध होवै है. "घटः सन्" इस रीतिसैं प्रत्यक्ष प्रमाणतैं यद्यपि प्रपंचमें सत्यत्व प्रतीत होवै है, तथापि अपौरुषेयश्रुतिवचनतैं पुरुषप्रत्यक्ष दुर्बल है, यातैं प्रपंचका सत्यत्व प्रमाणसिद्ध नहीं. और ब्रह्मका सप्रपंचत्व निष्प्रपंचत्व दोनों प्रमाणसिद्ध हैं, यातैं एक धर्मसैं अपरका बाध होवै नहीं, परंतु निष्प्रपंचत्वज्ञानतैं परमपुरुषार्थकी प्राप्ति होवै है, यातैं निष्प्रपंचत्व प्रतिपादनमें श्रुतिका तात्पर्य है. और अद्वैत निष्प्रपंच ब्रह्मके बोधका उपयोगी सप्रपंचका निरूपण है; यातैं सप्रपंचत्व निरूपणमें श्रुतितात्पर्यके अभावतैं सप्रपंचत्व पारमार्थिक नहीं; किंतु कल्पित है, परंतु दोषादिकरहित केवल अविद्याजन्य होनेतैं प्रातिभासिक नहीं, व्यावहारिक है. इस रीतिसैं निष्प्रपंचत्वतैं सप्रपंचत्वका बाध सिद्ध होवै है. काहेतैं ? सप्रपंचत्वप्रतिपादक वचनका व्यावहारिक सप्रपंचत्वमें तात्पर्य कहनेतैं सप्रपंचत्वका संकोच होवै है. ब्रह्मका सप्रपंचत्व सदा नहीं, किंतु विद्यासैं पूर्व अविद्याकालमें है, यातैं निष्प्रपंचत्वधर्मसैं बाध्य प्रपंचत्व है; तासैं निष्प्रपंचत्वका प्रतिक्षेप संभवै नहीं, यातैं द्वैतवादीका आक्षेप असंगत है.

२६५ उक्त आक्षेपका अन्य ग्रंथकारोक्त समाधान.

और नृसिंहाश्रमाचार्यसैं अन्यग्रंथकारोंनें उक्त आक्षेपका यह समाधान कह्या है:—स्वाश्रयगोचर तत्त्वसाक्षात्कारतैं जिस धर्मका बाध नहीं होवै, तिसधर्मतैं विरोधी धर्मका प्रतिक्षेप होवै है. और स्वाश्रयगोचरतत्त्वसाक्षात्कारतैं जिसधर्मका बाध होवै तिसतैं स्वविरोधी धर्मका प्रतिक्षेप होवै नहीं. मिथ्यात्वका आश्रय जो प्रपंच ताके अधिष्ठान ब्रह्मगोचर तत्त्वसाक्षात्कारतैं प्रपंचके मिथ्यात्वका बाध होवै नहीं, उलटा ब्रह्मसाक्षात्कारतैं प्रपंचमें दृढतर मिथ्यात्वबुद्धि होवै है; यातैं प्रपंचके मिथ्यात्वसैं तिसके विरोधी स-

त्यत्वका प्रतिक्षेप होवै है; और सप्रपंचत्वका आश्रय ब्रह्म हैं, ताके साक्षात्कारतैं सप्रपंचत्वका बाध होवै है; यातैं ब्रह्मके निष्प्रपंचत्वतैं सप्रपंचत्वका बाध होवै है. जैसैं शुक्तिमें स्वतादात्म्य है, और कल्पितकाभी स्वाधिष्ठानमें तादात्म्य होनेतैं रजततादात्म्य है, तहां शुक्तिसाक्षात्कारतैं शुक्तितादात्म्यका बाध होवै नहीं; यातैं शुक्तितादात्म्यसैं स्वविरोधी शुक्तिभेदका प्रतिक्षेप होवै है. शुक्तिसाक्षात्कारतैं रजततादात्म्यका बाध होवैहै; यातैं रजततादात्म्यसैं स्वविरोधी रजतभेदका प्रतिक्षेप होवै नहीं. तैसैं प्रपंचके मिथ्याभूत मिथ्यात्वतैं सत्यत्वका प्रतिक्षेप होवैहै और ब्रह्मके सप्रपंचत्वतैं निष्प्रपंचत्वका प्रतिक्षेप होवै नहीं. इसरीतिसैं द्वैतवादीके आक्षेपके अनेक समाधान हैं. तिनके वचनोंसैं जिज्ञासुकूं विमुखता करनी योग्य है.

२६६–२७१ मतभेदसैं पांच प्रकारका प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप (तिरस्कार.)

२६६ तत्त्वशुद्धिकारकी रीतिसैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप.

प्रपंचके मिथ्यात्वतैं ताके सत्यत्वका प्रतिक्षेप होवैहै यह कह्याः–तहां सत्यत्वका **प्रतिक्षेप मतभेदसैं पांच प्रकारका** है,तत्वशुद्धिकारके मतमें"घटः सन्" इत्यादिक प्रत्यक्ष ज्ञानका विषय घटादिकनका अधिष्ठान सत्रूप चेतन है. और सद्रूपचेतनमें अध्यस्त घटादिक अपने अधिष्ठानसैं अभिन्न होयके भ्रमवृत्तिके विषय होवैहैं.जैसैं शुक्तिरज्जुआदिकनकूं विषय करनेवाली इदमाकार चाक्षुष वृत्ति होवैहै; और रजतसर्पादिक चाक्षुष वृत्तिके विषय नहीं; किंतु भ्रमवृत्तिके विषय हैं, तैसैं नेत्रादि प्रमाणजन्य सकल ज्ञानोंका विषय अधिष्ठानसत्ता है, घटादिगोचर प्रमाणजन्यवृत्ति होवै नहीं; काहेतैं ? अज्ञानगोचर प्रमाण होवै है, और जडपदार्थकूं अज्ञानकृत आवरणके असंभवतैं अज्ञातत्वके अभावतैं प्रमाणगोचरता संभवै नहीं; यातैं रजतसर्पादिकनकीनांई भ्रमके विषय घटादिक हैं, तिनका अधिष्ठान सत्रूप है, सोई नेत्रादिप्रमाणजन्यवृत्तिका विषय है. इसरीतिसैं सकल प्रमाणका विषय सत्रूप चेतन है. सत्रूपचेतनमें तादात्म्यसैं अनेक भेदविशिष्ट घटादिकनकी प्रतीति भ्रमरूप

है. यातैं घटादिकनमें सत्ता किंसी प्रमाणका विषय नहीं. इसीवास्ते घटादिकनके मिथ्यात्वकूं अनेक श्रुतिस्मृति अनुवाद करै है. तत्त्वशुद्धिकारने इस रीतिसैं नेत्रादिप्रमाणका गोचर अधिष्ठान सत्ता कही है, घटादिकनकी सत्ता नेत्रादिप्रमाणका गोचर नहीं, यातैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप कह्या है.

२६७ अन्यग्रंथकारनकी रीतिसैं पप्रंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप.

और कोई ग्रंथकार इसरीतिसैं कहैं हैं:—" घटोऽस्ति " इत्यादिक प्रतीतिका गोचर घटादिकनका सत्त्व है, और श्रुतियुक्तिज्ञानीके अनुभवतैं घटादिकनमें मिथ्यात्व है, तहां अबाधितत्वरूप सत्त्वका मिथ्यात्वसैं विरोध होनेतैं घटादिकनमें जातिरूप सत्त्व है. जैसैं सकल घटनमें अनुगत धर्म घटत्व है, तैसैं " सन्घटः सन्पटः " इस एकाकार प्रतीतिका गोचर सकल पदार्थनमें अनुगतधर्म जातिरूप सत्त्व है; अथवा देशकालके संबंधविना तो घटादिकनकी प्रतीति होवै नहीं, देशकालके संबंधविशिष्ट घटादिकनकी प्रतीति होवै है. " इह घटोऽस्ति " " इदानीं घटोस्ति " इस रीतिसैं देशसंबंधकूं और कालसंबंधकूं घटादिगोचरप्रतीति विषय करैहै, सो देशसंबंधरूप वा कालसंबंधरूपही घटादिकनमें सत्त्व है, अथवा घटादिकनका स्वरूपही " घटोऽस्ति " या प्रतीतिका विषय है. घटादिकनसैं पृथक् सत्त्वकूं उक्त प्रतीति विषय करै नहीं. काहेतैं ? नशब्दरहितवाक्यसैं जाकी प्रतीति होवै नशब्दसहितवाक्यसैं ताका निषेध होवै है; और "घटोऽस्ति" या वाक्यतैं टघके स्वरूपका निषेध होवैहै, यह सर्वकूं संमत है; यातैं " घटोऽस्ति " या नशब्दरहितवाक्यतैं घटके स्वरूपमात्रका बोधही मानना उचित है. इसरीतिसैं " घटोऽस्ति " इस प्रतीतिका गोचर घटका स्वरूप है, यातैं स्वरूपसैं अतिरिक्त घटादिकनमें सत्त्वके अभावतैं ताका प्रतिक्षेप कहैहैं.

२६८ न्यायसुधाकारकी रीतिसैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप.

और न्यायसुधाकारके मतमें अधिष्ठानगत सत्ताका संबंध घटादिकनमें उक्त प्रतीतिका गोचर है, तत्त्वशुद्धिकारके मतमें तो घटादिक अनात्मगोचर प्रतीति प्रमाणजन्य नहीं; केवल अधिष्ठानसत्ता गोचरप्रमाण है. और या म-

तमें अधिष्ठानसत्ताका संबंधविशिष्ट घटादिक प्रमाणके विषय हैं, इतना भेद है. इस रीतिसैं घटादिकनमें अधिष्ठानसत्ताका संबंध होनेतैं घटादिकमें सत्त्व-प्रतीत होवै है. और घटादिकमें सत्त्वके अभावतैं ताका प्रतिक्षेप कहिये है. और अधिष्ठानसत्ताकी प्रतीति घटादिकनमें मानै तो अन्यथाख्यातिका अंगी-कार होवै है; यातैं अधिष्ठानसत्ताका अनिर्वचनीयसंबंध घटादिकतैं उपजै है, यह कहनाही उचित है.

२६९ अन्यआचार्यकी रीतिसैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप.

और कोई आचार्य इस रीतिसैं सत्त्वका प्रतिक्षेप कहै हैं:—श्रुतिमें यह कह्या है: " प्राणा वै सत्यम् तेषामेषसत्यम् " प्राण शब्दका अर्थ हिरण्यगर्भ है, प्राण कहिये हिरण्यगर्भ सत्य हैं, ताकी अपेक्षातैं परमात्मा उत्कृष्ट सत्य है; यह श्रुतिका अर्थ है. " सत्यस्य सत्यं " इस रीतिसैं अन्य श्रुति है, अनात्मसत्यतासैं आत्मसत्यता उत्कृष्ट है; यह श्रुतिका अर्थ है. जैसैं अन्य-राजाकी अपेक्षातैं उत्कृष्टराजाकूं राजराज कहै हैं, तैसैं उत्कृष्ट सत्यकूं " स-त्यका सत्य " कह्या है. इस रीतिसैं श्रुतिवाक्यनमें सत्यके उत्कर्ष अपकर्ष कहै हैं; तहां अन्यविध उत्कर्ष अपकर्ष तो संभवै नहीं. सर्वदा अबाध्यत्व और किंचित्काल अबाध्यत्वरूपही सत्यत्वमें उत्कर्ष अपकर्ष है. अना-त्मपदार्थनमें ज्ञानतैं पूर्वकालमें अबाध्यत्वरूप सत्यत्व है और परमात्मव-स्तुमें सर्वदा अबाध्यत्वरूप सत्यत्व है; यातैं हिरण्यगर्भ तो अपकृष्ट सत्य है और परमात्मा उत्कृष्ट सत्य है. इस रीतिसैं द्विविध सत्यत्व श्रुतिसंमत है; तिनमें किंचित्काल अबाध्यत्वरूप सत्यत्वका मिथ्यात्वसैं विरोध नहीं; किंतु सर्वदा अबाध्यत्वरूप सत्यत्वका मिथ्यात्वसैं विरोध होनेतैं ताका प्रपंचके मिथ्यात्वसैं प्रतिक्षेप होवै है.

२७० संक्षेप शारीरककी रीतिसैं प्रपंचके सत्यत्वका प्रतिक्षेप.

और संक्षेप शारीरकमें यह कह्या है:—यद्यपि प्रत्यक्षादिप्रमाणसैं घटा-दिकनमें सत्यत्व प्रतीत होवै है तथापि ब्रह्मबोधक वाक्यनमेंही प्रमाणता है. अनात्मग्राहक प्रत्यक्षादिक प्रमाणाभास हैं; प्रमाण नहीं. काहेतैं ? अज्ञात

अर्थके बोधका जनक प्रमाण होवै है. अज्ञानकृत आवरणका जडपदार्थमें असंभव होनेतैं चेतन भिन्नमें अज्ञातत्वके अभावतैं तिनके बोधक प्रत्यक्षादिकनकूं प्रमाणता संभवै नहीं,इस रीतिसैं प्रमाणाभासतैं घटादिकनमें सत्यत्वकी सिद्धि होवैहै. और श्रुतिरूप प्रमाणतैं घटादिकनमें मिथ्यात्वकी सिद्धि होवैहै. मुख्यप्रमाणतैं प्रमाणाभासके बाधद्वारा सत्यत्वका प्रतिक्षेप होवैहै. इसरीतिसैं प्रपंचमें अत्यंत अबाध्यत्वरूप सत्यत्वका पंचप्रकारसैं प्रतिक्षेप कह्याहै यातैं प्रपंच मिथ्या है.

२७१–२८० कर्मकूं ज्ञानकी साधनता विषे विचार.

२७१ मिथ्या प्रपंचकी निवृत्तिमें कर्मके अनुपयोगके अनुवादपूर्वक सिद्धांतके द्विविध समुच्चयका निर्द्धार.

मिथ्याकी विवृत्तिमें कर्मका उपयोग नहीं, यातैं केवल कर्मतैं वा कर्मसमुच्चितज्ञानतैं अनर्थनिवृत्ति संभवै नहीं, केवल ज्ञानतैं अनर्थनिवृत्ति होवै है; यह अर्थ अद्वैतवादके ग्रंथनमें अति प्रसिद्ध है, और भाषामेंभी विचारसागरके षष्ठतरंगमें स्पष्ट है; यातैं लिख्या नहीं. यास्थानमें यह सिद्धांत हैः–अनेक श्रुतिस्मृतिमें कर्म समुच्चित ज्ञानसैं मोक्षप्राप्ति कही है. और भाष्यकारनें बहुत स्थानमें समुच्चयवादका निषेध प्रतिपादन कऱ्या है तहां यह निर्द्धार हैः–समसमुच्चय और क्रमसमुच्चय भेदसैं **समुच्चय दो प्रकारका** होवैहै. ज्ञान और कर्म दोनों परस्पर मिलिके मोक्षके साधन जानिके एक कालमें दोनोंका अनुष्ठान **समुच्चय** कहिये है. और एकही अधिकारीकूं पूर्व कर्मानुष्ठान और उत्तरकालमें सकल कर्म त्यागिके ज्ञानहेतु श्रवणादिकनका अनुष्ठान **क्रमसमुच्चय** कहिये है; तिनमें समसमुच्चयका तो निषेध है और श्रुतिस्मृतिमें ज्ञानकर्मका जहां समुच्चय लिख्या है, ताका पूर्व उक्त क्रमसमुच्चयमें तात्पर्य है.

२७२ भाष्यकारोक्तिकी साधनता.

भाष्यकारका यह सिद्धांत हैः–मोक्षका साक्षात्साधन कर्म नहीं; किंतु मोक्षका साक्षात्साधन ज्ञान है, और ज्ञानका साधन कर्म है; परंतुः–

२७३ वाचस्पत्युक्तजिज्ञासाकी साधनता.

भामतीनिबंधमें वाचस्पतिनें तो यह कह्या हैः—ज्ञानके साक्षात्साधन कर्म नहीं; किंतु जिज्ञासाके साधन कर्म है, काहेतैं ? कैवल्यशाखामें सकल आश्रमकर्म विविदिषाके साधन स्पष्ट कहे हैं. वेदनकी इच्छाकूं विविदिषा कहे हैं और तृतीयाध्यायमें सर्व कर्मनकी अपेक्षा ज्ञानमें सूत्रकारनें कहीहै. तहां सूत्रके व्याख्यानमें भाष्यकारनें यह कह्याहैः—शमदमादिक साधन तो ज्ञानके साधन हैं; यातैं ज्ञानके समीप है, और जिज्ञासाके साधन कर्म हैं; यातैं शमदमादिकनकी अपेक्षातैं ज्ञानके दूर है. इस रीतिसैं श्रुतिवचनतैं और भाष्यवचनतैं जिज्ञासाके साक्षात्साधन कर्म है. और जिज्ञासाद्वारा ज्ञानके साधन है. जो ज्ञानके साक्षात्साधनही कर्म कहैं, तो ज्ञानके उदयपर्यंत कर्मानुष्ठानकी प्राप्ति होनेतैं ज्ञानसहित कर्मत्यागरूप संन्यासका लोप होवैगा, यातैं जिज्ञासाके साधन कर्म हैं यह वाचस्पतिका मत है.

२७४ विवरणकारोक्त कर्मकूं ज्ञानकी साधनता.

और विवरणकारका यह मत हैः—यद्यपि " वेदानुवचनेन विविदिषंति " इसरीतिसैं श्रुतिमें कह्या है; तहां अक्षरमर्यादासैं वेदाध्ययनादिक धर्मनकूं विविदिषाकी साधनता प्रतीत होवै है; तथापि इच्छाके विषय ज्ञानकी साधनतामेंही श्रुतिका तात्पर्य है. कर्मनकूं इच्छाकी साधनतामें श्रुतिका तात्पर्य नहीं. जैसैं " अश्वेन जिगमिषति " इसवाक्यतैं अक्षरमर्यादासैं गमनगोचर इच्छाकी साधनता अश्वकूं प्रतीत होवैहै, और "शस्त्रेण जिघांसति" इसवाक्यतैं हननगोचर इच्छाकी साधनता शस्त्रकूं प्रतीत होवै है; तहां इच्छाका गोचर जो गमन ताकी साधनता अश्वमें अभिप्रेत है. और इच्छाका विषय हननकी साधनता शस्त्रमें अभिप्रेत हैं; तैसैं इच्छाके विषय ज्ञानकी साधनता कर्मनकूं अभिप्रेत है. और यापक्षमें दोष कह्याहैः—कर्मनकूं ज्ञानकी साधनता मानैं तौ ज्ञानउदयपर्यंत कर्मानुष्ठानकी आपात्ति होनेतैं संन्यासका लोप होवैगा; ताका यह साधन हैः—जैसैं बीजप्रक्षेपतैं पूर्व तो भूमिका कर्षण होवै

है; और बीजप्रक्षेपतैं उत्तरकालमें भूमिका आकर्षण होयके व्रीहि आदिकनकी सिद्धि कर्षण आकर्षणतैं होवैहै. तैसैं कर्म और कर्मसंन्यासतैं ज्ञानकी सिद्धि होवैहै. अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा प्रत्यक्तत्त्वकी तीव्र जिज्ञासा वैराग्यसहित होवै तबपर्यंत कर्म कर्तव्य है; और वैराग्यसहित तीव्र जिज्ञासाके उत्तरकालमें साधनसहित कर्मका त्यागरूप संन्यास कर्तव्य है. इसरीतिसैं ज्ञानका साधन कर्म है, तथापि तीव्र जिज्ञासातैं पूर्वही कर्तव्य है, तीव्र जिज्ञासातैं उत्तरकालमें संन्यासके अंग शमादिक ही कर्तव्य हैं. कर्म नहीं; यातैं कर्मकी अपेक्षातैं शमादिकनकूं अंतरंगताप्रतिपादक तृतीयाध्यायस्थ भाष्यवचनसैं विरोध नहीं. इसरीतिसैं विवरणकारके मतमें ज्ञानका साधन कर्म है और वाचस्पतिके मतमें विविदिषाके साधन है.

और दोनों मतमें विविदिषातैं पूर्वकालमें कर्मका अनुष्ठान और उत्तरकालमें शमादिसहित संन्यासपूर्वक श्रवणादिकनका अनुष्ठान है; विविदिषातैं उत्तरकालमें किसीके मतमें कर्म कर्तव्य नहीं.

२७५ वाचस्पति और विवरणकारके मतकी विलक्षणतामें शंका.

या स्थानमें यह शंका होवै है, दोनों मतमें विविदिषातैं पूर्वकालमेंही कर्म कर्तव्य होवै तौ मतभेदनिरूपण निष्फल होवैगा. काहेतैं ? वाचस्पतिके मतमें कर्मका फल विविदिषा है और विवरणकारके मतमें कर्मका फल ज्ञान है. फलकी सिद्धि हुयां साधनका त्याग होवै है; यातैं वाचस्पतिके मतमें विविदिषाकी सिद्धिपर्यंत कर्मका अनुष्ठान मानैं और विवरणकारके मतमें विविदिषातैं उत्तरकालमेंभी ज्ञानकी सिद्धिपर्यंत कर्मका अनुष्ठान मानैं तौ दोनों मतनमें विलक्षणता संभवै. वाचस्पतिके मतानुसारी जिज्ञासू कर्मका त्याग करै और विवरणकारके मतानुसारी ज्ञानसैं पूर्व जिज्ञासू कर्मका अनुष्ठान करै तौ मतभेदनिरूपण सफल होवै और पूर्वोक्तरीतिसैं दोनों मतमें विविदिषाकी सिद्धिसैं कर्मका त्याग मानैं तौ परस्पर विलक्षणता प्रतीति होवै नहीं, यातैं मतभेद निरूपण निष्फल है.

२७६ उक्त शंकाका समाधान.

ताका यह समाधान हैः—यद्यपि दोनों मतमें विविदिषापर्यंतही कर्मका अनुष्ठान है, तथापि मतभेदसैं कर्मके फलमें विलक्षणता है. तथाहिः—वाचस्पतिके मतमें कर्मका फल विविदिषा है, विविदिषाकी उत्पत्ति हुयां कर्मजन्य अपूर्वका नाश होवै है, विविदिषा हुयांभी उत्तमगुरुलाभादिक सामग्री होवै तौ ज्ञान होवै, किसी साधनकी विकलता हुयां ज्ञान होवै नहीं, कर्मका व्यापार विविदिषाकी उत्पत्तिमें है, और तत्त्वज्ञान कर्मका फल नहीं; यातैं ज्ञानकी उत्पत्तिमें कर्मका व्यापार नहीं. इस रीतिसैं वाचस्पतिके मतमें विविदिषा हेतु कर्मका अनुष्ठान करैभी ज्ञानकी सिद्धि नियमतैं होवै नहीं; किंतु उत्तम भाग्यतैं सकलसामग्रीकी सिद्धि होवै तो ज्ञान होवै है; यातैं ज्ञानकी प्राप्ति अनियत है. और विवरणकारके मतमें विविदिषातैं पूर्वकालमें अनुष्ठित कर्मकाभी ज्ञान फल है; यातैं फलकी उत्पत्तिविना कर्मजन्य अपूर्वका नाश नहीं होनेतैं ज्ञानकी उत्पत्तिपर्यंत कर्मजन्य अपूर्व रहै है; जितनी सामग्री विना कर्मका फल ज्ञान होवै नहीं उतनी सामग्रीकूं कर्म संपादन करै है. इस रीतिसैं यापक्षमें ज्ञानहेतु कर्मका अनुष्ठान करैं तौ वर्तमान शरीरमें वा भाविशरीरमें अवश्य ज्ञान होवै है, यातैं ज्ञानकी उत्पत्ति नियत है. याप्रकारतैं वाचस्पतिके मतमें शुभकर्मतैं विविदिषा नियमतैं होवै है. और ज्ञानकी सिद्धि अनियत है. विवरणकारके मतमें तिसी कर्मसैं ज्ञानकी उत्पत्ति नियमतैं होवै है, यातैं दोनों मतका परस्पर भेद है, संकर नहीं. विविदिषाके हेतु कर्म होवै है अथवा ज्ञानके हेतु होवैं, दोनों रीतिसैं वेदाध्ययन यज्ञ दान कृच्छ्रचांद्रायणादिक आश्रम कर्मनकाही विद्यामें उपयोग है.

२७७ कोई आचार्यकी रीतिसै वर्णमात्रके धर्मनका विद्यामें उपयोग.

वर्णमात्रके धर्मनका विद्यामें उपयोग नहीं; इस रीतिसैं कोई आचार्य कहै हैं.

२७८ कल्पतरुकारकी रीतिसैं सकल नित्यकर्मका विद्यामें उपयोग.

और कल्पतरुकारका यह मत हैः—सकल नित्यकर्मनका विद्यामें उपयोग

है. काहेतैं ? सूत्रकारनें और भाष्यकारनें आश्रमरहित पुरुषनकाभी विद्या हेतु कर्ममें तथा श्रवणादिकनमें अधिकार कह्या है; तैसैं रैक वाचक्नवी आदिक आश्रमरहितनमेंभी ब्रह्मविद्या श्रुतिमें कही है. वाचक्नकीपुत्री गार्गीकूं वाचक्नवी कहे हैं, जो आश्रमधर्मनकाही विद्यामें उपयोग होवै तो आश्रमरहित पुरुषनमें ज्ञानसंपादक कर्मके अभावतैं ज्ञान नहीं चाहिये; यातै जप गंगास्नान देवताध्यानादिसहित सकल शुभकर्मका विद्यामें उपयोग है; यह कल्पतरुकारका मत है, परंतु कल्पतरुकारकके मतमेंभी काम्यकर्मका विद्यामें उपयोग नहीं, किंतु नित्यकर्मकाही विद्यामें उपयोग है. काहेतैं ? अन्यप्रकारसैं तौ विद्यामें कर्मका उपयोग संभवै नहीं. विद्याके प्रतिबंधक पापकी निवृत्तिद्वाराही विद्यामें कर्मका उपयोग होवै है. और काम्यकर्मतैं स्वर्गपुत्रादिकनकी प्राप्तिरूप फल होवै है. तिनतैं पापकी निवृत्ति होवै नहीं, नित्यकर्मतैं ही पापकी निवृत्ति होवै है, यातैं सकल नित्यकर्मका विद्यामें उपयोग है.

२७९ संक्षेपशारीरक कर्ताकी रीतिसैं काम्य और नित्य सकल शुभकर्मका विद्यामें उपयोग.

और संक्षेपशारीरककर्तानें यह कह्या है:—काम्य और नित्य सकल शुभकर्मका विद्यामें उपयोग है. काहेतैं ? " यज्ञेन विविदिषंति " इस रीतिसैं कैवल्यशाखामें कह्या है, तहां नित्यकाम्य साधारण यज्ञशब्द है. " धर्मेण पापमपनुदति " इत्यादि वाक्यनतैं सकलशुभकर्मकूं पापकी नाशकता प्रतीत होवै है, यातैं ज्ञानके प्रतिबंधक पापकी निवृत्तिद्वारा नित्यकर्मकीनांई काम्यकर्मका भी विद्यामें उपयोग है, यह संक्षेपशारीरककर्ता सर्वज्ञात्ममुनिका मत है.

२८०--२८३ संन्यासके ज्ञानसाधनताविषे विचार.

२८० पापनिवृत्तिद्वारा ज्ञानके हेतु होनेतैं क्रमकरि कर्म और संन्यास दोनोंकी कर्तव्यता.

यातैं तीव्र जिज्ञासपार्यंत सकल शुभकर्म कर्तव्य हैं. दृढतर वैराग्यसहित तीव्र जिज्ञासा हुयां साधनसहित कर्मका त्यागरूप संन्यास कर्तव्य है. जैसैं

शुभकर्मतैं पापकी निवृत्ति होवै, तैसैं संन्यासतैंभी ज्ञानके प्रतिबंधक पापकी निवृत्ति होवै है. ज्ञानके प्रतिबंधक पाप अनेकविध होवै हैं, तिनमें किसी पापकी निवृत्ति कर्मतैं और किसीकी निवृत्ति संन्यासतैं होवै है, यातैं ज्ञानप्रतिबंधक पापकी निवृत्तिद्वारा कर्म और संन्यास दोनों ज्ञानके हेतु होनेतैं क्रमतैं कर्तव्य है.

२८१ किसी आचार्यके मतमें संन्यासकूं प्रतिबंधक पापकी निवृत्ति और पुण्यकी उत्पत्तिद्वारा श्रवणकी साधनता.

और किसी आचार्यका यह मत है:—केवल पापनिवृत्तिद्वाराही संन्यासकूं ज्ञानकी साधनता नहीं है; किंतु संन्यासजन्य अपूर्वसहित पुरुषकूं ही श्रवणादिकनतैं ज्ञान होवै है; यातैं श्रवणका अंग संन्यास होनेतैं सर्वथा निष्पापकूंभी संन्यास कर्तव्य है.

२८२ विवरणकारके मतमें संन्यासकूं ज्ञानप्रतिबंधक विक्षेपकी निवृत्तिरूप दृष्ट फलकी हेतुता.

और विवरणकारका यह मत है:—संन्यासविना विक्षेपका अभाव होवै नहीं, यातैं ज्ञानप्रतिबंधक विक्षेपकी निवृत्तिरूप दृष्टफलही संन्यासका है. यातैं ज्ञानप्रतिबंधक पापकी निवृत्ति वा ज्ञानहेतु धर्मकी उत्पत्तिरूप अदृष्टफलका हेतु संन्यास है, यह कथन अयोग्य है. जहां दृष्टफल नहीं संभवै, तहां अदृष्टफलकी कल्पना होवै है. और विक्षेपकी निवृत्तिरूप दृष्टफल संन्यासका संभव है; ताका अदृष्टफल कथन संभवै नहीं. और किसी प्रधान पुरुषकूं आश्रमांतरमेंभी कामक्रोधादिरूप विक्षेपका अभाव होवै तौ कर्मछिद्रनमें वेदांतका विचार संभवै तौ यद्यपि उक्त रीतिसैं संन्यास व्यर्थ है तथापि " आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद्वेदांतचिंतया " इस गौडपादीय वचनतैं " तच्चिंतनं तत्कथनमन्योन्यं तत्प्रबोधनम् " इस भगवद्वचनतैं, " ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति " इस श्रुतिवचनतैं, निरंतर क्रियमाण ब्रह्मश्रवणादिकनतैं ज्ञान होवै है. जिसकी ब्रह्मविषे संस्था कहिये अनन्यव्यापारतासैं स्थिति होवै सो पुरुष ज्ञानद्वारा अमृतभावकूं प्राप्त होवै है, यह श्रुतिका अर्थ है.

कर्म छिद्रकालमें कदाचित् क्रियमाण श्रवणादिकनतैं ज्ञान होवै नहीं, और निरंतर श्रवणादिकनके अभ्यासका हेतु संन्यास है, यातैं अदृष्टविनाही दृष्टफलका हेतु संन्यास है; तौभी व्यर्थ नहीं.

२८३–२९१ क्षत्रिय और वैश्यके संन्यास और श्रवणमें अधिकारका विचार.

२८३ क्षत्रिय और वैश्यके संन्यास और श्रवणमें अधिकारके विचारकी प्रतिज्ञा.

या प्रसंगमें क्षत्रियवैश्यका संन्यासमें और श्रवणमें अधिकार है अथवा नहीं, यह विचार मतभेदसैं लिखै है.

२८४ कोईग्रंथकारकीरीतिसैं संन्यासमें तथा ब्रह्मश्रवणमें ब्राह्मणकाही अधिकार और क्षत्रिय वैश्यका अनधिकार.

कोई ग्रंथकार इसरीतिसैं कहैं हैं:—संन्यासविधायक बहुवाक्यनमें ब्राह्मणपद होनेतैं ब्राह्मणमात्रका संन्यासमें अधिकार है और संन्यासविना गृहस्थादिकनकूं ब्रह्मविचारका अवकाश नहीं; यातैं संन्यासमें तथा ब्रह्मश्रवणमें क्षत्रियवैश्यका अधिकार नहीं.

२८५ अन्यग्रंथकारकी रीतिसैं संन्यासमें केवल ब्राह्मणका अधिकार; क्षत्रिय और वैश्यका संन्यासकूं छोडिके केवल ब्रह्मश्रवणमें अधिकार.

अन्य ग्रंथकार इस रीतिसैं कहैं हैं:—यद्यपि संन्यासमें केवल ब्राह्मणका अधिकार है, तथापि ब्रह्मश्रवणमें क्षत्रिय वैश्यकाभी अधिकार हैं; परंतु जन्मांतरसंस्कारतैं जिस उत्तम पुरुषकूं विषयनमें दीनतादिक दोष नहीं होवै, ऐसैं शुद्धबुद्धिवालेकूं संन्यासविना ज्ञान होवै है; इसीवास्ते गृहस्थाश्रममेंही अनेक राजर्षि ब्रह्मवित् कहे हैं.

२८६ तिनसैं अन्यग्रंथकारकी रीतिसैं क्षत्रिय वैश्यका ब्रह्मश्रवणादिककीन्याईं विद्वत्संन्यासमेंभी अधिकार.

तिनसैं अन्यग्रंथकार इस रीतिसैं कहैं हैं:—जैसैं ब्रह्मश्रवणादिकनमें क्ष-

त्रियवैश्यका अधिकार है; तैसैं संन्यासमेंभी क्षत्रियवैश्यकूं निषेध नहीं, और ज्ञानके उदयसैं कर्तृत्व भोक्तृत्व बुद्धिका तथा जातिआश्रमअभिमानका अभाव होवै है. कर्तृत्वभोक्तृत्वबुद्धिविना और जाति आश्रमके अभिमान विना कर्माधिकारके असंभवतैं सर्वकर्मपरित्यागपूर्वक अक्रिय असंग आत्मरूपसैं स्थितिरूप विद्वत्संन्यासमें भी क्षत्रियवैश्यका अधिकार है; केवल विविदिषासंन्यासमें तिनका अधिकार नहीं.

२८७ वार्तिककारके मतमें विविदिषासंन्यासमें भी क्षत्रिय वैश्यका अधिकार.

और वार्तिककारका यह मत है:—विविदिषासंन्यासमेंभी क्षत्रिय वैश्यका अधिकार है. और बहुत श्रुतिवाक्यनमें यद्यपि ब्राह्मणकूं संन्यास कह्या है, तथापि संन्यासविधायक जाबाल श्रुतिमें ब्राह्मणपद नहीं है; केवल वैराग्यसंपत्तिसैं संन्यास कह्या है, यातैं अनेक श्रुतिवाक्यनमें द्विजका उपलक्षण ब्राह्मणपद है. और स्मृतिमें यह कह्या है:—"ब्राह्मणः क्षात्रियो वापि वैश्यो वा प्रव्रजेद्गृहात् ॥ त्रयाणां वर्णानां वेदमधीत्य चत्वार आश्रमाः" इस प्रकारके स्मृतिवचनतैंभी क्षात्रियवैश्यका संन्यासमें अधिकार है, यह वार्तिककार सुरेश्वराचार्यका मत है.

२८८ और कोई ग्रंथकारकी रीतिसैं ब्राह्मणके ज्ञानमें संन्यासकी अपेक्षा और क्षत्रियवैश्यकूं संन्यासमें अनधिकार और विद्याके उपयोगी कर्ममें अरु वेदांत श्रवणमें अधिकार.

और कोई ग्रंथकार इसरीतिसैं कहैं हैं:--संन्यासविधायक श्रुतिवाक्यनमें ब्राह्मणपद है, ताकूं द्विजमात्रका उपलक्षण कहनेमें प्रमाण नहीं. जाबालश्रुतिमें यद्यपि ब्राह्मणपद नहीं है, तथापि बहुतश्रुतिके अनुसारतैं तहांभी ब्राह्मणकर्ताका अध्याहार है, यातैं क्षत्रियवैश्यका संन्यासमें अधिकार नहीं, परंतु अनेक स्थानमें " गृहस्थराजा ज्ञानवान् " कहै हैं; यातैं यह मानना चाहियेः—ब्राह्मणकूं ब्रह्मविचारका अंग संन्यास है, संन्यास विना गृहस्थादिक आश्रमस्थ ब्राह्मणका ब्रह्मविचारमें अधिकार नहीं, संन्यासी ब्राह्मणकाही ब्रह्मविचारमें अधिकार है, और क्षत्रिय वैश्यका संन्यासविनाही

ब्रह्मविचारमें अधिकार है. काहेतैं ? संन्यासविधायक वचनमें ब्राह्मणपद होनेतैं क्षत्रियवैश्यकूं संन्यासकी विधि नहीं. और आत्मकामकूं आत्मश्रवणका अभाव कहना संभवै नहीं; यातैं क्षत्रियवैश्यकूं ज्ञानका उपयोगी अदृष्ट केवल कर्मतैं ही होवै है; संन्यासजन्य अदृष्टकी क्षत्रियवैश्यके ज्ञानमें अपेक्षा नहीं; इसीवास्ते गीतामें "कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः" इसरीतिसैं परमेश्वरनें कह्या है; या वाक्यमें अंतःकरणकी शुद्धि अथवा ज्ञान संसिद्धिशब्दका अर्थ है; यह भाष्यकारनें लिख्या है. संन्यासरहित केवल कर्मतैं अंतःकरणकी शुद्धिकूं जनकादिक प्राप्त हुये, यह अथवा संन्यासरहित केवल कर्मतैं ज्ञानप्रतिबंधक निवृत्तिद्वारा श्रवणतैं ज्ञानकूं प्राप्त हुये, यह गीतावाक्यका अर्थ है. दोनों रीतिसैं क्षत्रियवैश्यकूं संन्यास निरपेक्ष केवल कर्मही ज्ञानप्रतिबंधक पापकी निवृत्तिका हेतु है. और ब्राह्मणकूं संन्याससहित कर्मतैं ज्ञानप्रतिबंधक पापकी निवृत्ति होवैहै, और श्रवणका अंग संन्यास है; यापक्षमेंभी ब्राह्मणके श्रवणका अंग संन्यास है, क्षत्रियवैश्यके श्रवणका अंग नहीं; किंतु फलाभिलाषारहित क्रोधादि दोषरहित ईश्वरार्पण बुद्धिसैं स्ववर्णाश्रमधर्मके अनुष्ठान सहित कर्मके अवकाशकालमें श्रवणतैंही क्षत्रियवैश्यकूं ज्ञान होवै है. सर्वथा विद्याके उपयोगि कर्ममें और श्रवणमें क्षत्रियवैश्यकाभी अधिकार है. काहेतैंः--ब्राह्मणकीनांई ज्ञानार्थित्व क्षत्रियवैश्यकूंभी सम है, और फलार्थीका साधनमें अधिकार होवै है; यातैं आत्मकाम क्षत्रियवैश्यका वेदांत श्रवणमें अधिकार है.

२८९ किसी ग्रंथकारके मतमें शूद्रकूं श्रवणमें अनधिकार.

यद्यपि मनुष्यमात्रकूं आत्मकामनाका संभव होनेतैं क्षत्रियवैश्यकीनांई ज्ञानार्थित्वके सद्भावतैं शूद्रकूंभी उक्तरीतिसैं वेदांतश्रवणका अधिकार हुया चाहियेः—तथापि "न शूद्राय मतिं दद्यात्" इत्यादिक वचनतैं शूद्रकूं उपदेशका निषेध है और सर्वथा उपदेशरहित पुरुषकूं विवेकादिकनका असंभव होनेतैं ज्ञानार्थित्व संभवै नहीं. तैसैं शूद्रकूं यज्ञादिकर्मकाभी निषेध होनेतैं विद्योपयोगिकर्मके अभावतैं ताका ज्ञानहेतु श्रवणमें अधिकार नहीं यह किसी ग्रंथकारका मत है.

२९० अन्यग्रंथकारनकी रितिसैं शूद्रकाभी वेदभिन्न पुराणइतिहासादिरूप अध्यात्मग्रंथनके श्रवणादिकमें अधिकार.

अन्य ग्रंथकारोंका यह मत हैः—उपनयनपूर्वक वेदका अध्ययन कह्या है और शूद्रका उपनयन कह्या नहीं; यातैं वेदश्रवणमें तौ शूद्रका अधिकार नहीं है, तथापि "श्रावयेच्चतुरोवर्णान्" इत्यादिक वचनतैं इतिहासपुराणादिकनके श्रवणमें शूद्रकाभी अधिकार है. और पूर्व उक्त वचनमें शूद्रकूं उपदेशका निषेध कह्या है, ताका यह अभिप्राय हैः—वैदिक मंत्रसहित यज्ञादिक कर्मोपदेश शूद्रकूं नहीं करै, तैसैं वेदोक्त प्राणादिक सगुणउपासनाका शूद्रकूं उपदेश नहीं करै. उपदेशमात्रका निषेध नहीं. जो उपदेशमात्रका निषेध होवै तौ धर्मशास्त्रमें शूद्रजातिके धर्मका निरूपण निष्फल होवैगा. और विद्योपयोगि कर्मके अभावतैं जो विद्यामें अनधिकार कहैहै. ताका यह समाधान हैः—साधारण असाधारण सकल शुभकर्मनका विद्यामें उपयोग है. और सत्य, अस्तेय, क्षमा, शौच, दान, विषयतैं विमुखता, भागवतनामोच्चारण, तीर्थस्नान, पंचाक्षर मंत्रराजादिकनका जप, इत्यादिक सकल वर्णके साधारण धर्मनमें तथा शूद्रकमलाकरोक्त चतुर्वर्णके असाधारण धर्मनमें शूद्रका अधिकार है, तिनकर्मनके अनुष्ठानतैं अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा विद्याकी प्राप्ति संभवै है; यातैं इतिहास पुराणादिकनको श्रवणतैं विवेकादिकनके संभवतैं शूद्रकूंभी ज्ञानार्थित्व होनेतैं वेदभिन्न अध्यात्मग्रंथनके श्रवणादिकनमें शूद्रकाभी अधिकार है. और भाष्यकारनेंभी प्रथमाध्यायके तृतीयपादमें यह कह्या हैः—उपनयनपूर्वक वेदका अध्ययन कह्या है; और शूद्रकूं उपनयनके अभावतैं यद्यपि वेदमें अधिकार नहीं है, तथापि पुराणादिक श्रवणतैं शूद्रकूंभी ज्ञान होय जावै तौ ज्ञानसमकालही शूद्रकाभी प्रतिबंधरहित मोक्ष होवै है. इस रीतिसैं भाष्यकारके वचनतैंभी वेदभिन्न ज्ञानहेतु अध्यात्मग्रंथनके श्रवणमें शूद्रका अधिकार है.

२९१—२९३ मनुष्यमात्रकूं भक्ति और ज्ञानका अधिकार.

२९१ अंत्यजादिमनुष्यजातकूं तत्त्वज्ञानका अधिकार.

जन्मांतर संस्कारतैं अंत्यजादिकनकूंभी जिज्ञासा होय जावै तौ पौरु-

श्रवचनतैं तिनकाभी ज्ञान होयके कार्यसहित अविद्याकी निवृत्तिरूप मोक्ष होवै है, यातैं देवअसुरनकीनांई सकलमनुष्यकूं तत्त्वज्ञानका अधिकार है. आत्मस्वरूपके यथार्थ ज्ञानकूं तत्त्वज्ञान कहै हैं. आत्महीन कोई शरीर होवै तौ ज्ञानका अनधिकार होवै, यातैं आत्मज्ञानकी सामर्थ्य मनुष्यमात्रमें है, परंतुः—

२९२ तत्वज्ञानमें दैवीसंपा दाकूं अपेक्षापूर्वक मनुष्यमात्रकूं भगवद्भक्ति और तत्वज्ञानके अधिकारका निर्द्धार.

जा शरीरमें दैवीसंपदा होवै ताकूं तत्वज्ञान होवैहै, आसुरीसंपदामें तत्वज्ञान होवै नहीं. और सर्व भूतनमें दया, क्षमा, सत्य, आर्जव, संतोषादिक दैवी संपदाका संभव ब्राह्मणमें है, और क्षत्रियका प्रजापालनार्थ प्रवृत्ति धर्म होनेतैं ब्राह्मणसैं किंचित् न्यून दैवी संपदा संभवै है; धर्मबुद्धिसे प्रजासंरक्षणके अर्थ दुष्ट प्राणीकी हिंसाभी अहिंसा है, यातैं दैवीसंपदाका असंभव नहीं. तथा वैश्यकाभी कृषिवाणिज्यादिक शारीरव्यापार क्षत्रियसैं अधिक होनेतैं, आत्मविचारमें अवकाशका असंभव होनेतैं, ताकूं सामर्थ्यका असंभव है, तथापि कितनेक भाग्यशाली वैश्यनकूं शारीरव्यापारविनाही सकल व्यवहारका निर्वाह होवैहै; तिनकूं दैवीसंपदाका लाभरूप सामर्थ्य संभवैहै, और जिन आचार्योंके मतमें क्षत्रियवैश्यकूं संन्यासका अधिकार है; तिनके मतमें तौ अनायासतैंही दैवी संपदा संभवैहै; और चतुर्थ वर्णमें तथा अंत्यजादिकनमें यद्यपि दैवी संपदा दुर्लभ है; तथापि कर्मका फल अनंतविध है; किसीकूं जन्मांतरके कर्मतैं दैवीसंपदाका लाभ होय जावै तौ पुराणादिकनके विचारतैं चतुर्थवर्णकूं और भाषाप्रबंधादिकनके श्रवणतैं अंत्यजादिकनकूं भी भगवद्भक्ति और तत्वज्ञानके लाभद्वारा मोक्षका लाभ निर्विघ्न होवै है. इस रीतिसैं भगवद्भक्ति और तत्त्वज्ञानका अधिकार सकल मनुष्यनकूं है, यह शास्त्रका निर्धार है.

२९३-२९५ तत्त्वज्ञानतैं स्वहेतु अज्ञानकी निवृत्तिविषे शंकासमाधान

२९३ अज्ञानके कार्य अंतःकरणकी वृत्तिरूप तत्त्वज्ञानतैं ताके कारण अज्ञानकी निवृत्तिमें शंका.

तत्वज्ञानतैं कार्यसहित अज्ञानकी निवृत्ति होवै है, यह अद्वैत ग्रंथन-

का सिद्धात है. और जीवब्रह्मके अभेदगोचर अंतःकरणकी वृद्धिकूं तत्वज्ञान कहे हैं, अंतःकरणकूं अज्ञानकार्यता होनेतैं वृत्तिरूपतत्वज्ञानभी अज्ञानका कार्य है; और कार्यकारणका परस्पर अविरोधही लोकमें प्रसिद्ध है, यातैं तत्त्वज्ञानतैं अज्ञानकी निवृत्ति कहना संभवै नहीं.

२९४ उक्त शंकाका समाधान.

या शंकाका यह समाधान हैः—कार्यकारणका परस्पर अविरोध है, यह नियम सामान्य है. और समानविषयक ज्ञानाऽज्ञानका परस्पर विरोध है, यह विशेष नियम है. यातैं विशेष नियमतैं सामान्य नियमका बाध होवै है और पटअग्निसंयोगतैं पटका नाश होवै है, तहां संयोगका उपादानकारण दो होवै हैं, यातैं पटभी उपादान कारण है, तथापि अग्निसंयोगका और पटका परस्पर नाश्यनाशकभावरूप विरोध है, अविरोध नहीं; यातैं कार्यकारणका परस्पर अविरोध है, यह नियम संभवै नहीं. यद्यपि वैशेषिक शास्त्रकी रीतिसैं अग्निसंयोगतैं पटका नाश होवै नहीं. काहेतैं ? अग्निसंयोगतैं पटारंभक तंतुवोंमें क्रिया होवै है; क्रियातैं तंतुविभागतैं पटके असमवायिकारण तंतुसंयोगका नाश होवै है, तंतुसंयोगके नाशतैं पटका नाश होवै है. इस रीतिसे वैशेषिकमतमें असमवायिकारणके नाशतैं द्रव्यका नाश होवै है, यातैं पटके नाशमें तंतुसंयोगके नाशकूं हेतुता है. पटअग्निके संयोगकूं पट नाशमें हेतुता नहीं; तथापि पूर्वोक्त क्रमतैं पटका नाश होवै तौ अग्निसंयोगतैं पंचमक्षणमें पटका नाश संभवै है; और अग्निसंयोगतैं अव्यवहित उत्तर कालमें पटका नाश प्रतीत होवै है. यातैं वैशेषिकमत असंगत है. और अग्निसंयोगतैं भस्मीभूतपटके अवयव संश्लिष्टही प्रतीत होवै हैं, तैसैं मुद्गरसैं चूर्णीभूत घटका कपालविभागजन्य संयोगनाशविनाही नाश होवै है. यातैं अवयव संयोगके नाशकूं अवयवीके नाशमें कारणताका असंभव होनेतैं तंतुसंयोगके नाशकूं पटनाशमें कारणता नहीं; किंतु पटअग्निका संयोगही पटके नाशमें कारण है और पट अग्निके संयोगका अग्निसहित पट उपादान कारण है, यातैं कार्यकारणकाभी नाश्यनाशकभावविरोध प्रसिद्ध होनेतैं तिनका

परस्पर अविरोध है; यह नियम संभवै नहीं. इस रीतिसैं अविद्याजन्य वृत्तिज्ञानतैं कार्यसहित अविद्याका नाश होवै है; परंतुः—

२९५—३०३ अविद्यालेशसंबंधी विचार.

२९५ तत्त्वज्ञानसैं अविद्यारूप उपादानके नाश हुये जीवन्मुक्ति विद्वान्‌के देहके स्थितिकी शंका.

सकल अविद्याका तत्त्वज्ञानसैं नाश होवै तौ जीवन्मुक्त विद्वान्‌के देहका तत्त्वज्ञानकालमें अभाव हुया चाहिये. काहेतैं ? उपादान कारण अविद्याका नाश हुये कार्यकी स्थिति संभवै नहीं.

२९६ उक्त शंकाका कोईक आचार्यकी रीतिसैं समाधान.

और कोई यह समाधान कहैं हैंः—जैसैं धनुषका नाश हुयेभी प्रक्षिप्त बाणके वेगकी स्थिति रहै है, तैसैं विद्वान्‌के शरीरकी स्थिति कारणका नाश हुयेभी संभवै है.

२९७ उक्त समाधानका असंभव.

यह समाधानभी संभवै नहीं. काहेतैं ? निमित्तकारणका नाश हुये कार्यकी स्थिति रहै है. उपादानका नाश हुये कार्यकी स्थिति संभवै नहीं. बाणके वेगका उपादानकारण बाण है और ताका निमित्तकारण धनुष है; ताके नाशतैं बाणके वेगकी स्थिति संभवै है, यातैं अविद्यारूप उपादानके नाश हुयेभी विद्वान्‌के शरीरकी स्थितिका असंभव होनेतैं, तत्त्वज्ञान हुयेभी अविद्याका लेश रहै है, यह ग्रंथकारोंने लिख्या है.

२९८ अविद्यालेशके तीन प्रकार.

तहां मतभेदसैं अविद्यालेशके स्वरूप तीनि प्रकारका है. जैसैं प्रक्षालित लशुनभांडमें गंध रहै है; तैसैं अविद्याके संस्कारकूं अविद्यालेश कहै है, अथवा अग्निदग्ध पटकीनांई स्वकार्यमें असमर्थज्ञान बाधित अविद्याकूं अविद्यालेश कहै है, यद्वा आवरणशक्तिविक्षेपशक्तिरूप अंशद्वयवती अविद्या है. तत्वज्ञानसैं आवरणशक्तिविशिष्ट अविद्याअंशका नाश होवै है, और प्रारब्धकर्मरूप प्रतिबंध होनेतैं विक्षेपशक्तिविशिष्ट अविद्याअंशका

नाश होवै नहीं. तत्वज्ञानतैं उत्तर कालभी देहादिक विक्षेपका उपादान-अविद्याअंशका शेष रहैहै; तासैं स्वरूपका आवरण होवै नहीं, ताहीकूं अ-विद्यालेश कहै हैं.

२९९ प्रकृत अर्थमें सर्वज्ञात्ममुनिका मत.

सर्वज्ञात्ममुनिका तो यह मत है:—तत्त्वज्ञानसैं उत्तरकालमैं शरीरादि-प्रतिभास होवै नहीं. जीवन्मुक्तिप्रतिपादक श्रुतिवचनका स्वार्थमें तात्पर्य नहीं. काहेतैं ? श्रवणविधिका अर्थवादरूप जीवन्मुक्ति प्रतिपादक वचन हैं; जिस श्रवणके प्रतापतैं जीवते पुरुषकी मुक्ति होवैहै. ऐसा उत्तम आत्मश्रवण है. इसरीतिसैं आत्मश्रवणकी स्तुतिमें तात्पर्य होनेतैं जीवन्मुक्तिप्रातिपादक वच-नोंमें ज्ञानीकूं देहादिकनका प्रतिभास कहना संभवै नहीं. इस रीतिसैं तत्त्व-ज्ञानसैं अव्यवहित उत्तर कालमेंही विदेहमोक्ष होवैहै, या मतमैं ज्ञानसैं उत्तर अविद्याका लेश रहै नहीं. परंतुः—

३०० उक्त मतका ज्ञानीके अनुभवमें विरोध.

यह मत ज्ञानीके अनुभवसैं विरुद्ध है. जिस तत्त्वज्ञानसैं कार्यसहित अविद्याकी निवृत्ति होवैहै, तिस तत्त्वज्ञानकी निवृत्तिका प्रकार कहैं हैं:—तत्त्व-ज्ञानसैं अविद्याकी निवृत्ति हुयां तत्त्वज्ञानकी निवृत्ति उत्तरकालमें होवै है; याक्रमतैं तत्त्वज्ञानकी निवृत्ति होवै नहीं. काहेतैं? तत्त्वज्ञानसैं इतर अनात्म-वस्तुवोंका तो शेष रहै नहीं. केवल चेतनकूं असंगता होनैतैं नाशकता संभवै नहीं. तत्त्वज्ञानकूं स्वनाशकताभी संभवै नहीं; यातैं तत्त्वज्ञानका नाश नहीं होवैगा.

३०१ अविद्याकी निवृत्तिकालमें तत्त्वज्ञानकी निवृत्तिकी रीति.

इसरीतिसे अविद्यानिवृत्तिसैं उत्तरकालमें तत्त्वज्ञानकी निवृत्तिके असंभ-वतैं अविद्याकी निवृत्तिकालमेंही तत्त्वज्ञानकी निवृत्ति या रीतिसैं होवैहै:—जैसैं जलमें प्रक्षिप्त कतकरजतैं जलगत पंकका विश्लेष होवै, ताके साथही कतकरजकाभी विश्लेष होवैहै. कतकरजके विश्लेषमें साधनांतरकी अपेक्षा नहीं; और तृणकूटमें अंगारके प्रक्षेपतैं तृणकूटका भस्म होवै, ताके साथही

अंगारकाभी भस्म होवैहै; तैसैं कार्यसहित अविद्याकी निवृत्ति होवै, ताके साथिही तत्त्वज्ञानकीभी निवृत्ति होवैहै, यातैं तत्त्वज्ञानकी निवृत्तिमें साधनांतरकी अपेक्षा नहीं है.

३०२ प्रकृतअर्थमें पंचपादिकाकारका मत.

पंचपादिकाकार पद्मपादाचार्यका यह मत है:—ज्ञानका अज्ञानमात्रसैं विरोध है, अज्ञानके कार्यसैं ज्ञानका विरोध नहीं होनेतैं तत्त्वज्ञानसैं केवल अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै, अज्ञानकी निवृत्तिसैं उत्तरकालमें उपादानके अभावतैं कार्यकी निवृत्ति होवैहै, परंतु देहादिक कार्यकी निवृत्तिमें प्रारब्ध कर्म प्रतिबंधक है; यातैं उक्तरीतिसैं अविद्यालेश रहै, जितने जीवन्मुक्तकूं देहादिकनकी प्रतीतिभी संभवै है तितनेकूं प्रारब्धरूप प्रतिबंधका अभाव हुयां देहादिक और तत्त्वज्ञानकी निवृत्ति होवैहै; या मतमें प्रारब्धके अभावसहित अविद्याकी निवृत्तिही तत्त्वज्ञानकी निवृत्तिका हेतु है.

३०३—३०९ तत्त्वज्ञानके करण और सहकारी साधनविषे विचार.

३०३ उत्तम और मध्यम अधिकारीके भेदतें तत्त्वज्ञानके दो साधनोंका कथन.

जो तत्वज्ञानसैं अविद्याकी निवृत्ति होवैहै, सो तत्त्वज्ञानके दो साधन हैं. उत्तम अधिकारीकूं तौ श्रवणादिक साधन हैं और मध्यम अधिकारीकूं निर्गुण ब्रह्मका अहंग्रह उपासनही तत्वज्ञानका साधन है. यह सकल अद्वैत शास्त्रका सिद्धांत है. परंतुः—

३०४ उक्त दोनों पक्षमें प्रसंख्यानकूं तत्त्वज्ञानकी करणतारूप प्रमाणता.

दोनों पक्षमें तत्वज्ञानका करणरूप प्रमाण प्रसंख्यान है;यह कितनेक ग्रंथकारोंका मत है. वृत्तिके प्रवाहकूं प्रसंख्यान कहै हैं. जैसैं मध्यम अधिकारीकूं निर्गुण ब्रह्माकार निरंतर वृत्तिरूप उपासना कर्तव्य है, सोई प्रसंख्यान है. तैसें उत्तम अधिकारीकूंभी मननसैं उत्तर निदिध्यासनरूप प्रसंख्यानही ब्रह्मसाक्षात्कारका करण है. यद्यपि षड्विध प्रमाणमें प्रसंख्यानके अभावतैं ताकूं प्रमाकी करणता संभवै नहीं;तथापि सगुणब्रह्मके ध्यानकूं सगुण ब्रह्मके

साक्षात्कारकी करणता और निर्गुण ब्रह्मके ध्यानकूं निर्गुण ब्रह्मके साक्षात्कारकी करणता सकल श्रुतिस्मृतिमें प्रसिद्ध है. तैसैं व्यवहितकामिनीके प्रसंख्यानकूं कामिनीके साक्षात्कारकी करणता लोकमें प्रसिद्ध है; यातैं निदिध्यासनरूप प्रसंख्यानभी ब्रह्मसाक्षात्कारका करण संभवै है. यद्यपि प्रसंख्यानजन्य ब्रह्मज्ञानकूं प्रमाणजन्यताके अभावतैं प्रमात्वका संभव है, तथापि संवादिभ्रमकीनांई विषयके अबाधतैं प्रमात्व संभवै है. और निदिध्यासनरूप प्रसंख्यानका मूल शब्दप्रमाण है; यातैं भी ब्रह्मज्ञानकूं प्रमात्व संभवै है.

३०५ भामतीकार वाचस्पतिके मतमें प्रसंख्यानकूं मनकी सहकारिता और मनकूं ब्रह्मज्ञानकी कारणता.

भामतीकार वाचस्पतिका यह मत है:—मनका सहकारी प्रसंख्यान है, ब्रह्मज्ञानका करण मन है, प्रसंख्यानकूं ज्ञानकी करणता अप्रसिद्ध है. सगुण निर्गुण ब्रह्मका ध्यानभी मनका सहकारी है, तिनके साक्षात्कारका करण ध्यान नहीं; किंतु मनही करण है,तैसैं व्यवहित कामिनीका ध्यानभी कामिनी साक्षात्कारका करण नहीं; किंतु कामिनीचिंतनसहित मनही ताके साक्षात्कारका करण है, याप्रकारतैं मनही ब्रह्मज्ञानका करण है.

३०६ अद्वैतग्रंथनका मुख्यमत (एकाग्रतासहित मनकूं सहकारिता और वेदांतवाक्यरूप शब्दकूं ब्रह्मज्ञानकी करणता.)

और अद्वैत ग्रंथनका मुख्य मत यह है:--वाक्यजन्य ज्ञानतैं अनंतर प्रसंख्यानकी अपेक्षा नहीं; किंतु महावाक्यतैंही अद्वैत ब्रह्मका साक्षात्कार होवै है. और सकल ज्ञानमें सहकारी मन है, यातैं निदिध्यासनजन्य एकाग्रतासहित मन सहकारी है और वेदांतवाक्यरूप शब्दही ब्रह्मज्ञानका करण है, मन नहीं. काहेतैं? वृत्तिरूप ज्ञानका उपादान होनेतैं आश्रय अंतःकरण है, यातैं ज्ञानका कर्ता मन है. ताकूं ज्ञानकी करणता संभवै नहीं और ज्ञानांतरमें मनकूं करणता मानैंभी ब्रह्मज्ञानकी करणता सर्वथा विरुद्ध है. काहेतैं ? "यन्मनसान मनुते" इत्यादिक श्रुतिमें ब्रह्मकूं मानस ज्ञानकी विषयताका निषेध कऱ्या है, और ब्रह्मकूं औपनिषदत्व कह्या है, यातैं उपनिषद्रूप शब्दही ब्रह्मज्ञानका

करण है. यत् कहिये जिस ब्रह्मकूं मन करिके लोक नहीं जाने हैं, यह श्रुतिका अर्थ है. यद्यपि कैवल्यशाखामें जहां मनकूं ब्रह्मज्ञानकी करणताका निषेध कर्‌या है, तिसी स्थानमें वाक्‌कूं ब्रह्मज्ञानकी करणताका निषेध कर्‌या है, यातैं शब्दकूंभी ब्रह्मज्ञानकी करणता श्रुतिविरुद्ध है, तथापि शब्दकूं ब्रह्मज्ञानकी करणता नहीं, इस अर्थमें श्रुतिका तात्पर्य होवै तौ ब्रह्मकूं उपनिषद्वेद्यत्वरूप औपनिषदत्वकथन असंगत होवैगा. यातैं शब्दकी लक्षणावृत्तिसै ब्रह्मगोचर ज्ञान होवैहै शक्ति वृत्तिसैं ब्रह्मका ज्ञान शब्दसैं होवै नहीं; इस रीतिसे श्रुतिका तात्पर्य है; यातैं शक्तिवृत्तिसैं शब्दकूं ब्रह्मज्ञानकी कारणताका निषेधं है, और लक्षणावृत्तिसैं शब्दकूं ब्रह्मज्ञानकी करणता होनेतैं ब्रह्मकूं औपनिषदत्व संभवै है. ब्रह्मसाक्षात्कारकूं मानस मानैहैं; तिनके मतमेंभी ब्रह्मका परोक्षज्ञान शब्दसैंही मान्या है यातैं ब्रह्मज्ञानमें शब्दकूं करणता दोनों मतमें आवश्यक होनेतैं **ब्रह्मसाक्षात्कारका करण** शब्द है, मन नहीं. इसरीतिसैं ब्रह्म साक्षात्कारका करण शब्द हैं.

२०७ शब्दसैं अपरोक्ष ज्ञानका उत्पत्तिमें शंकासमाधान.

यद्यपि शब्दमें परोक्षज्ञानकी उत्पादनका सामर्थ्य है, शब्दसे अपरोक्ष ज्ञानकी उत्पत्ति संभवै नहीं, तथापि शास्त्रोक्त श्रवणमननपूर्वक सो ब्रह्मगोचर परोक्षज्ञानके संस्कारविशिष्ट एकाग्रचित्तसहित शब्दसैं अपरोक्ष ज्ञान होवै है. जैसैं प्रतिबिंब और बिंबके अभेदवादमें जलमात्र और दर्पणादिक सहकृत नेत्रसैं सूर्यादिकनका साक्षात्कार होवै है, तहां केवल नेत्रका सूर्यादिकनके साक्षात्कारमें सामर्थ्य नहीं है. और चंचल वा मलिन उपाधिके सन्निधानसैं भी सामर्थ्य नहीं है, और निश्चल निर्मल उपाधिसहकृत नेत्रमें सूर्यादिकनके साक्षात्कारका सामर्थ्य है; तैसैं संस्कारविशिष्ट निर्मल निश्चल चित्तरूपी दर्पणके सहकारतैं शब्दसैंभी ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान संभवै है. **अन्यदृष्टांतः**—जैसैं लौकिक अग्निमें होमतैं स्वर्गहेतु अपूर्वकी उत्पत्ति नहीं होवैं है और वैदिक संस्कारसहित अग्निमें होमतैं स्वर्गजनक अपूर्वकी उत्पत्ति होवै है. होमकूं स्वर्गसाधनता श्रुतिमें कही है, द्वितीय क्षणमें विनाशी होमकूं कालांतरभावि

स्वर्गकी साधनता संभवै नहीं; यातैं स्वर्गसाधनताकी अनुपपत्तिरूप अर्थापत्तिप्रमाणतैं जैसैं अपूर्वकी सिद्धि होवै है; तैसैं ब्रह्मज्ञानतैं अध्यासरूप सकल दुःखकी निवृत्ति श्रुतिमें कही है; और कर्तृत्वादिक अध्यास अपरोक्ष है, तिस अपरोक्ष अध्यासकी निवृत्ति परोक्षज्ञानतैं संभवै नहीं. अपरोक्ष ज्ञानतैं ही अपरोक्ष अध्यासकी निवृत्ति होवैहै, यातैं ब्रह्मज्ञानकूं अपरोक्षअध्यासकी निवृत्तिकी अनुपपत्तिसैं प्रमाणांतरके अगोचर ब्रह्मका शब्दसैं अपरोक्ष ज्ञान सिद्ध होवैहै. जैसैं श्रुतार्थापत्तिसैं अपूर्वकी सिद्धि होवै है, तैसैं शब्दजन्य ब्रह्मके अपरोक्षज्ञानकी सिद्धिभी श्रुतार्थापत्तिसैं होवैहै.

३०८ अन्यग्रंथकी रीतिसैं शब्दकूं अपरोक्ष ज्ञानकी जनकता.

अन्यग्रंथमें शब्दकूं अपरोक्षज्ञानकी जनकता या दृष्टांतसैं कहीहै:—जैसैं बाह्यपदार्थके साक्षात्कारमें असमर्थ मन है, तथापि भावनासहित मनसे नष्टवनिताका सात्कार होवैहै; तैसैं केवल शब्द तो अपरोक्ष ज्ञानमें असमर्थ है; परंतु पूर्व उक्त मनसहित शब्दसैं ब्रह्मका अपरोक्षज्ञान होवैहै.

३०९--३२५ विषय और ज्ञानकी अपरोक्षता विषे विचार

३०९ अन्यग्रंथकारकी रीतिसैं ज्ञान और विषय दोनोंमें अपरोक्षत्वव्यवहारका कथन.

अन्यग्रंथकार इस रीतिसैं कहै हैं:—ज्ञान और विषय दोनोंमें अपरोक्षत्व व्यवहार होवैहै. काहेतैं? नेत्रादिक इंद्रियतैं ज्ञात घट होवै; तहां घटका प्रत्यक्ष ज्ञान है और घट प्रत्यक्ष है. इस रीतिसैं उभयविध व्यवहार अनुभवसिद्ध है; तहां ज्ञानमें अपरोक्षता करणके आधीन नहीं है. काहेतैं ? इंद्रियजन्य ज्ञान अपरोक्ष होवै और अनुमानादिजन्य ज्ञान परोक्ष होवै, तौ ज्ञानमें परोक्षता और अपरोक्षता करणके आधीन होवै; सो इंद्रियजन्यज्ञानकूं अपरोक्षता ग्रंथकारोंने खंडन करीहै; यातैं अपरोक्ष अर्थगोचर ज्ञान अपरोक्ष कहीयेहैं. इसरीतिसैं ज्ञानमें अपरोक्षता विषयके आधीन है; यातैं अपरोक्ष विषयका ज्ञान अपरोक्षही होवैहै. इंद्रियजन्य होवै अथवा प्रमाणांतरजन्य होवै; यामें अभिनिवेश नहीं. इसीवास्ते सुखादिज्ञान, ईश्वरज्ञान, स्वप्न-

का ज्ञान इंद्रियजन्य नहीं हैं, तथापि प्रत्यक्ष हैं; यातैं ज्ञानमैं इंद्रियजन्यत्वरूप अपरोक्षज्ञानही है; किंतु अपरोक्ष अर्थगोचर ज्ञान होवै सो अपरोक्ष ज्ञान कहिये है.

३१० उक्त अर्थमें शंकासमाधान.

यद्यपि अपरोक्ष ज्ञानके विषयकूं अपरोक्ष कहै हैं, यातैं अपरोक्ष अर्थगोचर ज्ञानकूं अपरोक्षता कहनेमें अन्योन्याश्रय दोष होवै है. काहेतैं? ज्ञानगत अपरोक्षत्वनिरूपणमें विषयगत अपरोक्षत्वका ज्ञानहेतु है. और विषयगत अपरोक्षत्वनिरूपणमें ज्ञानगत अपरोक्षत्वका ज्ञान हेतु है; तथापि विषयमें अपरोक्षता अपरोक्षज्ञानकी विषयतारूप मानैं तौ अन्योन्याश्रय दोष होवै, यातैं विषयकी अपरोक्षता उक्तस्वरूप नहीं, किंतु प्रमातृचेतनसैं अभेदही विषयकी अपरोक्षता है, यातैं ज्ञानके अपरोक्षत्वनिरूपणमें विषयके अपरोक्षत्व ज्ञानकी अपेक्षा हुयांभी विषयके अपरोक्षत्व निरूपणमें ज्ञानगत अपरोक्षत्वके ज्ञानका अनुपयोग होनेतैं अन्योन्याश्रय दोष नहीं.

३११ विषयमें परोक्षत्व अपरोक्षत्वके संपादक प्रमातृचेतनके भेद और अभेदसहितविषयगत परोक्षत्व अपरोक्षत्वके आधीनही ज्ञानके परोक्षत्व अपरोक्षत्वका निरूपण.

सुखादिक अंतःकरणके धर्म साक्षिचेतनमें अध्यस्त है और अधिष्ठानसैं पृथक् सत्ता अध्यस्तकी होवै नहीं; यातैं सुखादिकनका प्रमातृचेतनसैं सदा अभेद होनेतैं तिनमें सदा अपरोक्षत्व है. और अपरोक्ष सुखादिगोचर ज्ञानभी अपरोक्षही होवै है. और बाह्य घटादिक यद्यपि बाह्यचेतनमें अध्यस्त होनेतैं प्रमातृचेतनसैं तिनका सर्वदा अभेद नहीं है, तथापि वृत्तिद्वारा बाह्यचेतनका प्रमातृचेतनसैं अभेद होवै, तिसकालमें प्रमातृचेतनही घटादिकनका अधिष्ठान होवै है, यातैं इंद्रियजन्य घटादिगोचर वृत्ति होवै, तिसकालमेंही घटादिकनमें अपरोक्षत्व धर्म होवै है. अपरोक्षत्वविशिष्ट घटादिकनका ज्ञानभी अपरोक्ष कहिये है. और घटादिगोचर अनुमित्यादिक वृत्ति होवै तिसकालमें प्रमातृ-

चेतनसे घटादिकनका अभेद नहीं होनेतैं तिनमें अपरोक्षत्व धर्म होवै नहीं, यातैं घटादिकनके अनुमित्यादि ज्ञानकूं अपरोक्ष नहीं कहे हैं; किंतु परोक्ष कहैं हैं और ब्रह्मचेतनका प्रमातृचेतनसैं सदा अभेद होनेतैं ब्रह्मचेतन सदा अपरोक्ष है; यातैं महावाक्यरूप शब्दप्रमाणजन्य ब्रह्मका ज्ञानभी अपरोक्षही कहिये है. इस प्रकारसैं ज्ञानके परोक्षत्व और परोक्षत्व प्रमाणाधीन नहीं; किंतु विषयगत परोक्षत्व अपरोक्षत्वके आधीनही ज्ञानके अपरोक्षत्व अपरोक्षत्व हैं. और विषयमें परोक्षत्व अपरोक्षत्वका संपादक प्रमातृचेतनका भेद और अभेद है; यातैं शब्दजन्यब्रह्मका ज्ञानभी अपरोक्ष है, यह कथन संभवै है.

३१२ उक्तमतमें अवांतरवाक्यजन्य ब्रह्मज्ञानके अपरोक्षताकी प्राप्तिरूप दोष.

परंतु या मतमें अवांतरवाक्यजन्य ब्रह्मज्ञानभी अपरोक्ष हुया चाहिये. काहेतैं ? उक्तरीतिसैं प्रमातृचेतनस्वरूप होनेतैं ब्रह्म सदा अपरोक्ष है, और अपरोक्षवस्तुगोचर ज्ञान अपरोक्षही होवै है, यातैं नित्य अपरोक्षस्वभाव ब्रह्मका परोक्ष ज्ञान संभवै नहीं और अवांतरवाक्यसैं सकल ग्रंथकारोंने ब्रह्मका परोक्षज्ञान मान्या है. तैसैं "दशमोऽस्ति" यावाक्यतैं दशमका परोक्ष ज्ञानही होवै है. और पंचदशी आदिक ग्रंथनमेंभी उक्त वाक्यसैं दशमका परोक्ष ज्ञानही कह्या है. और प्रमातृचेतनसैं अभिन्न दशम है, यातैं दशम विषयकूं अपरोक्षता होनेतैं ताका ज्ञानभी अपरोक्ष हुया चाहिये.

३१३ उक्त दोषसैं अपरोक्षताका अन्य लक्षण.

यातैं इसरीतिसैं मानना चाहियेः—जैसैं सुखादिक प्रमातृचेतनमें अध्यस्त है; तैसैं धर्म अधर्मभी प्रमातृचेतनमें अध्यस्त हैं, यातैं सुखादिकनकीनांई धर्मादिकभी प्रमातृचेतनसैं अभिन्न होनेतैं अपरोक्ष हुये चाहिये, तथापि योग्य विषयका प्रमातृचेतनसैं अभेदही विषयगत अपरोक्षताका संपादक है; धर्मादिक योग्य नहीं. यातैं तिनका प्रमातृचेतनसैं अभेद होनेतैंभी तिनमें अपरोक्षता नहीं. जैसैं विषयगत योग्यता विषयगत अपरोक्षतामें अपेक्षित है, तैसैं प्रमाणगत योग्यताज्ञानकी अपरोक्षतामें अपेक्षित है. अवांतर वाक्यमें

और "दशमोस्ति" या वाक्यमें अपरोक्षज्ञान जननकी योग्यता नहीं; किंतु महावाक्यमें और "त्व दशमः" यावाक्यमें अपरोक्ष ज्ञानके जननकी योग्यता है. जैसैं विषयकी योग्यतादिक प्रत्यक्षादिव्यवहारसैं जानिये है. जिस विषयका प्रमातासैं अभेद होनेतैं प्रत्यक्षव्यवहार होवैं, सो विषय योग्य कहियेहै. और जिस विषयका प्रमातासैं अभेद होनेतैंभी प्रत्यक्ष व्यवहार होवै नहीं, सो विषय अयोग्य कहियेहै. जैसैं धर्म अधर्म संस्कार अयोग्य है, विषयकीनांई प्रमाणमेंभी योग्यतादिक अनुभवके अनुसार जाननी. बाह्य इंद्रियनमें प्रत्यक्ष ज्ञानजननकी योग्यता हैं, और अनुमानादिकनमें परोक्षज्ञान जननकी योग्यता हैं, अनुपलब्धिमें और शब्दमें उभयविध ज्ञानजननकी योग्यता है; परंतुः—

३१४ अपरोक्ष ज्ञानमें सर्वज्ञात्ममुनिके मतका अनुवाद.

इतना विशेष हैः—प्रमातासैं असंबंधी पदार्थका शब्दसैं केवल परोक्ष ज्ञान होवैहै, और जिस पदार्थका प्रमातासैं तादात्म्य संबंध होवै तिसमें योग्यता हुयांभी प्रमातासैं अभेदबोधक शब्द नहीं होवै, तौ शब्दसैं परोक्षज्ञानहीं होवैहै, अपरोक्षज्ञान होवै नहीं. जैसैं "दशमोऽस्ति" इत्यादिक वाक्यनमें प्रमातासैं अभेदबोधक शब्दके अभावतैं उक्त वाक्यनके श्रोताकूं स्वाभिन्न दशम ब्रह्मकाभी परोक्ष ज्ञानही होवैहै, अपरोक्ष ज्ञान होवै नहीं. और जिस वाक्यमें प्रमातामें प्रमातासैं अभिन्न योग्य विषयका प्रमातासैं अभेदबोधक शब्द होवै, तिस वाक्यसैं परोक्ष ज्ञान होवै नहीं; किंतु अपरोक्ष ज्ञानही होवै है. यह मत सर्वज्ञात्म मुनिका है; या मतमें केवल शब्दही अपरोक्ष ज्ञानका हेतु है, और परोक्ष ज्ञानके संस्कारविशिष्ट एकाग्रचित्तसहित शब्दसैं अपरोक्ष ज्ञान होवै है; यह मत प्रथम कह्याहै.

३१५ नेडेहीं दूषित विषयगत अपरोक्षताके आधीन ज्ञानगत अपरोक्षता है या मतका अनुवाद.

अपरोक्ष अर्थगोचर ज्ञानकूं अपरोक्षत्व मानिके ब्रह्मज्ञानकूं अपरोक्षता संभवै है; यह मध्यमें तृतीय मत कह्या. या मतमें नित्याऽपरोक्ष ब्रह्मगोचर अवांतर वाक्यजन्य ब्रह्मज्ञानभी अपरोक्ष हुया चाहिये, यह दूषण कह्या.

३१६ अद्वैत विद्याचार्यकी रीतिसैं विषयगत और ज्ञानगत अपरोक्षत्वका प्रकारांतरसैं कथन और दूषित उक्त मतमें दूषणांतरका कथन.

अद्वैत विद्याचार्यने अर्थगत अपरोक्षत्व और ज्ञानगत अपरोक्षत्व प्रकारांतरसैं कह्या है. और दूषित उक्त मतसैं दूषणांतर कह्या है. तथाहि:— प्रमातासैं अभिन्न अर्थकूं अपरोक्षस्वरूप मानिके अपरोक्ष अर्थगोचर ज्ञानकूं अपरोक्षत्व कहैं तौ स्वप्रकाश आत्मसुखरूप ज्ञानमें अपरोक्ष ज्ञानके लक्षणकी अव्याप्ति होवैगी. काहेतैं ? अपरोक्ष अर्थ है, गोचर कहिये विषय जिसका तिस ज्ञानकूं अपरोक्ष कहै तौ ज्ञानका और विषयका परस्पर भेदसापेक्ष विषयविषयिभाव संबंध है; तिसी स्थानमें ज्ञानगत अपरोक्षलक्षण होवैगा. और स्वप्रकाश सुखका ज्ञानसैं अभेद होनेतैं विषयविषयिभावके असंभवतैं तामें उक्त लक्षण संभवै नहीं. यद्यपि प्रभाकरमतमें ज्ञानकूं स्वप्रकाश कहै हैं, और अपने स्वरूपकूं तथा ज्ञाताकूं तैसैं ज्ञेय घटादिकनकूं ज्ञान विषय करै हैं, यातैं सकल ज्ञान त्रिपुटीगोचर होवै है; यह प्रभाकरका मत है. ताके मतमें अभेद हुयांभी विषय विषयिभावका अंगीकार है, यातैं स्वप्रकाश ज्ञानरूप सुखमें विषयविषयिभाव असंगत नहीं. स्वकहिये अपना स्वरूप है, प्रकाश कहिये विषयी जिसका सो स्वप्रकाश कहिये है; इसरीतिसैं स्वप्रकाशपदके अर्थसैंभी अभेदमें विषयविषयिभाव संभवै है, तथापि प्रकाश्यप्रकाशकका भेदानुभव सिद्ध होनेतैं भेदविना प्रभाकरका विषयविषयिभाव कथन असंगत है, यातैं स्वप्रकाशपदका उक्त अर्थ नहीं; किंतु स्वकहिये अपनी सत्तासैं प्रकाश कहिये संशयादिराहित्यही स्वप्रकाश पदका अर्थ अद्वैतग्रंथनमें कह्या है.

३१७ अपरोक्षके उक्तलक्षणके असंभवका अनुवाद.

इस रीतिसैं स्वप्रकाशज्ञानतैं अभिन्नस्वरूप सुखमें विषयविषयिभावके असंभवतैं अपरोक्षका उक्त लक्षण तामें संभवै नहीं.

३१८ उक्तदोषसैं रहित अपरोक्षका लक्षण.

अपरोक्षका यह लक्षण है:—स्वव्यवहारके अनुकूल चैतन्यसैं अभेद अपरोक्ष विषयका लक्षण है. अंतःकरण और सुखादिक साक्षिचेतनमें अध्यस्त होनेतैं धर्मसहित अंतःकरणका साक्षिचेतनसैं अभेद है. और साक्षिचेतनसैं तिनका प्रकाश होनेतैं तिनके व्यवहारके अनुकूल साक्षिचेतन है; यातैं स्वकहिये अंतःकरण और सुखादिकनके व्यवहारके अनुकूल जो साक्षिचेतन तासैं अभेदरूप अपरोक्षका लक्षण सुखादिसहित अंतःकरणमें संभवै है और धर्मादिकनका साक्षिचेतनसैं अभेद तो है, परंतु तिनमें योग्यताके अभावतैं तिनके व्यवहारके अनुकूल साक्षिचेतन नहीं; यातैं स्वव्यवहारानुकूल चैतन्यसैं धर्मादिकनका अभेद नहीं होनेतैं तिनमें अपरोक्षत्व नहीं, तैसैं घटादिगोचर वृत्तिकालमें घटादिकनके अधिष्ठान चेतनका वृत्त्युपहित चेतनसैं अभेद होवैहै; यातैं घटादिगोचर वृत्तिकालमें घटादिचेतन घटादि व्यवहारके अनुकूल है; तासैं अभिन्न घटादिक अपरोक्ष कहियेहैं. घटादिगोचर वृत्तिके अभावकालमें भी अपने अधिष्ठान चेतनसैं घटादिक अभिन्न है; परंतु तिसकालमें तिनके व्यवहारके अनुकूल अधिष्ठानचेतन नहीं. काहैतैं ? वृत्त्युपहितसैं अभिन्न होयके व्यवहारके अनुकूल होवै है; यातैं घटादिगोचर वृत्तिके अभावकालमें घटादिक अपरोक्ष नहीं. तैसैं ब्रह्मगोचर वृत्त्युपहित साक्षिचेतनही ब्रह्मके व्यवहारके अनुकूल है, तासैं अभिन्न ब्रह्मकूं अपरोक्षता संभवै है. जैसैं व्यवहारानुकूल चैतन्यसैं विषयका अभेद विषयगत प्रत्यक्षत्वका प्रयोजक है, तैसैं घटादिक विषयतैं घटादिक व्यवहारानुकूल चैतन्यका अभेद ज्ञानगत प्रत्यक्षत्वका प्रयोजक है.

३१९ वृत्तिरूपप्रत्यक्षज्ञानमें उक्त अपरोक्षके लक्षणकी अव्याप्ति.

यद्यपि चेतनमें घटादिक अध्यस्त है, और विषयाकार वृत्तिकालमें वृत्तिचेतनसैं विषयचेतनकी एकता होनेतैं स्वाधिष्ठान विषयचेतनसैं अभिन्न घटादिकनका वृत्तिचेतनसैं अभेद हुयेभी वृत्तिसैं घटादिकनका अभेद संभवै नहीं. जैसैं रज्जुमें कल्पित सर्प दंडमालाका रज्जुसैं अभेद हुयेभी सर्पदंड-

मालाका परस्पर भेदही होवै है, अभेद होवै नहीं. और ब्रह्ममें कल्पित सकल द्वैतका ब्रह्मसैं अभेद हुयेभी परस्पर अभेद होवै नहीं, तैसैं वृत्तिचेतनसैं तौ वृत्तिका और घटादिकनका अभेद संभवै है, वृत्तिका और घटादिक विषयका परस्पर अभेद संभवै नहीं; यातैं वृत्तिरूप प्रत्यक्ष ज्ञानमें उक्त लक्षणकी अव्याप्ति है:

३२० उक्त अव्याप्तिका अद्वैतविद्याचार्यकी रीतिसैं उद्धार.

तथापि अद्वैत विद्याचार्यकी रीतिसैं अपरोक्षत्वधर्म चेतनका है वृत्तिका नहीं. जैसैं अनुमितित्व इच्छात्व आदिक अंतःकरण वृत्तिके धर्म हैं, तैसैं अपरोक्षत्व धर्म वृत्तिमें नहीं है, किंतु विषयाकार वृत्त्युपहितचेतनका अपरोक्षत्व धर्म होनेतैं चेतनके अपरोक्षत्वका उपाधिवृत्ति है, यातैं वृत्तिमें अपरोक्षत्वका आरोप करिके **वृत्तिज्ञान** अपरोक्ष है; यह व्यवहार करै है. इसरीतिसैं वृत्तिज्ञान लक्ष्य नहीं यातैं अव्याप्ति नहीं. जो वृत्तिज्ञानमें अपरोक्षत्व धर्म इष्ट होवै और अपरोक्षका लक्षण नहीं जावै तौ अव्याप्ति होवै. वृत्तिज्ञान लक्ष्य नहीं, किंतु वृत्त्युपहित चेतनही लक्ष्य है; यातैं अव्याप्तिशंका नहीं. चेतनका धर्म अपरोक्षत्व माननेसैंही सुखादिक ज्ञानमें अपरोक्षत्व संभवै है. वृत्तिका धर्म अपरोक्षत्व मानैं तौ सुखादिगोचरवृत्तिके अनंगीकार पक्षमें साक्षिरूप सुखादिज्ञानमें अपरोक्षत्व व्यवहार नहीं हुया चाहिये; यातैं अपरोक्षत्व धर्म चैतनका है वृत्तिका नहीं.

३२१ उक्तपक्षमें शंका.

या पक्षमें यह शंका है:—संसारदशामेंभी जीवका ब्रह्मसैं अभेद होनेतैं सर्वपुरुषनकूं ब्रह्म अपरोक्ष है, ऐसा व्यावहार हुया चाहिये, और अवांतर वाक्यजन्य ब्रह्मका ज्ञानभी अपरोक्ष हुया चाहिये. काहेतैं ? अवांतर वाक्यजन्य वृत्त्युपहित साक्षिचेतनका ब्रह्मरूप विषयतैं अभेद है; तथापि:—

३२२ उक्त शंकाका समाधान.

यह समाधान है:—स्वव्यवहारानुकूल चेतनसैं अनावृत विषयका अभेद तौ अपरोक्ष विषयका लक्षण है; और अनावृत विषयसैं स्वव्यवहा-

रानुकूल चेतनका अभेद अपरोक्ष ज्ञानका लक्षण है. संसारदशामें आवृत ब्रह्मका स्वव्यवहारानुकूल चेतनसैं अभेद हुयेभी अनावृत विषयका अभेद होनेतैं ब्रह्ममें अपरोक्षत्व नहीं. तैसैं अवांतर वाक्यजन्य ज्ञानकाभी आवृत विषयतैं अभेद होनेतैं तिस ज्ञानकूं अपरोक्षत्व नहीं, यातैं उक्त शंका संभवै नहीं.

३२३ उक्त पक्षमें अन्यशंका.

अन्यशंकाः—उक्त रीतिसैं अनावृत विषयके अभेदसैं अपरोक्षत्व मानै तौ अन्योन्याश्रय दोष होवैगा. काहेतैं? समानगोचर ज्ञानमात्रकूं आवरण निवर्त्तक मानैं तौ परोक्षज्ञानसैंभी अज्ञानकी निवृत्ति हुई चाहिये और सिद्धांतमें असत्वापादक अज्ञानशक्तिका तिरोधान वा नाश तो परोक्ष ज्ञानसैं होवै है. अभानापादक शक्तिविशिष्ट अज्ञानका परोक्षज्ञानसैं नाश होवै नहीं अपरोक्षज्ञानसैंहीं अज्ञानका नाश होवै है. इसरीतिसैं ज्ञानके अपरोक्षत्वकी सिद्धिके अधीन अज्ञानकी निवृत्ति है और अनावृत्त विषयतैं स्वव्यवहारानुकूल चेतनका अभेद हुयां ज्ञानका अपरोक्षत्व लक्षण कहनेतैं अज्ञाननिवृत्तिके अधीनज्ञानके अपरोक्षत्वकी सिद्धि कही यातैं अन्योन्याश्रय दोष है.

३२४ उक्त शंकाका समाधान.

ताका यह समाधान है—यद्यपि पूर्व उक्तरीतिसैं अज्ञाननिवृत्तिकी ज्ञानके अपरोक्षत्वमें अपेक्षा है, तथापि अज्ञानकी निवृत्तिमें अपरोक्षत्वकी अपेक्षा नहीं. काहेतैं? ज्ञानमात्रसैं अज्ञानकी निवृत्ति मानै तौ परोक्षज्ञानसैंभी अज्ञानकी निवृत्ति हुई चाहिये; इस दोषके परिहारके अर्थ अपरोक्ष ज्ञानसैं अज्ञाननिवृत्ति कही है, तामें अन्योन्याश्रय दोष होवैहै. यातैं ज्ञानमात्रसैं अज्ञानकी निवृत्ति और अपरोक्षज्ञानसैं अज्ञानकी निवृत्ति नहीं कहै हैं; किंतु प्रमाणकी महिमातैं जहां विषयतैं ज्ञानका तादात्म्य संबंध होवै, तिसज्ञानसैं अज्ञानकी निवृत्ति होवै है. प्रमाणमाहिमातैं बाह्य इंद्रियजन्य घटादिकनका ज्ञान-विषयतैं तादात्म्यसंबंधवाला होवै है. और शब्दजन्य ब्रह्मज्ञानभी महावाक्य-

रूप प्रमाणकी महिमातैं विषयसैं तादात्म्यसंबंधवाला होवै है. यातैं उक्त उभयज्ञानसैं अज्ञानकी निवृत्ति होवैहै. यद्यपि सर्वका उपादान ब्रह्म होनेतैं ब्रह्मगोचर सकल ज्ञानोंका तादात्म्यसंबंध है, यातैं अनुमितिरूप ब्रह्मज्ञानतैं और अवांतर वाक्यजन्य ब्रह्मके परोक्षज्ञानतैंभी अज्ञानकी निवृत्ति हुई चाहिये, तथापि उक्त ज्ञानका विषयतैं तादात्म्यसंबंध है, सो विषयकी महिमातैं है, प्रमाणकी महिमातैं नहीं. काहेतैं ? महावाक्यतैं जीवब्रह्मके अभेद गोचर ज्ञान होवै, ताका विषयसैं तादात्म्यसंबंध तो प्रमाणकी महिमातैं कहे हैं. अन्यज्ञानका ब्रह्मसैं तादात्म्य संबंध है सो ब्रह्मकूं व्यापकता होनेतैं और सकलकी उपादानता होनेतैं विषयकी महिमातैं कहेहैं. इस रीतिसैं विलक्षण प्रमाणजन्य विषयसंबंधी ज्ञानतैं अज्ञानकी निवृत्ति होवै है. या कहनेमें ज्ञानमात्रसैं अज्ञाननिवृत्तिकी आपत्ति नहीं, और ज्ञानके अपरोक्षत्वकी अज्ञाननिवृत्तिमें अपेक्षाके अभावतैं अन्योन्याश्रय दोषभी नहीं। इस रीतिसैं स्वव्यवहारानुकूल अनावृत चैतन्यसैं विषयका अभेद अपरोक्षविषयका लक्षण है. उक्त चैतन्यका विषयतैं अभेद अपरोक्षज्ञानका लक्षण है; यातैं शब्दजन्य ब्रह्मज्ञानविषेभी अपरोक्षता संभवै है.

३२५ शब्दसैं अपरोक्ष ज्ञानकी उत्पत्तिमें कथन किये तीन मत विषे प्रथम मतकी समीचीनता.

याप्रकारतैं शब्दसैं अपरोक्ष ज्ञानकी उत्पत्तिमें तीनि मत कहैं, तिनमें आद्य मतही समीचीन है. काहेतैं ? ज्ञानगत परोक्षत्व अपरोक्षत्व प्रमाणाधीन है और सहकारिसाधनविशिष्ट शब्दमेंभी अपरोक्ष ज्ञानके जननको योग्यता है, यह प्रथम मत है. और विषयके अधीनही ज्ञानके अपरोक्षत्वादिक धर्म है; प्रमाणके अधीन नहीं. इस अभिप्रायतैं द्वितीय मत और अद्वैत विद्याचार्यका तृतीयमत है. तिन दोनों मतमैंभी केवल विषयके आधीनही अपरोक्षत्वादिकनकूं मानैं तो अवांतर वाक्यसैंभी ब्रह्मका अपरोक्ष ज्ञान हुया चाहिये; यातैं ज्ञानके अपरोक्षत्वमें प्रमाणके आधीनता अवश्यकही चाहिये, यातैं प्रथममतही समीचीन है.

३२६--३४२ वृत्तिके प्रयोजनका कथन.

३२६ ग्रंथके आरंभमें उक्त तीन प्रश्नोंका और तिनमें कथन किये दोनोंके उत्तरका अनुवाद.

ग्रंथके आरम्भमें वृत्तिका स्वरूप, कारण व फल, इन तीनिका प्रश्न है; तिनमें अंतःकरण और विद्याका प्रकाशरूप परिणाम वृत्ति कहियेहै. या कहनेतैं वृत्तिका सामान्यरूप कह्या, तिसतैं अनंतर यथार्थत्व अयथार्थत्वादिक भेदकथनतैं वृत्तिका विशेष रूप कह्या, और प्रमाणनिरूपणतैं वृत्तिके कारणका स्वरूप कह्या.

३२७ वृत्तिके प्रयोजनसंबंधितृतीयप्रश्नके उत्तरका आरंभ.

वृत्तिके प्रयोजनका प्रश्न कर्‌याथा, सो वृत्तिका प्रयोजन यह है:--जीवकूं अवस्थात्रयका संबंध वृत्तिसैं होवै है, और पुरुषार्थप्राप्तिभी वृत्तिसैं होवै है, यातैं संसारप्राप्तिकी हेतु वृत्ति है और मोक्षप्राप्तिकी हेतु वृत्ति है. काहेतैं? अवस्थात्रयके संबंधसैं जीवकूं संसार है.

३२८ वृत्तिप्रयोजनके कथनावसरमें जाग्रतका लक्षण.

तहां इंद्रियजन्य ज्ञानकी अवस्थाकूं जाग्रत् अवस्था कहै है. अवस्थाशब्द कालका वाचक है. यद्यपि सुखादिकनका ज्ञान काल और उदासीनकालभी जाग्रत् अवस्था कहिये हैं और सुखादिक ज्ञान इंद्रियजन्य नहीं. जैसैं सुखादिज्ञानकालमें अन्यविषयका ज्ञानभी इंद्रियजन्य होवै नहीं, तैसैं उदासीनकालमें इंद्रियजन्यज्ञान है नहीं, तथापि वक्ष्यमाण स्वप्नावस्था और सुषुप्ति अवस्थासैं भिन्न जो इंद्रियजन्यज्ञानका आधारकाल सो जाग्रत् अवस्था कहिये है. सुखादिज्ञानकालमें और उदासीनकालमें यद्यपि इंद्रियजन्य ज्ञान नहीं है, तथापि ताके संस्कार है और इंद्रियजन्यज्ञानके संस्कार स्वप्नावस्था सुषुप्ति अवस्थामेंभी है; यातैं स्वप्नावस्था सुषुप्तिअवस्थासैं भिन्नकाल कह्या. इसरीतिसैं जाग्रत् अवस्था यह व्यवहार इंद्रियजन्य ज्ञानके आधीन है, सो इंद्रियजन्यज्ञान अंतःकरणकी वृत्तिरूप है अंतःकरणकी वृत्तिके मतभेदसैं ये प्रयोजन हैं.

३२९ किसी ग्रंथकारकी रीतिसैं आवरणका अभिभव वृत्तिका प्रयोजन.

कोई तो आवरणका अभिभव वृत्तिका प्रयोजन कहै हैं. यद्यपि आवरणाभिभवमेंभी नानामत हैं. जैसैं खद्योतके प्रकाशतैं महांधकारके एकदेशका नाश होवै है, तैसैं अज्ञानके एक देशका नाश आवरणाभिभव शब्दका अर्थ है; यह सांप्रदायिक मत है.

३३० समष्टि अज्ञानकूं जीवकी उपाधिताके पक्षमें ब्रह्म वा ईश्वर वा जीवचेतनके संबंधसैं आवरणके अभिभवका असंभव.

समष्टि अज्ञान जीवकी उपाधि है; या पक्षमें घटादिक विषयतैं चेतनका सदा संबंध है, यातैं चेतनसंबंधसैं तो आवरणका अभिभव संभवै नहीं. काहेतैं ? ब्रह्मचेतन तो आवरणका साधक है विरोधी नहीं. और ईश्वरचेतनसैं आवरणका अभिभव होवै तौ "इदं मयाऽवगतं" ऐसा व्यवहार जीवनकूं नहीं हुया चाहिये; किंतु "ईश्वरेणावगतं" ऐसा व्यवहार हुया चाहिये. काहेतैं ? ईश्वर जीवका व्यावहारिक भेद है; यातैं ईश्वरावगत वस्तु जीवका अवगत होवै नहीं. यातैं जीवचेतनके संबंधसैं आवरणका अभिभव कहै तौ यापक्षमें जीवचेतन घटादिकनसैं सदा संबंध है. काहेतैं ? जीवचेतनकी उपाधि मूलाज्ञान है, तामें आरोपित प्रतिबिंबत्वविशिष्टचेतनकूं जीव कहै हैं. मूलाज्ञानका घटादिकनसैं सदा संबंध होनेतैं जीवचेतनका सदा संबंध है. यातैं घटादिकनके आवरणका सदा अभिभव चाहिये. यातैं वृत्तिसैं आवरणका अभिभव कहै तो परोक्षवृत्तिसैंभी आवरणका अभिभव हुया चाहिये.

३३१ यापक्षमें अपरोक्ष वृत्तिसैं वा अपरोक्ष वृत्तिविशिष्ट चेतनसैं आवरणके अभिभवका संभव.

अपरोक्षवृत्तिसैं आवरणका अभिभव होवै है अथवा अपरोक्षवृत्तिविशिष्ट चेतनसैं आवरणका अभिभव होवै है. जैसैं खद्योतके प्रकाशतैं महांधकारके एकदेशका नाश होवै है, खद्योतके अभावकालमें महांधकारका फेरिविस्तार होवै है. तैसैं अपरोक्षवृत्तिसंबंधसैं अथवा अपरोक्षवृत्तिविशिष्ट चेतनके संबंधसैं

मूलाज्ञानके अंशका नाश होवै है, वृत्तिके अभावदशामें अज्ञानका प्रसरण होवै है, यह सांप्रदायके अनुसारी मत है.

३३२ उक्तपक्षकी रीतिसैं आवरणनाशरूप वृत्तिके प्रयोजनका कथन.

तिसतैं अज्ञानके अंशका नाश अपरोक्ष वृत्तिका प्रयोजन है, और असत्वापादक अज्ञानांशका नाश परोक्षापरोक्षवृत्तिका प्रयोजन है; इसरीतिसैं आवरणनाश वृत्तिका प्रयोजन है यह पक्ष कह्या.

३३३ द्वितीयपक्षकी रीतिसैं जीवचेतनसैं विषयके संबंधरूप वृत्तिके प्रयोजनका कथन.

जीवचेतनसैं विषयका संबंध वृत्तिका प्रयोजन है, यह दूसरा पक्ष है. याकूं कहैहैं:—समष्टि अज्ञानसैं प्रतिबिंब जीव है, यापक्षमें जीवचेतनका घटादिकनसैं सर्वदा संबंध है, परंतु जीवके सामान्य संबंधसैं विषयका प्रकाश होवै नहीं; यातैं विषयके प्रकाशका हेतु जीवसैं विजातीय संबंध वृत्तिका प्रयोजन है. जीव चेतनका विषयतैं संबंध सर्वदा है, परंतु वह संबंध विषय प्रकाशहेतु नहीं. वृत्तिविशिष्ट जीवका विषयतैं सबंध होवै तौ विषयका प्रकाश होवैहै, यातैं प्रकाशहेतु संबंध वृत्तिके आधीन है. सो प्रकाशहेतु जीवका विषयतैं संबंध अभिव्यंजकअभिव्यंग्यभाव है. विषयमें अभिव्यंजकता है, जीवचेतनमें अभिव्यंग्यता है. जामें प्रतिबिंब होवैं ताकूं अभिव्यंजक कहैहैं, जाका प्रतिबिंब होवै सो अभिव्यंग्य कहियेहैं. जैसैं दर्पणमें मुखका प्रतिबिंब होवै, तहां दर्पण अभिव्यंजक है मुख अभिव्यंग्य है; तैसैं घटादिक विषयनमें चेतनका प्रतिबिंब होवैहै, यातैं घटादिक अभिव्यंजक है, चेतन अभिव्यंग्य है. इस रीतिसैं प्रतिबिंबग्रहणरूप व्यंजकता घटादिक विषयमें है. प्रतिबिंबसमर्पणरूप व्यंग्यता चेतनमें है, घटादिकनमें स्वभावसैं प्रतिबिंबग्रहणकी सामर्थ्य नहीं. किंतु स्वाकारवृत्ति संबंधसैं चेतनप्रतिबिंबके ग्रहण योग्य होवै है. जैसे दर्पणसंबंध विना कुडयमें सूर्यका प्रतिबिंब होवै नहीं और दर्पण संबंधसैं होवै है; यातैं सूर्यप्रतिबिंब ग्रहणकी योग्यता कुडयमें दर्पणसंबंधसैं होवैहै. जैसैं दृष्टांतमें सूर्यप्रभाका कुडयसैं सर्वदा सामान्य संबंध

है और अभिव्यंजक अभिव्यंग्यभावसंबंध दर्पणाधीन है: तैसे जीवचेतनका विषयतैं सर्वदा संबंध है, परंतु वृत्तिसंबंधसैं घटादिकनमें जीवचेतनके प्रतिबिंबकी ग्रहणयोग्यता होवै है; यातैं जीवचेतनका घटादिकनसैं अभिव्यंजक-अभिव्यंग्यभावसंबंध वृत्तिके आधीन है. इसरीतिसैं जीवचेतनसैं घटादिकनके विलक्षण संबंधकी हेतु वृत्ति है; यातैं विषयसंबंधार्थ वृत्ति है, ता संबंधसैं विषयका प्रकाश होवै है: जीवचेतन विभु है, यापक्षमें विलक्षण संबंधकी जनक वृत्ति है.

३३४ अंतःकरणविशिष्ट चेतन जीव है या पक्षमें विषयसंबंधार्थ वृत्तिकी अपेक्षा.

अंतःकरणविशिष्ट चेतन जीव है, या पक्षमें तौ वृत्तिविना जीवचेतनतैं घटादिकनका सर्वथा संबंध नहीं. इंद्रियविषयके संबंधसैं अंतःकरणकी वृत्ति घटादिदेशमें जावै, तब जीवचेतनका घटादिकनतैं संबंध होवै है. वृत्तिके बाह्यगमनविना अंतर जीवका बाह्य घटादिकनतैं संबंध होवै नहीं. इसरीतिसैं अंतःकरणावच्छिन्न परिच्छिन्न जीव है, यापक्षमें विषयसंबंधार्थ वृत्ति है, यह अर्थ स्पष्टही है.

३३५ उक्त दोनों पक्षनकी विलक्षणता.

इसरीतिसैं अज्ञानोपाधिक जीव है, या पक्षमें जीवचेतनका विषयतैं संबंध तो सदा है, अभिव्यंजकअभिव्यंग्यभाव संबंध सदा नहीं है, तिसके अर्थ वृत्ति है और अंतःकरणावच्छिन्न जीव है, यापक्षमें जीवका विषयतैं सर्वथा संबंध नहीं है, ताके अर्थ वृत्ति है. इसरीतिसैं वृत्तिके फल संबंधमें विलक्षणता ग्रंथकारोंनें कही है; परंतुः—

३३६ मतभेदसैं संबंधमें विलक्षणताके कथनकी असंगतता.

मतभेदसैं संबंधमें विलक्षणताका कथन असंगत है. काहेतैं ? अंतःकरण जीवकी उपाधि है. यापक्षमेंभी अज्ञान तो जीवभावकी उपाधि अवश्य इष्ट है अन्यथा प्राज्ञरूप जीवका अभाव होवै है, यातैं जीवभावकी उपाधि सर्वके मतमें अज्ञान है. कर्तृत्वादिक अभिमान अंतःकरणविशिष्टमें होवै है, यातैं

अंतःकरणावच्छिन्नकूं जीव कहै हैं. और अज्ञानमें प्रतिबिंब जीव है, यापक्षमेंभी अज्ञानविशिष्ट प्रमाता नहीं है, किंतु अंतःकरणविशिष्टही प्रमाता है. और जीवचेतनका तो विषयतैं संबंध सर्वदा है, परंतु प्रमातृचेतनका विषयतैं संबंध नहीं. और प्रमातृचेतनके संबंधसैंही विषयका प्रकाश होवै है. जीवचेतनके संबंधसैं विषयका प्रकाश होवै नहीं. जैसैं ब्रह्मचेतन ईश्वरचेतन अज्ञानके साधक है, तैसैं अविद्योपाधिक जीवचेतन है, ताके संबंधसैं विषयमें ज्ञाततादिक व्यवहार होवै नहीं और जीवचेतनकूं ज्ञाततादिकनका अभिमानभी होवै नहीं. प्रमाताके संबंधसैंही विषयमें ज्ञाततादिक व्यवहार होवैहै. और व्यवहारका अभिमानभी प्रमाताकूं होवैहै, सो प्रमाता विषयतैं भिन्नदेशमें है, यातैं प्रमाताका विषयतैं सदा संबंध नहीं. प्रमातासैं विषयका संबंध वृत्तिके आधीन है. तसरीतिसैं जीवकी उपाधिकूं व्यापक मानैं अथवा परिच्छिन्न मानैं तौ दोनों पक्षमें प्रमातासैं विषयसंबंध वृत्तिके आधीन समाधान है. तामें विलक्षणता कथन केवल बुद्धिप्रवीणताख्यापनके अर्थ है और प्रमाताका विषयतैं संबंध नहीं; इसी वास्ते अप्रवीणताका साधक है.

२३७ चारी चेतनके कथनपूर्वक उक्त अर्थकी सिद्धि.

प्रमातृचेतन, प्रमाणचेतन, विषयचेतन और फलचेतन भेदसैं चारि प्रकारका चेतन कह्या है. जो प्रमाताका विषयतैं संबंध होवै तौ प्रमातृचेतनसैं विषयचेतनका विभाग कथन असगत होवैगा. अंतःकरणविशिष्ट चेतन **प्रमातृचेतन** है. वृत्त्यवच्छिन्नचेतन **प्रमाणचेतन** है. घटाद्यवच्छिन्नचेतन **विषयचेतन** है और वृत्तिसंबंधसैं घटादिकनमें चेतनका प्रतिबिंब होवै, ताकूं **फलचेतन** कहै हैं. और कोई ऐसैं कहै हैं, घटावच्छिन्नचेतनही अज्ञात होवै तब विषयचेतन कहिये है और ज्ञात होवै तब घटावच्छिन्नचेतनकूं ही फलचेतन कहै हैं; ताहीकूं **प्रमेयचेतन** कहै हैं. परंतु विद्यारण्यस्वामीने और वार्तिककारने प्रमाणवृत्तिसैं उत्तरकालमें जो घटादिकनमें चेतनका आभास होवै सोई **फलचेतन** कह्या है. इस रीतिसैं प्रमातृचेतन परिच्छिन्न

है, और ताके संबंधसैंही विषयका प्रकाश होवै है. जीवचेतनकूं विभु मानैं तोभी प्रमातासैं विषयका संबंध वृत्तिकृत है; यातैं दोनों मतमें विषयसंबंधमें विलक्षणता नहीं.

३३८ जाग्रत्में होनेवाली वृत्तिके अनुवादपूर्वक स्वप्नावस्थाका लक्षण.

उक्त प्रयोजनवाली इंद्रियजन्य अंतःकरणकी वृत्ति जाग्रत् अवस्थामें होवैहै; इंद्रियसैं अजन्य जो विषयगोचर अंतःकरणकी अपरोक्षवृत्ति ताकी अवस्थाकूं स्वप्नाअवस्था कहैं हैं. स्वप्नमें ज्ञेय और ज्ञान अंतःकरणका परिणाम है.

३३९ सुषुप्ति अवस्थाका लक्षण.

सुखगोचर अविद्यागोचर अज्ञानका साक्षात्परिणामरूप वृत्तिकी अवस्थाकूं सुषुप्ति अवस्था कहे हैं. सुषुप्तिमें अविद्याकी वृत्ति सुखगोचर और अज्ञानगोचर होवै है. यद्यपि अविद्यागोचरवृत्ति जाग्रत्में "अहं न जानामि" इसरीतिसैं होवैहै, तथापि वह वृत्ति अंतःकरणकी है, अविद्याकी नहीं. यातैं सुषुप्तिलक्षणकी जाग्रत्में अतिव्याप्ति नहीं. तैसैं प्रातिभासिक रजताकार वृत्ति जाग्रत्में अविद्याका परिणाम है सो अविद्यागोचर नहीं, तैसैं सुखाकार वृत्ति जाग्रत्में है सो अविद्याका परिणाम नहीं है. इसरीतिसैं सुखगोचर और अविद्यागोचर अविद्यावृत्तिकी अवस्थाकूं सुषुप्ति अवस्था कहैं हैं.

३४० सुषुप्तिसंबंधी अर्थका कथन.

सुषुप्तिमें अविद्याकी वृत्तिमें आरूढ साक्षी अविद्याकूं प्रकाशैहै, और स्वरूप सुखकू प्रकाशैहै. सुषुप्तिअवस्थामें सुखाकार अविद्याकार परिणाम जिस अज्ञानांशका हुया है, तिस अज्ञानांशमें तिसपुरुषका अंतःकरण लीन है. जाग्रत्कालमें तिस अज्ञानांशका परिणाम अंतःकरण होवै है, यातैं अज्ञानकी वृत्तिसैं अनुभूत सुखकी जाग्रत्में स्मृति होवै है. उपादानका और कार्यका भेद नहीं होनेतैं अनुभवस्मरणकू व्यधिकरणता नहीं, इसरीतिसैं तीनि अवस्था हैं. मरणका और मूर्छाकाभी कोई सुषुप्तिमें अंतर्भाव कहैहैं, कोई पृथक् कहैहैं,

३४१ उक्त अवस्थाभेदकूं वृत्तिकी आधीनता.

यह अवस्थाभेद वृत्तिके आधीन है. जाग्रत् स्वप्नमें तो अंतःकरणकी वृत्ति है, जाग्रत्में इंद्रियजन्य है, स्वप्नमें इंद्रियअजन्य है. सुषुप्तिमें अज्ञानकी वृत्ति है !

३४२ वृत्तिके प्रयोजनका कथन.

अवस्थाका अभिमानही बंध है, भ्रमज्ञानकूं अभिमान कहै हैं, सोभी वृत्तिविशेष है; यातैं वृत्तिकृत बंधही संसार है. और वेदांतवाक्यसैं "अहं ब्रह्मास्मि" ऐसी अंतःकरणकी वृत्ति होवै तासैं प्रपंचसहित अज्ञानकी निवृत्ति होवै है सोई मोक्ष है; यातैं वृत्तिका संसारदशामें तो व्यवहारसिद्धि प्रयोजन है और परम प्रयोजन मोक्ष है.

३४३--३५२ कल्पितकी निवृत्तिविषे विचार.

३४३ कल्पितकी निवृत्तिकूं अधिष्ठानरूपतापूर्वक मोक्षमें द्वैतापत्तिदोषके कथनकी अयुक्तता.

कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप होवै है, यातैं संसारनिवृत्ति मोक्ष है. या कहनेतैं ब्रह्मरूप मोक्ष है,यह सिद्ध होवै है,यातैं कल्पितकी निवृत्तिकूं कल्पितका ध्वंस मानिके मोक्षमें द्वैतापत्ति दोषका कथन अज्ञानप्रयुक्त है.

३४४ न्यायमकरंदकारोक्त अधिष्ठानरूप कल्पितकी निवृत्तिपक्षमें दूषण.

न्यायमकरंदकारने कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानरूप नहीं मानी और द्वैतापत्तिकाभी समाधान कह्याहै, परंतु तिनका लेख अनुभवके अनुसार नहीं. काहेतैं ? यह तिनका लेख है:—कल्पितकी निवृत्ति अधिष्ठानसैं भिन्न है, जो अधिष्ठानरूप कहै तो अधिष्ठान और कल्पितनिवृत्ति एकही पदार्थ है. दो पदार्थ नहीं; यह सिद्ध होवे है. तहां यह पूछैहैं:—अधिष्ठानमें अंतर्भाव मानिके कल्पित निवृत्तिका लोप इष्ट है अथवा कल्पितनिवृत्तिमें अंतर्भाव मानिके पृथक् अधिष्ठानका लोप इष्ट है ? अन्यप्रकार संभवै नहीं. एकमें अप-

रका अंतर्भावही कहना होवैगा. जो प्रथम पक्ष कहै तौ संभवै नहीं. काहेतैं? संसारका अधिष्ठान ब्रह्म है, और संसारकी निवृत्ति ब्रह्मसैं भिन्न नहीं होवै तौ संसारनिवृत्तिके साधनमें प्रवृत्ति नहीं हुई चाहिये. काहेतैं ? संसारनिवृत्ति ब्रह्मसैं भिन्न तौ है नहीं और ब्रह्मसिद्ध है. व्यापारसाध्यके अर्थ प्रवृत्ति होवै है, स्वभावसिद्ध ब्रह्मके अर्थ ज्ञानसाधन श्रवणादिकनमें प्रवृत्ति संभवै नहीं; यातैं संसारनिवृत्तिका नित्यसिद्ध ब्रह्ममें अंतर्भाव संभवै नहीं और जो निवृत्तिमें ब्रह्मका अंतर्भाव कहै तौभी संसारभ्रमका असंभव होनेतैं ताकी निवृत्ति जनक ज्ञानके साधन श्रवणादिकनमें प्रवृत्ति नहीं हुई चाहिये. काहेतैं? संसारकी निवृत्ति तो ज्ञानसैं उत्तरकालमें होवैहै, ज्ञानसैं प्रथम कल्पितकी निवृत्ति होवै नहीं; यह अनुभवसिद्ध है. और संसारनिवृत्तिसैं पृथक् ब्रह्म है नहीं, यातैं ज्ञानतैं पूर्व ब्रह्मरूप अधिष्ठानके अभावतैं संसारभ्रम संभवै नहीं; यातैं अनुभवसिद्ध संसारका अभाव तो कह्या जावै नहीं. सत्य कहना होवेगा. ताकी ज्ञानसैं निवृत्ति संभवै नहीं, यातैं संसारनिवृत्तिमें ब्रह्मका अंतर्भाव संभवै नहीं, और संसारनिवृत्ति ज्ञानसैं पूर्वकालमें है नहीं; ज्ञानसैं उत्तरकालमें होनेतैं सादि है और ब्रह्म अनादि है. सादि पदार्थमें अनादि पदार्थका अंतर्भाव कथन अयुक्त है. इस रीतिसैं दोनोंका परस्पर अंतर्भाव संभवै नहीं; यातैं कल्पितनिवृत्ति अधिष्ठानरूप है, यह पक्ष संभवै नहीं. और जो ऐसैं कहैं, परस्पर अंतर्भाव किसीका नहीं कहै हैं; तथापि कल्पितनिवृत्ति अधिष्ठानसैं पृथक् नहीं, अधिष्ठानकी अवस्थाविशेष कल्पितनिवृत्ति है. अज्ञात और ज्ञात दो अवस्था अधिष्ठानकी होवै हैं. ज्ञानसैं पूर्व अज्ञात अवस्था है, और ज्ञानसैं उत्तरकालमें ज्ञात अवस्था होवै है. ज्ञात अधिष्ठानरूप कल्पितकी निवृत्ति है, ज्ञात अधिष्ठान सादि है; यातैं ज्ञानसाधन श्रवणादिक निष्फल नहीं. और संसारनिवृत्ति ब्रह्मसैं पृथक् नहीं, इस रीतिसैं ज्ञात अधिष्ठानरूपही कल्पित निवृत्तिकूं मानैं सोभी संभवै नहीं. काहेतैं ? ज्ञानके विषयकूं ज्ञात कहै हैं, अज्ञानके विषयकूं अज्ञात कहैहैं, अज्ञानकृत आव-

रणही अज्ञानकी विषयता कहिये है. जब ज्ञानसैं अज्ञानका अभाव होवै, तब अज्ञात व्यवहार होवै नहीं; तैसैं विदेहदशामें देहादिकनके अभावतैं ज्ञानका अभाव होनेतैं ज्ञातताका अभाव होवै है, यातैं विदेहदशामें अज्ञात अवस्थाकीनांई ज्ञात अवस्थाकाभी अभाव होनेतैं ज्ञात अधिष्ठानरूप कल्पित निवृत्तिका मोक्षमें अभाव हुया चाहिये. जो मोक्षमें अभाव मानै तौ कल्पित निवृत्तिकूं अनंतताके अभावतैं औषधजन्य रोगनिवृत्तिकीनांई परमपुरुषार्थताका अभाव होवैगा.

३४५ न्यायमकरंदकारकी रीतिसैं अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पितकी निवृत्तिका निरूपण.

कल्पित निवृत्ति अधिष्ठानरूप नहीं, तासैं भिन्न है और अधिष्ठान भिन्नभी कल्पितकी निवृत्ति द्वैतकी संपादक नहीं. काहेतैं ? अधिष्ठानसैं भिन्न सत्य होवै तौ द्वैत होवै. सत्यसैं विलक्षणपदार्थ द्वैतका हेतु होवै तौ सिद्धांतमें सदा अद्वैत है, या अर्थका बाध होवेगा. यातैं सत्यपदार्थका भेदही द्वैतका साधक है. कल्पितनिवृत्ति अधिष्ठानसैं भिन्न है और सत्य नहीं; यातैं द्वैतसिद्धि होवै नहीं.

३४६ न्यायमकरंदकारकी रीतिसैं कल्पितनिवृत्तिके स्वरूपनिर्णयके वास्ते अनेक विकल्पनका लेख.

कल्पितनिवृत्तिके स्वरूपनिर्णयके वास्ते इस रीतिसैं विकल्प लिखे हैंः—अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पितकी निवृत्ति सत्‌रूप है वा असत्‌रूप है वा सदसत्‌रूप है वा सदसत्‌विलक्षण है ? जो सत्‌रूप कहै तो व्यावहारिक सत् है अथवा पारमार्थिक सत् है? जो व्यावहारिक सत् कहै तो ब्रह्मज्ञानसैं उत्तर व्यावहारिक सत्‌का संभव नहीं होनेतैं ब्रह्मज्ञानसैं उत्तर संसारनिवृत्तिका अभाव चाहिये. काहेतैं? ब्रह्मज्ञानसैं प्रथम जाका बाध होवै नहीं और ब्रह्मज्ञानसैं उत्तर जाकी सत्ता स्फुर्ति होवै नहीं सो व्याहारिक सत् कहिये है; यातैं कल्पित निवृत्तिकूं व्यावहारिक सत् मानैं तौ ज्ञानसै उत्तर ताका संभव होवै नहीं. यातैं अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पित निवृत्तिकूं पारमार्थिक सत्‌रूप कहै तौ द्वैत होवै-

गा. इसरीतिसैं अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पितनिवृत्ति सत्‌रूप नहीं. जो अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पितनिवृत्तिकूं असत् कहै तो असत्‌शब्दका अर्थ अनिर्वचनीय है अथवा तुच्छ है? जो अनिर्वचनीय कहै तो दोष आगे चतुर्थ विकल्पके खंडनमें कहैंगे. तुच्छ कहै तो संसारनिवृत्तिकूं पुरुषार्थता नहीं होवैगी; यातैं द्वितीय विकल्प संभवै नहीं और अधिष्ठानसैं भिन्नकूं सदसत्‌रूप कहै तो एकपदार्थकूं सत्‌स्वरूपता और असत्‌स्वरूपता विरोधी होनेतैं संभवै नहीं. और सदसत्‌रूप मानैं पूर्वउक्त सत्‌पक्षका दोष होवैगा और असत्‌पक्षका दोष होवेगा. काहेतैं? कल्पितनिवृत्तिमें सत् अंश है यातैं द्वैत होवैगा और असत् अंशतैं अपुरुषार्थता होवैगी. और सदसत्‌शब्दका ऐसा अर्थ करैः—सत् कहिये व्यावहारिक सत्ताका आश्रय है और असत् कहिये पारमार्थिक सत्‌सैं भिन्न है, यातैं सत् असत्‌का विरोध नहीं. काहेतैं? घटादिक व्यावहारिक सत्ताके आश्रय और पारमार्थिक सत्‌सैं भिन्न प्रसिद्ध है; यातैं उक्त विरोध नहीं. और पारमार्थिक सत्ताका निषेध करनेतैं द्वैत नहीं. व्यावहारिक सत्ता है तुच्छ नहीं; यातैं अपुरुषार्थभी नहीं. इस रीतिसैं अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पितनिवृत्ति पारमार्थिक सत्ताशून्य व्यावहारिक सत्तावाली है इस-अभिप्रायतैं सत्‌असत्‌रूप कहै तो प्रथम विकल्पमें व्यावहारिक सत् मानैं तौ जो दोष कह्या "ज्ञानसैं उत्तर व्यावहारिक पदार्थका असंभव होवै है" तिस दोषतैं यह अर्थभी संभवै नहीं; यातैं तृतीय विकल्पभी संभवै नहीं. और अधिष्ठानसैं भिन्न कल्पित निवृत्ति सदसत्‌विलक्षण है. यह चतुर्थ पक्ष कहै तौ सद्विलक्षण कहनेसैं द्वैत नहीं और असत्‌विलक्षण कहनेसैं अपुरुषार्थताभी नहीं, तथापि संभवै नहीं. काहेतैं? सदसद्विलक्षण अनिर्वचनीय होवैहै, यातैं कल्पितकी निवृत्ति अनिर्वचनीय है, यह सिद्ध होवैगा. और माया अथवा ताका कार्य अनिर्वचनीय होवै है, यातैं अज्ञान सहित संसारकी निवृत्तिभी अनिर्वचनीय होवै तौ मायारूप अथवा मायाका कार्यरूप अज्ञानसहित प्रपंचकी निवृत्ति माननी होवैगी. मायारूप अथवा मायाका कार्यरूप उक्त निवृत्तिकूं कहै तौ घटरूप घटकी

निवृत्ति है, इस कथनकीनांई उक्त कथन हास्यका आस्पद है. और ब्रह्मज्ञानसैं अज्ञानसहित प्रपंचकी निवृत्ति होवै तिसतैं अनंतर पुरुषार्थ-साधन सामग्री कोई रहै नहीं यह सिद्धांत है. ब्रह्मज्ञानका फल कल्पि-तकी निवृत्ति मायारूप अथवा मायाका कार्यरूप होवै, ताका निवर्तक कोई रह्या नहीं यातैं मोक्षदशामेंभी माया वा ताके कार्यका नित्यसंबंध रहनेतैं निर्विशेष ब्रह्मकी प्राप्तिरूप मोक्षका अभाव होवैगा; यातैं चतुर्थ पक्षभी संभवै नहीं इस रीतिसैं अज्ञान तत्कार्यकी निवृत्ति ब्रह्मसैं भिन्न है, सत्रूप नहीं, यातैं द्वैत नहीं. असत् नहीं, यातैं अपुरुषार्थता नहीं. सदसद्रूप नहीं, यातैं उभयपक्षउक्त दोष नहीं. अनिर्वचनीय नहीं, यातैं मोक्षदशामें अज्ञान तत्का-र्यका शेष नहीं. यातैं उक्त चतुर्विध प्रकारसैं विलक्षण अज्ञानतत्कार्यकी निवृत्ति ब्रह्मसैं भिन्न है.

३४७ न्यायमकरंदकारकी रीतिसैं उक्त चारी प्रकारसैं विलक्षण और ब्रह्मसैं भिन्न पंचमप्रकाररूप कल्पितकी निवृत्तिका स्वरूप.

पंचमप्रकार ताकूं कहैं है. जैसैं सदसत्सैं विलक्षण पदार्थकी अद्वैतमतमें अनिर्वचनीय परिभाषा हैं; तैसैं सत्रूप १, असत्रूप २, सदसत्रूप ३, और सदसद्विलक्षण अनिर्वचनीय ४, इन चारिप्रकारसैं विलक्षणप्रकारवाली अज्ञान तत्कार्यकी निवृत्ति है. चतुर्विधप्रकारसैं विलक्षणप्रकारका नाम पंचम प्रकार हैं; यातैं अज्ञान तत्कार्यकी निवृत्ति ब्रह्मसैं भिन्न है, ता निवृत्तिमें पंच-मप्रकार है; यह न्यायमकरंदमें लिख्या हैः—

३४८ न्यायमकरंदकारके मतकी असमीचीनता.

सो समीचीन नहीं, काहेतैं? व्यावहारिक सत् पदार्थ तो लोकमें प्रसिद्ध है और अनिर्वचनीय पदार्थभी इंद्रजालकृत लोकमें प्रसिद्ध है; तैसैं पारमार्थिक सत्पदार्थ शास्त्रमें ब्रह्म प्रसिद्ध है. और विद्वानोंके अनुभवसिद्ध ब्रह्मात्मा है इस सर्वसैं विलक्षण कोई वस्तु लोकशास्त्रमें प्रसिद्ध नहीं, अत्यंत अप्रसिद्ध रूप अज्ञानसहित संसारकी निवृत्ति मानैं तौ पुरुषार्थताका अभाव होवैगा. काहेतैं? पुरुषकी अभिलाषाका विषय पुरुषार्थ कहियेहै. अत्यंत अप्रसिद्धमें

पुरुषकी अभिलाषा होवै नहीं; किंतु प्रसिद्धमें अभिलाषा होवैहै; यातैं प्रसिद्ध पदार्थनसैं विलक्षण कल्पितनिवृत्ति नहीं. यद्यपि कल्पितानिवृत्तिकूं अधिष्ठानरूप मानैं तौभी संसारका अधिष्ठान ब्रह्म प्रसिद्ध नहीं, तथापि पूर्व अनुभूतमें अभिलाषा होवै है, यह नियम नहीं है; किंतु अनुभूतके सजातीयमें अभिलाषा होवै है. जैसैं भयरूप अनर्थहेतु सर्पकी निवृत्ति अधिष्ठान रज्जुरूप है तैसैं जन्ममरणादिरूप अनर्थहेतु संसारकी निवृत्ति अधिष्ठान ब्रह्मरूप है; इसरीतिसैं अधिष्ठानत्व धर्मसैं ब्रह्मरूप संसारकी निवृत्ति अनुभूतके सजातीय होनेतैं पुरुषकी अभिलाषा संभवै है और पचम प्रकार वादीके मतमें अनुभूत सजातीय नहीं होनेतैं प्रवृत्ति संभवै नहीं; और अधिष्ठानसैं भिन्न मानैं तौ भाष्यकारके वचनसैं विरोध होवैगा. भाष्यकारने कल्पितनिवृत्ति अधिष्ठानरूपही कही है.

३४९ न्यायमकरंदकारोक्त ज्ञात अधिष्ठानरूप कल्पितकी निवृत्तिपक्षमें दोषका उद्धार और प्रसंगमें विशेषण उपाधि और उपलक्षणका लक्षण.

ज्ञात अधिष्ठानरूप कल्पितकी निवृत्ति माननेमें जो दोष कह्या है:—मोक्षदशामें ज्ञातत्वके अभावतैं कल्पितनिवृत्तिका अभाव होनेतैं कल्पितका उज्जीवन होवैगा, ताका यह समाधान है:—ज्ञातत्वविशिष्ट और ज्ञातत्वउपहित ब्रह्म तौ मोक्षकालमें नहीं है. काहेतैं ? ज्ञातत्वविशेषणवालेकूं ज्ञातत्वविशिष्ट कहैं हैं. और ज्ञातत्वउपाधिवालेकूं ज्ञातत्वउपहित कहै हैं. कार्यमें संबंधी जो वर्तमानव्यावर्तक सो विशेषण कहिये है. जैसैं नीलरूपवाला घट उपजैहै, या स्थानमें नीलरूप विशेषण है. काहेतैं ? उत्पत्ति रूपकार्यसैं संबंधी है. और घटमें वर्तमान हुआ पीत घटसैं व्यावर्तक है. और कार्यमें असंबंधी वर्तमान व्यावर्तक उपाधि कहिये है. जैसैं भेरीउपहित आकाशमें शब्द है इस स्थानमें भेरी उपाधि है. काहेतैं ? शब्दकी अधिकरणतामें भेरीका संबंध नहीं और वर्तमान भेरी बाह्याकाशतैं व्यावर्तक है. और कार्यमें असंबंधी व्यावर्तक होवै सो उपलक्षण कहियेहै. उपलक्षणमें वर्तमानताकी अपेक्षा नहीं.

अतीतभी उपलक्षण होवै है. और उपाधि तो विशेष्यके सर्वदेशमें होवैहै. उपलक्षण एकदेशमें होवैहै. जैसैं "काकवत् गृहं गच्छ" ऐसा कहैं, जिस गृहमें काकसंयोग देख्या है, तिस गृहसैं काक चल्या जावै तौभी गमन करै है. इहां गृहका काक उपलक्षण है; काहेतैं ? गमनरूप कार्यमें असंबंधी है और गृहके एक देशमें है; तैसैं वर्तमान और अतीतकाक अन्यगृहतैं व्यावर्तक है. इस रीतिसैं विशेषण और उपाधि तो वर्तमान होवै है; यातैं विशेष्यके सर्व देशमें और सर्वकालमें होवै है. विशेष्यके जा देशमें जा कालमें नहीं होवै ता देशमें ता कालमें विशिष्ट व्यवहार नहीं होवै है और उपहित व्यवहारभी नहीं होवै है.

किंतु जितने कालमें जितने देशमें व्यावर्तक होवै उतने देशमें और कालमें विशिष्ट व्यवहार और उपहित व्यवहार होवै है, सो मोक्षदशामें ज्ञातत्वका संबंध नहीं, किंतु पूर्वज्ञातत्व हुया है; यातैं ज्ञातत्वविशिष्ट और ज्ञातत्व उपहित तौ अधिष्ठान नहीं है, और व्यावर्तक मात्रकूं उपलक्षण कहै हैं; वर्तमानमें आग्रह नहीं, यातैं विशेष्यके एक देशमें संबंध हुये और एककालमें संबंध हुयेभी व्यावर्तककूं उपलक्षण कहै हैं. इतर पदार्थसैं भेदज्ञानकूं **व्यावृत्ति** कहै हैं. विशेषण, उपाधि, व उपलक्षण ये तीनों इतरसैं व्यावृत्ति करै हैं तिनमें **विशेषण** तो यावत् देशकालमें आप होवै, तिस देश कालस्थ स्वविशिष्ट विशेष्यकी व्यावृत्ति करै है. जाकी व्यावृत्ति विशेषणसैं होवैं सो **विशिष्ट** कहिये है, और जिस देशकालमें व्यावर्तक होवै तिस देशकालस्थ व्यावर्तनीयकी व्यावृत्ति करै, आप बहिर्भूत रहै, सो उपाधि कहिये है. जाकी व्यावृत्ति उपाधिसैं होवै, सो **उपहित** कहियेहै, और व्यावर्तनीयके एकदेशमें कदाचित् होयके व्यावृत्ति करै तौ उपाधिकीनांई आप बहिर्भूत रहै सो उपलक्षण कहिये हैं. जाकी व्यावृत्ति उपलक्षणसैं होवै सो **उपलक्षित** कहियेहै. यातैं यह निष्कर्ष हुया. व्यावर्तक व व्यावर्तनीय इन दोनोंमें **विशिष्ट** व्यवहार होवैहै. जितने देशमें व्यावर्तक होवै, उतने देशमें स्थित व्यावर्तनीय मात्रमें उपहित व्यवहार होवै है, परंतु व्यावर्तक

सद्भावकालमें व्यावर्तककूं त्यागिके उपहित व्यवहार होवैहै. और व्यावर्तनीयके एक देशमें कदाचित् व्यावर्तक होवै, तहां व्यावर्तनीय मात्रमें उपलक्षित व्यवहार होवैहै इहां व्यावर्तक सद्भावकी अपेक्षा नहीं. इसरीतिसैं विशेषणादिकनके भेदतैं अंतःकरणविशिष्ट प्रमाता है, अंतःकरणोपहित जीव साक्षी है और अंतःकरणोपलक्षित ईश्वर साक्षी है. इहां प्रसंग यह है:--मोक्षदशामें ज्ञातत्वतैं अभावतैं ज्ञातत्वविशिष्ट और ज्ञातत्वोपहित तौ अधिष्ठान संभवै नहीं, तथापि ज्ञातत्वोपलक्षित अधिष्ठान मोक्षदशामेंभी है.

३५० अधिष्ठानरूप निवृत्तिके पक्षमें पंचम प्रकारवादीकी शंका.

जो पंचमप्रकारवादी यह शंका करै:—जामें कदाचित् ज्ञातत्व होवै, तामें ज्ञातत्वके अभावकालमेंभी ज्ञातत्वोपलक्षित मानै तो ज्ञातत्वसैं पूर्वकालमेंभी भावी ज्ञातत्वकूं मानिके ज्ञातत्वोपलक्षित कह्या चाहिये. जो पूर्वकालमें ज्ञातत्वोपलक्षित मानैं तौ संसारकालमेंभी ज्ञातत्वोपलक्षित अधिष्ठानरूप संसार निवृत्तिके होनेतैं अनायाससैं पुरुषार्थप्राप्ति होवैगी; यातैं ज्ञातत्वके अभावकालमें ज्ञातत्वोपलक्षित अधिष्ठानरूप कल्पितनिवृत्ति कहना योग्य नहीं.

३५१ उक्त शंकाका समाधान.

ताका यह समाधान है:--व्यावर्तक संबंधसैं उत्तरकालमें उपलक्षित व्यवहार होवै है, पूर्वकालमें नहीं होवै है. जैसैं काकसंबंधसैं उत्तरकालमें काकोपलक्षित व्यवहार होवै है. तैसैं ज्ञातत्वकी उत्पत्तिसैं पूर्व संसारदशामें ज्ञातत्वोपलक्षित अधिष्ठान नहीं; किंतु उत्तरकालमें ज्ञातत्वके असद्भावकालमेंभी ज्ञातत्वोपलक्षित अधिष्ठान है, ताका स्वरूपही संसारनिवृत्ति है.

३५२ न्यायमकरंदतैं अन्यरीतिसैं अधिष्ठानतैं भिन्न कल्पितकी निवृत्तिका स्वरूप.

कल्पितकी निवृत्तिं अधिष्ठानसैं भिन्न है; या पक्षमें आग्रह होवै तौ न्यायमकरंदग्रंथमें उक्त रीतिसैं अत्यंत अप्रसिद्ध पंचमप्रकार मानना निष्फल है. काहेतैं ? अनिर्वचनीयकी निवृत्ति अनिर्वचनीय है. निवृत्ति नाम ध्वंसका है, तिस ध्वंसकूं अनंत अभावरूप मानैं और अधिष्ठानसैं भिन्न मानैं तौ

मोक्षदशामें द्वैत होवै, सो ध्वंस अनंत अभावरूप नहीं, किंतु क्षणिक भावविकार है. यास्कनाम मुनिने वेदका अंग निरुक्त कन्या है, तामें जन्म, सत्ता, वृद्धि, परिणाम, अपक्षय और विनाश ये षट्भाव विकार कहे हैं. भाव कहिये अनिर्वचनीय वस्तुताके विकार हैं, अवस्था विशेष हैं. अनिर्वचनीयकी अवस्था विशेष होनेतैं जन्मादिक नाशपर्यंत अनिर्वचनीय हैं. जैसैं जन्म क्षणिक है. काहेतैं ? आद्यक्षणसंबंधकूं जन्म कहैहैं; प्रथम क्षणमें "जायते" ऐसा व्यवहार होवैहैं, द्वितीयादिक्षणमें "जातः" ऐसा व्यवहार होवैहै "जायते" ऐसा व्यवहार होवै नहीं. तैसैं मुद्गरादिकनतैं घटका चूर्णादिभाव होवै तब एक क्षणमें "घटो नश्यति" ऐसा व्यवहार होवै है. द्वितीयादिक्षणमें "नष्टो घटः" ऐसा व्यवहार होवै है. "नश्यति" यह व्यवहार होवै नहीं; यातैं जन्मनाश क्षणिक है, वर्तमानज घटका है यह "जायते घटः" या वाक्यसैं प्रतीत होवै है. अतीत जन्म घटका है; यह "जातो घटः" या वाक्यसैं प्रतीत होवै है. जैसैं घटका वर्तमान नाश है, यह "नश्यति घटः" यावाक्यसैं प्रतीत होवै है और "नष्टो घटः" यावाक्यसैं घटका अतीत नाश प्रतीत होवै है. जोध्वंसरूप नाश अनंत होवै तो नाशमें अतीतत्व व्यवहार नहीं हुया चाहिये; यातैं नाश अनंत नहीं, किंतु क्षणिक है और भावविकार है, यातैं अभावरूप नहीं: और अनुपलब्धि निरूपणमें अनंत अभाव ध्वंस कह्या, सो न्यायकी रीतिसैं कह्याहै. वेदांतमतमें एक अत्यंताभावही अभावपदार्थ है. इसरीतिसैं कल्पितकी निवृत्ति क्षणिक है. जैसैं विद्वान्के अनिर्वचनीय शरीरादिक ज्ञानसैं उत्तरभी प्रारब्धबलतैं किंचित्काल रहैहै. द्वैतके साधक नहीं. तैसैं ज्ञानसैं उत्तरकाल कल्पितकी निवृत्ति एक क्षण रहै है, यातैं द्वैतकी साधन नहीं. एक क्षणतैं उत्तर कल्पित निवृत्तिका अत्यंताभाव है सो ब्रह्मरूप है.

३५२ उक्त मतमें पुरुषार्थका स्वरूप. (दुःखाभाव वा केवल सुख)

या मतमें दुःखनिवृत्ति क्षणिकभाव होनेतैं पुरुषार्थ नहीं, किंतु दुःखाभाव पुरुषार्थ है, अथवा दुःखाभावभी पुरुषार्थ नहीं, किंतु केवल सुखही

पुरुषार्थ है. काहतें ? अनंत दुःखसहित ग्राम्यधर्मादिकनका सुख है, तामें स्वभावसें सकल जीवनकी प्रवृत्ति होवै है. जो दुःखाभावभी पुरुषकी अभिलाषाका विषय होवै तो सर्वथा दुःखग्रसित सुखमें पुरुषकी अभिलाषा नहीं होनी चाहिये; और जहां दुःखाभावमें अभिलाषा होवै है, तहां भी स्वरूपसुखानुभवका प्रतिबंधक दुःख है, ताके अभावकालमें स्वरूप सुखका प्रादुर्भाव होवै है, यातैं दुःखाभावमें पुरुषकी अभिलाषा स्वरूप सुखके निमित्त है. इसरीतिसैं मुख्य पुरुषार्थ सुख है, दुखाभाव नहीं; यातैं दुःखात्यंताभावकूंभी ब्रह्मरूप नहीं मानै और अनिर्वचनीय मानैं तो ताकाभी बाध संभवै है, परंतु अनिर्वचनीयका बाधरूप अभाव तो अधिष्ठानरूप अनुभव सिद्ध है, यातैं अज्ञानसहित भावाभावरूप प्रपंच और ताकी निवृत्ति सकल अनिर्वचनीय है, तिन सर्वका अधिष्ठानरूप बाध होयके निर्द्वैतस्वरूप परमानंदरूप परम पुरुषार्थ मोक्ष है॰

इति श्रीमन्निश्चलदाससंज्ञकसाधुविरचिते वृत्तिप्रभाकरे जीवेश्वरस्वरूपनिरूपणपूर्वकवृत्तिप्रयोजननिरूपणसहितकल्पितनिवृत्तिस्वरूपनिरूपणं नामाष्टमः प्रकाशः ॥ ८ ॥

॥ इति वृत्तिप्रभाकर समाप्त ॥

